रवीन्द्र शताब्दी समापन तिथि के पुण्य अवसर पर 'निष्ठा' अपनी विनम्र अ जलि मे श्रद्धा के दो चार पुष्प लेकर आपके सामने उपस्थित है, और वह भी सकोच के साथ, डरते डरते। पर निष्ठा को विश्व की बौद्धिक और सास्कृतिक चेतना पर विश्वास है, जो रवी द्र के साहित्य का रसास्वादन निर तर एक वर्ष तक छक छककर करती भी न अघा सकी है। ऐसी रसलुब्ध जनता को 'निष्ठा' मे भी कुछ न कुछ महत्व की बात मिल ही जायेगी। हमने तो अपनी ओर से अपनी सीमा के अन्दर यथाशक्य प्रयत्न किया ही हे। रवीन्द्र को विविध व्यक्तियो तथा सस्थाओ ने देखा है और दिखलाया है। इस महदनुष्ठान मे हम जिस पद्धति को लेकर प्रवृत हुए हे वह सामन है। इस बात के पूर्ण रूप मे आश्वस्त न रहते हुए भी कि हम क्या कुछ विशेष कह सकते होगे, इस बात के तो आश्वस्त हे ही—

"सब जानत प्रभु प्रभुता सोई तदपि कहे बिनु रहा न कोई।"

सो हम भी आपसे कहने के लिए मचल पडे तो क्या आश्चर्य। सस्कृत के एक कवि ने कवियो की चर्चा करते हुए कहा है—

"एकस्य तिष्ठति कवेर्गृह एव काव्यम यस्य गच्छति सुहृद्भुवनानि यावत
न्यस्याविदग्धवदनेषु पदानि शश्वत् कस्यापि सचरति विश्वकुतूहलीव।"

—अर्थात् तीन तरह के कवि होते है। एक का काव्य तो उसके घर मे ही रहता है, दूसरे का काव्य मित्रो के घर तक पहु चता है और तीसरे का काव्य विश्व विजय का कुतूहली होकर विश्व भर मे फैलकर सहृदयो के हृदय मे स्थान पाता है। रवी द्र का काव्य व साहित्य इसी दिग्विजय का कौतूहल लेकर निस्सृत हुआ था, उसमे भारत की आत्मा अपनी पूरी शक्ति के साथ बोलती थी। यही कारण है कि उसके 'यश काय' मे 'जरामरणजभय" नही है। ज्यो-ज्यो मानवता उनके काव्य साहित्य व उनके विचारो का अवगाहन करेगी त्यो-त्यो उज्ज्वल होकर निकलेगी, स्फूर्ति मे सवलित होकर आगे आयेगी।

राष्ट्र की प्रगति मे किसी व्यक्ति ने क्या योग दिया, इसका मूल्याकन करने के दो ही ढग हो सकते है। प्रथमत तो यह कि उसने व्यक्तिगत रूप से स्वय अकेले बिना किसी के सहयोग से क्या किया। देखना यह होता है कि उसे दूसरो की सहायता यदि न भी मिली होती तो वह क्या कर पाता या कर पाया है? अकेला चना, कहा जाता है, भाड नही फोडता। पर चना यदि अपनी प्रतिभा की टकराहट से भाड मे जरा सी दरार भी डाल दे, अथवा भाड की दीवार को कमजार बना दे तो भी वह कम महत्वपूर्ण नही है। यही लीजिये। भारत की भाषाओ के प्रति लोगो की कोई ऊ ची धारणा न थी। समझा जाता था कि उनमे इतनी शक्ति नही कि वह दिव्य, महान, और सूक्ष्म भावो की वाहिका हा सके। बगला भी मछली खाने वालो तथा चावल खाने वालो की महज साधारण सी भाषा मानी जाती थी। वही भाषा एक कवि की किरणो का स्पर्श पाकर विश्ववद्य हो उठी।

'किमत आश्चर्यमपरम्'' । हर्ष ने कहा है कि चद्रिका के लिए इससे बढकर क्या स्तुति हो सकती हे कि वह सागर के हृदय को भी उत्तरली कर देती है ।

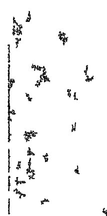
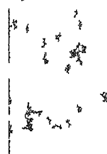
किसी क मूल्याकन का दूसरा तरीका होता है कि वह दूसरो को कहा तक प्रेरित कर सका है, वह दूसरा मे कहा तक कार्य करने की शक्ति का सचार कर सका है । बगला भाषा के विश्वकोष के प्रणेता श्री हरिचरण वद्योपाध्याय, बौद्ध धर्म के महायान शाखा के अन्यतम विद्वान् श्री विधुशेखर भट्टाचार्य, सत-साहित्य के उद्धारक श्री क्षितिमोहन सेन, बगला मे श्रेष्ठ बाल साहित्य के सृजक श्री शारदा प्रसन्न राय—ये लाग जो अपने अपने क्षेत्र मे दिग्पाल की तरह विराजमान ह, रवीन्द्र की ही देन ह । यदि रवीन्द्र ने इन धूल मे पडे हीरो को उठाकर त्रपने सरक्षण मे नही लिया होता तो बगला साहित्य कहा होता ?

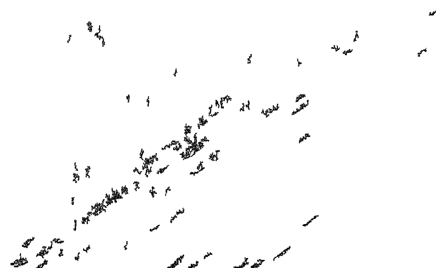
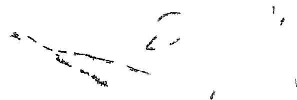
यह सच है कि वे सक्रिय राजनीति से दूर रहे, पर राजनीति के क्षेत्र मे भी उनका क्या प्रभाव पडा और उनकी लेखनी की नोक मे भारत की राजनीतिक चेतना किस तरह जागरित हुई, इसका इतिहास अब लिखा जान वाला है । साधारणत वृक्ष की लम्बी चौडी शाखाओ और धड के सामने उनको थामने वाली जडो की ओर हमारा ध्यान नही जाता । कवि की वाणी ने इस वृक्ष के मूल को किस तरह सीचा है—इसका कुछ मूल्याकन डा० मुल्कराज आनद द्वारा इस अक म प्रस्तुत लेख से जाना जा सकता है । इसी प्रकार कला के क्षेत्र मे रवीन्द्र के महान् अवदान को डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के लेख मे समझने मे सहायता मिलेगी ।

वस्तुत निष्ठा ने भारतीय सास्कृतिक जागरण के इस अग्रदूत, भारत के अमर गायक कवि, अप्रतिम विचारक तथा नाटककार की ओर आश्चर्य चकित होकर देखा है । उनके जीवन के विविध पहलुओ को पाठको के सामने रखने की चेष्टा की है । इस अक मे हिन्दी, प्रातीग व विदशी कवियो की काव्याजलि के अतिरिक्त, अक का ७ खण्डो मे विभाजित किया गया है—जीवन-स्मृति, साहित्य दर्शन, शिक्षा, कला और विदेश खण्ड । हर विषय पर रवीन्द्र की चुनी हुई रचनाये भी उनमे साथ ही साथ दी गई ह । कुल मिलाकर प्रयत्न यही रहा है कि उनकी एक भरी पूरी झाकी यहा पाठको को मिल जाय और उनमे रवीन्द्र साहित्य के अध्ययन की लालसा जगे । वे स्वय रवीन्द्र को देखे और समझे ।

अक मे प्रस्तुत डा० राजेन्द्रप्रसाद, डा० राधाकृष्णन, प्रो० हुमायू कबीर, सुमित्रानन्दन पत, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि विद्वानो की आधिकारिक रचनाये हमारे कथन की सम्पुष्टि करेगी । निश्चय ही इस महान प्रयास के लिए हम सभी लेखको व मित्रा के प्रति सश्रद्ध व सविनय आभारी है जिनके उत्साह पूर्ण व्यवहार ने हमे सम्पूर्ण बाधाओ के बीच भी खडे रहने का साहस प्रदान किया है । अत मे 'विश्वभारती' कलकत्ता, 'स्पान' मासिक क सम्पादक श्री नन्दा, बगला त्रैमासिक 'उत्तर सूरी' के सम्पादक श्री अरुण भट्टाचार्य व 'द्र सिटीज' पेरिस के सम्पादन—डाइरेक्टर श्री जीन फैन्सीटी के प्रति विशेष रूप मे आभार प्रकट करते हे जिनके सहयोग मे हम अक का अधिक मुखर बना सके हे ।

—सम्पादक

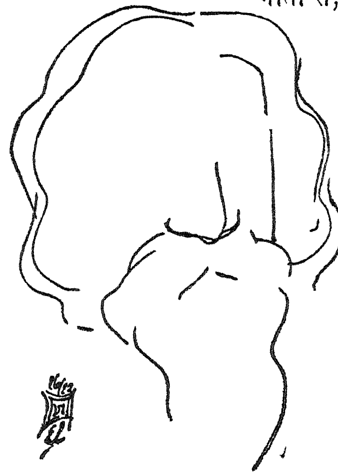


सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला'

अस्ताचल रवि, जल छलछल छवि,
स्तब्ध विश्वकवि, जीवन उन्मन,
मद पवन बहती सुधि रह रह
परिमल की कह कथा पुरातन।
दूर नदी पर नोका सु दर
दीखी मृदुतर बहती ज्यो स्वर,
वहा स्नेह की प्रतनु देह की
बिना गेह की बैठी नूतन।
ऊपर शोभित मेघ छत्र सित,
नीचे अमित नील जल दोलित,
ध्यान नयन-मन, चिन्त्य प्राण-धन,
किया शेष रवि ने कर अर्पण।

सुमि

अभिवादन स्वीकार
विश्रुत जन्म-दिवस
श्रद्धा स्मृति मे प्रीति
स्नेह द्रवित आन द
मौन स्वप्न पथ म
युग द्रष्टा बन आये
देश काल का तमस
पैठे जन जी न क
धरती के अवसाद म
उद्बोधन का गान,
मानव की चेतना र
बाहर ला मन मे अ
रग रग की आभा
नव जीवन, सौ दर्य
गीतो से, छन्दो मे,



[गुरुदेव रेखाकार—
जगदीश गुप्त (डा०)]

[चित्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

●

वन्दन

●

भारती की सुप्त वीणा को तुम्ही ने फिर जगाया और गाया।
जातियां जाती पतन की ओर को जब
कंठ पहले वे गँवाती,
और जब उत्थान को अभियान करती
तब प्रथम आवाज आती,
पूर्व से पश्चिम तलक गुरुदेव गूँजा
नाद जो, वह था तुम्हारा,
भारती की सुप्त वीणा को तुम्ही ने फिर जगाया और गाया।
एक आश्रम छोड, आए चीरते तुम
काल का घनतम अरण्यक,
और तुमने तोड फैका यामिनी का
जाल जादू का यकायक,
जोड दी बीते युगो की शृंखलाएं
साथ, जो टूटी पडी थीं,
दिव्य भारत-भूमि के अमरत्व का स्वर विश्व को तुमने सुनाया।
भारती की सुप्त वीणा को तुम्ही ने फिर जगाया और गाया।

●●

मैं हूं दीप तुम्हारा

•

अर्पित है किशोर गायक का तन-मन चिन्तन सारा
सचित करो लुटा दो चाहे मै भण्डार तुम्हारा ।।
मुझे जलाओ, मुझे बुझाओ, मै हू दीप तुम्हारा
चाहे मुझे स्नेह से भर दो, तारो सा चमका दो,
जीवन की बाती को, रत्नकणी मुस्कान पिला दो ।
चुका तुम्हारा स्नेह और मै डूबा मरण-तिमिर मे
तुम निज छविमन्त्रित अधरो से एक फूक छहरा दो
मुझे जलाओ मुझे बुझाओ मे ममता का मारा ।
गूथो मुझको या बिखेर दो, मै हू हार तुम्हारा ।।
मेरे यौवन की पखडिया खोजो, गूथो माला,
मेरे मुकुलित अरमानो का तार बने मतवाला,
प्राणपिकी का कठ, सुरभि की मधुता मे मडराये
या चाहे बिखेर दो, देकर रवि किरनो की ज्वाला
शेष रहा क्या मुझको पाने को पा स्पर्श तुम्हारा
सचित करो लुटा दो चाहे मै भण्डार, तुम्हारा
जीवन की निधिया बटोर कर अर्पित करने आया
टूट गया अभिमान हृदय ने पावन अर्घ्य चढाया
दूर्वादल सी मेरी आत्मा पहले तो सकुचाई
किन्तु वशीकृत हो तुमको मै तब से छोड न पाया
अर्पित है किशोर गायक का तन-मन चिन्तन सारा
सचित करो लुटा दो चाहे मै भण्डार तुम्हारा

••••

वाल्मीकि और रवीन्द्रनाथ

•

देखा आहत क्रौंच, शोक तव श्लोक बन गया, आदिकवे ! 'आ दस' बनती डाकू की वाणी !
कैसा मन मे एक अनमना सेतु तन गया नाम मात्र मे पत्थर तिरने । कुशीलवों की मा भी—
कहलाई 'सीता'—पहली उस शस्य-बालि की पाखे !
जोडासाको मे वृक्षों पर किरणें, निर्झर जागा,
'छिन्न पत्र' मे प्रकृति मातु की रोगी शिशु पर आखे
महाकाव्य बन गया बिंदु मधु कणिका मणि अन-मागा ।
प्रतिभा जो वाल्मीकि स्फूर्ति थी, जो रामायण
वही गीत की अंजलि की साधना बनी, चौतालो गायन
कृष्टि बाद मे आई 'ताई आजि कोन्-दिन आनमने बशिया एकाकी
पद्मा तीरे सम्मुखे मेलिया मुग्ध आखी, सर्व अंगे सर्व मने अनुभव करी
तोमार मृत्तिका माझे केमनि शिहरी उठिते छे तृणांकुर' प्रथम सृष्टि ।

रवीन्द्रनाथ और डान्टे

•

बीएत्रीचे ! एक नाम । क्षण झाकी । टोह चिरंतन
रूपसि, तुमने स्वर्ग निरय का एकाकी निर्मोही चिंतन—
उस बेचारे प्रेमाहत शिक्षा-रत डान्टे को सिखलाया
और यहा पर नदी-घाट पथ आलो छाया
पता नही किसने भरमाया ? कब मन भावन पाया ?
बार-बार वशी मे गाया, एक अलख अनजाया ।
'जे अमृत लुकानो तोमाय गे कोथाय ?'
बादल घिरे हुए दशदिशि मे, उत्तर मे सौदामिनि कौधी
सोने के धानो मे लदे खेत चुप, मिट्टी आज सौधी
कही अबूझी घुमड उठी थी अंतर्तम की आदि वेदना
कौन उत्स थी, कौन मत्र थी, कौन प्रेरणा ?
काव्य साधना नहीं, व्यथा थी, रस बिखेरना !
'ओई नयनर निविड तिमिर तले, कापिछे तमनी
आत्मार रहस्य शिखा ।' ओ अनाम, आ 'नामनी !!

•



[रवीन्द्र रियलिस्टिक



ज्योति धुए से ऊपर उठकर मुस्काई है

मेघराज मुकुल

•

कवि रवीन्द्र ! हर शिखा तुम्हारा अभिनन्दन करने आई है
क्योंकि आज हर ज्योति धुए से ऊपर उठकर मुस्काई है
देखो आज जिन्दगी ने जीने की नई कसम खाई है
क्योंकि सृजन की नई लेखनी मे तेरी प्रतिभा आई है।
यद्यपि तुम पर मध्यकाल की कुटिल मान्यताए भारी थी
पर तुमने नवीन रहने की महाचुनौती स्वीकारी थी
इसीलिए मानव-सस्कृतिया तुमसे विमुख नही हो पाई
विश्व प्रेरणाए खुद तेरे चरणो मे झुक झुककर आई।
तुमने राष्ट्रो के अवचेतन मन मे भर दी महाक्रान्तिया
देख तुम्हारी ज्योति, बुझ गई देशकाल मे बची भ्रान्तिया
जगी प्रेरणा स्वय तुम्हारे दर्शन की अभिलाषी होकर
जगी भावना, श्रद्धा मन की, युग की निविड निशा मे सोकर।
युग की आशा नये प्राण स्पदन का अब अनुभव करती है
देखो कवि ! अब मृत्यु अकेली गला घोटकर खुद मरती है
तुम थे सदा असाधारण पर साधारण से दूर नही थे
जन्मे थे अगूर-लता मे किन्तु नशे मे चूर नही थे।
साधारण जन प्यार नही करता है आज बूर्ज्वा पथ को
अतरिक्ष मे उडने वाला छोड रहा सामती रथ को
किन्तु तुम्हारी बात और थी यद्यपि सीमा थी उसकी भी
तुमने देखी नई भोर थी, यद्यपि सीमा थी उसकी भी।
उसी भोर की किरणो मे अब मेरा देश जगमगाता है
उसी भोर के ओठो पर युग-जीवन गीत गुनगुनाता है
अब तो ऐसा देश बन रहा जहा लेखनी सृजन करेगी
और एकता भावात्मक हो नई क्रान्ति का वरण करेगी।

•



•

ओ सफलस्वन कवि,

स्वीकारो अधूरे सपनो का समर्पण

हम अधूरे सपनो के कवि

और दे ही क्या सकते है ?

आज हम—

तुम्हारी स्मृति के द्वार

बाधने काटो की बन्दनवार

हमारी हृदय की झोली काटो से भरी है,

इसलिए, स्वीकारो यह चुभन !

ओ शिखरासीन रवि,

स्वीकारो,

घाटियो की अ धेरी गहराई मे—

ज्योतिष्पथिक जुगनुओ का अर्चन ।

क्षणजीवी और दे ही क्या सकते है ?

अ त मे अर्पित है—

विक्षोभ के अ गारे,

अ गारो पर सुलगती शिकायतो की धूप गध ।

कविवर,

स्वीकारो—

यह विक्षुब्ध युग का अहकारी पूजन !

•

अनगिनित प्रार्थनाए

ये अपराधी प्रार्थनाए, उसी शीर्ष तक जाए

जहा फूलो ने आरती की है।

श्वेत पुष्पो की शय्याए शीर्षस्थ आस्था

अमृत कलश लिए अ जुरी-बधी अभ्यर्थना

वेदना मे लिपटे गीतो के—

जुडे जुडे शब्द अमृतमय।

एक स्वर उठी लहरिया

सुदूर प्राची सुरसरि भीगी हवाओ की बदली दिशा

पश्चिमी सागरो को पारकर

आज भी अजाने आल्प्स बसे

ग्राम नगर-घर मे शिशु स्वर

एक ओर प्रात की घटिया

पुन पुन दुहरती बाईबल—

और गीताजलि के गीत-जुडे बिखरे वे गीत

किसी द्वार गये आए स्वर

प्रार्थना क निष्ठित स्वर

प्रभु मुझे वही सब दो

जो उन्हे दिया युग के हित

सचित सारवान सभी कुछ।"

अभी भी अनगिने कातर स्वर

प्रार्थना के लिए आतुर

और प्रार्थना के लिए जुडे हाथ-

मेरी ये प्रार्थनाए —

वही तक—उसी शीर्ष जाए

धन्य हिन्दुस्तान तुमसे



वर्ष जितने बीतते जाते निखरते जा रहे तुम
हर सदी के संग तुम्हारी उम्र बढ़ती जा रही है।

काल ने ताकत कला की जान ली है
सिर झुकाकर हार अपनी मानली है
शक्ति की ललकार मरती जा रही है
अश्रु की वाणी उभरती आ रही है

विश्वकवि तुम सभ्यता की गन्ध बनकर उड़ रहे हो
धूल भारत की गगन के शीश चढ़ती जा रही है।

आत्मा का बोल गीतांजलि तुम्हारी
सुन्दरम की आरती तुमने उतारी
रिक्त शब्दों में भरा अनुराग तुमने
रोशनी में ढाल दी सब आग तुमने

यह तुम्हारी साधना का फल कि जो इस तंत्र युग में
बुद्धि बेचारी हृदय का पाठ पढ़ती जा रही है।

किस मुहूरत में न जाने तुम खिले थे
किस तपस्या से न जाने तुम मिले थे

देश को कितना मिला है मान तुमसे
हो गया है धन्य हिन्दुस्तान तुमसे
काव्य के अपलक नयन बस देखते हैं छवि तुम्हारी
मुग्ध मानवता तुम्हारी मूर्ति गढ़ती जा रही है।



•

ओ सफलस्वन कवि,

स्वीकारो अधूरे सपनो का समर्पण

हम अधूरे सपनो के कवि

और दे ही क्या सकते है ?

आज हम—

तुम्हारी स्मृति के द्वार

बाधने काटो की ब दनवार

हमारी हृदय की झोली काटो से भरी है,

इसलिए स्वीकारो यह चुभन !

ओ शिखरासीन रवि,

स्वीकारो,

घाटियो की अ धेरी गहराई मे—

ज्योतिष्पथिक जुगनुओ का अर्चन ।

क्षणजीवी और दे ही क्या सकते है ?

अ त मे अर्पित है—

विक्षोभ के अ गारे,

अ गारो पर सुलगती शिकायतो की धूप गध ।

कविवर,

स्वीकारो—

यह विक्षुब्ध युग का अहकारी पूजन !

•

अनगिनित प्रार्थनाए

ये अपराधी प्रार्थनाए , उसी शीर्ष तक जाए

जहा फूलो ने आरती की है।

श्वेत पुष्पो की शय्याए शीर्षस्थ आस्था

अमृत-कलश लिए अ जुरी बधी अभ्यर्थना

वेदना मे लिपटे गीतो के—

जुडे जुडे शब्द अमृतमय।

एक स्वर उठी लहरिया

सुदूर प्राची सुरसरि भीगी हवाओ की बदली दिशा

पश्चिमी सागरो को पारकर

आज भी अजाने आल्प्स बसे

ग्राम नगर घर मे शिशु स्वर

एक ओर प्रात की घटिया

पुन पुन दुहरती बाईबल—

और गीताजलि के गीत-जुडे बिखरे वे गीत

किसी द्वार गये आए स्वर

प्रार्थना क निष्ठित स्वर

प्रभु मुझे वही सब दो

जो उन्हे दिया युग के हित

सचित सारवान सभी कुछ।"

अभी भी अनगिने कातर स्वर

प्रार्थना के लिए आतुर

और प्रार्थना के लिए जुडे हाथ-

मेरी ये प्रार्थनाए —

वही तक—उसी शीर्ष जाए

धन्य हिन्दुस्तान तुमसे

•

वर्ष जितने बीतते जाते निखरते जा रहे तुम
हर सदी के संग तुम्हारी उम्र बढती जा रही है।

काल ने ताकत कला की जान ली है
सिर झुकाकर हार अपनी मानली है
शक्ति की ललकार मरती जा रही है
अश्रु की वाणी उभरती आ रही है

विश्वकवि तुम सभ्यता की गन्ध बनकर उड रहे हो
धूल भारत की गगन के शीश चढती जा रही है।

आत्मा का बोल गीतांजलि तुम्हारी
सुन्दरम की आरती तुमने उतारी
रिक्त शब्दो मे भरा अनुराग तुमने
रोशनी मे ढाल दी सब आग तुमने

यह तुम्हारी साधना का फल कि जो इस तंत्र युग मे
बुद्धि बेचारी हृदय का पाठ पढती जा रही है।

किस मुहूरत मे न जाने तुम खिले थे
किस तपस्या से न जाने तुम मिले थे
देश को कितना मिला है मान तुमसे
हो गया है धन्य हिन्दुस्तान तुमसे

काव्य के अपलक नयन बस देखते है छवि तुम्हारी
मुग्ध मानवता तुम्हारी मूर्ति गढती जा रही है।

•



[रवीन्द्र जन्मशती पर—रामकिंकर

हे गुरुदेव

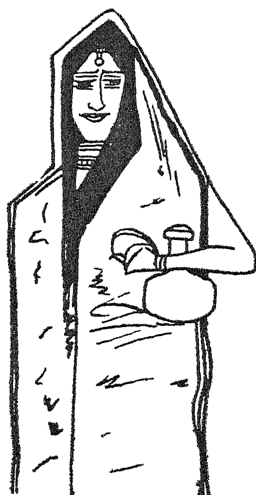
•

विश्वम्भरनाथ उपाध्याय (डा०)

कवि ! तुमने बंगदेश में जन्म लिया था,
जहाँ पोखरों में सरस्वती कमल पत्र पर बैठकर मछुओं के साथ कण्ठ मिलाकर गाती है।
और जहाँ तुम्हारी दाढ़ी जैसे बादल नीचे लटककर वर्षा की झड़ी लगाते हैं।
कवि ! कलकत्ते की शाम की समुद्री हवा जैसी तुम्हारी कल्पना—कितनी प्यारी थी !
महाकवि ! तुम उसी कलकत्ते में रहे—जहाँ तुम्हारे सुन्दर शब्दों से अधिक गन्दी गलियाँ हैं
जहाँ राजमार्ग के हर मोड़ पर कोई विधवा भिखारिणी उदासी बनकर खड़ी होती थी
रवि कुल चूड़ामणि ! तुम कहते थे कि—भगवान किसानों के पास है—लगता है, सूचना सही थी।
राजनीतिज्ञों ने तुम्हारी इस कविता के कहीं उद्धरण पढ़कर गाँवों पर धावा बोल दिया,
सारा मारा और स्वयं भगवान बन गये। गुरुदेव ! तुम्हारी वाणी सचमुच अमोघ थी !
सौन्दर्य स्रष्टा ! तुम हर चीज में चिरन्तन-सौन्दर्य खोजते थे।
तुम्हें श्री १०८ श्री प्रचण्डानन्द की डकार में और हजरत रमजानी की अजानुन जैसी अजान में
दिव्य सुन्दरी की पायल की झंकार सुनाई पड़ती थी।
आश्चर्य है ! क्या तुम्हें सारे कलकत्ते को अपनी पगड़ी में लपेटकर,
हिरण्याक्ष की तरह चलने वाले मारवाड़ी के 'श्री लक्ष्मीजी सदा सहाय'—
में भी त्रिभुवन व्याप्त सुन्दरता मिली थी ?
पतलून की क्रीज जैसे स्वभाव वाले, टाई की तरह इस देश की पतली गरदन में कसे,
'फाउन्टेनपेन' जैसे व्यक्तित्व वाले अंग्रेजों में भी गुरुदेव ! तुमने चिरन्तन चंचला के दर्शन किए थे।
चौरंगी के चमाचम पाठ पर मिटते हुए मोहर के निशान की शक्ल वाले भिखारियों में
और तन की कचालियों में भी कविराज ! तुमने कल्पवृक्ष की झलक देखी थी।
एक केला की तरह—भरे रेशमी कुर्तों में अपने बदन को सूद की तरह छिपाये बाबुओं में—
सौन्दर्य तो था—किन्तु बीड़ी के फेंके हुए टुकड़े के धुएँ में भी,
तुम्हें इन्द्र के अगरधूम का स्वाद हो मिला ?
गुरुदेव ! तभी हिन्दी वाले छायावाद नहीं समझे क्योंकि वह उन्हें तुमसे ही मिला था।
सुमित्रानन्दन पंत ने नैनीताल के ताल में पर्वत का प्रतिबिम्ब तो देखा, उसमें अमियों में उरोज भी देखे
किन्तु महाकवि ! यह तुम्हारा ही प्रभाव था कि—

'झाड फूस के निवर' लेखन हेतु कालाकांकर के राजभवन जाना पड़ा।
तुलसीदास के चराचर ने तो क्षणभर के लिए ही जगत को ब्रह्ममय देखा था
किन्तु गुरुदेव! निराला और पंत जीवन भर 'संध्या' से लेकर 'स्याही की बूँद' तक
'रुचि उत्सुक' से लेकर 'बिन्दी की पूँछ' तक—सर्वत्र कामिनी को ही खोज करते रहे।
सुना है यथार्थवादी निराला पागल होकर स्वर्गस्थ हुए। महाकवि! आपका प्रभाव प्रशंसनीय है।
रवीन्द्र! तुमने पानी पर किसी बालक के हाथ से फेंकी कागज की नाव को ध्यान से देखा था।
किन्तु उस बालक को नहीं, जो सेठ की 'बसनी' में बन्द खोटे रुपये की तरह तड़प रहा था।
तुमने रहस्य के पीछे पतंग की तरह दौड़ लगाते पर यह न देखा कि—
फीस न दे सकने पर स्कूल से निकाले गए किसी लड़के के हाथ में तुम्हारी डोर है।
गनीमत यह हुई कि बालक हमारा था—उसने डोर ढीली रखी और तुम उड़ते रहे, उड़ते रहे।
डोर कट जाने पर भी अनन्त आकाश में तुम उड़ते रहे! रहे हैं!!
कविराज! तुमने कहा था कि मुझे तपोवन चाहिए।
शान्तिनिकेतन को तुम स्कूल नहीं, कविता कहते थे।
किन्तु वहीं का एक छात्र कह रहा था— 'शान्तिनिकेतन प्रस्तुत आरण्यकों में एक उद्धरण है
जिसके दोनों ओर नवरत्न कामाज की तरह—रवीन्द्रनाथ लगे हुए हैं।
दिव्यद्रष्टा कवि! उसी शान्तिनिकेतन में वृक्ष के नीचे बैठकर, तुम ऊपर को देखते थे।
नीलाकाश मरम्मत करने वाले के यहाँ पड़े हुए नीले छाते सा लगता था।
उसके छिद्रों से तुम क्षितिज के उस पार देख लेते थे।
तुम्हें लगा कि यह ब्रह्माण्ड उलटे पेड़ जैसा है—जिसकी जड़ ऊपर और पत्तियाँ नीचे हैं।
गुरुदेव! गीतांजलि के गीतों में तुम अंग्रेजी भाषा के गाण्डीव पर चढ़कर अचूक हो गये।
जिनमें 'बायरानिकवियर' ही नहीं, बंगला पान और धान की भी महक है।
जिनमें कबीर के उन्हीं दोहरों की ध्वनि है जिनमें 'दुल्हा-दुलहिन' मिलते हैं।
जिनमें अनुप्रासों में टेनीसन और स्वप्नों में शेली मुस्कान है।
शेली को समुद्र की गहराई में और 'पछुआ तूफानी हवा' में भविष्य का रूप ही मिला।
किन्तु गुरुदेव! तुम्हें हुगली के किनारे हल्की हवा में ही 'हरि और हिरण्य' दोनों मिल गए।
कविकुल दिवाकर! तुमने काबुलीवाला की ममता को पहचाना था किन्तु मुकदमे में उसकी गवाही नहीं दी।
तुम्हें यीट्स बहुत चाहता था क्योंकि तुम राष्ट्रीयता के समय अन्तरराष्ट्रीयता की बात कहते थे।
तुमने ब्रह्म और जीव के बीच एक जीवन देवता की कल्पना की थी।
गुरुदेव! तुमने भगवान को महत्व नहीं दिया अन्यथा जन्म में न हो जाते।
तुमसे तो महाकवि मैं ही अच्छा हूँ—मेरे सामने 'पाइंट' को कौन पूछता है,
उसे गौरव में ही तो देता हूँ—देखते नहीं हो, सारे देशों में जयन्तियाँ मन रही हैं, गान हो रहे हैं।
और मालूम है, मैं कल शान्तिनिकेतन जनम का उद्घाटन करने जा रहा हूँ।

• • •



शतवंदन

•

सुमनेश जोशी

हे कविगुरु !
इस वीर भूमि के शतवदन लो !
अभिनदन लो !!

इस, प्रताप की,
प्रेम योगिनी मीरा की
लीला भूमि का
इस रस राग विराग भरी
सिकता-भूमि का,
मान भरा,
मनुहार भरा
पूजन अर्चन लो

शत वदन लो !
अभिनदन लो !!

सतियो और शहीदो की
इस पुण्य धरा के
जौहर की ज्वाला सा पावन

विनत नमन लो !
हे कवि गुरु !
इस वीर भूमि के !

शत वदन लो !
अभिनदन लो !!

दो धाराये

•

कन्हैयालाल सेठिया

चलकर आया कर्म कला के पास
उभरी रगे, कलूटी चमडी
चरण कापते
किन्तु अ गुलिया पकडे धरती,
कर मे लाठी, नगे घुटने
पिचका पेट, रासमय छाती
अधरो पर निश्चय की रेखा,
श्रम की बू दे घनी भवो पर
कला न सिहरी देख कर्म को
प्रशस्त ललाट हेम सी काया,
तीखी नाक भावमय चितवन
हिम सी उज्ज्वल कोमल दाढी
वस्त्र मनोरम स्वर कवितामय ।
दो डग आगे बढकर बाधा
कर्म कठिन को भुज बन्धन मे,
धरा स्वर्ग का, सत्य स्वप्न का
मिलन हुआ यह
धन्य हो गया वह क्षण सब दिन
कहा कर्म ने कला श्रेष्ठ है ।
कहा कला ने कर्म श्रेष्ठ है,
और श्रेष्ठ था बिन्दु जहा पर
एक हो गई दो धाराए ।

प्रार्थना का मंदिर रथ

वीरेन्द्र मिश्र

•

कुछ अधिक देर की बात नही बस अभी अभी कुछ क्षण पहले, तुम मुझको बहुत याद आए।
जो दिन अपनी राते लेकर बुझ गया स्वर्ण अस्ताचल मे
इतना तो लाभ मिला उसमे—उसने जा छोडा मुझको गीतो मे मुखरित उदयाचल मे।
मैने तुमको खोजा दक्षिणी झकोरो मे तुम पतझर के घर बैठे थे।
मैने तुमको ढूढा प्रार्थना सभाओ मे, छाया भी मुझ को नही मिली हाफते हाफते बैठ गया चिन्ताकुल हो।
तुम जो कि अंशुमाली थे, मुझको नही मिले।
प्रार्थना भरे मन मे मैं कुछ गुनगुना उठा
वह क्षण कुछ इतना मोहक था ढूढने चला था जिसे उसे ही भूल गया।
आश्चर्य हुआ मुझको उस क्षण, सहसा दूरी मे कालातीत किसी मदिर रथ की ध्वनि
रह रह गूज गई।
तुममे भीगे थे रगो के आलोक विरल, पर नही चौंधिया गए नयन,
रागिनिया थी समवेत मधुर सस्कार लक्ष्मिया सी अम्लान,
आनद भैरवी और तिलक कामोद तुम्हारे पीछे थे, सायास चमत्कृति श्रद्धा का आभास न था।
वह दिव्य प्रभामण्डल शालीन श्वेत गरिमा, ब्रह्माण्डो की मुस्कान तुम्हारे अधरो पर,
मै रहा देखता मत्र मुग्ध
देखता रहा, देखता रहा—देवी सरस्वती के चरणो मे तुमने किया समर्पित
कोई विजयवन सा महाकाव्य--
आकण्ठ विश्व वेदनाशील प्रार्थनाकाव्य—
वह स्वय मुग्ध होकर हो जैसे झूम उठी पायल उसकी
शायद पहली ही बार थिरक कर गूज उठी, नुपुर से टकराकर वह काव्य बिखर आया
प्रत्येक पृष्ठ बन गया गीत, अनुगुजन करने लगे दिशाओ के प्रहरी
पूरिया धनाश्री, मेघरजनी, मालकोस, छायानट, वागेश्वरी—सभी के लिये बने तुम दिव्य मच
ध्वनियो के चित्र उठे, उभरे चित्रो मे थी अनहद वाणी—बोले सब, यह गीताजलि है
मदिर रथ आता गया पास
मेरे मन मे जिज्ञासा थी, यह रथ यात्रा किस युग की है?
दृग और कण्ठ के माध्यम से यह कौन एक चैतन्य निमिष, सबकी रग रग मे समा रहा।
सामर्थ्य अर्थ से पूर्ण एक जीवन गागर, कैसे है महासमुद्रो को भर-भर लाती,

सवनामुखी यह आद्य विश्वकर्मा प्रज्ज्वलित पारद्रष्टा है भक्त और देवता एक ही क्षण कैसे ?
तुम और आ गए पास और मे विस्मय मे भर गया तभी,
सचमुच मेरे दृग के सम्मुख मदिर रथ का देवता स्वयम् प्राथना कर रहा था सबकी ।
सगीत भरे कोलाहल मे मेने देखा विस्मित होकर
तुम शत शत रूपावरणो मे हो कोटि कोटि जा दूर क्षितिज पर मुस्काते
सारा अम्बर ही मदिर रथ सा लगा मुझे, वह महायात्रा कितने सौरमडलो के पथ नाप चुकी,
कुछ ज्ञान नही
तुम औरो की ही नही, स्वय की भी सीमा का अतिक्रमण कर निकल गए अभिव्यक्त हो सका पूर्णकाम
तुमने अपने मन का उपनिषद् उडेल दिया सरिता तट पर, निर्झर के घर
भरव की राखी बाधी श्रमकमाओ को ।
तुम शान्तिलोक के नक्षत्रो मे दिखे कभी, तुम कभी खेत की मिट्टी मे से बोल उठे
वरदाता मे वर भी मागा तो अद्भुत ही—तुम झुके नही उसके आगे
तुम दयाभाव से चरणो मे जा नही गिरे—भिक्षा मागी ही नही, याचना करते हुए नही दौडे
मागा जीवन मे साहस, धैय, पराक्रम ही, अपने ही पावो बढन का विश्वास—यही मागा तुमने
अशीर्वचन जो मिला तुम्हे, सौ वरदानो से बढकर था ।
दुख की रातो का राजा तुम पर मुग्ध हुआ, वाणी की मधुर शयन कथा हो गई धन्य !
एक ही नमस्कृति मे तुमने जीवन भर की अतृप्ति मुक्त कर दी तुरन्त
तुमने ही धम धुरधर को, व्यवसायी तिलक धारियो को प्रभु का वास्तविक सदन समझाकर बतलाया
जो दीवारो से घिरे हुए मदिर के बाहर मुक्त पवन मे शोभित था
जो धूप धूप मे रक्त स्वेद मे, श्रम मे दशन देता था जो वण, वग के प्रतिबधो से ग्रस्त न था
आओ, मेरी प्राथना तुम्हे ही टेर रही
अब इतने अधिक न व्याप्त रहो मुझको, खण्डहर के वासी को,
अपने अभिमत्रित शान्तिनिकेतन की भौतिक सीमा के अन्दर नही,
हृदय की विश्वभारती के मधुशीलन सौम्य प्रभा मण्डल मे बस दुलरा भर लो
मुझको, यानी मेरी पीढी की अनुप्रेरित आकाक्षा को
ओ कलावत ! परमाणु ध्वस से करने को सघष मुझे बल दो, जय दो ।
आस्थाओ के ध्वसावशेष से मेरा भी रथ आता है—तुम जहा जहा हो गूज उठो ।
कुल ललनाओ की गाटी मेहदी का रग कितना गहरा है !
हर मगल-कलश ललक कर तुमसे पूछ रहा—मदिर रथ के ओ पाथ सारथी ! बोलो तो,
मे मादिरेय उपकरण-हीन,
मेरे मन भावन सहज विनत प्राथना महोत्सव मे, क्या तुम आ पाओगे ?

• • •

देवदूत

शातिलाल भारद्वाज 'राकेश'

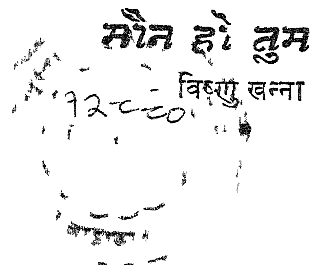
•

उजले गगनाचल मे
दूध की सफेदी सा उतरता जब देवदूत
शाखो की चटकन जब होते मे मुस्काती
तेरे कुछ गीतो की याद उभर आती है।
जीवन कुछ ऐसा हो सपना है,
जो न इन आखो मे अपना है।
और जब चदा की मीठी बेहोशी मे
चादी के झूले पर सरगम इठलाती है,
तेरे कुछ गीतो की गन्ध महक जाती है।
और जब सर्पो की अनगिन फूत्कारो मे,
एटम की हिंसा की दहकती शलाखो मे,
शस्त्रो की बिजली मे आख चौध जाती है,
तेरे कुछ गीतो की टीस उभर आती है।
टीस–जो धरती से बादल तक सबकी थी,
टीस–जो पायल से काजल तक सबकी थी,
स्रष्टा! यह जीवन का कसा सम्मोहन है?
रहता हूँ युगो पार
कर्मो की फुनझडिया सहता हूँ द्वार–द्वार
किन्तु जब अकेले मे–
गहरे सनाटे की सिहरती हवाओ से
सासो की मजिल मे रात बहक जाती है
तेरी कुछ बातो की याद बहुत आती है!
तुमने किस प्रतिमा को सौपा था पुष्पहार?
तुमने किस मदिर की आरती उतारी थी?
तुमने किन आखो से
डूबी सी पाखो से शारदा पुकारी थी?
मेरे जब गीत महक जाते
मेरी जब सास सिहर जाती
तेरी उन सासो की सौरभ
किरणो के रथ चढ आती है।

•



मौन हो तुम



विष्णु खन्ना

कौन कहता मौन हो तुम।
तुम कि जो हर सास मे अब भी मुखर हो,
कोटि कठो के लिए स्वर की लहर हो,
शब्द–गगा आज भी होती प्रवाहित,
अमृत–वाणी तुम्हारी स्नेह–सगम।
मौन हो तुम, कौन कहता मौन हो तुम॥

गूजने को तो बहुत से गीत गूजे,
पर तुम्हारे गीत को ससार पूजे,
काव्य की कोमल कला के मूर्त्त प्रहरी,
कल्पना की माग के सौभाग्य कुकुम।
मौन हो तुम, कौन कहता मौन हो तुम॥

भारती के स्वप्न की साकार प्रतिमा,
विश्व के हर साज की सगीत गरिमा,
पूर्व तो क्या, हो रहा है मुग्ध पश्चिम,
हर दिशा के तार पर है एक सरगम।
मौन हो तुम, कौन कहता मौन हो तुम॥

•

शब्दों की आत्मा

प्रकाश जैन

•

रगो को देखा दी, प्राण दिए
मन के सवेदन को शब्द दिए
तुमने ! हा, तुमने ही !!
शब्द नही,
शब्द की आत्मा मे झाक गये
रुकी हुई साँसो को दिया सगीत !
ज्ञान की,
दृष्टि की सीमायें खोली
मनुजता के भाल पर चटाई थी रोली
रूप की गागर मे केसर-सी घोली !
आज भी हम
सुनते हं तुम्हारा स्वर,
गूजती है तुम्हारी वाणी !
दखते हं तुम्हारी रेखाओ म जिज्ञासाकुल मन ।
हं शाति के प्रतीक !
मैत्री के रूप !
आज हम लिप्सा के सिरहाने बठे हं
युद्ध के बाद की विकृति से खडित
सभी ओर घटाटोप
हर तरफ बेचनी
आज तुम नही हो,
केवल है तुम्हारा स्वर
तुम्हारी वाणी
तुम्हारी रेखाये !

• • •

प्रज्ञा - पुत्र

नरेन्द्र मोहन

•

हे गुरुदेव !
करो स्वीकार तुम प्रणाम् मुझ अकिंचन का
हे देवपुत्र, प्रज्ञा पुत्र !
तुम हो देवदूत !
अशातमय धरती पर शान्ति के अमर दूत !
देखो तो, मै नतमस्तक हूँ, जग नत मस्तक है।
प्रज्ञारथ पर आरूढ हो
तुमने तो पराजित किया जग को, युग को।
तुम से तो पराजित हुई कीर्ति भी,
स्वर भी, सगीत भी।
ये, कीर्ति, स्वर, सगीत
सभी तो तुम्हारे प्रिय थे।
साथी थे, अभिन्न थे, अनुगामी थे।
पर
तुमने तो प्रस्थान किया प्रज्ञागति से, महागति मे
और
स्वर, कीर्ति, सगीत सभी पीछे छूट गये।
इतने पीछे कि
तुम्हारे महारथ का रव भी क्षीण हो गया,
शून्य मे विलीन हो गया
और अब,
सम्बल मात्र रह गई तुम्हारे रथ मे उडी धूल
करती है जो माग दशन—
जग का, युग का, स्वर का और सगीत का।

• • •



ग्गो द ठाकर । मिल एव अप्रकाशित चित्र

रेखांकित रवीन्द्र कथा

—फणीश्वरनाथ 'रेणु'

सपनीले दिनों का किशोर कवि

बड़ी निराशा हुई इस शतवार्षिकी के अवसर पर। आशा थी कि इस 'परमलग्न' मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सबध मे और भी 'नयी' बात पढने-सुनने को मिलेगी। क्योकि टगोर के प्रियपात्र शिष्य, सहचर और निकटतम अनुरागियो का एक छोटा सा दल अभी भी है देश मे। और कवि ने साहित्य-सगीत-चित्र-नाटक-अभिनय के अलावा जमीदारी भी चलाई थी, व्यवसाय भी किया था। कवि के सपर्क मे रहने वालो को यह भी मालूम है कि बचपन मे महाकवि ने कुश्ती लडना भी सीखा था, बाजाप्ता लगोट और अखाडे की मिट्टी लगाकर। लेकिन, उनके देश की कई प्रतिष्ठित पत्रिकाओ ने यह तय किया है कि रवीन्द्र के व्यक्तिगत जीवन या उनसे व्यक्तिगत सपर्क के माल-मसाले से रची गई रचनाओ को वे निरुत्साहित करेगे—इस शतवार्षिकी के समय।

और उस शतवार्षिकी (अगली), तक न वे रहेगे न ये रहेगे और न रहेगा दासानुदास पाठकराम! दादा! रवीन्द्र प्रतिभा पर तो इसके बाद भी प्रकाश पडते रहेगे—डालते रहेगे लोग। किन्तु आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी [आचार्य क्षितिमोहन सेन तो चले ही गये!] के मुह से रवीन्द्रनाथ की 'मजलिसी बाते', प्रमथनाथ बिशी से शातिनिकेतन स्मृति, श्रीमती निर्मला कुमारी की डायरी पढने-सुनने वाले सदा सर्वदा अपने को सौभाग्यवान और धन्य मानेगे।

क्या इन (व्यक्तिगत सपर्क सवलित) रचनाओ को बाद देकर कवीन्द्र की समग्र-मूर्ति (कवि की भाषा मे—समस्त छवि!) देखने को मिल सकती है?

निराशा अवश्य हुई है लेकिन पाठकराम एकदम निराश नही है। कविगुरु के अन्यतम शिष्यो, निष्काम-सेविकाओ, सहचरो भक्तो की ऐसी रचनाओ पर, रचना के अशो पर, पक्तियो के नीचे—दस वर्ष पूर्व से ही लाल दाग लगाना शुरू कर दिया था। जहा-जहा किसी कारणवश देह सिहरी, वहा पेंसिल ठहरी। जहा भी मानव (साधारण मनुष्य) रवीन्द्रनाथ की झलक मिली—हृदय पर एक चिह्न पड गया—लाल दाग!

एक दिन उन रचनाओ के कुछ रेखांकित अशो को सिलसिलेवार सजाने लगा। देखा—सामने एक मोहिनी-मूरत (दाढीवाली) ही मन्द-मन्द मुस्करा रही है। भय से या भक्ति से—कह नही सकता—चरणो पर झुक गया दासानुदास।

अभी हाल ही–बगला के सुप्रसिद्ध लेखक कवी द्र के प्रिय शिष्यो मे अ यतम सयद मुजतबा अली (बगला मे आली) साहब से भेट हुई, सौभाग्यवश। मैने रेखाकित अशो का सिलसिले वार (कह सकते है—खिलवाड !) आकार दिखलाया तो चचा (सयद अली) चिल्ला उठे—ताई तो ! मोहिनी मूरत मद- मद मुस्करानी है सचमुच !

आप स्वय देख ले—मुझे झूठा नबर एक कहने के पूव !

तो शुरू करे दस वष पूव मासिक 'बसुमती' मे प्रकाशित ! सयद मुजतबा अली के गुरुदेव' शीषक निबध का एकाश ! वे फारसी, सस्कृत, उदू, अग्रजी, फ्रेच, इत्यादि–नाना भाषाओ के मिश्रण से एक ऐसी भाषा लिखते है जिसको बगला मे मुजतबाई–भाषा कहते है। उनके एकाश का अनुवाद उ हे दिखला–सुनाकर प स करवा लिया है।



रवी द्र आयु १६ वष, श्री ज्योतिरि द्रनाथ टगोर के रेखाकन पर श्री गने द्रनाथ ठाकुर द्वारा निर्मित

'गुरुदेव'

रवी द्रनाथ के शिष्यो मे साहित्यिक के हिसाब से सर्वोच्च आसन पाते है श्रीयुक्त प्रमथनाथ बिशी। रवी द्रनाथ का घनिष्ठ साहचय सबसे अधिक उनका ही प्राप्त हुआ। खुदादाद या विधिदत्त, रसबोध उनमे पहले से भी था। फलत वे अपनी सरस, हल्की कलम से रवी द्रनाथ के दैनदिन जीवन, खुशगल्प, अड्डा–मजलिस के सबध मे जितना लिख चुके है, उसके बाद मेरे लिखने योग्य बाकी ही नही रहता, कुछ। कारण, बिशीदा जिस मजलिस मे सबसे उच्च आसन के अधिकारी है उस मजलिस मे—रवीद्रनाथ के शिष्य के हिसाब से यदि मुझे कोइ आसानी मिले तो वह सबसे नीचे होगी।

किन्तु बहुत शास्त्रो मे विधान है कि सवज्येष्ठ किसी कारणवश श्रद्धाञ्जलि नही दे सके तो देगा—सवकनिष्ठ। सो, इस पकड–धकड के बाजार मे बिशीदा को कही कुछ हो जाय तो मेरी 'श्राद्धाञ्जलि' की आवश्यकता पड सकती है। इसी भय से मा 'बसुमती' के पास इसे गच्छित रख दिया।

यो, गुरुदेव सभी के गुरुदेव है। कि तु वे हमारे गुरुदेव थे—शब्दश। एव उस गुरु की महिमा को देखकर हम स्तम्भित हुए हैं। व्यक्तिगत बाते करते समय मन आगा–पीछा करता है। लेकिन, इस स्थल पर छात्र के कतव्य का समाधान करने के लिए ही कह रहा हू शातिनिकेतन छोडने के बाद, बर्लिन पेरिस, लदन, करो–बहुत जगहो मे, बहुत गुरुओ को विद्यादान करते देखा है। कि तु, इस गुरु से किसी की तुलना नही हो सकती। कोटस ने हेमन की जसी छवि निखारी है उसे और भी अधिक उज्ज्वल किया जा सकता है, इस बात पर कोई सहज ही विश्वास नही करेगे। अग्रेजी कहावत है—you do not paint a lily

इसलिए मन मे प्रश्न जगना अस्वाभाविक नही कि रवीद्रनाथ कीटस की हेमत–लिली को मधुरतर, प्रियतर करते थे किस जादूमत्र मे ?

बिना तुलना के बात समझाई नही जा सकती । अग्रेजी कविता पढने समय, हमेशा ऐसा लगता है—अग्रेजी कविता मानो परियो की कहानी की साई हुई सुदरी हो । हम उसकी सुदरता पर मुग्ध होकर उच्छ्वसित प्रशसा करते है । किंतु उसके वाक्य–हास्य–नृत्य रस से वचित रहते हैं । और यह अभाव इतना 'मम तुद' होता है कि तब श्यामागी, स्थूलागी जाग्रता गौडजा का सगसुख ही अधिकतर काम्य ।

गुरुदेव, कीटस की एक पक्ति पढते है, निद्रिता–सुदरी आखो के सामने ! गुरुदेव अपनी भाषा की सोने की छडी छुआ देते है–हेमती आखे खोलकर हसती है । गुरुदेव के कठ मे प्राणप्रतिष्ठा का मत्र उद्दीप्त होता है, सुदरी चटुल नृत्य आरम्भ कर देती है । गुरुदव अपनी वीणा के तारो को 'करागुलि' स्पश करके झकार दते है—सुदरी गीत गाने लगती है ।

कीटस, शेलि, ब्राउनिग, वड्सवथ को लेकर रवीद्रनाथ का यह इद्रजाल कितनी बार देखा है और सोचा है --हाय ! इन वणनो को कोई 'टीप' रखता तो, बगाली को तो उसका रस मिलता ही, विलायत के लोग भी एक दिन उनका अनुवाद करवा कर अपने कवि के कितने अनाविष्कृत सोदय को देख पात । किंतु, यह भी जानता हू कि भानुमती की छवि, कमरा नही पकड सकता । गुरुदेव की इस वणन शली को किसी की कलम नही पकड सकती । जा थोडी बहुत पकडी गई वह पडित क्षितिमोहन सेन के भाडार मे है ।

हम–अर्थात् बगाली लाग ही रवीद्रनाथ को कितना सा जानते है ? रवीद्रनाथ की काव्यप्रतिभा, नाट्य निर्माण क्षमता, दाशनिक चितन–शक्ति, सावभौमिक धमानुभूति, औपयासिक अतदृष्टि, वैज्ञानिक कौतूहल–सब कुछ मिलाकर उनका अखडरूप हृदय और मन मे आकने की बात तो दूर—जहा वे भारत तथा पृथ्वी के सभी कवियो को पीछे छोड गये है, उसका ही सपूण परिचय कितने बगालियो ने पाया है ? हम सभी परम आनद से अधे का हाथी दशन कर रहे है और जो अश हमारे हाथ मे आता है, जरा टटोल कर चिल्लाते है—यही है । यही है रवीद्रनाथ ।

बेलजिम मे पढ रहा था । हठात् एक दिन श्रीयुक्त अमिय चक्रवर्ती का तार मिला—जमनी के मारबुग शहर मे गुरुदेव ने मुझे बुलाया है । जानते थे कि पास ही हू । मारबुग की उस सभा का वणन मैंने अयत्र किया है । यहा इतना ही कहू कि गुरुदेव ने जब 'बीन' बजाना शुरू किया तो मारबुग के उस पव मे एकत्र जमनी के गुनी–ज्ञानी–मानी तत्वविदो के श्रेष्ठगण, मत्रमुग्ध सर्पो जसे अपलक दृष्टि से उनकी ओर देखते रहे । कही कोई शब्द नही । एकबार भी उस सम्मिलित योग समाधि का ध्यान भग नही हुआ ।

विशाल जनता की उद्वेलित प्रशसा प्रशस्ति पान के बाद भी—मैं जब प्रणाम् करके खडा हुआ तो–उहोने मृदुकठ से पूछा—कसा रहा ?

मैने कोई जवाब नही दिया था ।

शहर के वजीर–नाजर–कोतवालो ने गुरुदेव को उनके होटल मे पहुचा दिया । बाद मे, पहुचकर श्रीयुक्त चक्रवर्ती से ही विदा लेना चाहा । वे बोले—सो क्या ? भेट करके जाइये ।

भेंट होगी सुनकर खुश हुआ। कहा—तो, आप जाकर कहिये।

श्रीयुक्त चक्रवर्ती बोले—वह नियम दूसरों के लिए है। आप सीधे जाकर 'नाक' कीजिये।

गुरुदेव क्लान्त पड़े हुए थे। फिर भी मुस्करा कर बैठने को कहा। इसके बाद और भी अच्छी तरह मुझे निहार कर बोले—इतना दुबला क्यों हो गया है तू?

मैं सिर झुकाकर चुप रहा। पढ़ाई लिखाई के सबंध में बातचीत हुई। जब उठा तो बोले—अमिय को बुला देना!

चक्रवर्ती आये। गुरुदेव बोले- अमिय, इसको अच्छी तरह खिला दो।'

जानता हूं पाठक मण्डली इस तामसिक परिसमाप्ति से क्षुब्ध होंगे। किन्तु सुकरात की आंखों के सामने जब मृत्यु की छाया घनी हो आई तो उनके शिष्यों ने कान के पास चिल्लाकर पूछा—गुरुदेव! कोई अन्तिम आदेश है?

तब सुकरात ने कहा—हां, याद है। परसों जो मुर्गी खाया था उसका दाम नहीं दिया गया है। दे देना।

यही थी सुकरात की अंतिम-वाणी।

सभी ओर जिनकी दृष्टि हो वही तो वास्तव में गुरु है—और, यह भी मृत्यु से बहुत पहले हो।'

चर्चा के इस निबंध को पढ़कर भरोसा हुआ था—आचार्य क्षितिमोहन सेन के भांडार में जो कुछ है, वह मिलेगा ही हमें। इस शतवार्षिकी के अवसर पर आचार्य सेन की याद ही आती है। उनके भांडार में जो कुछ था, सो? और आज भी भरोसा है—आचार्य हजारीप्रसाद के पास कई बड़े रवीन्द्रिक रत्न हैं।

चर्चा के इस निबंध से यह मालूम हुआ था कि विश्वकवि को एकदम—'आमादेर आपन रवीन्द्रनाथ' कहने वाले भी हाथीदर्शन ही कर रहे हैं, अभी तक। और यह कि हमारी ही तरह वे भी अंध हैं।

इसके बाद दो छोटी-छोटी चिट्ठियां हैं—अमल होम को कविगुरु द्वारा लिखी गई। श्रीयुक्त अमल होम भी गुरुदेव के प्रिय शिष्य हैं सुलेखक हैं, प्रसिद्ध समालोचक हैं।

[एक]

शांतिनिकेतन
[May 1914]

कल्याणीयेषु,

अमल 'प्रवासी' के पुस्तक समालोचकों के बीच तुम्हारा आविर्भाव हुआ है सुनकर कौतूहल हुआ। खुश नहीं हो सका। लेखकों की अक्षमता उसका अपराध नहीं, इस बात को भूल क्यों जाते हो?' —'' को इस तरह 'अप्रस्तुत' नहीं करते तो क्या होता। अच्छा नहीं कह सकते, कटु क्यों कहोगे? समाजपति[1] को अपना आदर्श मत बनाओ। तुम्हारा साहित्य विचार सहिष्णु हो। इति, ५ ज्येष्ठ १३२१।

तुम लोगों का,
श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर।

(१) सुविख्यात बंगला मासिक पत्रिका 'साहित्य' के संपादक—निर्मम और कटु आलोचना करने में बेजोड़ स्व० श्री सुरेशचंद्र समाजपति।

[दो]

शातिनिकेत
कल्याणीयपु, [August 1915]

अमल, प्रमथ [2] न तुम्हारी रचना को क्यो नही छापा यह बात मे उनसे पूछू—यह नही हो सकेगा। तुम उनसे भट करके आलोचना क्यो नही करत ? मुझे अच्छी लगी थी इसलिए उनको भी अच्छी लगेगी–ऐसी कोई बात नही। 'सबुजपत्र' का मानदड 'प्रवासी' का नही। वहा अजित [3] की भी कोई एक रचना नही चल सकी, सुना है। ८ भाद्र १३२२।

शुभार्थी
श्रीरवी द्रनाथ ठाकुर

पत्र म अमल होम की कलम से आहत साहित्यिक का नाम नही है। पाठकराम अदाज से यह समझता है कि वह रवी द्रधारा का विरोधी कोई लेखक होगा। कवि क आलोचक–शिष्य होन के नाते अमल होम ने उसका गदन उतारी होगी। शरत् बाबू की चिठ्ठिया मे भी कई स्थान पर 'अमलहोम' की चर्चा है। तारीख मिलाकर पाठकराम ने देखा है, अदाज गलत नही !

किंतु, इन बातो के अलावा पाठकराम को यह पढकर बहुत अचरज हुआ था कि आखिर होमसाहब के गुरु को शिष्य का यह पुण्य कम (आलोचना) क्या नही पसद आया ? गीली आखो से पीले गीत गा–गाकर गुरु को बोर करने वाले शिष्यो से क्या फायदा ? असल शिष्य तो किसी गुरु का वही हो सकता है जो आलोचना करना जानता हो। और, जो कलम म गदन उतारना शुरू कर दे–उस 'मानिटर' का पद शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है—गुरु के मठ मे। प्रथम चौधुरी ने 'सबुजपत्र' मे अमलहोम की रचना नही छापी तो गुरुदेव ने इसके लिए जवाब क्यो नही तलब किया प्रमथ चौधुरी से ? पत्र मे लिखना बद करने की धमकी क्यो नही दी ? आखिर गुरु होते हैं किस दिन क लिए, किस काम के किए ? पाठकराम के गाव के गुरु बाबा ने तो अपने एक चेलेराम के लिए अपनी लगोटी तक !

हाय गुरु !

[२]

'निर्वाण' पुस्तक मे सकलित रचनाये पढ रहा था—१९५७ मे। कविगुरु की पुत्रवधू श्रीमती प्रतिमा देवी लिखित–कविजीवन के अतिम दिनो का वर्णन

"बहुत दिनो तक फिर उ होने उस आराम कुर्सी का व्यवहार नही किया। आज फिर, इस बीमारी म देखा—व उसी कुर्सी पर लेटना पसद करत हैं ? प्राय सारा दिन—नीद और विश्राम के बाद—उसी आसन पर बठे रहते ।"

(२) 'सबुजपत्र' के सपादक श्री प्रथम चोधुरी (बीरबल) (३) विशिष्ठ रवी द्र साहित्य समालोचक, शातिनिकेतन के अध्यापक स्व० अजित कुमार चक्रवर्ती।

'आसन' शब्द न पाठकराम की स्मति को झकृत कर दिया। तुरत, सेल्फ से 'शेष लेखा' निकालकर उलटाया। पाठकराम ने ठीक निशान लगाया था

"आरो एकबार यदि पारि
खूज निब मे आसनखानि
जार कोले रयेछे बिछानो
विदेशेर आदरेर वाणी।"

+ + + +

"विदेशेर भालोबासा दिय
जे प्रेयसी पेतेछे आसन।

'निवाण' के पढे हुए पृष्ठो को फिर उलटाया। लगा, कोई बात पीछे छूट रही है। इसबार कवि का कथन है। प्रतिमा देवी को विदेश मे लिखित पत्र का एक अश जब किसी तरह लौटने का जहाज मिला तो अब विक्टोरिया मुझे किसी भी हालत मे छोडना नही चाहती ।

कौन है यह विक्टोरिया ?

निवाण' को अलग रखा। 'शेषलेखा' का बद किया। पूरबी' निकाल लाया। कौन है यह विक्टोरिया ? विदेशेर भालाबासा भापा जार जाना छिलो नाको विदेशी फूल

' हे विदेशी फूल, आमि कान-काने शुधानु आबार।

'भापा की तोमार ?''

हासिया दोलाले शुधु माथा ।"

मन चचल आतुर हुआ। कौतूहल के मारे फिर 'निर्वाण' के पृष्ठो मे ढूढने लगा। है ? विक्टोरिया का पता लग गया—प्रतिमा देवी 'आसनदान करने वाली के सबध मे लिखती है

' विक्टोरिया टूटी-फूटी अग्रेजी बोल लेती थी। फ्रेच पर ही उसका विशेष अधिकार था। सुदरी तो, वह उतनी नही थी किंतु, बुद्धि की प्रखरता उसके मुखमडल पर सोदय की दीप्ति बनकर छा जाती। वह जब घुटने टककर "बाबामेशाय के परो के पास बैठती, लगता—क्राइस्ट की पुरातन-छवि के सामने उनकी किसी हिब्रू भक्त महिला की निवेदन मूर्ति ।"

विक्टोरिया ही विदेशिनी है, विदेशी फूल है और सभवत 'विजया' भी-जिसके कर कमलो मे 'पूरबी' काव्यग्रथ उत्सग किया गया है-वही है ! वही है ।

सन् १९५९ मे चचा अली पटना आये थे 'रवीन्द्रभवन' मे भाषण देन के लिए। मिलकर अपना कौतूहल प्रकट किया-विजया ही विक्टोरिया विदेशीफूल विदेशिनी है क्या ?

—ठीक धोरेछो !

इसके बाद उन्होंने विक्टोरिया के बारे में तथा कविमुख में वर्णित कुर्सी की कहानी—कवि की मजलिसी-गप के अंदाज में सुनाया। इस सबंध में और भी प्रकाश पाने के लिए, उन्होंने कहा—पठितव्य चिठिपत्र, युरोपेर डायरी, पश्चिमयात्रीर चिठी, रथीन्द्रनाथ लिखित On the Edges of Time, जगदीश गुप्त (जी नहीं प्रयाग के नहीं—कलकत्ता के कवि, आलोचक—दुबले-पतले साहित्यिक !) के निबंध।

चचा ने उसदिन अपने भाषण में भी कविमानसी विदेशिनी विक्टोरिया पर थोड़ा प्रकाश डाला था [दासानुदास पाठकराम की जिज्ञासा के प्रसंग में ही !] और अंत में इन पंक्तियों की आवृत्ति की थी

भुवने भ्रमिया शेषे
एसेछि तोमार देशे
आमि अतिथि तोमार द्वारे, ओगो विदेशिनी ।"

एसेछि तोमार दशे !

अर्जेंटिना की राजधानी बुयोनेस-एयरिस में [७ नवम्बर '२४] एक महान भारतीय अतिथि आया है—जो जहाज पर ही शीतज्वर से आक्रान्त हो गया है। साथ में है एक इंगलैंडवासी मित्र !

पेरू की सरकार ने, पेरू-स्वाधीनता-शतवार्षिकी के उत्सव में सम्मिलित होने के लिए संसार के विभिन्न हिस्से के वैज्ञानिकों, साहित्यिकों को आमंत्रित किया है। महामान्य अतिथि, विश्वकवि उसी उत्सव में भाग लेने को जा रहे हैं। किंतु, इस अवस्था में, रोगग्रस्त शरीर को लेकर आगे कैसे बढ़ सकते हैं ? पेरू की राजधानी लीमा तक पहुंचने के लिए-ट्रेन से, लम्बी पहाड़ी-यात्रा अभी बाकी है।

अपने महामान्य अतिथि के प्रति कर्तव्य पालन करने में अर्जेंटिना ने कोई त्रुटि नहीं की। महामान्य होने के साथ ही यह अतिथि अर्जेन्टिना के साहित्य-रसिक समाज का प्रिय कवि है। स्पेनिश भाषा में अनेक पुस्तकें अनुदित होकर छप चुकी हैं, हर व्यक्ति अपने ढंग से रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नाम का उच्चारण कर रहा है—थागोर, नातत्ताको !

कवि पेरू के सम्मेलन में सम्मिलित नहीं हो सके।

डाक्टरों ने सलाह नहीं दी। और, जब डाक्टरों की सलाह हुई तो कवि मानसी मान-अभिमान

भरे स्व ी—नहीं जाने दूंगी । नहीं, नहीं, नहीं !!

रवीन्द्रनाथ ने प्रतिमा देवी के पत्र में लिखा है—'विक्टोरिया साहब से [एल्महर्स्ट, कवि के इंगलैंड-वासी मित्र] अप्रसन्न रहती है। कारण, साहब सदा मेरे पास ही रहता है, इसे वह सहन नहीं कर सकती। जाने की बात आई तो उसने सोचा, साहब अपने स्वार्थ के लिए मुझे-शीघ्र ले जाना चाहता है। बस खफा हो गई साहब पर। तीन-सत करती हुई बोली—नहीं जाने दूंगी जेते नाहि दिबें !

कविपुत्र रथी द्रनाथ न अपनी किताब मे इस मान–अभिमान पव पर प्रकाश डाला है "This ılmost led to a major political crisis between Aigentına and Peru"

कौन है यह Senora Victoria Ocampo—जिसकी जिद्द—पेरू और अर्जेंटिना—दो राष्टो के बीच एक बडे राजनैतिक सकट की सीमा तक अटूट रही ? कौन है यह Senora—कुमारी क या ?

किंतु, पाठकराम के मन म कविचित्त विजयिनी विजया की एक प्रतिमा प्रतिष्ठित हो गई है !

७ नवम्बर १९२४ से ३ जनवरी १९२५ तक कवि अर्जेंटिना की राजधानी मे रहे। और, इसीबीच कवि के जीवन मे एक अलौकिक घटना घटी। अस्वस्थ शरीर, अवसन्न क्लात मन ! विदेश का क्लेश ! सब मिलाकर, एक मनहूस छाया छाई रहती कवि के आसपास !

ऐसे ही समय मे कवि के जीवन मे एक आश्चयमयी नारी का आविभाव हुआ । आत्मीय–स्वजनहीन सुदूरप्रवास मे अस्वस्थ कवि की सवा का समस्त दायित्व अपन हाथ मे उसने ले लिया । राजधानी से पद्रह कोस दूर–अपने सु दर बगले मे कवि को ले गई। प्रतिमादेवो को कवि ने लिखा — हा की एक महिला स्वजन की भाति सेवा करती है । उसन अपना 'बागान–बाडी' हम लागो के लिए खाली कर दिया है । वह यहा की एक विख्यात लेखिका है । बहुत दिनो से मेरी रचनाये पढती है। इसीलिए, इतनी भक्ति ।'

इस असाधारण नारी ने कवि को अपन घर मे बुलाकर—अपने को समर्पित कर दिया–अस्वस्थ कवि की सेविका के रूप मे । कल्पनातीत कहिय या अलौकिक ! दो देश के दो कवि–प्रतिनिधियो का यह मिलन !! कहा भारतवष और कहा अर्जेंटिना ! दोनो एक दूसरे की भाषा से भी अनभिज्ञ

'आमि काने–काने शुधानु आबार
'भाषा की तोमार ?'
हासिया दोलाले शुधु माथा
चारिदिके मॅमरिलॅ पाता
आमि कहिलाम–जानि, जानि
सौरभे वाणी
नारॅब जानाय तब आशा
निश्वास भरेछे मोर सई तबॅ निश्वासेर भाषा ।"

निश्वास की भाषा ! भाषा जहा व्यथ हा जाय, अतर के भाव का आदान–प्रदान सौरभ की वाणी या श्वास की भाषा स ही सभव है ।

विक्टोरिया के सबध मे, जमन दाशनिक पारिव्राजक काउट काइजरलिंग ने अपने ग्रथ मे gnificant Memories मे, अपना विचार प्रकट किया है

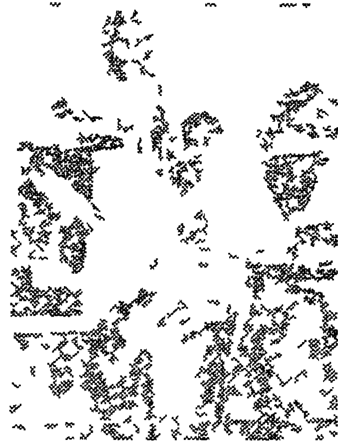
In recent years, however, I have come in Contact with one woman, hose superlative eminence is beyond question, namely the Argentanian

Victoria Ocampo A wonderfully beautiful of great vitality, acute intelligence, fine aesthetic feelings, enormous power of work and great social position

काउ ट की दो पक्तिया और उद्ध त की जाय । कविगुरु के बारे मे उ होने लिखा है "These has been no one like him anywhere on our globe for many Centuries"

पश्चिम यात्रीर डायरी मे—अर्जेंटिना प्रवास-काल मे लिखित—प्रेम के विषय मे कवि की नयी उपलब्धि ?

"नारी का प्रेम पुरुष को पूर्णशक्ति से जाग्रत कर सकता है । किंतु, वह प्रेम यदि शुक्लपक्ष का न होकर कृष्णपक्ष का हो तो उसके मालिन्य की कोई तुलना नहीं । पुरुष का सर्वश्रेष्ठ विकास तपस्या मे है । नारी के प्रेम मे त्यागधर्म सेवाधर्म—उसी तपस्या के तुल्य है । दोनो के योग से—परस्पर दीप्त ! नारी के प्रेम मे एक और सुर बज सकता है—मदनधनु की टकार । किंतु, वह मुक्ति का नही बधन का सुर है ।"


कवि और कवि पत्नी

विक्टोरिया के चरित्र मे स्पेनिश जाति सुलभ भावुकता के साथ युक्त था उसका प्रभावशाली व्यक्तित्व किंतु 'अनुरक्त चित्त' को 'सयम-सु दर' करने की प्रेरणा विक्टोरिया को कवि से ही मिली होगी । उ ही दिनो, अर्जेंटिना प्रवास मे, लिखित बनस्पति कविता पढिये ।

"दया कोरो दया कोरो आरण्यक एई तपस्वी रे
धय धरो ओगो दिगगना,
व्यथ करिबारे ताय अशात आवेगे फिरे फिरे
बनेर अगने ातियोना ।
ए की तीव्र प्रेम, ए जे शिलावष्टि निम दु मह
दुरत चुम्बनबेगे तबँ ।"

४ जनवरी १९२५

कवि अर्जेंटिना से विदाई ले रहे है । इटली के जहाज मे जेनेवा-बदर तक जायेगे । विक्टोरिया ने जहाज मे केबिन-डि-लुक्स रिजव करवा लिया है । यात्रा मे कवि को कोई कष्ट न हो !

हजारा नर-नारियो की भीड-एकटक देख रही है अपने देवतुल्य अतिथि को । कवि डेक पर हाथ जोडे खडे है । रग-बिरगे हजारो रूमाल हिल रहे हैं—बिदा ! ओ प्रेम के अतिथि कवि ! प्रेमेर अतिथि-कवि आमार अतिथि !!

अचानक जहाज के एक हिस्से मे शोरगुल सुनाई पडा । नारीकठ ? कवि ने मुडकर देखा उग्रा उग्रप्रभा दीप्ता भीमा भीमवादिनी कलकठी कबुकठी उग्रचण्डेश्वरी वीरा वीरसुदरी क्रोधिनी कुमारी विजया विक्टोरिया !

'नही ! नही !! नही !! —विजया क्रोध से थर-थर काप रही है— 'यही है तुम्हारा केबिन डि लुक्स ? तुम्हारी उस खटोली जसी कुर्सी पर बठेगे ससार के सवश्रेष्ठ कवि ? मजाक समझ लिय है ? नही ।'

जहाज के अधिकारियो की कोई दलील सुनना ही नही चाहती यह सभासक्षोभकारिणी । उसने कवि मे कहा 'खबरदार । उस कुर्सी पर मत बठिये, लाखो खटमल होगे उसमे ।'

अपने घर पर टलिफोन करके डाइगरूम से आरामकुर्सी मगवा रही है विजया । कुर्सी आई तो फिर दूसरा बखेडा खडा हुआ ।

अपमानित, लाछित अधिकारियो को एक मोका मिला—केबिन का दरवाजा छोटा है । इतनी बडी कुर्सी कस जायगी अदर ?

—क्या-ा-ा-ा ?? महातेजस्विनी गुर्राई—इतनी बडी कुर्सी कसे अदर जायगी ? म बतलाती हू अभी, कैसे जायगी ।

ऐसा लगा अब कोई अशोभन घटना घटगी । कवि चिंतित हुए । उन्होने विजया को समझाने की चेष्टा की । लेकिन, विजया ने दुरता, दुष्कृतिहरा—दृढव्रता का रूप धारण कर लिया है । किसी की कुछ नही सुनती ।

खुट-खुट करती इधर से उधर दौड रही है । इस बार लौटी तो साथ म मय औजार बक्स के एक मिस्त्री था । औजारबक्स मे छोटी आरी निकालकर स्वय दरवाजे को काटती हुई विक्टोरिया बोली— मझे कप्तानसाहब—इस तरह खरखर खरखरखर—कुर्सी इस तरह अदर जायगी । खरखरखर टाक—पट—खटाक !!

जहाज क अधिकारी चुपचाप देखते रहे । विजया विजयिनी हुई । दरवाजा काटकर, केबिन मे आराम कुर्सी डलवान क बाद उसने कवि से केबिन म चलने की प्राथना की । कवि मुस्कराते हुए आराम कुर्सी पर बठे । घुटन टककर परो के पास बैठी विक्टोरिया—शुद्धा, सदान दमयी, निवेदन मूर्ति जसी ।

पाच साल बाद १९३० मे पुर्नमिलन हुआ—परिस म ।

इस मिलन की भी कहानी है । इस बार युरोप भ्रमण मे कवि अपने साथ ले गये थे अपनी आकी बहुत-सी तस्वीरे । फ्रास के शिल्पी—कलाकारो, गुणी—ज्ञानियो न इन अभिनव—चित्रो को देखकर परिस चित्र-प्रदर्शिनी करने का प्रस्ताव किया । बाद मे देखा गया, प्रदर्शिनी की व्यवस्था एक कठिन व्यापार प्रदर्शिनी के लिए हाल चाहिय । और कोइ भी हाल डेढ साल प्रतीक्षा करन के बाद मिल सकता है ।

उस बार कवि के साथ कविपुत्र रथीन्द्रनाथ भी ता थे । उन्होंने एक दिन हारकर कहा—प्रदर्शिनी नहीं हो सकेगी । असभव व्यापार !

सभी निरुपाय होकर चुप हो गये । कवि का उत्साह कम नहीं हुआ, किंतु । बोले—बुलाओ विजया को । डाक बिजया के ! कबल कोरो !!

बुयोनस–एयरिस बुयनस–एयरिस–विजया ! विजया !!

—आ–ा–ा–ा–ई !!–विक्टोरिया दौडकर परिस आई ।

आई और आते ही फिर रणचडिका का रूप—क्या ? हाल नहीं मिलेगा ? अभी देखती हू । कलि–विलास की नगरी के लोगों का क्या मालूम कि इन चित्रों की प्रदर्शिनी करके यहा का कोई भी हाल स्वय धन्य होगा ।

सचमुच, प्रदर्शिनी के सर्वथा उपयुक्त सुदर हाल मिलने म अधिक देरी नहीं हुई । विजया फिर विजयिनी हुई ।

प्रतिमा देवी को कवि ने लिखा 'विक्टोरिया यदि नहीं रहती तो, मेरी तस्वीर–भली हो, बुरी हो–किसी की दृष्टि मे पडती ही नहीं । रथी ने सोचा था हाल मिलते ही प्रदर्शिनी अपने आप लग जाती है । सरासर भूल धारणा है यह । खर्च कम नहीं हुआ है–करीब तीन चार सौ पौड । विक्टोरिया पानी की तरह बहा रही है–पसा । यहा के सभी बडे गुणी–ज्ञानियो को वह जानती है । डाक दिलेई तारा आसे ।'

इस प्रदर्शिनी के समय बुलाइ गई विजया, एक डेढ महीने तक पेरिस मे रही–कवि के साथ ।

अली चचा से उस कुर्सी के बाबत पूछना भूल गया । यहा तक तो पता है कि कवि के साथ देश-विदेश घूमकर वह कुर्सी शातिनिकेतन आई । कवि अतिम दिनो, उसी पर बठना लेटना पसद करते थे ।

पूर्ण विश्वास है, वह अपूर्व, अमूल्य प्रेमोपहार–'आसनखानि'—जिसकी गोद म बिछी हुइ है विदेश की आदर–भरी वाणी–निश्चय ही उत्तरायन' मे सुठाम–प्रतिष्ठित होगी ।

यदि एक बार फिर शातिनिकेतन गया—खूजे निब सेई आसनखानि !

(३)

'मरण' को रवीन्द्रनाथ 'श्याम समान' माने या उससे प्रेम भरी बाते करके पुकारे—ओगो मरण गो मोर मरण!– कोइ अचरज की बात नहीं । किंतु, यदि आपसे कोई कहे कि प्रेतात्माओं ने कवीन्द्र को करीब एक पखवारे तक बेचैन कर रखा था तो आप विश्वास करेंगे ?

श्री प्रशान्तकुमार महलानबीस की पत्नी श्रीमती निर्मलकुमारी महलानबीस को कवि ने पाच सौ से अधिक पत्र लिखा था । पत्र ही नहीं, कवि कोई भी नई रचना करते तो सबसे पहले उसकी एक कापी श्रीमती महलानबीस को भेज देते थे—नियमपूर्वक !

उन साढे पाच सौ पत्रो मे एक पक्ति का पत्र भी है और दीघ कई पृष्ठो के भी। पिछले कई वर्षो मे श्रीमती महलानबीस, विभिन्न पत्रिकाओ मे विभिन्न अवसरो पर, अवसर के उपयुक्त पत्र छाटकर प्रकाशित करवा रही है। पिछले साल से बगला साप्ताहिक 'देश' ने धारावाहिक रूप से इन पत्रो का प्रकाशन शुरू किया है–सिलसिले से।

पाच महीने पूव की बात है, महाराज वीतशोकानद (रामकृष्ण मिशन पटना के महाराज) ने कहा, इस बार की चिट्ठियो को पढा है ? पढिये जाकर। रात मे घर लौटकर पढने लगा। पढते–पढते हठात् ऐसा लगा–मेरे कमरे मे दजनो अदृश्य आत्माओ की सभा बठी हुई है। आश्चर्यित, प्रकपित–हसा, डरा, रोया !! इसके बावजूद लालपेसिल ने अपना काम कर लिया। रात भर जगा रहा।

पत्र प्रस्तुत करन के पहले कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर से क्षमा माग लू। उन्होने सोलहो आने ठीक कहा है–कबिरे पावे ना कभू कोनो अनुवादे ! एक दम सही बात। किंतु, दबी जुबान से निवेदन करूगा– प्रभो ! अनेक कारणो मे से एक कारण यह भी है कि आपके काव्य–कथा–नाटको मे प्रयुक्त अनेक शब्द ऐसे है, जिनके अथ सिफ आप अथवा आपके निकटतम विद्वान् शिष्यगण ही जानते है। बलाका' का अनुवाद हम 'बगुला' ही करेंगे–क्या पता कि आपने राजहस को बलाका कहा है। फिर, पत्रो मे तो कही–कही आपके शब्द को Decode करना पडता है। नेत्रकोणा से लिखी गई चिट्ठी के बारे मे हम अदाज से यह अनुवाद करेंगे कि मयुरभज के एक प्रसिद्ध स्थान से लिखित पत्र। जबकि 'नेत्रकोणा' श्रीमती महलानबीस के बराहनगर वाले बगले के एक ऐसे कमरे का नाम आपने रखा–जिसकी खिडकी से पोखरा पेड, खेत दिखलाई पडते थे। गिरिव्रज का अथ कोष के अनुसार पवतसमूह है। पत्र मे उसका अथ होता है–गिरिडिह ! इसलिए, थोडा सा कष्ट पहुच जाय तो–'दया कोरे खोमियो प्रभू मोरे।'

एक बात और ! पत्रो मे बुला–बॅलू–बेला–तीन नाम एकाधिक बार आये है। लिखाई या छपाई मे इधर का नाम उधर हो जाय तो सज्जनजन पाठकराम को दोष न दें।

पहला पत्र

कल्याणीयेसु,

उस दिन बुला (१) आई थी। बातचीत के सिलसिले मे हठात् मालूम हुआ कि प्रेतात्मा उसके हाथ पर उतर कर पेसिल चलाती है। बाते करती है। कहने की आवश्यकता नही, सुनकर मन ही मन हसा। बोला–अच्छी बात। देखा जाय, क्या है। कागज पर पेसिल दौडने लगी, घटा मे चालीस माइल के वेग से। पहले नाम निकला–मणिलाल गागुली। उसकी बातो का–भाषा और भगी का विशेषत्व है। उत्तर सुनकर लगा–मणिलाल ही बोल रहा है। लेकिन, इन सब मामलो मे खूब पक्का प्रमाण नही मिलता। इसका प्रधान कारण–मन तो सपूण निर्विकार नही। उसकी धारणा' का हेतु–हमेशा बाहर नही बल्कि उसकी प्रकृति मे

(१) उमा सेन, मोहित सेन की कनिष्ठा कन्या।

ही रहता है। मैने जब कहा कि सुनकर 'लगा' मणिलाल ही बोल रहा है तो, उस समय यह 'लगना'—सपूर्ण रूप से मेरा आत्मगत भी हो सकता है। फिर भी 'धारणा हुई', यह मानना ही होगा। असलबात, मुझे सोच मे डाल दिया है। बुला को फिर किसी दिन आने को कहा। कल आई। पहले नाम निकला मणिलाल का। उसने कहा सत्येन (२) आना चाहता है। मुझे दुख है, इन बातो को किसी ने 'टीप' नही लिया। उसके सभी उत्तर सुसबद्ध थे। पश्चिम महादेश मे अपने कर्तव्य की बात पूछते ही उत्तर मिला— 'पश्चिम म अभी और भी बहुत काम है। बहुत कुछ करना बाकी है। वहा आपका सौभाग्य आपके साथ रहेगा। पिछले दिन मणिलाल ने कहा था 'अमेरिका आपको जाना ही होगा। वहा आपका आसन सुप्रतिष्ठित है। मणिलाल ने कहा— 'धरती पर रहते वक्त परलोक के सबध मे अनेक आलोचना—कल्पना किया करता था। लकिन, उन आलोचनाओ से इस लोक का कोई मेल नही।' मैने पूछा—तुम्हारे धर्म—मत मे कोई परिवर्तन हुआ है ? वह बोला— 'धरती पर मै नास्तिक था। लकिन, यहा मै ईश्वर का अपने अतर मे उपलब्धि करता हू।

सत्येन से पूछने पर, बोला—'यहा किसी देवता को खोजना नही पडता। बस, इतना—सा ही परिवर्तन।' मैने पूछा—तुम क्या अतर के बीच ही उनको अनुभव करते हो ? उत्तर मिला—'खूब अच्छी तरह। इसीलिए इतनी शाति।' फिर पूछा—हिबर्ट—लेकचर मे धर्म—सबधी जो मत मै व्यक्त करना चाहता हू—वह सही है या नही उत्तर पाया—'एकदम सही। लेकिन, आश्चर्य है—अभी भी तो आप पृथ्वी पर ही है।' मणिलाल से भी यह प्रश्न पूछा था। उससे पहले अजित से भी। दोनो ने कहा था—एकदम सही।

अजित बोला—Imagination के सबध मे आप जो निबध लिख रहे है, वह कितना सत्य है, उसे यहा की अभिज्ञता से ही समझता हू।'

अमिता ने मेरे साथ अभिनय किया था। अजित इस बात को जानता है या नही, पूछने पर उत्तर मिला—'जानता हू—जानता हू। खूब निकट ही था उस दिन—मधुर अवसर था।'

सत्येन से पूछा—तुमने मेरी आधुनिक रचनाए पढी है अथवा नही ? जवाब मिला—'पढी है, यह कैसे कहू। लेकिन, प्रत्येक पक्ति को जानता हू। आश्चर्य !'

——शरत् चाटुर्ज्ये की रचनाओ पर तुम्हारी श्रद्धा है ?

उत्तर——'पहले थी। कितु, अब अच्छी तरह पकड नही पाता हू। सभव है, यह मेरी देहहीन आत्मा का दुर्भाग्य हो।'

सत्येन की हर बात को लिख रखना उचित था। यदि ऐसा होता तो तुम देखती कि चिंतन की बाते खूब है। मेरी दरिद्र स्मरणशक्ति, याद ही नही रहती कोई बात।

सत्येन की बारी समाप्त होने को आई तो उसने कहा——'ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर आये है।'

---

(२) प्रसिद्ध कवि सत्येंद्रनाथ दत्त

उनकी सारी बाते सुनकर हम अत्य त आश्चर्यित हुए है। तुम होती यहा तो, उसकी एक व्यक्तिग वास्तविका को समझ पाती। मैने उनसे पूछा–उन रचनाओ की कोई अनुवृत्ति अभी भी है, जिन रचनाओ। पृथ्वी पर रहन समय नियुक्त थे ?

उ होन कहा––'ठीक वैसा नही। यहा केवल आत्मसृष्टि मे ही आन द है।' मैने पूछा–सृष्टि का को उपकरण नही है ? व बाले–'आत्मा ही तो हमारा सब–कुछ है। उसको गठित करके परिपूर्ण करना ही आन द है।'

अवन (१) ने पूछा–हमलोग चित्र–अकन को लेकर जो कुछ कर रह है–वे क्या बच्चो के खेल मात्र है ?

वे बोले––आर्टिस्ट होकर तुमने ऐसा प्रश्न क्यो किया ?

ज्योतिदा न एक बहुत नई बात कही–'पृथ्वी पर रहते समय बार बार केवल शाति चाहा था–यहा आकर सोचता हू सुख ही क्या बेजा था।'

इसका एक अथ मैने निकाला ह, सुख नाम की चीज सीमाबद्ध देह और कामना स ही उत्पन्न होती है। वस्तु तथा भाव के साथ जडित है। उसका पकडने के लिए–भोग करन के लिए–वास्तव उपकरण का आवश्यकता होती है। मणिलाल, अजित, सत्येन सभी से मेने पूछा–क्या तुम लोग आन द भोग करत हो ? सत्येन न एक प्रश्नचिह लगाकर लिखा–'आनन्द?' उसके बाद, बोला–'आनद हम अपने अतर मे ही सृष्टि करते हैं।'

मणिलाल न भी लिखा––'सुख नही किंतु शाति है।

ज्योतिदा से पूछा––क्या देह ग्रहण करन की इच्छा होती है ?

वे बोले––'मेरी इच्छा नही होती। जो सुख चाहते हैं उनकी होती है। आन द की बात पर उ होने कहा––'असीम शाति। किंतु, आनन्द ?

ये बाते खूब स्पष्टत समझ म नही आई। पूछा–किसी विशेष स्थान मे वास करते है ? उ होने कहा–'शू य आकाश म।'

प्रश्न––वह आकाश सीमाबद्ध है ?

उत्तर––यहा कोई सीमारेखा तो नही देखता।

वहा की सत्ता, ठीक–ठीक क्या है यह समझाया नही जा सकता–ऐसा ही एक भाव दिखलाई पडा उनके उत्तरो से।

सत्येन से पूछा––पृथ्वी पर स्वदेश–साहित्य आदि मे तुम्हारा जो उत्साह था, वहा भी वसा कुछ है क्या ?

(१ अवनी द्रनाथ ठाकुर

सत्यन न उतर दिया—'यहा ठीक वसा कुछ नही। पृथ्वी की वह उत्तेजना नही। अथच, अक्सर उसका अभाव अनुभव करता हू। पहले, जब आया था—पृथ्वी की प्रत्यक वेदना को हृदय के अदर अनुभव करता था। क्रमश वह वग घटता जा रहा है।'

मणिलाल ने कहा— सबध रहते हुए भी उसका आकषण क्षय होता जाता है। नही तो मुक्ति कमे होगी।

मन पूछा—पृथ्वी पर हम लोग जिन अध्यवसायो म—प्रबल इच्छा और चेष्टा के द्वारा-प्रवत्त है, उनमे परलाकगत आत्माओ का सहयाग रहता है क्या ?

ज्यातिदा बोले—हमारे मन मे ठीक वसी काइ वासना नही होती। किंतु, पृथ्वी पर यदि कोई कुछ सृष्टि करता ह अथवा काइ अच्छा काम होता है, उसे हम अनुभव करने हैं।'

ज मा तर की बात पूछने पर बोले—'ज मा तर है। किंतु, पृथ्वी पर रहते जमा समझना था, वसा नही।'

अपना मुक्ति को बात उनसे पूछा। बोले—'पाओगे। किंतु, अभी और साधना चाहिए। कितनी भूल-चूक !

मेरी रचना के बारे मे बाले—'तुम्हारी रचना समस्त बाधाओ को अतिक्रम करके, चरमसाथकता के पथ पर चल रही है। तुम सभी अवस्थाओ मे शात रहना।'

ज्योतिदा ने मुझ से बार-बार कहा-शात हउ ! शान्त हउ !!

मै बोला—शात ही ता होना चाहता हू। आपके इस उपदेश से मेन विशेष बल पाया है।

उ होने कहा— जानता हू। इसीलिए तुम्हारे पास आया हू।'

अपन चित्रा के बारे म मणिलाल स प्रश्न किया। वह बोला— आपके चित्र यूरोप म आदर पायेगे।'

ज्योतिदा बाले—'आशका मत करा। तुम्हारा चित्र जगत को एक नया प्रकाश दिखलायेगा।'

आश्चय ! क्याकि, मेरे मन मे सचमुच इस सबध मे आशका है। पृथ्वी पर हम जि हे प्यार करते है, परलाक मे उनके साथ हमारा कसा सबध रहता है, इस प्रश्न के उत्तर मे बाले- जि हे प्यार करत हैं, व अतर के देवता के साथ एक हा जाते है। अब तो खो जान का भय नही।'

हिवट-लेकचर म जा मत व्यक्त करना चाहा है उसके सबध म उनकी राय पूछन पर उ होन चार-बार चौकोर बाक्स बनाकर-खूब जोर डालकर-लिखा-सत्य ! सत्य !!

कुछ देर बाद स्वय ही लिखा-'वह गुलाब का फूल यहा ले आओ।

तब, हठात् देखा-घर के एक दूसरे अश मे छोट टेबल की फूलदानी म फूलो के गुच्छ म एक गुलाब। फूल अपने टेबल पर लाने ही बोले-'कि सु दर !'

इसके बाद बाले-'एक गीत सुनाओ।'

मेन चारो ओर दृष्टि दौडाई, कौन गा सकता है गीत ! उ होन लिखा-'तुमी गाउ !'

म सोच ही न पाया, क्या गाऊ, कौन-सा गीत गाऊ । उ होने लिख दिया-'रूपसागरे डूब दियेछि ।'

गीत शुरू करन के तनिक बाद ही मेरे शब्द मानो बध गये । बाली भरे गले मे अटक गई । नब उ हान गीत के बीच की दो पक्तिया लिख दी--

जे गान कान जाय ना शोना, से गान जेथा नित्य बाजे ।
प्राणेर वीणा निये जाव, सेइ अतलेर सभा माझे ।

इतना-सा गा दिया । बाले-'खूब ठीक । बहुत अच्छा लगा ।'

जो बात वह कहना चाहते थे, शायद इ ही पक्तियो के माध्यम से कह गये । मुझे और याद नही-मने फिर गाया नहा । सुरेन की बात पूछा-उसे निष्कृति मिलेगी क्या ?

उत्तर मिला--मिलगी क्यो नही । क्या वह उत्तेजित हाता है ?

मेन कहा--उत्तेजना का कारण है । वह ऋण मे जकडा हुआ है ।

वे बोले--कमफल । बीच-बीच मे वह हठकारिता जो करता है । नतून बौठान (१) से भेट-मुलाकात होती है या नही--पूछा । वे बोले--'नतून बौठान समभाव से ही है ।'

मैंने पूछा--पृथ्वी के प्रति उनका आकर्षण है क्या ?

वे बाले--है । इसीलिए तो मुलाकात नही होती ।

मे बोला--मै अभी तक उनको नही भूल सका हू । बडी वेदना के साथ याद आती है ।

वे बोले--'जानता हू । नतून बौठान से कहूगा ।'

ज्योतिदा के जाने के बाद नाम निकला-साहाना । हठात् याद ही नही आई-कौन साहाना ? बुला ने पूछा--साहाना किसका नाम है ? वह नही जानती थी । अवन बोले-बॅलू (१) की स्त्री । साहाना की मृत्यु की खबर मेरे मन मे स्पष्ट नही थी इसलिए उनकी बात साच नही सका । पूछा-बलू से भेट होती है ?

बोली--"मृत्यु के बाद एक बार भट हुई-अनेक के बीच ।" प्रश्न--"उसे बुला दे सकती हो ?' --"बुला रही हू ।" बॅलू आया ।- कमे हो ? सुख से हो ?" उत्तर था-"ठीक है ।" प्रश्न हुआ--"देहहीन आत्मा को लेकर आनन्द पाते हो ?" उत्तर-- "आनद ? यदि पाता हू तो वह मेरी अपनी ही सृष्टि है ।' प्रश्न--' मेरी नई रचनाओ से परिचय है ?" उत्तर--"है । अच्छी लगती है-खूब । युग के बाद युग नव-नव धाराओ मे चल रही है ।" प्रश्न हुआ--"तपती देखा है ?" उत्तर- 'उपस्थित था ।" प्रश्न-' कैसा लगा ?' उत्तर--कि आश्चय ! प्रश्न--"तुम्हारी यहा की रचनाओ की काइ अनुवत्ति वहा है ?" उत्तर--"नही चलेगी, नही चलगी-बच्चो के खेल-मेरी वे रचनाये ।"

(१) रवी द्रनाथ की दिवगता पत्नी, जि ह ज्यातिरि द्रनाथ 'नई बहू' कहते हागे ।
(१) स्वर्गीय बलेन्द्रनाथ ठाकुर ।

—रचना करने को मन होता है?

—सोचता हू खूब । मन के अदर रचना मानो स्वय रूप ले लेती है ।

—अपनी–मन की कोई सृष्टि–अभी ही, हमे हमारी भाषा मे कह सुना सकते हो ?

—'आज ऐसा लगता है, सुबह की धरती पर जो धूप बिछी है, मेरे प्राण के आनद का रूप है ।'

—शरत् काल की इस धूप के साथ तुम्हारी शरत्काल की स्मृति जगती है ?

—जगती है । इसीलिए तो दौडा आया हू ।

—धरती पर पाये सुख–दुख का स्वाद तुम्हारे अ तर म अब भी है ?

—बहुत–कुछ भूल चुका हू । कुछ अभी भी छाया की तरह मेरे साथ है । मेरा बधन जो है ! उससे मुझे अभी भी नही मिली ।

—बधन मे मुक्ति की कामना करते हो ?

—करता हू । किंतु, मै बहुत पिछड गया हू । वह माना मेरा ।

—मे मुक्ति चाहता हू । सिद्धि लाभ कर सकू गा ?

—मुक्ति तो आपके अतर का ही दूसरा रूप है । आपने कहा हे न, युक्त कारो हे सबारि सगे–मुक्त कोरो हे बध ।

—देहातर धारण करने की इच्छा है ?

—आपके वहा रहते जी सकू तो, इच्छा है । कितना परिवतन ?

—पुनर्वार देह धारण क्या इच्छा के ऊपर निभर है ?

—यहा कोन आई है जानते हैं ?

—कौन हो तुम ? कहो ।

—नही । नही कहू गी । तुम मेरा नाम बताओ ।

—छोटी बहू [1] ?

—हा ।

—कसी हो ?

—जि ह प्यार करती हू–वे एक–एक कर मेरे पास आये ।

—क्या पृथ्वी के साथ तुम्हारा बधन प्रबल है ?

—है ही । यह बात क्या पूछते हो । जानते नही ?

—मरे काम–काज, साधना के प्रति तुम्हारा Interest है ?

—है । आज भी मेरा मन समस्त अतर से तुम्हारे कल्याण की कामना करता है ।

—रथी के काम मे तुम्हारी सम्मति है ?

—यह बात क्या मुझे पूछने की हे ? उसके पास जो है, वे देवता की तरह प्रकाश देगे ।

अतिम प्रश्नोत्तर माहनलाल ने लिखा है । परम्परा की रक्षा करके लिख सक। इसी से । पहले

(१) कवि की पत्नी

का अ श टढी–मेढी लिखावटो के जगल से उद्धार किया गया है। इसलिए परम्परा नही निभा सका। और भी बहुत–सी बाते लिखी गई थी। खोजन पर मिली नही। सत्येन की एक बात लिखना भूल गया। उससे प्रश्न किया था—बगला के आधुनिक कवियो के सबध मे तुम्हारा क्या मत है ? सत्येन ने उत्तर दिया—अनेक के अदर पदाथ है किंतु, जानता हू ठीक वह सुर नही।

व्यापार असल मे क्या है, जोर डालकर नही कह सकता। ऐसा लगा कि भिन्न–भिन्न व्यक्ति से बाते हुई। इसमे सदेह करने की कोइ आवश्यकता नही। बुला की भाषा तो थी ही नही, भाव भी बुला क नही हो सकते। मेरे भी नही। क्योकि मै जो कुछ सोचता हू या सोच सकता–उससे बहुत–कुछ नही मिलता। मेरे अनजान मे मेरा मन यदि जवाब देता तो वह दूसरे किस्म का होता। हा, यदि कहो कि मेरा अवचेतन चित्त क्या विश्वास करता है–क्या कहता है वह मै जानता ही नही या नही जान सकता। तब तो कोई तक ही नही। देहहीन आत्मा कसी होती है या उनकी चित्तवृति किस भाव की है—कल्पना करना कठिन है। किंतु, आजकल के विज्ञान को मानन पर–यह देह क्यो वस्तु जसी प्रतीत होने लगती है–इस रहस्य को भेद नही किया जा सकता। वस्तु के मूल मे है अवस्तु अर्थात् अनिवचनीय पदाथ। इस माया को यदि मान सकने हैं तो, देहहीन सत्ता को भी मानने मे दाष नही–यदि उसक प्रमाण मिले। आज कल प्रमाण सग्रह चल रहा है, अभी भी सवजनसम्मत विश्वास तक नही पहु चा।

जो भी हो, जिनको मेने ज्योतिदा कहा या कहो कल्पना किया है—उनकी बातो ने मेरे मन को गभीरता से स्पश किया है। वे मुझे 'शात हुउ' कहने का ही सुयाग ढूढ रहे थे–इस बात को सच मान बिना मुझमे रहा नही जाता। यही बात मेरे जीवन की सबमे अधिक आवश्यक बात है। उसी समय से इस बात की प्रतिध्वनि रह–रहकर मेरे मन मे होती है। तुम्हारे पत्रो मे मैन अनेक बार लिखा है—मेरा मन अतिरिक्त–वेदना कातर है। इसलिए लोगो के बीच, अक्सर शाति–रक्षा नही कर सकता। किंतु, थोडी देर के बाद ही इसकी आत्मावमानना मेरे मन को पीडित करती है।

जाने दो। कल रात रथी बौमा के साथ आया है। इति, ६ नवम्बर १६२६।

तुम लोगो का
श्रीरवी द्रनाथ ठाकुर

दूसरा पत्र

कल्याणीयासु   जोडासाको
६ नम्बर १८२६

बुला फिर एक दिन आकर पेसिल चला गई। उसदिन भी सोचने योग्य अनेक बाते निकली। एक बहुत बडी अचरज–भरी बात पाई गई है। शमी [1] आया था। अ य अनक बातो क बीच उसने कहा—'शातिनिकेतन के ध्रुव की याद आती है मुझे।' वह बहुत दिन की बात है। ध्रुव एव दो अ य लडके शमी के साथ शातिनिकेतन मे हमारे ही घर मे रहते थे। बला ने उन लागो की देखरेख का भार लिया था। उन्हे पढाई मे भी सहायता करनी। उसका नाम आया तो मै किसी तरह उसको याद नही कर सका।

(१) कवि के दिवगत पुत्र, शमी द्रनाथ ठाकुर।

अपूव ने कहा—हा, ध्रुव नाम का एक छात्र था। रात मे, बिछावन पर तीनो की याद आई—हठात् लेट—लेटे। उसकी याद शमी को आवे—यही सगत है। कि तु बुला के हाथ से ये बाते कसे निकली। शमी बहुत मीठी–मीठी और मजेदार बाते कर रहा था। सुकुमार की बाते भी वसी ही—ठीक सुकुमार की बोल रहा हो मानो। मोहनलाल ने लिख लिया है—कभी देखोगी।

शीतकाल भी हवा चली है—शरत्काल का अवसान निकट है। इस समय शान्तिनिकेतन की धूप भरी बेला के लिए मन खीच रहा है। इति।

तुमलोगो का
श्रीरवी द्रनाथ ठाकुर

तीसरा पत्र

कल्याणीयासु,

शातिनिकेतन आ गया हू।

प्रशात ने अपनी चिट्ठी म लिखा है कि बुला के हाथ से जो बाते निकलती है, विशेषकर उनकी परीक्षा करना आवश्यक है।

कि तु, मुझे तो ऐसा लगता है कि इन सब व्यापारो मे अति नि सशय प्रमाण पाना सभव नही। मेरे सबध मे जिनको फैक्ट्स कहते है—उ है लेकर यदि तुम परीक्षा करो तो प्रमाणित होगा—मै रवी द्रनाथ ठाकुर नही। जो गीत मैने स्वय रचे है, परीक्षा देते समय एक पक्ति भी याद नही आयगी, न कोई सुर ही। किसी ने पूछा था, चदननगर के 'बागान' मे जब था तो उस समय मेरी उम्र कितनी थी। कहना उचित था—प्रशात जानता है। मै जो दक्षिण अमेरिका गया था उसे दो वष हुए या तीन या चार–नि सशय होकर नही कह सकता। शमी की मत्यु कब हुई थी—याद नही। बेला का विवाह हुआ था किस वष, कौन जाने! अथच, टेलिफोन पर मुझसे बाते करते समय तुम जिस चीज को लेकर मेरे सबध मे नि सशय हो—वह है तुम्हारी 'धारणा'। तुम जोर डालकर कहती हो—यह ठीक मेरा स्वर है, मेरी भाषा है, ढग मेरे है। और यदि कोई कहे कि नही। तो, इसके बाद कोई ही बात नही। क्योकि तुम्हारे मन मे मेरे व्यक्तित्व की जो एक समग्रमूर्ति (मोट छवि) है, वह दूसरे के मन मे नही हो सकती अथवा दूसरे किस्म की होगी। यह—व्यक्तित्व का साक्षी ही सबसे सच्चा साक्षी है। क्योकि, इसको कोई बना नही सकता। मेरे जीवन के विशेष–विशेष तथ्य मुझसे अधिक प्रशात जानता है। कि तु, हजार चेष्टा करने पर भी वह मेरी 'मोट छवि' को वह अपने व्यक्तित्व मे निखार नही सकता।

इस बीच, परसो बुला के हाथ से बात निकली—किंतु नाम नही निकला। पूछने पर उत्तर मिला नाम मत पूछो। तुम जो सोच रहे हो—मै वही हू। इसके बाद जो बाते निकली हैं—बहुत अचरज की है। उसकी सत्यता को जितना मै जानता हू और दूसरा कोई नही। कभी कापी करके भेज दूगा। किन्तु, समय पाऊगा या नही—कह नही सकता। अनेक काज! प्रशात अभी भी वहा है या नही—नही जानता। उसको यह पत्र दिखला देना।

तुमलोगो का
श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर

[४]

लाख चेष्टा करने पर भी अपने को रोक नहीं सका।

श्रीमती निर्मलकुमारी महलानवीस लिखित (गत वर्ष प्रकाशित) किताब 'बाइमेश्रावण' (इस नाम का एक फिल्म भी है, जिसका इस पुस्तक से कुछ लेना देना नहीं !) में कुछ पंक्तियां नहीं दूं, तो सब अलोना रह जायगा। अठारह साल तक कवि के साथ रहीं। कविगुरु जिन्हें अपना 'हेडनर्स' कहते थे। 'बाइमे श्रावण' है कवि के साथ अंतिम कुछ दिनों की डायरी

२७ जुलाई,

अमिता, बूडी सभी घर में हैं। मुझे देखकर प्रसन्न मुख बोले—'जानती हो, आज भी एक कविता हो गई है—सुबह-सुबह। यह कैसा पागलपन है, कहो तो ! प्रत्येक बार सोचता हूं—बस, यह अंतिम है। लेकिन इसके बाद देखता हूं फिर एक निकल आई। इस आदमी को लेकर क्या किया जाय।'

कविता सुनी—प्रथम दिनेर सूर्य पेलना उत्तर।

२९ जुलाई,

शाम को आकर सुना—तीसरे पहर फिर एक कविता हुई है—'दुखेर आंधार' रात्रि बारे-बारे एसेछे आमार द्वारे।

की काण्ड ! कलकत्ता आने के बाद भी दो कवितायें ?

३० जुलाई,

हम लोगों ने पहुंचकर सुना—कवि ने फिर एक कविता रची है। रानी (चंद) ने कलमबद्ध कर लिया है। हम लोग घर में आये। देखते ही बोले—'क्यों प्रशांत, आज के अखबार में लड़ाई की क्या खबर है ?' उन्होंने कहा—आज जरा अच्छी खबर है। लगता है, रसियन सेना ने जर्मनों को पीछे हटाया है।' सुनकर कवि का मुंह आनन्द से उज्ज्वल हो गया। बोले—'पारबे ! पारबे !! ओराई पारबे—वे ही सकेंगे। एह ! भारी अहंकार हुआ था हिटलर को। गोयरिंग, गोयरिंग, अब देखें गोयरिंग कि क्या होता है—दुश्मन सब ! रसियनों ने खूब वीरता दिखलाई है—असंभव लड़ेछे वाह !!'

७ अगस्त,

जोडासाको पहुंचकर देखा—जनसमुद्र ? समाप्त ? नहीं घर के अंदर पहुंचने के ठीक एक-डेढ सेकेंड पूर्व तक थे ? भाग्य का यह कैसा निदारुण चक्रांत ! उनसे 'सत्य' किया था कि अंतिम क्षणों तक पास रहूंगी। लेकिन किसने मुझे झूठमूठ टेलिफोन (१) करके—मेरा सत्यानाश किया। इसी समय नहीं रह सकी ! मेरी बात पर उनको बहुत विश्वास था। कहां गया उनका विश्वास ??

(१) कवि की परिचर्या में लीन श्रीमती महलानबीस को रात डेढ बजे सूचना मिली—बरानगर से टेलिफोन आया है। जल्दी ही घर पर बुलाया है। श्रीयुक्त महलानबीस भी बीमार थे। उस रात जोडासाको भवन में टेलिफोन इंचार्ज थे 'शनिबारेर चिठी' के संपादक श्री सजनीकांत दास। श्रीमती महलानबीस ने पुछवाया—किसने टेलिफोन किया था। वे बोले—पता नहीं। श्रीमती एक डाक्टर की गाड़ी मांगकर दौड़ी बरानगर गईं। देखा, वहां सब राजीखुशी है बल्कि, श्रीयुक्त महलानबीस का ज्वर कम है। टेलिफोन के बारे में सुनकर सभी आश्चर्यित हुए—किसी ने किया ही नहीं टेलिफोन !

इसी बीच जोडासाको से टेलिफोन आया—शीघ्र आइये। पहुंचते-पहुंचते, पहुंचने के ठीक एक-डेढ सेकेंड पहले ही अंतिम निश्वास रुक गई !

*

कवि के प्रथम दर्शन

•

राजेन्द्रप्रसाद (डॉ०)

भारत के प्रथम राष्ट्रपति की कलम से महाकवि के प्रभावशाली व्यक्तित्व की संस्मरणात्मक झांकी

उन दिनो मै कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी कालिज मे विद्यार्थी था। कालिज की यूनियन की ओर से एक स्टीमर पार्टी की योजना की गई और उसमे कालिज के प्रोफसर और विद्यार्थियो के अतिरिक्त कतिपय गण्यमान्य बाहर के सज्जन भी आमन्त्रित किये गए थे। उनमे कवीन्द्र भी थे और वे प्राय ४५ घण्टा तक हम सबके बीच उस स्टीमर पर रहे। कालिज के विद्यार्थी उनकी कवितायें बहुत पढा करते थे और मै भी सुना करता था। उनमे दो विचारो के लोग थे। कुछ तो उनकी कविता पर इतने मुग्ध थे कि उनको सबसे बडा कवि मानते थे कुछ उनकी कविता की फब्तिया उडाया करते थे और मुझे भी स्मरण है कि आपस मे कभी कभी बहुत गर्मागर्म बहस हुआ करती थी। ऐसे एक प्रसिद्ध और बडे कवि को अपने बीच मे पाकर हम विद्यार्थीगण अपने को बहुत भाग्यशाली मानने लगे। विद्यार्थी तथा दूसरे सब लोगो ने कवीन्द्र से आग्रह किया कि वे सगीत सुनावे। उन्होने अपने सहज स्वभाव से इस आग्रह को मान लिया। यद्यपि आज मुझे याद नही है कि कौन सा गीत उन्होने गाया पर अभी भी वह सुरीली आवाज भूलती नही है। हम लोगो ने उनसे कई गीत सुने।

उन दिनो का एक दूसरा सस्मरण और है। बगाल मे स्वदेशी की धूम थी। कवीन्द्र ने समाज नामक अपना लेख एक सार्वजनिक सभा मे पढा था। उसके बाद तो वह पुस्तकाकार छप गया और शायद उसके कई सस्करण भी हो गये होगे। जब वह पहले पढा गया था, उसने बडी खलबली मचा दी थी और मुझे याद है कि एक बडी सभा मे कवीन्द्र ने उसे अपनी सुरीली और भरी आवाज मे स्वय पढकर सुनाया था जिसका हमारे हृदय पर बडा प्रभाव पडा था।

इस प्रकार यद्यपि दूर से उनके दर्शनो का सौभाग्य मुझे बहुत दिन पहले अपने विद्यार्थी जीवन मे ही मिला था, पर निकट से साक्षात्कार बहुत दिनो के बाद यरवदा जेल मे गाधी जी के अनशन समाप्त करने के समय हुआ। ब्रिटिश प्रधान मन्त्री श्री मैक्डोनल्ड ने साम्प्रदायिक फैसला (Communal Decision) देकर केवल हिन्दुओ मुसलमानो मे ही बराबर के लिए फूट को स्थायी रूप देने का प्रबन्ध नही किया— मगर वह फैसला पूरा का पूरा रह जाता, तो हिन्दुओ मे भी सवर्ण और अवर्ण के बीच एक बडी खाई हमेशा के लिए कायम हो जाती। गाधीजी ने कहा था कि वे उस फैसले को अपनी जान देकर भी तुडवायगे। उसी भीषण प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए उन्होंने अनशन किया था। जब हरिजनो के साथ समझौता हो गया, तब उन्होने अनशन तोडा। गुरुदेव अनशन की खबर सुन, चिंतित होकर यरवदा पहुचे, और उनके यरवदा पहुँचते ही खबर

आ गई कि मि० मकडोनल्ड न समझौता स्वीकार कर लिया और अब गाधी जी को अनशन जारी रखने की आवश्यकता नही है । गुरुदेव ने अपने हाथो मे ही नारगी का रस देकर उस उपवास को समाप्त कराया था, और रस देने के पहले एक प्रार्थना भी की थी । उस जेलखाने के भीतर के दृश्य को उन दिनो के लोगो ने बहुत भव्य शब्दो मे दिखलाया है, और स्वय उन्होने भी उसका वर्णन लिखा है ।

उसी अवसर पर पूना मे बडी सभा हुई जिसमे गुरुदेव पधारे थे । सभा मे बहुत भीड थी । उस भीड मे गुरुदेव को बडा कष्ट हुआ और मै देखता था कि उनके चेहरे पर उस प्रेमपूर्ण, पर ना समझ प्रदर्शन का असर बहुत पड रहा था । वहा पर मैने देखा कि अब उनकी अवस्था ऐसी नही कि वे बहुत बडी भीड मे जाकर भाषण दे सके ।

वैसा ही दृश्य मैने कई वर्षो के बाद पटना स्टेशन पर देखा, जब वे एक बार पटना आए । वहा भी उनके स्वागत के लिए बहुत बडी भीड इकट्ठी हो गई थी, और डिब्बे मे से उनको सुरक्षित उतारना कठिन हो गया था । भीड लगाने वालो म, मै भी एक था । बडी मुश्किल से लोगो की कृपा से मै डिब्बे तक पहुचाया गया और उनको सुरक्षित वहा से लाकर मोटर म बिठा सका ।

पटने की इस यात्रा मे उन्होने शान्तिनिकेतन के लिए चदा इकट्ठा किया, और इसके लिए वहा नृत्यकला का एक अभूतपूर्व प्रदर्शन भी किया । मुझसे बहुत देर तक शान्तिनिकेतन सम्बन्धी बाते भी एकान्त मे हुई । उस समय शान्तिनिकेतन सम्बन्धी अधिक चिन्ता मे वे थे और उसे दूर करने के लिए ही वे शान्तिनिकेतन के बालक बालिकाओ के साथ निकले थे । मै उनको रगमच पर कुर्सी पर बैठे देखता था और बीच-बीच मे उनकी सुरीली आवाज सुनता था । कभी कभी वे खुलकर कुछ गा दिया करते थे । जो असर उसका दिल पर पडता था, वह तो पडता ही था, पर मै बराबर दूसरे सोच मे पडा था । हमारा सौभाग्य है—मै सोचता था कि आज भी हमारे बीच मे ईश्वर की दया से एक विश्व कवि मौजूद है जिसने अपनी वाणी से अपने को ही नही इस देश की कीर्ति को भी अमर बना दिया है । कला की सेवा के लिए उसका रगमच पर आना स्वाभाविक और उत्साहवर्धक है, पर क्या उसका अपनी प्यारी सस्था के लिए, जिसके निमित्त उसने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है, इस प्रकार रगमच पर आकर अपनी वृद्धावस्था मे इतना कष्ट उठाना देश के लिए शोभा की बात है ? क्या यह देश इस योग्य है कि ऐसा महान् व्यक्ति इसकी सेवा करे ? मुझे बहुत दु ख हुआ । मै वहा से दिल्ली गया, जहा गाधीजी उन दिनो ठहरे हुए थे । मैने उनसे य बात कही, और कुछ दिनो के बाद जब हम वही थे, गुरुदेव अपने दलबल के साथ वहा भी उसी निमित्त पहुचे । गाधीजी ने उनके वहा आने का समाचार सुनकर और उनकी यात्रा का उद्देश्य जानकर पहले से ही मित्रो से बाते शुरू कर दी थी और उनके वहा पहुँचने पर उस समय की उनकी आर्थिक चिन्ता दूर हो गई ।

यद्यपि मै दूर से ही उनकी पूजा किया करता था, उनकी कृपा मुझ पर न जाने क्यो और कैसे बनी रहती थी । उन्होने मुझे शान्तिनिकेतन आने के लिए विशेष रूप से आज्ञा दी और मै वहा दो तीन दिनो तक जाकर रहा भी था । ये दिन मेरे लिए चिरस्मरणीय है ।

●

काका व सबुजपत्र

•

इन्दिरा देवी चौधुरानी

हिन्दी मे 'हस' का जो स्थान है, 'सबुज पत्र' का बगला मे उससे कही अधिक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सबुज पत्र ने बगला गद्य को सर्वथा नवीन एव क्रान्तिकारी दिशा दी थी, पर साहित्य के नये मूल्यो की स्थापना के लिए सबुज पत्र को चलाने मे रवि को कितनी साधना करनी पडी थी और उसके अस्त होने पर उनको कितनी आतरिक पीडा हुई थी इसका एक सस्मरण उनकी ७३ वर्षीया भतीजी द्वारा प्रस्तुत है

•

हम लोग तब बालीगज ब्राइट-स्टीट मे ही रहते थे। मणिलाल गगोपाध्याय और प्रमथ चोधुरी दोनो रविकाका के पास गये और उनसे प्रस्ताव किया कि एक पत्र निकालना है और उस पत्रिका मे रविकाका को नियमित लिखना होगा। हमारे मकान पर तब अनेको लोग आते थे साहित्यिको का रोज अड्डा जमता। रविकाका पहले तो राजी नही हुए, बोले— "लिखकर अब और क्या होगा ? इतना तो लिख चुका हूँ, अब मुझको छुट्टी दो। पर मणिलाल छोडने वाले नही थे। मणिलाल का निज का एक पत्र था, उस पत्र को नये आकार और नये भाव मे प्रकाशित करने का उनका विचार था। उसके वे सम्पादक होगे,यह निश्चित हुआ। अन्त मे रविकाका राजी हो गये, बोले—"अच्छा लिखूगा।" रविकाका की रचनाओ से युक्त जो पत्र निकला—वह था, 'सबुज पत्र'। बगाल मे वह पत्र बहुत दिनो अवश्य नही चला किन्तु साहित्यिको के निकट तो वह एक अविस्मरणीय घटना है।

दिन रात पत्रिका का काम चलता। सुरेश चक्रवर्ती इस समय पाडिचेरी मे लौटे थे, वे भी पत्र के सचालन मे मदद देने लगे। मणिलाल पत्रिका का व्यवसायी पक्ष देखते और प्रमथ चौधुरी ने पत्रिका का सपादकीय दायित्व अपने कधो पर लिया।

रविकाका की रचनाये हर बार निकलने लगी। बगला गद्य ने एक नया स्वरूप लिया। नाना पत्रिकाओ मे नाना वितर्क उठे—चारो ओर एक भयानक आलोडन। किन्तु, इनमे कोई अपने निश्चय से न टला। रविकाका का उत्साह और भी बढ गया। सबको मानो जैसे जिद चढ गई हो। पुरातन पथियो ने विभिन्न पत्रिकाओ मे इनकी गद्य रचनाओ के नमूने लेकर नाना आक्रमण शुरू कर दिए। अन्त मे रविकाका ने नेता पद ग्रहण किया। उन्ही के नेतृत्व और उत्साह मे 'सबुज पत्र' के दल ने अविचल मनोभाव के साथ, बिना झुके पत्रिका का सचालन किया।

धीरे-धीरे नये लेखको की भीड जमने लगी, अतुलचन्द्रगुप्त, धूजटीप्रसाद, उन सबमे अधिक तरुण अन्नदाशकर राय आगे आए और 'सबुज पत्र' के पन्नो पर तारुण्य झलकने लगा।

आ गई कि मि० मैकडोनल्ड ने समझौता स्वीकार कर लिया और अब गांधी जी को अनशन जारी रखने की आवश्यकता नही है। गुरुदेव ने अपने हाथो से ही नारंगी का रस देकर उस उपवास को समाप्त कराया था, और उस दिन के पहले एक प्रार्थना भी की थी। उस जेलखाने के भीतर के दृश्य को उन दिनो के लोगो ने बहुत भव्य शब्दो मे दिखलाया है और स्वयं उन्होने भी उसका वर्णन लिखा है।

उसी अवसर पर पूना मे बड़ी सभा हुई, जिसमे गुरुदेव पधारे थे। सभा मे बहुत भीड थी। उस भीड मे गुरुदेव को बडा कष्ट हुआ और मै देखता था कि उनके चेहरे पर उस प्रेमपूर्ण, पर ना समझ प्रदर्शन का असर बहुत पड रहा था। वहा पर मैने देखा कि अब उनकी अवस्था ऐसी नही कि वे बहुत बडी भीड मे जाकर भाषण दे सके।

वैसा ही दृश्य मैने कई वर्षो के बाद पटना स्टेशन पर देखा, जब वे एक बार पटना आए। वहा भी उनके स्वागत के लिए बहुत बडी भीड इकट्ठी हो गई थी, और डिब्बे मे से उनको सुरक्षित उतारना कठिन हो गया था। भीड लगाने वालो मे, मै भी एक था। बड़ी मुश्किल से लोगो की कृपा से मै डिब्बे तक पहुँचाया गया और उनको सुरक्षित वहा से लाकर मोटर मे बिठा सका।

पटने की इस यात्रा मे उन्होने शान्तिनिकेतन के लिए चंदा इकट्ठा किया, और इसके लिए वहा नृत्यकला का एक अभूतपूर्व प्रदर्शन भी किया। मुझसे बहुत देर तक शान्तिनिकेतन सम्बन्धी बाते भी एकान्त मे हुई। उस समय शान्तिनिकेतन सम्बन्धी अधिक चिन्ता मे वे थे और उसे दूर करने के लिए ही वे शान्तिनिकेतन के बालक बालिकाओ के साथ निकले थे। मै उनको रंगमंच पर कुर्सी पर बैठे देखता था और बीच बीच मे उनकी सुरीली आवाज सुनता था। कभी कभी वे खुलकर कुछ गा दिया करते थे। जो असर उसका दिल पर पडता था, वह तो पडता ही था, पर मै बराबर दूसरे सोच मे पडा था। हमारा सौभाग्य है—मै सोचता था कि आज भी हमारे बीच मे ईश्वर की दया से एक विश्व कवि मौजूद है जिसने अपनी वाणी से अपने को ही नही इस देश की कीर्ति को भी अमर बना दिया है। कला की सेवा के लिए उसका रंगमंच पर आना स्वाभाविक और उत्साहवर्धक है, पर क्या उसका अपनी प्यारी संस्था के लिए, जिसके निमित्त उसने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है, इस प्रकार रंगमंच पर आकर अपनी वृद्धावस्था मे इतना कष्ट उठाना देश के लिए शोभा की बात है? क्या यह देश इस योग्य है कि ऐसा महान् व्यक्ति इसकी सेवा करे? मुझे बहुत दुःख हुआ। मै वहा से दिल्ली गया, जहा गाधीजी उन दिनो ठहरे हुए थे। मैने उनसे यह बात कही और कुछ दिनो के बाद जब हम वही थे गुरुदेव अपने दलबल के साथ वहा भी उसी निमित्त पहुंचे। गांधीजी ने उनके वहा आने का समाचार सुनकर और उनकी यात्रा का उद्देश्य जानकर पहले से ही मित्रो से बाते शुरू कर दी थी और उनके वहा पहुँचने पर उस समय की उनकी आर्थिक चिन्ता दूर हो गई।

यद्यपि मै दूर से ही उनकी पूजा किया करता था, उनकी कृपा मुझ पर न जाने क्यो और कैसे बनी रहती थी। उन्होने मुझे शान्तिनिकेतन आने के लिए विशेष रूप से आज्ञा दी और मै वहा दो तीन दिनो तक जाकर रहा भी था। वे दिन मेरे लिए चिरस्मरणीय है।

काका व सबुजपत्र

•

इन्दिरा देवी चौधुरानी

हिन्दी मे 'हस' का जो स्थान है, 'सबुज पत्र' का बगला मे उससे कही अधिक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सबुज पत्र ने बगला गद्य को सर्वथा नवीन एव क्रातिकारी दिशा दी थी, पर साहित्य के नये मूल्यो की स्थापना के लिए सबुज पत्र को चलाने मे कवि को कितनी साधना करनी पडी थी और उसके अस्त होने पर उनको कितनी आतरिक पीडा हुई थी उसका एक सस्मरण उनकी ७३ वर्षीया भतीजी द्वारा प्रस्तुत है

•

हम लोग तब बालीगज ब्राइट–स्ट्रीट मे ही रहते थे। मणिलाल गगोपाध्याय और प्रमथ चौधुरी दोनो रविकाका के पास गये और उनसे प्रस्ताव किया कि एक पत्र निकालना है और उस पत्रिका मे रविकाका को नियमित लिखना होगा। हमारे मकान पर तब अनेको लोग आते थे, साहित्यिको का रोज अड्डा जमता। रविकाका पहले तो राजी नही हुए, बोले— "लिखकर अब और क्या होगा ? इतना तो लिख चुका हूँ, अब मुझको छुट्टी दो। पर मणिलाल छोडने वाले नही थे। मणिलाल का निज का एक पत्र था, उस पत्र को नये आकार और नये भाव मे प्रकाशित करने का उनका विचार था। उसके वे सम्पादक होगे, यह निश्चित हुआ। अन्त मे रविकाका राजी हो गये, बोले—"अच्छा लिखूगा।" रविकाका की रचनाओ से युक्त जो पत्र निकला—वह था, 'सबुज पत्र'। बगाल मे वह पत्र बहुत दिनो अवश्य नही चला किन्तु साहित्यिको के निकट तो वह एक अविस्मरणीय घटना है।

दिन रात पत्रिका का काम चलता। सुरेश चक्रवर्ती इस समय पाडिचेरी से लौटे थे, वे भी पत्र के सचालन मे मदद देने लगे। मणिलाल पत्रिका का व्यवसायी पक्ष देखते और प्रमथ चौधुरी ने पत्रिका का सपादकीय दायित्व अपने कन्धो पर लिया।

रविकाका की रचनाये हर बार निकलने लगी। बगला गद्य ने एक नया स्वरूप लिया। नाना पत्रिकाओ मे नाना वितर्क उठे—चारो ओर एक भयानक आलोडन। किन्तु, इनमे कोई अपने निश्चय से न टला। रविकाका का उत्साह और भी बढ गया। सबको मानो जैसे जिद चढ गई हो। पुरातन पथियो ने विभिन्न पत्रिकाओ मे इनकी गद्य रचनाओ के नमूने लेकर नाना आक्रमण शुरू कर दिए। अन्त मे रविकाका ने नेता पद ग्रहण किया। उन्ही के नेतृत्व और उत्साह मे 'सबुज पत्र' के दल ने अविचल मनोभाव के साथ, बिना झुके पत्रिका का सचालन किया।

धीरे–धीरे नये लेखको की भीड जमने लगी, अतुलचन्द्रगुप्त, धूर्जटीप्रसाद, उन सबमे अधिक तरुण अन्नदाशकर राय आगे आए और 'सबुज पत्र' के पन्नो पर तारुण्य झलकने लगा।

सबुज पत्र' की और एक उल्लेख्य बात साप्ताहिक बैठक की है। इस बठक मे सभी योग देत, रवि काका अवश्य प्रति सप्ताह नही आत तो भी बीच बीच मे उत्सव अनुष्ठान मे आते। उस दिन ब्राइट स्टीट का वह घर हास की फुहारा गान की कडियो, उ सव और आन द मे झलमल कर उठता।

एक बार जगदीन्द्रनाथ उपस्थित हुए। पिआनो के साथ हम सबने रविकाका के गीत—"श्रावणेर धारार मत पडुक झरे तामार ऐ सुरटि आमार' गाया। बाद मे विहाग स्वर मे रचित—'आमार गे मुखेर परे बुकेर पर' गीत भी गाया। जगदीन्द्रनाथ पखावज बजाने म बडे सिद्धहस्त थे। उस दिन उ होने आत्मलीन होकर गान सुना। गान के अन्त म बोले— ऐसा गीत कभी नही सुना। रवि बाबू का यदि 'गीताजलि' पर ही नोबुल पुरस्कार मिला था ता इन दानो गीतो के लिए भी एक बार नाबुल पुरस्कार दना उचित है।

सबुज पत्र' कुछ दिन चलकर ब द हो गया, कइ वष बाद फिर निकला कि तु उतना उ साह नही रहा। रविकाका न अवश्य उत्साह दिखाया, पर म जहा तक सोचती हूँ, व श्रात और अवसन्न प्रतीत होते थे। इसके बाद पस की भी एक बडी समस्या थी। पत्रिका सचमुच मे ही ब द हा गई कि तु जितने दिन चली, रवि काका के व्यक्तिगत उत्साह और अजस्र आनकूल्य मे कभी वचित नही रही।

नव प्रकाशित 'परिचय' नामक पत्रिका ने रवीन्द्रनाथ को लिखने के लिए आमत्रित किया था, उसके सम्पादक सुधीन्द्रनाथ को उन्हाने एक लम्बी चिट्ठी लिखी थी, उसके अ श विशेष अवलाकनाथ यहा उद्ध त ह —

' विशिष्ट साहित्यिको का सहयोग लेकर एक मासिक-पत्र प्रकाशित करने का प्रस्ताव लेकर मणिलाल मेरे पास आय थे। मै जानता था, यह कठिन काम है—मेरे अन्य कार्यो के ऊपर इस बोझे को भी उठाना दुसह होगा इसलिए यह दाय लेने के लिए राजी नही हुआ। फिर भी बहुत दिनो से इस बात की कल्पना थी, इस कारण प्रस्ताव को एक बारगी नामजूर भी नही कर सका। नाव चलाने के लिए प्रथम धक्का देने और कुछ दिना तक ठेलने के लिए भी राजी हो गया। तब आज की अपेक्षा उम्र कम थी और साहस भी अधिक था। प्रमथ को सपादक बनाने के लिए परामश दिया। उनका, सकलन के द्वारा यो ही भरती करने का मन नही है। भावना के सम्बन्ध मे उनके निज के मन की एक स्वकीय प्रवतना है और लेखन के सम्बन्ध मे स्वकीय विचार ह। सम्पादक के इस गुण के कारण पत्रिका वेगवान हो उठी। इस वेग मे उसके सहयोगी लेखको ने भी अपना सहयोग देकर उनके चित्त को सतक और उद्यमशील किए रखा।

मणिलाल के साथ प्रथम शत यही था कि वजन की दर और गज की नाप तोल से साहित्य का विचार करने वालो के लिए यह पत्रिका नही होगी। सब लेख ही प्रथम श्रेणी के हा यह असम्भव है, द्वितीय श्रेणी के भी नही, अतएव आयतन छोटा करना होगा। कहानी न देने पर मरण निश्चित है, तो भी अधिकता वर्जनीय होगी अर्थात् गल्प, स्वल्प हागी। एक मास मे दो चार नही चलेगी। चित्र देना निषेध, विज्ञापन का बोझ भी त्याज्य। इसका मतलब मुनाफे के लाभ से दृष्टि यथा सम्भव विरत करनी होगी। नुकसान यद्यपि किसी को भी वाछनीय नही, पर जा हो, छोटे आयतन की पत्रिका और छोटे आयतन मे नुकसान, यह साघातिक नही हागे। यही सोचकर मनसे नि सकोच होकर, कलम को नि सकोच होकर चलाना अच्छा है। मणिलाल राजी हो गये, बोले— 'इस पत्रिका मे व्यवसाय की छाया मात्र भी नही रहेगी।

विनय की रत्ता करके सावधानी मे बात कहना शास्त्रसमत है । म भी ऊचे स्तर के लेखो के आदश की प्रवतना के लिए ससार म आया हूँ । यह बात सवदा मन म रखकर लेख की उच्चवगाता का अवलम्बन करके चलन वाले को अग्रेजी म 'हाईब्राविज्म'' कहा हे यह अच्छा नही है । इसके विपरीत ननचदा और अनिनम्र उन विनियम की आ सलाघवना हाती हे, पर उसे मिट्टी का पात्र बताकर साधारण म प्रसशित होने पर भी उसका परिहास किया जाता ह । मेरे नय, परिमाण कितना आर कमा है, इस बात का अपने मन म या दसरो को कहने मे अत्युक्ति की बात होगी कि तु इतना कहन म दोष नही कि जिसमे जितनी शक्ति हे, उसके उपयुक्त प्रकाशन के लिए बाहर मे प्रेरणा मिलना आवश्यक हे । आषाढ मे आकाश मे सजल मेघ घिर घिर आते ह कि तु पृथ्वी के अभाव मे रस की अभ्यथना नही हाती । मेघ अप स्वप जल छिटका कर चले जाते ह, मिट्टी भी यथेष्ट नही भीगती । आषाढ के मेघो के कमण्डल मे तो दान के लिए जल पूरे परिमाण म हाता ह कि तु धरा की अजलि मे उस दान को सहन करन की क्षमता नही होती इसलिए वह दान सब व्यथ चला जाता हे । साहित्य म भी यही बात हे । मणिलाल मे यही बात कही थी कि तुम जो पत्र निकालना चाहते हो उसमे पाठको को देने की बात उतनी बडी नही, जितनी लेखको की । लेखको को अथयोग या शब्दयोग के प्रबन्ध मे नही, पत्र के चरित्र के मध्य ही उसकी जरूरत हे । वह चरित्र लक्ष्यभ्रष्ट लेखको को उद्बुद्ध करके सावधान करे, लेखको मे अपरिछन्नता, शथित्य एव चिन्ता का दन्य कम करे । अ तत अपनी झोली फलाये बिना मान रत्ता नही होगी । तुम्हारी पत्रिका के चारित्र्य वशिष्ट्य की आवश्यकता है अर्थात् अ य के प्रति निज के व्यवहार मे भी उसी की सृष्टि करनी होगी ।''

अ त मे सबुज पत्र निकला । इस पत्र को प्रतिष्ठित करके उठाने के लिए जो यत्न हुए, वह सब मालूम ही ह । आशा थी कि क्रम से हमारा भार हल्का होगा और नया लेखक वग निज शक्ति को आविष्कृत करके, इसको आगे लेकर बढेगा ।

इस अ यवसाय मे अ तत एक लेखक का साथ मिला । तब उसका नाम अज्ञात था, पर अब वे श्रीयुक्त अतुलच द्र गुप्त ह । वे निज कल्पना के बल पर मौलिक रूप मे सोच पाते ह और स्वच्छन्द रूप मे स्वच्छ दृष्टि के साथ उसे प्रकाश मे ला पाते ह । वे नये काल के नये लेखक ह, इसमे सदेह नही, चिन्तन शक्ति की अ तर्निहित, सहज नूतनता को लेकर हा वे निश्चिन्त ह ।

जो हो भार हल्का नही हुआ । मन छुट्टी चाहने लगा । अन्त मे बला त हो जवाब दे दिया और वह चित्रविहीन, कमाविरल 'सबुज पत्र' ब द हो गया ।

कि तु इस क्षेत्र म केवल अ का की गणना मे सबुज पत्र की आयु का निणय नही किया जा सकता । सबुज पत्र न बगला भाषा का नया मोड़ दिया था । इसके लिए जो साहस और जो कृतित्व प्रकाश मे आया, उसके सम्पूर्ण गौरव का श्रेय प्रमथ नाथ को हे । इसके पूव साहित्य म चलती हुई भाषा का प्रवेश बिल्कुल नही हो, यह बात नही । वह था, कि तु खिडकी के रास्ते होकर, अवगुण्ठन खोलकर खुली सभा मे जो आसन ग्रहण कराया वह आजकल के तगमेधारी चोबदारो की आखो मे पडने वाला नही है । इस बात को लेकर तक वितक, विवाद विद्रूप काफी कुछ हो गया है किन्तु, केवल युक्ति और तक के द्वारा इन सब बातो का यथाथ प्रमाण नही मिल सकता ।

पवित्र आत्मज्योति

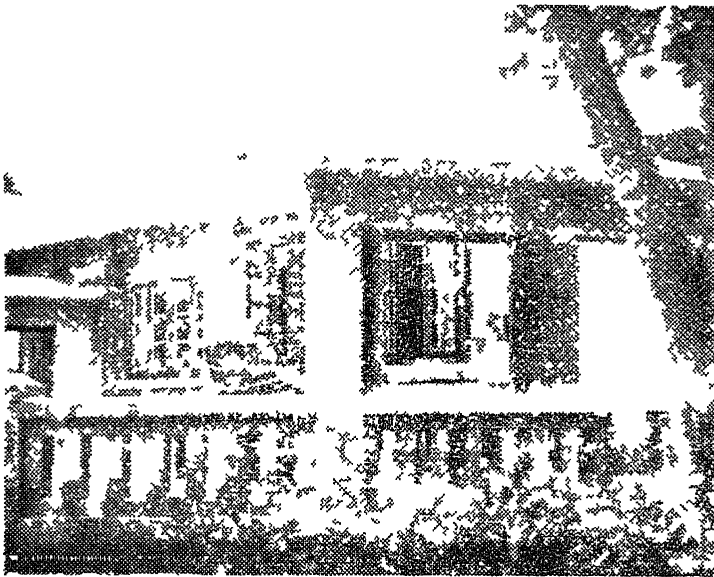
•

हजारीप्रसाद द्विवेदी (डा०)

गुरुदेव के निकट साहचर्य मे बीस वर्ष तक आचार्य द्विवेदीजी ने उनके जीवन और उनकी आत्मा को दैनिन्दिन पढा था। कवि के साधनामय जीवन की दैनिन्दिनी का एक पृष्ठ यहा पढिए।

•

मुझे कविगुरु के आश्रम मे बीस वर्षा तक रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आरभ के लगभग बारह वर्षो तक मैने उनकी छाया मे रहने का सुअवसर प्राप्त किया है। इन दिनो मैने उन्हे निकट मे—बहुत निकट से देखने का अवसर पाया है। मै साहित्य का विद्यार्थी रहा हूँ। मुझे साहित्य मे अधिक रुचि रही है। यथाशक्ति और यथाबुद्धि मै उनके लिखे साहित्य को पढने और समझने का प्रयत्न करता रहा। कभी कभी उनसे पूछने का भी साहस किया और उनका स्नेह इतना अधिक था कि कभी कभी मे जो बाते करता था वह बहस के स्तर तक पहुच जाती थी। इस प्रकार का व्यवहार धृष्टता नही तो क्या थी? लेकिन मैने न उन्हे कभी अप्रसन्न होते देखा, न उन बाल बुद्धि के तर्को की उपेक्षा करते देखा। बडे धैर्य और प्रेम के साथ वे सारी बातें सुनते थे और आशय को ठीक पकडकर समझा देते थे। जब जब मै उनसे मिलकर लौटता था तब तब



रवीन्द्र अपने 'श्यामली' निवास मे सृजन के क्षणो मे

ऐसा लगता था कि म कुछ ऊपर उठा हू । उनकी स्नेहसिक्त सरस परिहास पूर्ण बातचीत सदा मेरे भीतर के उत्तम को जागृत और सतेज बनाती थी । मेरे भीतर जो छोटापन है, सकीर्णता है, अल्पज्ञता है, वह उस समय दब जाती थी । वे महान् गुरु थे—महान् गुरु जिनके सपर्क मे आने पर शिष्य का स्वत्व जागता है। उन्होने अपने साहित्य मे जो कुछ लिखा हे वही उनका जीवन था। जिस सत्य के सुदर रूप को उन्होने अपने काव्य मे रूपान्तरित किया है उसी सत्य को उन्होने अपने जीवन मे भी चरितार्थ किया था। उनका सपूर्ण जीवन किसी क्रान्तदर्शी कवि के काव्य सा ही मनोहर और प्रभावोत्पादक था । वह जीवन भी एक काव्य ही था। भीतर से बाहर तक उनमे पवित्र आत्मज्योति की शिखा जलती रहती थी ।

कविवर रवीन्द्रनाथ को मैने वृद्धावस्था मे ही देखा हे। मैने उन्हे जैसा देखा है उसी की बात कह सकता हू । वे बहुत तडके उठते थे । नियम से वे ४ बजे के आस पास उठते थे । कभी इस नियम का व्यतिक्रम नही होता था । सन् १९२१ म काफी चल फिर लेते थे । बाद मे उनका टहलना कम हो गया था । चार बजे के आस पास उठकर वे अपने कमरे से बाहर निकलकर आराम कुर्सी पर चुपचाप सूर्य की ओर मुह करके बैठ जाते थे । गला साफ करने के लिये वे जब खासते थे तो निस्तब्धता मे दूर तक आवाज जाती थी और लोग समझ जाते थे कि गुरुदेव अब बाहर आ गए है । सूर्योदय होने तक वे शान्त मौन भाव से बैठे रहते थे । उनका ध्यान और समाधि सब यही था । कम लोग ऐसे थे जो उस समय उनके समीप जा सकते थे । एक बार एक विचित्र कारण से मुझे उसी प्रत्यूषकाल मे उनके निकट पहुँचने का सुयोग मिला । एक महाराष्ट्र सज्जन ने गीता पर कुछ लिखा था। उस पर सम्मति लेने या भूमिका लिखाने की इच्छा से वे पैदल चलकर कलकत्ता पहुँचे, फिर कलकत्ते से उसी प्रकार शान्तिनिकेतन पहुँचे । गुरुदेव के साथ रहने वाले लोगो ने उन्हे विक्षिप्त समझा और उनको पास जाने से रोक दिया । किसी प्रकार उन्होने पता लगा लिया कि सुबह चार बजे वे उठकर अपने कमरे के बाहर बैठ जाते है और उस समय पूर्ण एकान्त रहता है । साहसी आदमी थे । दुतल्ले पर गुरुदेव के कमरे की सीढियो पर सबकी आख बचाकर तीन ही बजे जम गए । गुरुदेव जब बाहर आये तो उन्हे गीता पाठ मे व्यस्त पाया । बोले, आप कौन है ? उन्होने अपना उद्देश्य बताया । मराठी हिन्दी और बगाली हिन्दी मे टक्कर हुई । बात उलझी रह गई । तब मेरी जरूरत समझी गई । मै अभी सोकर उठा भी नही था कि रवि बाबू का आदमी आया—अभी चलिए । मै जल्दी जल्दी मुह हाथ धोकर भागता हुआ पहुँचा । रथी बाबू (उनके सुपुत्र) व्याकुल भाव से बाहर टहल रहे थे । उनसे बात मालूम करके ऊपर गया । गुरुदेव शान्त भाव से पूर्व की ओर मुह किए बैठे थे और वे सज्जन सीढी पर परम मनोयोग के साथ गीता का पाठ कर रहे थे । गुरुदेव ने कुछ कातर भाव मे ही कहा—"आगए ? देखो ये क्या कहना चाहते है ? मै समझ नही पा रहा हूँ, ये हटना नही चाहते ।" मैने यथाबुद्धि उनकी बात गुरुदेव को समझाई । उनकी बडी बडी आखो मे स्नेह का तारल्य था । बोले, "बिचारे का कितना कष्ट हुआ । मगर मै मराठी की पुस्तक पर क्या सम्मति दे सकता हूँ—इन्हे समझाओ ।' मै ही जानता हूँ कि उन्हे समझाना कितना कठिन काम था । सिर्फ एक बात उनकी समझ मे आ सकी । मैने कहा—यह तो इनके ध्यान का समय है, आपको इस समय तो इन्हे अवसर देना ही चाहिए । धार्मिक प्रकृति के आदमी थे । बोले, अच्छा ! तब तो आप ठीक कहते है और मेरी बात वे मान गए । बडी

मुश्किल से उ हे भूमिका लिखाने के सकल्प से विरत किया जा सका। खर प्रात काल नियमित रूप मे वे इस प्रकार का ध्यान किया करते थे। एक बार मेरे साथ दशनाथ गए हुए एक सज्जन ने उनसे पूछा कि आप उस समय क्या सोचते ह। उस समय उन्होन गायत्री मत्र का एक अपूव अथ समझाया था। उस बात को यहा उठाने मे विस्तार होने की आशका है इसलिये छोड रहा हूँ। शुरू शुरू मे, मै जब शान्तिनिकेतन गया था तो स्व० आचाय क्षितिमोहन सेन के साथ खूब प्रात काल टहलने निकल जाता था। सूर्योदय के बाद गुरुदेव का प्रात काल अपन बाग मे टहलत देखता था। आचाय क्षितिमोहन सेन के साथ वे थोडी देर बात करते थे और मै चुपचाप सुना करता था। कभी कभी हम लोग देर मे लोटते थे। गुरुदेव उस समय प्रात कालीन चाय या काफी (जाडो मे) या अन्य कोई पेय लेते थे। मुझे तो आचायजी के साथ रहने से ही, उन दिनो गुरुदेव के दशन ऐसे समय मे भी हो जाया करते थे। यह मे अपना परम सोभाग्य समझता हू कि कभी कभी उनका प्रसाद भी पा जाता था। सन्देश उ हे बहुत प्रिय था। मुझे आचायजी न ऐसा बताया था। आचाय सेन लौटते समय बहुत सी बाते अनायास बता जाते थे। कहते, तुम्हारा भाग्य अच्छा हे जो ताफी मिली, गुरुदेव को कभी कभी मौज आती है तो टमाटर का रस ही ले लेते ह और किसी जमाने मे तो नीम के पत्तो के रस से भरा ग्लास ही ले लिया करते थे। वसे तो उनके सामने बिस्कुट डबलरोटी और अ य मिठाइया भी पडी रहती थी पर वे जरा जरा सा कुछ टूग भर लेते थे। अधिकतर सयोग से पहुचे हुए चेले ही उन पदार्थो का पूरा उपभोग करते थे। उस अवसर पर गुरुदेव से बहुत मनोरजक बाते सुनने को मिलती थी। कभी कभी बठ ही रहत थ कि डाक भी आ जाती थी और उन चिट्ठियो के बारे मे ही बात करने लगते थे। बाते सदा सरस परिहास से भरी होती थी। छोटी से छोटी बात को भी वे इस प्रकार कहते थे जिससे केवल विनोद ही नही बल्कि ममस्पर्शी तत्व प्रकट हो जाते थे।। उ हे मैने सदा ऊच धरातल पर ही देखा हे। कितनी ही चिट्ठिया बहुत हास्यास्पद होती थी पर उन्हे भी वे उचित मान देते थे और साथ ही कुछ विनोदात्मक टिप्पणी भी जड देते थे। जाडे के दिनो मे वे थोडा दिन निकल आने के बाद स्नान करते थ। पुत्र वधू विशेष रूप से उनके समय का ध्यान रखती थी। प्रात काल वे कुछ लिखा भी करत थे, या पुस्तके पढा करते थे। पढना उनका बडा ही आश्चय जनक होता था। वे पुस्तक के पूरे पराग्राफ का भाव आसानी से ग्रहण कर लेते थे। कुछ अभ्यास होने पर जिस प्रकार पढा लिखा आदमी शब्द के प्रत्येक अक्षर को मिलाए बिना ही पूरे शब्द को शीघ्रता से ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार वे पूर परा के भाव को अनायास ही ग्रहण कर लेते थे। लिखने का काम वे प्रात काल और मध्याह्न को भी करते थे। दोपहर को वे कभी सोते नही थे एक बार हसते हुए उ होन कहा था कि विधाता ने मुझे बशाख के महीने मे भेजा था। उनकी इच्छा नही थी कि मे धूप या गर्मी से डरू। अन्तिम वयस मे गाधीजी के कहने से दोपहर को विश्राम करने की बात मान ली थी—पर सोते नही थ। लेटे लेट कुछ न कुछ करते रहते थ। लेटे लेट उ होने उन दिनो कितने ही सुन्दर चित्र बना डाले।

सायकाल वे बाहर आराम कुर्सी पर बठ जाते थे। इसी समय आश्रमवासी उनसे मिलने आते थे। न जाने कितनी सध्याए आज भी मेरे मन मे साकार हं। न जाने कितने सस्मरण उमड रहे ह ।

रवीन्द्र : एक जमीदार

•

अन्नदाशंकरराय

एक बार इगलैण्ड मे लेखक से प्रश्न किया गया कि क्या रवीन्द्रनाथ वास्तव मे प्रजापीडक जमीदार है? इस प्रश्न का उत्तर अवश्य ही जिज्ञासा की वस्तु है

•

भारतीय ऋषि के तिरोधान के सात वर्ष पीछे अखड भारत दो भागो मे विभक्त हो गया। एक भाग भारत से पृथक हो गया। एक बग के दो बगदेश हो गये। एक भाग से तो 'बग' शब्द ही बहिष्कृत कर दिया गया है। श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर की जमीदारी पूर्वी पाकिस्तान के अन्तर्युक्त हो गई तथा अन्य जमीदारियो के समान वह भी राष्ट्र मे विलीन हो गई। जहा पर कविगुरु ने अपने यौवन काल के सुनहले दिन व्यतीत किये थे, वहा पर आज उनकी ही सन्तान विदेशी नागरिक के रूप मे मानी जाती है। यदि कवि जीवित रहते तो सम्भवत वे भी इसी श्रेणी मे गिन जाते।

उनके देश-प्रसिद्ध राष्ट्रीय सगीत कहा है? 'आमार सोनार बागला आमि तोमाय भाल बासि'—"आज बागला देशेर हृदय होते कखन आपनि'— "बागलार माटि बागलार जल" पूर्वी पाकिस्तान मे कोई भी नही गाता—इनका गाना देशद्रोह है। स्वाधीन भारत मे भी ये लुप्त प्राय है और इन्हे गाये भी तो किस मुह से? आज यह कोई विश्वास नही करता कि वे दिन फिर फिरेगे व प्राचीन बगदेश फिर एक होगा। आज कोई आन्तरिक प्रार्थना नही करता कि—'एक हो, एक हो, एक हो, हे भगवान"।

टाल्सटाय के समान श्रीरवीन्द्रनाथ की जीवनव्यापी साधना यही रही कि उनके पश्चात् ऐसी (जैसे कि वर्तमान मे चल रही है) स्थिति न हो। शान्तिनिकेतन तथा रवीन्द्र साहित्य मे कौन अपरिचित है? आज मै उनकी जमीदारी के विषय मे कुछ कहना चाहूँगा।

'इण्डियन सिविल सर्विस' मे सम्मिलित होने के पूर्व, मै जब लन्दन मे प्रोफेसर के रूप मे था, मेरे एक बगाली मित्र ने कहा कि—"भारत मे जाकर तो अब तुम प्रोफेसर बनोगे। जरा इस बात का पता लगाना कि क्या श्रीरवीन्द्रनाथ वास्तव मे एक प्रजापीडक जमीदार है? मै तो चकित रह गया। मैने उनसे जानना चाहा कि उन्होने यह बात कहा सुनी है। वे कुछ मुस्करा कर बोले—"काव्य पढकर कवि के विषय मे जो धारणा होती है, वास्तव मे वे वैसे नही है।' यह सुनकर मेरे मन को बडी ठेस पहुची। मित्र ने यह कह कर सान्त्वना दी कि सब जमीदार ही प्रजापीडक होते है, नही तो वे जमीदारी नही रख सकते।"

यह प्रसग मेरे ध्यान से बिलकुल उतर गया था। कुछ वर्ष पश्चात् मेरी प्रथम नियुक्ति राजशाही जिले मे नौगाव मे हुई। मित्रो ने व्यग्य किया—"जैसे को तैसा। सरकार वीर मनुष्यो को पहचानती है, नही तो इतने अन्य अधिकारी रहते हुए—तुमको ही गाजे के क्षेत्र मे क्यो भेजा गया?'

गाजे की खेती के लिये नौगाव प्रसिद्ध है। वहा जाकर वास्तव मे गाजे का नशा मुझे हो गया। गाजे की खेती करने वालो की वहा पर एक सहकारी समिति थी और उसके आधीन कुछ और उप समितिया थी। इन सबमे भी लिप्त रहना एक तरह का नशा है। इस महकमे के शासक का जीवन विचित्र है। वह एक सोलह पत्ती वाले चाकू के समान है।

जमीदारी के लिये उत्तर बगाल प्रसिद्ध है। मेरा बहुत से जमीदारो से परिचय हुआ। मैने इनकी जमीदारिया घूम-घूमकर देखी। मुझे यह ज्ञान नही था कि कविगुरु की जमीदारी भी मेरे महकमे के ही अन्तर्गत है। एक दिन मुझे आमन्त्रित करने के लिये ठाकुर जमीदारी के एक प्रतिनिधि पतिसर से आये।

कार्य मे व्यस्त होते हुए भी मैने तुरन्त निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। पतिसर यात्रा कष्ट साध्य है। वहा नाव अथवा पालकी या हाथी द्वारा जाया जाता है। परन्तु पालकी द्वारा प्रथम यात्रा बडी कष्टपूर्ण थी। मै पालकी मे प्रवेश करना पर तु शरीर साथ नही देता था। अन्त मे किसी प्रकार शरीर को प्रविष्ट कराया, माथ पर मार कर बठना पडा। पालकी म निकलना भी कष्टमय था।

पतिसर पहुचने पर मेरा मन बडा प्रसन्न हुआ। कवि के निकट पतिसर तीर्थ विशेष था। राजशाही कलक्टर के रूप म मुझे वहा कई बार जाना पडा है। किसी किसी बार मेरे लिये पतिसर की जमीदारी से हाउसबोट भी आया। कवि के समान मैने भी हाउसबोट मे रात्रिया बिताई है। किन्तु वहा की नागर नामक नदी नहर के समान अप्रशस्त है। उसका बहाव बहुत मन्द है। आत्राई नदी उसकी तुलना मे बहुत चौडी तथा वेगवती है। आत्राई घाट स्टेशन पहुचने के लिये नदी म होकर जाना पडता है और यह यात्रा बडी आनन्ददायक है।

कविगुरु जमीदारी की देख रेख के उत्तरदायित्व से बहुत पहले विमुक्त हो चुके थे। यह उस समय की बात है जब कवि ने आश्रम विद्यालय स्थापित करके शान्तिनिकेतन मे रहना आरम्भ कर दिया था। बीच बीच म व जमीदारी मे आते थे। यह बीच बीच म जाना भी बहुत दिनो से बन्द था। जिनको चीन से पेरू आकर्षित कर रहा था, उन्हे पतिसर शिलाइदा कम आकर्षित कर सकता था? इसी बीच मे ठाकुर परिवार की जमीदारी विभक्त हो गई। कवि के हिस्से मे पडे पतिसर और उसके निकटवर्ती परगने। शिलाइदा उनके बडे भाई श्री सत्येन्द्रनाथ ठाकुर के हिस्से मे पडा। मै जब कुष्टिया महकमे के अधिकारी के रूप मे शिलाईदा देखने गया था, उसके पूर्व ही यह जमीदारी ऋण से मुक्ति पाने के लिये बिक चुकी थी। उस समय भाग्याकूल का रायवंश इस जमीदारी का मालिक था।

मैने पतिसर को उसकी जीर्णावस्था म देखा था। पाट का बाजार मन्दा था इसलिये वहा के कृषक निर्धन हो गये थे। जमीदारी किसी प्रकार चल रही थी परन्तु प्रजा को कम सूद पर कर्ज देने के लिये जो 'सब-बैंक' दयालु गुरुदेव ने स्थापित किये थे, वे सब उस समय बन्द थे। बहुत रुपया कर्जदारो मे बाकी पड गया था। उनके द्वारा स्थापित 'कल्याणवृत्ति' कोष बडा सकटमय जीवन व्यतीत कर रहा था। मुझे ऐसा सुन्दर व अन्य किसी जमीदारी मे दृष्टिगोचर नही हुआ। बिना सरकारी सहायता के जमीदार और एकत्रित किये धन से, प्रजा द्वारा स्थापित किये गये उपर्युक्त कोष मे विद्यालय व अस्पताल स्थापित करना और उनका यथाविधि

परिचालन करना उनके तथा उसकी प्रजा के लिये बढ गौरव की बात थी। कोष की आर्थिक स्थिति पाट के बाजार मन्दा होने के कारण बडी शोचनीय थी। परिणामस्वरूप विद्यालय तथा अस्पताल के परिचालन म विश्रृंखलता आ गई थी।

जमीदार तथा प्रजा का पारस्परिक प्रीतिपूर्ण सहयोग ही कविगुरु का आदर्श था। यौवन के प्रारम्भिक काल म महर्षि के आदेशानुसार जमीदारी का प्रबन्ध जब मे हाथ मे लिया तभी मे गुरुदेव का यही आदर्श रहा है। शिलाइदा पहुचकर उनको विदित हुआ कि उनके सम्मान म दरबार की तयारी की जा रही है। दरबार म मुसलमान प्रजा के लिए फर्श की व्यवस्था थी और हिन्दू प्रजा के लिए बेंच और कुर्सिया का इन्तजाम था। यह देखकर गुरुदेव क्रोध से भर गये। उन्होने इस वषम्य का कारण जानना चाहा ?

उत्तर मे उन्ह निवेदन किया गया—"प्रिंस द्वारकानाथ के समय मे ही दरबार की यही व्यवस्था चली आ रही है। महर्षि के समय मे भी यही प्रथा जारी रही। हुजूर क्या इस प्राचीन व्यवस्था को रद्द करना चाहते ह ? यदि ऐसा ही विचार है तो शासन मे बाधा होगी।'

गुरुदेव ने स्पष्ट कह दिया कि वे ऐसे दरबार म सम्मिलित नही हो सकते जहा इस प्रकार का वषम्य हो। सबको समान स्थान दिया गया और तभी स उनकी मुस्लिम प्रजा उनकी विशेष अनुगत हो गई। यह घटना शिलाइदा की है—मेरे जन्म से पहिले की। मुझे इस घटना का वर्णन शिलाइदा जमीदारी के एक कर्मचारी द्वारा लिखित पुस्तक से प्राप्त हुआ है किन्तु, इस द्वितीय घटना का मै प्रत्यक्षदर्शी हू।

राजशाही मे नियुक्ति के समय अकस्मात् एक तार प्राप्त हुआ कि गुरुदेव पतिसर मे आ रहे ह। मुझे उनसे जाकर मिलना चाहिए। वे उसी दिन कलकत्ते वापिस लौटेंगे। समय की कमी थी। कार द्वारा म नाटोर गया और वहा से ट्रेन द्वारा आत्राई घाट पहुचा। ट्रेन से उतरकर देखता हू कि गुरुदेव का हाउस बोट घाट पर बधा हुआ ह। वे पतिसर से लौट आये ह और प्लेटफार्म मे ट्रेन की प्रतीक्षा मे बठे हुए ह। प्रणाम् करके उनके समीप ही बठ गया। गुरुदेव ने कहा—"जिन आदमियो को मेरे साथ देख रहे हो, वे सब मेरे साथ पतिसर से पदल आये ह।"

पर प्रजा की यह श्रद्धा उचित ही थी। समस्त मनुष्य जाति न उस ऋषि के दर्शन किये और उनकी खास प्रजा ही वंचित रह जाय ? करीब १५ वर्ष पहिले वे पतिसर आये थे। इस समय उनकी अवस्था ७६ वर्ष की थी और स्वास्थ्य भी ठीक नही था। पतिसर का मार्ग कष्टपूर्ण था। उनके हाउस-बोट की अवस्था भी शोचनीय हो गई थी—सम्भवत वसूली ठीक नही हो रही थी।

"इन्होने क्या कहा है सुनोगे ?" गुरुदेव बोले—"इन्होने कहा है कि किसी पगम्बर को देखने का सौभाग्य तो हमारा नही हुआ किन्तु, आपको देखने का सौभाग्य तो हमारा अवश्य हुआ ही है।"

पगम्बर कैसे होते ह, यह तो देखने का मेरा भी सौभाग्य नही हुआ, परन्तु गुरुदेव अपनी परिपक्व केशश्मश्रु-मंडित परिणत अवस्था मे पगम्बर के समान ही प्रभावशाली थे। मृत्युलोक का बन्धन शिथिल होता आ रहा था। वे हमारे मध्य मे रहते हुए भी हमसे पृथक थे। बडी बडी दाढी वाले वृद्ध मुसलमान उनको शिष्यो की भांति घेरे खडे थे। कलकत्ता ट्रेन आ पहुची। गाडी एक दो मिनिट खडी होती थी। गुरुदेव को सहारा देकर गाडी

मे बिठाया गया। उनकी प्रजा की ग्राखो मे ग्रासू भरे थे। मुस्लिम प्रजा ने ग्रपना ग्रन्तिम सलाम ग्रौर हिन्दू प्रजा ने ग्रपना ग्रन्तिम प्रणाम् निवेदन किया। वे केवल जमीदार ही तो नही थे, वे उनके पैगम्बर जो थे।

उस बार नाटोर तक उनके साथ ग्रकेले यात्रा करने का सौभाग्य मुझे मिला। रास्ते मे प्रधानत साहित्य के विषय मे ही बातचीत होती रही। परन्तु उन्होने मुझे किसी एक वषयिक मन्त्रणा के लिए बुलाया था। नाटोर मे ट्रेन मे उतरकर गुरुदेव से ग्राज्ञा मागकर राजशाही वापिस लौटने पर मेरे वद्ध मुसलमान जमादार ने पूछा—"हुजूर कहा तशरीफ ले गये थे?" मैंने उसे यात्रा की बात बतायी।

यह जमादार कलक्टरो के पास युवावस्था से ही चपरासी रहा है। सरकारी नियम इसके लिए नही है। इसकी ग्रवस्था मे सब ही राज कमचारी रिटायर हो जाते ह। इसको हटाने का किसी भी कलक्टर का साहस नही हुग्रा। मे तो इसके पौत्र की उम्र का हू।

शफी जमादार ने कहा—"ठाकुर बाबू तशरीफ लाय थे, हुजूर! उन्हे देखे एक मुद्दत हो गई। मै भी उनको देख ग्राता।"

'तुमने उन्हे कब देखा है?'' कौतूहलवश मैंने उससे पूछा। उसने उत्तर दिया—"जिस बार वे राजशाही तशरीफ लाये थे। पालित साहब उस समय यहा के जज थे। वे जज साहब की कोठी मे ही ठहरे थे। ग्राह! ठाकुर बाबू भी कितने सुन्दर ह, उनका सगीत कितना मधुर है! मुझे वह ग्रब भी याद है।" उसका मन भाव-साम्राज्य के किसी ग्रतीत युग मे चला गया। मैंने हिसाब लगाकर देखा कि वह ४४ वष पहिले की घटना का वणन कर रहा है। उस समय कविगुरु की ग्रवस्था ३२ साल की थी। वे उस समय पद्मा नदी के वक्षस्थल पर हाउसबाट मे निवास करते थे। मैने इस घटना का उल्लेख गुरुदेव से शान्तिनिकेतन मे किया था। सुनकर करुणाद्र होकर बोले—"उस समय गान के उपयुक्त मेरा गला था।"

मै एक समय पतिसर जाते हुए एक स्थान पर हाथी से उतरा। हाथी पानी पीने गया। इस मध्य ग्राम के एक गृहस्थ सज्जन से मेरी बातचीत हुई। वह ठाकुर परिवार का हिन्दू प्रजाजन था। वह ग्रपने ग्राप ही सुनाने लगा ग्रपनी बाल्यावस्था का इतिहास। गुरुदेव के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ की उस समय मृत्यु हुई थी। उनकी समस्त प्रजा श्राद्ध के उपलक्ष्य मे भेट लेकर हाउसबोट के समीप उपस्थित हुई थी। प्रथम दिन उन्होने समस्त भेट स्वीकार की ग्रौर किसी से कुछ नही कहा। दूसरे दिन उन्होने सबको फिर से बुलाया ग्रौर कहा—"मेरे पिता का श्राद्ध है, उसके लिए क्या मे तुम लोगो से भेट लूगा? मेरे लिए यह कितनी लज्जास्पद बात है। जाग्रो जो कुछ तुम लोगो ने भेट स्वरूप दिया है वापिस ले जाग्रो।" यह कहकर उन्होने सबकी भेट वापिस करदी। प्रजा ग्राश्चयचकित हो गई कि यह कसा जमीदार है।

पतिसर की ग्रपेक्षा मुझे शिलाइदा ग्रधिक भाया। ठाकुर परिवार की परित्यक्त कोठी मे मैने कुछ रात्रिया व्यतीत की ह। तिमजिले के एक कमरे को दिखलाकर मुझसे कहा गया। कविगुरु ने इसी कमरे मे बठकर 'गीताजलि' लिखी थी। यद्यपि उस समय वे वहा के जमीदार नही थे, तब भी वहा के लोग उन्हें नही भूले थे। उनके प्रति श्रद्धा मे किसी प्रकार की कमी नही ग्राई थी।

जमीदारी की कचहरी मे उस समय भी कुछ पुराने कागजात मौजूद थे। गुरुदेव द्वारा जमीदारी के विषय मे लिखे गये हुक्म देखने की मैने इच्छा की। वहा के कमचारियो ने मुझे उनके द्वारा लिखित दो चिट्ठिया दिखाई। यह रवी द्रनाथ का दूसरा रूप था। कौन कहेगा कि अब लेखक विश्व वरेण्य कवि है ? य चिट्ठिया उपमा बहुल अ लकृत-गद्य नही था। प्रभावशाली जमीदार लिखित निरालकार वषयिक लिपि थी।

पुत्र रथी द्रनाथ को कृषि विद्या अध्ययन के लिये उन्होने अमेरिका भेजा था। अब उनके लिय शिलाइदा के समीप फाम स्थापित करने के लिये जमीन खरीदना चाहते थे। यह सब बातें उनके नोबेलप्राइज' प्राप्त करन के पूव की है। उपयु क्त पत्रो म जमीदारी के कमचारी के प्रति विशद उपदेश था। जिस भाषा मे य पत्र लिखे गये थे वह जमीदारी सिरस्ते की बगला भाषा थी।

काव्यो का अध्ययन करके ही कवि का वास्तविक रूप नही मालूम पड सकता। इसी शिलाइदा मे उनके विषय मे जानकारी प्राप्त हुई। कविता के विषय मे नही, खाद के विषय मे। उत्तम खाद प्रस्तुत करने के लिय उ होने कई मन 'हिलसा' मछलिया एकत्रित करवा कर मिट्टी मे गडवा दी थी। उस दुग ध के भार मे लोग पागल हो उठ थे।

कुष्टिया मे रहते समय उनके द्वारा किये गये पाट के कारबार का स्मृति चि ह मुझे दृष्टिगोचर हुआ था। एक मकान पर लिखा हुआ था—'टगोर एण्ड को'। उन दिनो मे यह कारबार हस्तातरित हो चुका था। वे कारबार समाप्त करके शा तिनिकेतन चले गये थे। शक्ति व बुद्धि का अभाव उनमे नही था किन्तु विश्वास योग्य कमचारियो का अभाव था, नही तो गुरुदेव को ऋणग्रस्त होकर शिलाइदा की कम भूमि का परित्याग कर शान्तिनिकेतन के तपोवन मे आश्रय नही लेना पडता। केवल ४० वष की आयु मे उ हे वाणप्रस्थ ग्रहण करना पडा।

उनकी इच्छा थी कि उनका पुत्र उनकी कम भूमि मे रहकर उनकी कम पद्धति का अनुसरण करे। कि तु यह सभव नही हो सका। 'नोबलप्राइज' प्राप्ति के पश्चात् सब कुछ अस्त-व्यस्त हो गया। यहा तक कि जमीदारी का मुख्य कायालय भी उठकर शा तिनिकेतन चला गया। रूस के भ्रमण काल मे गुरुदेव ने कहा था, भाग्य ने उ हे जमीदार बनाया है—इस कारण वे लज्जित ह। टाल्सटाय ने जिस प्रकार अपनी प नी को जमीदारी का भार सौप दिया था, उसी प्रकार गुरुदेव ने भी यह भार पुत्र के ऊपर छोडकर जमीदारी मे मुक्ति पा ली थी, पर जब श्री अमिय चक्रवर्ती ने उनसे उनकी जमीदारी राष्ट्र को दान करने के लिये निवेदन किया, तब उ होने नाराज होकर कहा कि, उ ह उनके पुत्र को इससे वचित करने का कोई अधिकार नही है।

कि तु कुछ वष पश्चात् इतिहास ने ठाकुर परिवार को इस जमीदारी से सदा के लिए वचित कर दिया।

वर्षो पहले की बात है, एक दिन शातिनिकेतन म एक युवक यात्री न मुझे उसकी Autograph Book (हस्ताक्षर पोथी) मे कुछ लिखने को कहा और मैंने, जो विचार मुझे उस समय सूझा, उसमे लिख दिया । वह विचार इतना पुराना है—जितना पुराना इस दुनिया मे इसान है, अथात् 'Know thyself" (अपने आपको पहचान बदे !)

फिर वह युवक–यात्री गुरुदेव कविवर रवीद्रनाथ ठाकुर के हस्ताक्षर लेने गया । उहोन उसी ही सफे पर, जिस पर लिखा हुआ था, "Know thyself" के नीचे अपने हाथो से लिख दिया, "Forget thyself' (अपने आपको भूल जा, बदे !)

तब से मुझे कभी-कभी ऐसा जरूर लगा है कि इस छोट मे वाक्य मे गुरुदेव की विराट विभूति का मूल जीवन मत्र समाया हुआ है । कारण कि जो अपने आपको भूल जाता है या खो बठना है वह तो अपन आपका सही तौर से पहचानता है या पहचान पाता है । अपने यक्तित्व की सीमा को पाकर के ही तो इसान असीम की झाकी और उसके आशीवाद प्राप्त कर सकता है । इसीलिए ही तो इसान को उमके जन्म से ही यह आदेश दिया जाता है, जो भूमा विराट है, तू उसकी भक्ति कर, भले वह भूमा भगवान हो या सत्य हो । सच है कि ऐसी भक्ति या ऐसे भक्त बन जाने मे ही इन्सान अपने आपको सम्पूर्ण भाव से भूल सकता है । अपने आपको केवल जानने मे उसका अहम् बट सकता है और यह अहं उसके और असीम के बीच मे एक दीवार खडी कर सकता है । इस किस्म की दीवार उसे विराट के प्रकाश मे अक्सर वचित रख सकती है, जसे कि किसी कमरे की खिडकियो या दरवाजो को सबरे के वक्त बद करने से सूय के प्रकाश मे उस कमरे म रहन वाला वचित हो जाता ।

अपने आपको भूल जान मे आलोक है और अपने सीमित आपको केवल जानन मे अक्सर अन्धकार हाता है ।

"हद मे हद मे दिन बिना जब, भोग बहुत हम पाया,
हद से अहद मे जब मे डूबा, तब ही आपा (जाना) पाया ।।"



गुरुदेव के जीवन का मूल-मंत्र — गुरुदयाल मल्लिक

वर्षों पहले की बात है, एक दिन शातिनिकेतन म एक युवक यात्री ने मुझ उसकी Autograph Book (हस्ताक्षर पोथी) मे कुछ लिखने को कहा और मैंने, जो विचार मुझे उस समय सूझा, उसमे लिख दिया । वह विचार इतना पुराना है—जितना पुराना इस दुनिया मे इ सान है, अर्थात् ' Know thyself" (अपने आपको पहचान ब दे !)

फिर वह युवक–यात्री गुरुदेव कविवर रवी द्रनाथ ठाकुर के हस्ताक्षर लेन गया । उ होन उसी ही सफे पर, जिस पर लिखा हुआ था, "Know thyself" के नीचे अपने हाथो मे लिख दिया, "Forget thyself" (अपने आपको भूल जा, ब दे !)

तब मे मुझे कभी-कभी ऐसा जरूर लगा है कि इस छोटे से वाक्य मे गुरुदेव की विराट विभूति का मूल जीवन मत्र समाया हुआ है । कारण कि जो अपने आपको भूल जाता है या खो बठता है वह तो अपन आपका सही तौर से पहचानता है या पहचान पाता है । अपन यक्तित्व की सीमा को पाकर के ही तो इ सान असीम की झाकी आर उसके आशीवाद प्राप्त कर सकता है । इसीलिए ही तो इ सान को उसके ज म से ही यह आदश दिया जाता है, जो भूमा विराट है, तू उसकी भक्ति कर, भले वह भूमा भगवान हो या सत्य हो । सच है कि ऐसी भक्ति या ऐसे भक्त बन जाने मे ही इ सान अपने आपको सम्पूर्ण भाव से भूल सकता है । अपने आपको केवल जानन मे उसका अहम् बट सकता है और यह अह उसके और असीम के बीच मे एक दीवार खडी कर सकता है । इस किस्म की दीवार उसे विराट के प्रकाश मे अक्सर वचित रख सकती है, जसे कि किसी कमरे की खिडकियो या दरवाजो को सबेरे के वक्त बद करने मे सूय के प्रकाश मे उस कमरे मे रहन वाला वचित हो जाता ।

अपने आपको भूल जान मे आलोक है और अपन सीमित आपको केवल जानन मे अक्सर अ धकार होता है ।

> "हद मे हद म दिन बिता जब, भोग बहुत हम पाया,
> हद मे अहद मे जब मे डूबा, तब ही आपा (जाना) पाया ।।"



गुरुदेव के प्रथम दर्शन

•

हरिहरनाथ टण्डन (डॉ०)

आज से चालीस वर्ष पूर्व नवम्बर १९२? की बात होगी कि एक दिन काशी के प्रसिद्ध हिन्दी दैनिक 'आज' में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि शान्तिनिकेतन से गुरुदेव तीन दिन तक काशीधाम में ठहरेंगे। इसे पढ़ते ही उनके दर्शन की इच्छा स्वाभाविक और सामूहिक थी और मन अभी यह संकल्प कर ही पाया था कि उनके निवास स्थान पर जाकर दर्शन करना आवश्यक है कि विश्वविद्यालय के अधिकारियों की ओर से यह विज्ञप्ति निकल गई कि हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति महामना मदनमोहन मालवीयजी ने उन्हें विश्वविद्यालय की नव विकसित भूमि को पवित्र करने के लिए सादर आमन्त्रित किया है। गुरुदेव के आगमन का समय दिन के अढाई बजे निश्चित था पर डेढ़ बजे से ही आर्ट्स कालेज का हाल अध्यापकों और विद्यार्थियों की अपार भीड़ से जमीन से छत तक ठसाठस भर गया। चारों ओर नर मुण्ड ही दिखाई देते थे और ऐसा लगता था कि हाल को स्वयं अपने छोटेपन का अनुभव हो रहा था। सवा दो बजे के लगभग हाल के सामने एक कार आकर रुकी और सहस्रों नेत्र उस ओर उत्सुकता से देखने लगे पर उसमें उतरे शुक्लपरिधान मण्डित, तन मन दोनों से शुद्ध धवल महामना मालवीयजी और आचार्य श्रेष्ठ आनन्दशंकर ध्रुव जो वहीं रुककर गुरुदेव की प्रतीक्षा करने लगे। धीरे धीरे विश्वविद्यालय के सभी विभागाध्यक्ष भी वहीं एकत्र हो गए और सब मिलकर आगमन की बाट जोहने लगे। हाल में जो लोग बैठे और खड़े थे वे भी सब स्वागतमय हो रहे थे। ठीक अढाई बजे दो कारें आईं। पहली में से गुरुदेव के दल के लोग उतरे और पिछली गाड़ी में से साक्षात् सौन्दर्य की प्रतिमा श्रीरवि ठाकुर उतरे जिनका मालवीयजी से मिलन ऐसा था मानो साधना और तप एक दूसरे के सम्मुख होकर भिन्न में अभिन्न का अनुभव कर रहे हों। एक क्षण में ही गुरुदेव ने समस्त नतमस्तक अध्यापकों पर अपनी कृपा दृष्टि डाली और उन्हें हाथ उठाकर वरद आशीर्वाद दिया। ज्योंही गुरुदेव भवन के भीतर बढ़े त्योंही सब लोग उनके सम्मान में खड़े ही नहीं हो गए परन्तु चित्र लिखे से स्तम्भित दिखाई दिए। मुझे तो लगा देखि रूप मोहे नर नारी।

श्री गुरुदेव का शरीर लम्बा और इकहरा था, उनका वर्ण गोरा और अंग अंग सुकुमार था। निर्मल शुभ्र-केश, दाढ़ी और मूंछ तथा नाक पर टिका कमानी का चश्मा जिसका काला डोरा बाईं ओर लटक कर उस रूप-राशि की ओर भी तेजोमय बना रही थी। उनके वस्त्र लम्बे, ढीले, और रेशमी हाथ के बने हुए थे और सिर पर एक काली मखमली (कुछ कुछ ईरानी) टोपी थी। तब उस भीड़ में से निकलकर जब नेत्र नीचे किए हुए मञ्च पर बैठ गए तब मुझ जैसे लोगों के साथ उन पंक्तियों के लेखक को भी उनके शरीर की पूरी शोभा देखने को मिली और मुझे तो ऐसा लगा कि समस्त भारत में 'गुरुदेव' नाम से विख्यात यह महाकवि 'नर भूषण लोचन सुखदाई' हैं।

मालवीयजी महाराज ने बडे प्रेमपूर्ण और चुने हुए शब्दो मे महाकवि का स्वागत किया और उनकी तुलना नगराज हिमालय से की और उनमे आशीर्वाद देने की आग्रह पूर्ण प्रार्थना की। इस पर श्री गुरुदेव न अग्रेजी मे जो कहा मुझे अविरल स्मरण है। श्री गुरुदेव बोले मेने किसी विद्यालय मे विधिवत शिक्षा नही पाई है इसलिए मे आप सबके बीच आकर लज्जा और सकोच का अनुभव करता हूँ, दूसरे भीड को देखकर मुझे भय लगता है। मे एकान्त मे सुखी रहता हूँ इसलिए भी आप सबके बीच मुझे प्रसन्नता के अतिरिक्त कुछ भीरुता का आभास हो रहा है।' इसके पश्चात् श्री गुरुदेव न कुछ वेद मन्त्रो का पाठ किया जिनमे एक मन्त्र 'या आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपास्ते।' इस घटना को आज चालीस वर्ष होन आये ह और तब से अब श्री दलीपकुमार राय से लेकर अनेक देश के कोमल कठ वाले सगीतज्ञो का सगीत सुनने का अवसर मिला है पर गुरुदेव की अमृतमयी अमरवाणी की स्मृति आज भी वैसी ही मधुर बनी हुई है। ऐसा सुन्दर कण्ठ अभी तक सुनने को नही मिला है। श्री गुरुदेव जितनी देर रहे उतनी देर वे नीची दृष्टि किए पृथ्वी की ओर ही देखते रहे पर भीड उन्ही मे दृष्टि गडाए रही।

o o o o o o o o

गुरुदेव का दूसरा सस्मरण मुझे उत्तर प्रदेश की प्रथम राज्यपाल श्रीमती सरोजिनी नायडू ने सुनाया था। श्रीमती नायडू ने कहा कि गुरुदेव के अमेरिका जाने के कुछ दिनो बाद ही वे सयुक्त राष्ट्र मे गई और कुछ ऐसा हुआ कि उन्हे भी उसी अतिथालय मे ठहराया गया जहा कुछ दिन पहले श्री गुरुदेव ठहर चुके थे। एक दिन जब श्रीमती नायडू किसी की प्रतीक्षा मे खाली बैठी थी तो उस अतिथालय के एक कर्मचारी ने उन्हे अत्यन्त नम्रतापूर्वक अभिवादन करके एक प्रश्न करने की आज्ञा मागी, जो उसे तुरन्त मिल गई। कर्मचारी ने प्रश्न किया कि मुझे कृपा पूर्वक बताइए कि वह आपके देश का कौन व्यक्ति था जो गत मास यही ठहरा था और जिसे शीशे के सामने अपनी वेष भूषा ठीक करने मे कम से कम एक घटे का समय लगता था? वे बोले हम लोगो ने तो मनुष्य शरीर मे ऐसी कोमलता पहले कभी नही देखी थी। श्रीमती नायडू यह सुहावना प्रश्न सुनकर मन ही मन प्रसन्न हो गई और उन्होने सगर्व कहा—"वे ह मेरे आराध्य गुरुदेव विश्ववन्द्य महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर।" ऐसे थे हमारे गुरुदेव जिनका वेष भी वैसा ही सुन्दर था जैसा कि उनके विचार और मन।





श्यामली मे गुरुदेव गाधीजी के साथ

यद्यपि रवी द्रनाथ का कायक्षेत्र मुरयत साहित्य और कला के क्षेत्र तक ही सीमित रहा, पर एक पराधीन देश के नागरिक और जागरूक लेखक के नाते वह राजनीति मे सम्पूर्ण रूप से अलग न तो रहे और न रह सकते थे। साहित्य क्षेत्र मे उन्होने अपने राजनैतिक विचार जिस प्रकार पेश किए वह तो किए ही, इसके अतिरिक्त, उन्होने स्वय राजनीति मे कुछ सक्रिय भाग भी लिया और इस नाते गाधीजी के साथ उनका सम्बन्ध हुआ।

रवीन्द्रनाथ और गाधी

मन्मथनाथ गुप्त

इस सम्बन्ध के ब्यौरे मे जाने के पहले हम थोडे मे यह दिखा दे कि किस प्रकार रवी द्रनाथ राजनीति के इद गिद बने रहे और उनका राजनीति सम्बन्धी दशन उनके काव्य और साहित्य मे किस प्रकार प्रतिफलित हुआ।

१८९६ मे कलकत्ता मे काग्रेस का बारहवा अधिवेशन श्री रहमतुल्ला सियानी की अध्यक्षता मे हुआ। सियानी साहब बम्बई के अच्छे वकील और पुराने काग्रेसी थे। इस काग्रेस मे कवी द्र रवी द्र ने श्वेतवस्त्र धारण कर व देमातरम् गीत गाया। उनके भाई श्री ज्योतिरि द्र नाथ आर्गन बजा रहे थे और वह अपनी मस्त आवाज मे गा रहे थे। यह बता दिया जाय कि यह पहला ही अवसर था जब काग्रेस के अन्दर व देमातरम् गाया गया था।

इसके बाद हम रवी द्रनाथ को बग भग के युग मे, राजनीति मे कुछ भाग लेते हुए देखते ह । उन दिनो रवी द्रनाथ बंकिमचद्र के द्वारा प्रवर्तित बगदर्शन के सचालक थे, उ होने उसमे लिखा—

बाहर की कोई बात हममे फूट पदा कर हमे प्रलग कर देगी, इस बात को हम किसी भी प्रकार नही मान सकते । जब बनावटी विच्छेद हमारे बीच मे खडा होगा, तभी हम सचेतन रूप से इस बात का अनुभव करेगे कि बगाल के पूर्व तथा पश्चिम को चिरकाल से एक ही जाह्नवी ने अपने बाहुओ मे बाध रखा है, और एक ही ब्रह्मपुत्र न उनके प्रसारित आलिगन को ग्रहण किया है । इसी पूर्व तथा पश्चिम बगाल ने हृदय के दाहिने तथा बाये हिस्से की तरह बगाल की शिराओ तथा उपशिराओ मे रक्त को चलाया है, तथा जननी के दाहिने तथा बाये स्तन की तरह हमेशा से बगाली सतान का पालन किया है । हम यह नही चाहते कि हमसे कोई लाख प्यार करे, प्रतिकूल परिस्थितियो के द्वारा ही हममे शक्ति का उद्बोधन होगा । आज विधाता की रुद्र मूर्ति मे ही हमारा परित्राण है । जन को चेतन करने के लिये एक मात्र उपाय है—आघात–अपमान तथा अभाव । न आदर मे न सहायता मे, न आराम मे यह वृत्ति विकसित हो सकती है । '

यह द्रष्टव्य है कि इस वक्तव्य म किसी प्रकार के समझाने की बातचीत नही है, बल्कि इसमे साफ साफ युद्धघोष किया गया है । उ होने इस युग मे बहुत सी कविताए लिखी । उ होने यह नारा दिया कि यदि तुम्हारी पुकार पर कोई न आये तो तुम्हें इस यात्रा मे अकेले चलना पडेगा । अ याय के विरुद्ध खडे होकर पर लडखडाने नही ह, बल्कि बिना किसी प्रकार की हिचकिचाहट के आगे बढते चलना है । रवी द्रनाथ ने तपस्या का माग लोगो के सामने रखा और उ होने अपनी एक कविता मे कहा –

' ह भारत, तुमने नृपति को मुकुट, दण्ड, सिहासन और भूमि को त्याग कर दरिद्र वेश धारण करने की शिक्षा दी, तुमने वीर को यह शिक्षा दी कि धर्म युद्ध मे पग पग पर शत्रु को क्षमा दी जाय और विजय तथा पराजय को भूलकर शर-सहार किया जाए । तुमने कर्मी को यह सिखलाया कि योगमुक्त चित्त मे सब फलो की स्पृहाब्रह्म मे उपहार दे दिया जाए । तुमने गृहस्थ को गृह का विस्तार करके पडौसी, मित्र, अतिथि और अनाथ तक पहुँचाना सिखाया तुमने भोग को सचयम के साथ बाध दिया और निमल वराग्य मे गरीबी को उज्जवल बनाना सिखाया, तुमने पुण्य कम द्वारा सम्पद को मागलिक बनाने की शिक्षा दी । तुमने यह शिक्षा दी और तुमने यह सिखाया कि सब सुख और दुख मे स्वार्थ का बलिदान करके ब्रह्म के सामने ससार को रख दिया जाए ।"

एक अन्य कविता मे उन्होने कहा —

' अ याय जे करे ओर अ याय जे सहे,
तब घृणा तारे यन तृण सम दहे ।"

"जो अ याय करता है और जो अ याय सहता है तुम्हारी घृणा उसे फूस की तरह जला डाले ।"
कवि का आदश है —

"जहा चितमय शू य है और सिर ऊंचा है, जहा ज्ञान मुक्त है, जहा घर की दीवार ने अपनेआगन के नीचे दिन रात धरती को खण्डित और क्षुद्र करके नही रखा, जहा वाक्य हृदय के उत्सव मुख से उच्छ्वसित हो

उठना है जहा अबाध स्रोत मे देशा मे तथा दिशाओ मे कर्मधारा धावित होती है, अजस्र सहस्र प्रकार की चरितार्थता मे, जहा तुच्छ आचार के मरुभूमि की बालुराशि विचार के स्रोत मार्ग को ग्रस्त नहा करती जहा पौरुष शतखण्डित नही हो गया, जहा नित्य तुम भी कर्म, चिन्ता और आनन्द के नेता हो हे पिता अपने हाथो से निर्मम आघात पहुचा कर भारत के उस स्वर्ग को जगा दो।'

रवीन्द्रनाथ ने इस प्रकार जो आदर्श पेश किया वह न तो भिक्षापात्र का आदर्श था और न आदान प्रदान का आदर्श था, वह आदर्श था अपने को बलिष्ठ और शुद्ध बनाने का।

इन दिनो उन्होने बहुत से देशभक्ति मूलक गीत लिखे जो विशेषकर बगाल और बगालियो को सम्बोधित करके लिखे गए थे। यह कुछ आश्चर्य की बात नही है क्योकि बग भग रूपी विपत्ति बगाल ही पर पटी थी और यद्यपि भारत के कुछ प्रगतिशील नेताओ की सहानुभूति बगाल के साथ थी, फिर भी बगाल पर आई हुई इस विपत्ति को बगालियो को ही दूर करना था, इसलिए हम रवीन्द्रनाथ को उन दिनो ऐसे गीत गाते हुए पाते है।

बागलार माटी बागलार जल
बागलार वायु बागलार फल
पुण्य होउक पुण्य होउक हे भगवान।

उन्होने साहस का नारा दिया, कहा—

"यदि तुम मे भावना न हो, तो लौट जाओ। तो तुम लौट ही जाओ—यदि तुम मे डर है तो मैं मना करता हू। यदि दुख मे जलना भी पडे फिर भी मिथ्या चिन्ता नही चाहिए। यदि गरीबी का बोझ उठाना पडे तो भी मिथ्या कर्म नही। यदि दण्ड सहना पडे तो भी मिथ्या भाषण नही। जय जय जय सत्य की जय।'

जब अरविन्द को राजदण्ड दिया गया तो कविवर ने उस समय यह कहा कि उनके कष्ट मे देश को बल मिलेगा। उन्होने ऐसे मौके पर राजदण्ड की व्यर्थता पर लिखा—

"सजा ? सजा तो उसके लिए है— जो सजा के डर से निकल नही पाता। स्वनिर्मित मिथ्या के प्राचीर की और कपटी बाडे को, जिस नपुसक ने कभी धर्म की ओर ताक कर निर्भीक स्वतन्त्र रूप से अन्याय को अन्याय नही कहा, जिसने विधाता के दिए हुए नित्य अधिकार मनुष्यत्व को, निर्लज्ज भय से या लोभ से अस्वीकार किया। भरी सभा मे, जो दुर्गति पर ही अहकार करता है, देश की दुर्दशा ही जिसका व्यापार है, जिसका अन्न अशुभ है, मातृरक्त की तरह वही कायर सिर झुकाता है, उसके लिए तो — हमेशा सजा है और बाहर भी उसके लिए हमेशा जेलखाना है। बन्धन, पीडन, दुख और असम्मान मे तुम्हारी मूर्ति को देखकर मेरे कानो से टकराता है आत्मा का बन्धन हीन आनन्द गीत, महा तीर्थ यात्री का सगीत, चिर प्राण आशा का उल्लास, महान मृत्यु की गम्भीर निर्भीक वाणी।"

यदि हम इस प्रकार कवि के उद्धरण दे तो लेख बहुत दीर्घ हो जाएगा इसलिए हम केवल कवि की एक और कविता का उद्धारण देगे जिसमे उन्होने एक तरह से क्रान्तिकारी दर्शन-शास्त्र का निचोड सामने रख दिया है। उन्होने कभी अपने को किसी 'वाद' से सम्बद्ध नही किया, पर उनके विचार स्पष्ट है। वह कहते है —

"इन सब मूढ म्लान मूक मुखों में— भाषा देनी है, इन सब श्रान्त शुष्क भग्न हृदयों में— आशा ध्वनित करनी है पुकार कर कहना पड़ेगा— एक क्षण के लिए तुम लोग इकट्ठे सिर तो उठाओ तो देखोगे कि जिससे तुम डरते हो वह अन्याय तुमसे कहीं बुजदिल है तुम जगे कि वह बेतहाशा भागेगा। जभी तुम उसके सामने खड़े होगे तभी वह सड़क के कुत्ते की तरह संकोच और त्रास में काफूर हो जायगा। देवता उसके प्रति विमुख है कोई उसका सहायक नहीं है वह ज़बानी आस्फालन करता है वह मन ही मन अपनी हीनता जानता है।"

इसी आदर्श को वह और स्पष्ट करते हैं —

'हे कवि यदि गरीबों के लिए ... तो उठ आओ। उन्हीं को साथ में लो, उन्हीं का आत्मदान दो। बड़ा दुःख है बड़ी व्यथा है सामने कष्ट का संसार है। बड़ी ही गरीबी है, शून्यता है क्षुद्रता है बन्द अंधेरा है। चाहिए अन्न चाहिए प्राण चाहिए रोशनी, चाहिए मुक्त वायु, बल और स्वास्थ्य चाहिए आनन्द उज्ज्वल आयु और साहस से पसारित वक्ष।'

कवि रवीन्द्र जातीयता के सम्बन्ध में और छुआछूत आदि के सम्बन्ध में जो विचार रखते थे, वे गांधीजी से बहुत मिलते जुलते थे यद्यपि वे प्राचीन भारत के बहुत बड़े प्रशंसक थे, फिर भी उनका कहना था—

यहां आर्य अनार्य, द्राविड़, चीन
शक, हूण पठान, मुगल एक देह में हुए लीन,
पश्चिम ने आज खोला है द्वार
वहां से सब लाते हैं उपहार
देंगे और लेंगे मिलाएंगे और मिलेंगे
खाली हाथ लौट नहीं जाएंगे
इस भारत के महामानव के सागर तट से।

जात पात के सम्बन्ध में कवि ने एक प्रकार से अभिशाप सा देते हुए कहा था—

'हे मेरे अभागे देश, जिनका तुमने अपमान किया
अपमान में तुम्हें उन सबके समान होना पड़ेगा।
मनुष्य के अधिकार से तुमने जिन्हें वंचित किया
सामने खड़े रहकर भी गोद में स्थान नहीं दिया
अपमान में उन सबके समान होना पड़ेगा।
जिसे तुमने पीछे रखा, वह तुम्हें पीछे रहा घसीट—
तुम्हें उन सबको साथ लेकर ही आगे बढ़ना होगा।
विधाता के रुद्रताप से दुर्भिक्ष के द्वार पर बैठकर सबके साथ
अन्न पानी बांटकर खाना पड़ेगा,
अपमान में उन सबके समान होना पड़ेगा।"

ऊपर जो कुछ कहा गया, उसमे यह स्पष्ट हे कि रवीन्द्रनाथ राजनीति के सम्बन्ध मे एक दर्शन रखते थे और उनके विचार बहुत ही आगे बढे हुए थे। उन्होने राजनीति के कारण ही "सर" की उपाधि का त्याग किया और जैसा कि हम दिखा चुके है उन्होने बहुत से गीतो की रचना की जो देशभक्तो की जबानो पर चढ गए। जब महात्माजी ने असहयोग आन्दोलन की रूपरेखा सामने रखी तो उन्हे सम्पूर्ण रूप से पसन्द नही आई और वह उसमे सहमत नही हो सके।

ऐसा ज्ञात होता हे कि विशेष रूप से उन्हे चर्खे पर आपत्ति थी और उन्होने इस सम्बन्ध मे कई लेख लिख डाले, जिनमे से दो लेखो का हम विशेष रूप से इस प्रसग मे परिचय देगे। एक का नाम है 'समाधान' जो बगला सन् १३३० मे छपा था और दूसरे लेख का नाम ही है चर्खा जो बगला सन् १३३० के भाद्र मे छपा था।

समाधान लेख मे वह लिखते है—'यदि किसी ने समस्या को तरफ उगली उठाई और बताया कि यह समस्या है तो देश के योग्य अयोग्य सभी व्यक्ति उसी को पकड लेते है कि अच्छा, फिर तुम्हे समाधान बताओ। उनका कहना कुछ इस प्रकार का है कि हमने तो फिर भी, जो कुछ हो एक समाधान प्राप्त कर लिया और एक ढाचा खडा कर दिया, अब तुम दिखाओ कि तुम मे क्या सामर्थ्य है।"

'किसी औषधालय मे एक विलायती डाक्टर थे। एक बूढे ने आकर ज्यो ही करुण स्वर मे उन्हे कहा— बुखार है। बस फौरन ही उन्होने उसे एक बहुत ही कडवा ज्वरनाशक रस पिला दिया। वह आदमी हाफ गया, पर उसे एतराज करने का मौका नही मिला। उस सकट के समय यदि मै डाक्टर के काम मे बाधा पहुचाकर कहूँ कि महाशय, बुखार उसको नही है, उसकी लडकी को है तो क्या डाक्टर गुस्से मे आकर मुझे यह कह सकते है कि लो तुम्ही इलाज करो, मेरी तो फिर भी जो समझ मे आया वह दवा इसे पिला दी। तुम तो महज बेकार की समालोचना कर रहे हो। मेरा कथन यह है कि असली समस्या पिता का ज्वर नही हे बल्कि लडकी का ज्वर है। अतएव पिता को दवा पिलाने से इस समस्या का समाधान नही होता।"

"पर वर्तमान क्षेत्र मे सुविधा यह है कि मैने जिसे समस्या करके निर्णय किया हे, वह अपने समाधान के लिए अब भी दे रहा हूँ। अबुद्धि के कारण हम लोगो के मन निर्बल है। अबुद्धि के कारण हम एक दूसरे से बिछुडे हुए है, केवल बिछुडे हुए नही, परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध है। अबुद्धि के कारण वास्तविक जगत को वास्तविकता के रूप मे ग्रहण नही कर पाते। इसलिए जीवन यात्रा मे हम हर समय हार जाते है। अबुद्धि के प्रभाव से स्वबुद्धि के प्रति आस्था खोकर आन्तरिक स्वाधीनता के उत्समुख मे हमने देश व्यापी बेबसी का पत्थर दबा दिया है। जब यही हमारी समस्या हे, तब स्वभावत सच्ची शिक्षा के अतिरिक्त और कुछ नही हो सकता।"

'आजकल हम लोगो ने एक गोती पकडी है कि जब घर मे आग लगी है तो शिक्षा दीक्षा छोडकर पहले आग बुझाने के लिए खडा होना चाहिए। इसलिए सबसे पहले चर्खा चलाना चाहिए। मेरी तरह के व्यक्ति के लिए भी यह बात दुर्बोध्य नही हे कि आग लगने पर आग बुझानी चाहिए। इसमे दुर्बोध्य यह है कि आग कौनसी हे, यह पता लगाना और इसके बाद यह पता लगाना हे कि पानी कौनसा हे। यदि हम राख

को ही आग समझ लें तो ३० करोड टूटे हुए अनाज फटकने के सूप लगा देने पर भी उस आग को हम बुझा नही सकते। हम अपने चर्खे का सूत और अपने करघे का कपडा इस्तेमाल नही कर पा रहे है यह आग नही है बल्कि यह राख का ही एक अंश है यानी अग्नि का ही चरम नतीजा है। यदि हम अपने करघे चलाएं भी तो इससे उस आग में फर्क नही आएगा और वह जलती रहेगी। विदेशी हमारे राजा है। यह भी आग नही है, यह भी राख है। हम विदेशियों को निकाल बाहर करे तो भी आग जलती रहेगी, यहा तक कि अपने देशी राजा होने पर भी दु ख वहन की निवृत्ति नही होगी। यह भी बात सही नहीं है कि एकाएक आग लगी है इसलिए एकाएक आग बुझा दें। एक हजार वर्ष से भी अधिक समय मे जो आग देश की हड्डी और मांस जला रही है, आज अपने हाथ से सूत कातकर कपडा बुनने मे ही वह आग एक दो दिन मे कब्जे मे आ जाएगी, इस बात को मै नही मान सकता। आज से २०० वर्ष पहले चर्खा चलता था और करघा भी चलता था, साथ ही वह आग भभक कर जलती भी थी। इस आग का ईधन क्या है, यदि हम यह देखें तो हम देखेंगे कि यह है हमारे धर्म में और कर्म में अबुद्धि की अन्धता।

'जहा बर्बर अवस्था मे मनुष्य अलग अलग रहते है वहा जगल मे फल मूल खाने से काम चल जाता है, पर जहा आबादी बढने से सभ्यता का विचित्र उद्यम प्रकाश मे आ जाता है, वहा व्यापक रूप मे अच्छी तरह गति करना आवश्यक हो जाता है। सब बडी सभ्यताओ के अन्न रूप का आश्रय कृषि क्षेत्र है, पर सभ्यता की एक बुद्धि और भी है। वह अन्न से बडी है, किसी हालत मे उससे छोटी नही। व्यापक रूप मे सब साधारण के मन के क्षेत्र को कर्षित करने पर ही विचित्र और विस्तीर्ण रूप मे बुद्धि को पल्लवित कर सकने पर ही सभ्यता मे मनस्विता आती है। पर जहा अधिकाश व्यक्ति मूढता मे फसकर अन्ध सस्कार की विभिन्न विभीषिकाओ मे हर समय त्रस्त होकर गुरु, पुरोहित, ज्योतिषी के दरवाजे पर ठेलमठेला कर रहे है, वहा ऐसी कोई सार्वजनिक 'स्वतत्रतामूलक राष्ट्रीय या सामाजिक व्यवस्था नही हो सकती' जिसकी सहायता से अधिकाश मनुष्य अपना अधिकाश उचित प्राप्य पा लें। आजकल हम राजनीति को ही श्रेष्ठ बताते है, जिसके अदर से सबकी स्वतन्त्र बुद्धि और स्वतन्त्र शक्ति अपने को प्रकाशित करने का मार्ग खोजती है। किसी देश मे भी आज तक मैने आदर्श व्यवस्था नही देखी। पर आधुनिक यूरोप और अमरीका मे हम देखते है कि इस आदर्श की ओर जाने का एक प्रयास है। पाश्चात्य देशो मे कब से यह प्रयास चालू हुआ है? जब से वहा ज्ञान और शक्ति साधना की वैज्ञानिक दृष्टि जन साधारण मे व्यापक हुई और जब से सासारिक क्षेत्र मे मनुष्य ने अपनी बुद्धि को स्वीकार करने का साहस प्राप्त किया, तभी से जन साधारण ने राजा, गुरु जडीभूत प्रथा, अन्ध सस्कार तथा शास्त्र के विधानो के भयकर दबाव से मुक्ति पाकर अपनी बुद्धि मे आग बढने की चेष्टा की है।'

उक्त लेख मे रवीन्द्रनाथ ने जो बाते कही है, उनमे वे बहुत ऊचाई पर चले गए है और जिस तरफ उनका इगित है, उससे किसी को मतभेद नही हो सकता। गाधीजी स्वय चर्खे के महत्व को समझते थे, पर वह यह शायद नही समझते थे कि उससे ही सब दु ख दूर हो जाएगे। पर उनके चेलो तक पहुंचकर वह यही रूप धारण करता था। उसी असहिष्णुता के विरुद्ध रवीन्द्रनाथ के ये उदगार है। उन्होने लोगो की मज्जा मे

बढे हुए अवसाद और कुसंस्कार के विरुद्ध चोट की है। हम इस लेख से और भी थोडा-सा अंश उद्धृत करेंगे। वह लिखते हैं—"जिन देशों में लोगों ने चेचक के कारण का बुद्धि के द्वारा जाना है और उसे बुद्धि के द्वारा निवारण किया है, उस देश में चेचक ने महामारी का रूप त्याग दिया है। और जिस देश के लोगों ने शीतला माई को चेचक का कारण मानकर आँख मूँदकर पड़े रहना पुण्यकार्य बना लिया है उस देश में शीतला माई तो रह ही जाती है, साथ ही चेचक भी जान का नाम नहीं लेती। वहाँ शीतला माई मानसिक परतन्त्रता का एक प्रतीक है, बुद्धि के अपने राज्य से च्युत होने का एक कदर्य लक्षण मात्र है।

रवीन्द्रनाथ ने जिस शिक्षा की बात कही है, वह साधारण शिक्षा नहीं है। यह उन्होंने लेख के अगले हिस्से में स्पष्ट किया है—"मेरी बातों का एक बहुत बड़ा उत्तर है। वह यह है कि देश में बहुत से लोग शिक्षा सीख रहे हैं। वे परीक्षा पास करते समय सांसारिक नियमों की नियतता और अव्ययता के सम्बन्ध में व्याकरण शुद्ध अंग्रेजी भाषा में गवाही देकर डिग्री ले आते हैं, पर हमारे देश में इन डिग्रीधारियों के व्यवहार में क्या यह सूचित नहीं होता कि वे न तो अपनी बुद्धि लगाते हैं और न सांसारिक अभिज्ञता से ही काम लेते हैं?"

आगे वह लिखते हैं—"यह मानना पडेगा कि उनमें से बहुत से यह प्रमाण देते हैं कि उनकी बुद्धि कुछ विशेष मुक्त नहीं हुई है, वे भी उच्छृंखलता के साथ जो सामने आ गया, उसे मानने के लिए प्रस्तुत हैं, अन्धभक्ति के कारण अद्भुत मार्ग पर अकस्मात् चलने के लिए उन्मुख बैठे हैं, अति-भौतिक व्यापार की अति-दैविक व्याख्या करने में उन्हें जरा भी संकोच नहीं है। वे भी बुद्धि और विचार के दायित्व को दूसरे के हाथ में सौंपने में लज्जा का अनुभव नहीं करते बल्कि उन्हें आराम ही मिलता है।"

'इसका एक प्रधान कारण यह है कि मूढता का विपुल आकर्षण बडा ही प्रबल है। अपनी सतर्क-बुद्धि को हर समय जाग्रत रखने में सचेष्ट शक्ति की आवश्यकता होती है। जो समाज देव, गुरु और अति-प्राकृतिक प्रभाव पर आस्था नहीं रखता, जिस समाज ने बुद्धि का विश्वास करना नहीं सीखा है, उस समाज में परस्पर के उत्साह और सहायता से मनुष्य के मन की शक्ति आलस्यहीन बनी रहती है। हमारे देश में शिक्षा-प्रणाली की गलती के कारण एक तो शिक्षा की गहराई कम होती है, दूसरे उस शिक्षा की व्याप्ति बहुत ही कम। इसलिए सार्वजनिक सम्मिलित मन की शक्ति हमारे मन की अग्रगति की तरह आत्म शक्ति की दिशा में उन्मुख नहीं हो पाती। वह आसानी से आलसी हो जाता है और प्रचलित विश्वास और परम्परागत प्रथा के हाथ में अपने को सौंप कर छुट्टी पा लेता है।"

अन्त में वह इस लेख में बताते हैं कि वह क्या चाहते हैं। वह लिखते हैं—"देश को मुक्ति देने के लिए देश को शिक्षा देनी पडेगी। यह बात अकस्मात् इतनी फालतू मालूम होती है कि हमें इसे समस्या का समाधान करके मान लेने की प्रवृत्ति नहीं होती। देश की मुक्ति का कार्य बहुत बडा है। पर उसका उपाय बहुत छोटा होगा, इस प्रकार की आशा में भी एक गलती है। इसी आशा में हम यह विश्वास करते हैं कि किसी चालाकी से हम समस्या हल कर ले जाएंगे, न कि वास्तविकता से और न अपनी शक्ति से।"

दूसरा लेख जिसे हम यहा सक्षिप्त रूप मे उद्धृत करने जा रहे ह, उसका शीषक ही 'चखा' है। उसम वह लिखते ह—"मैने चखा चलाने मे उत्साह नही दिखाया। मुझ पर यह दोष लगाकर आचाय प्रफुल्लचन्द्र राय न मुझे छापेखाने की स्याही मे लाछित किया है, पर दण्ड देते समय भी वह मुझ पर पूर्ण रूप मे निमम नही हो पाए। इसलिए उन्होने आचाय ब्रजेन्द्रनाथ शील को भी मेरे साथ एक कलक के रसायन मे बोर दिया है।

"इससे मेरी व्याधि कुछ दूर हुई। इसके अलावा एक बहुत ही पुरानी बात का नया प्रमाण यह मिल गया कि किसी के साथ किसी का मत मिल जाता है और किसी के साथ नही मिलता यानी सब आदमी मिलकर मधुमक्खी की तरह एक ही नमूना छत्ता बनायेंगे, विधाता की ऐसी इच्छा नही है। पर समाज के नेता कभी कभी ऐसी ही इच्छा रखते ह। वे काम का आसान बनाने के लिए मनुष्य को मिट्टी का लोदा बना देने मे कुण्ठित नही होते। वह कटाई मशीन के अन्दर मनुष्य और वनस्पति का डालकर बराबर नाप की हजारो पतली सलाइया निकाल लेते ह। जगली पदाथ को इस प्रकार उपयोगी बनाने पर वनदेवता चुप रहते ह, पर मनुष्य की बुद्धि को काम के बहाने से मधुमक्खी की बुद्धि बना देने पर नारायण के दरबार मे हिसाब के दिन जुमाने के कारण दिवालिया होने का डर बना रहता है। बचपन मे जब जगन्नाथ के घाट मे जल यात्रा करने जाता था तो बहुत से मल्लाह हाथ पकडकर घसीटा करते थे। जब हम इस पर किसी एक के सम्बन्ध मे अपनी अभिरुचि म पक्षपात दिखला देते थे तो इसके लिये किसी से यह भय नही रहता था कि वह मुझे दण्ड देगा क्योकि नाव भी बहुत थी, यात्री भी बहुत थे और गम्य स्थल भी बहुत थे। पर यदि देश पर बाबा तारकेश्वर का यह स्वप्न हावी रहता कि तरने के लिय सिफ एक ही नाव पवित्र है, तब तो प्रबल पण्डो की जबर्दस्ती स कौन बच सकता था। इधर मानव चरित्र घाट मे खडा होकर रोता रहता कि अरे पहलवान, किनारा एक भले ही हो, पर घाट तो बहुत ह, कोई दक्षिण तो कोई उत्तर मे।

"शास्त्रो का कहना है कि ईश्वर की शक्ति विपुल है। इसीलिए सृष्टि के व्यापार मे पचभूत मिलकर काम करते ह। मृत्यु मे विचित्र भूत दोड लगाता है। मनुष्य को ईश्वर ने अपनी विपुल शक्ति दी है, इसीलिये मानव सभ्यता का इतना ऐश्वय है। विधाता चाहते ह कि मानव समाज मे उस बहु को गूथकर एकता की सृष्टि होगी, पर विशेष फल के प्रति लुब्ध शासकगण यह चाहते ह कि उस बहु का दलन करके साम्य का पिण्ड पाडा जायेगा। इसीलिये इस ससार मे इतने असख्य मजदूर ह, इतने वदाधारी सिपाही ह, एक दल की रस्सी मे बधे हुए कल पुर्जे के गुड्डे और गुड्डिया ह। जहा पर मनुष्य की मनुष्यता बिल्कुल सरदा नही गई है, वहा इमाम दस्ने मे कूटे हुए इस समीकरण के विरुद्ध विद्रोह चालू है।"

इसके बाद रवीन्द्रनाथ अपने देश के इतिहास पर जाते हुए इस बात को स्पष्ट करते ह कि हमारे देश मे बहुत दिनो से समीकरण की चक्की चल रही है। इसीलिए भारतवष मे बहुत समय से केवल पुरातन की पुनरावृत्ति हो रही है और उस पुनरावृत्ति की चक्की को चलाकर ही भारत मे अस्तित्व के प्रति एक वितृष्णा सी पैदा हो गई है। "इसीलिए उसने जन्म जन्मान्तर की पुनरावर्तन कल्पना से डरकर सब कम और कम के मूल को समाप्त कर देने के लिए चित्तवृत्ति निरोध करने की बात सोची है। वह इस पुनरावृत्ति की विभीषिका को अपने नित्य अभ्यास से काल क्रम चक्र के चक्र मे देखता है। यही नही कि हानि इतनी ही हुई, बल्कि इस तरह जो

लाग यन्त्र बन गए, वे वीयहीन हो गए और किसी भी आपत्ति का सामना करन की शक्ति उनमे नही रही। युगा से चतुर लोग उन्हे ठग रहे हं, गुरु उन्हे भरमा रह ह और जबदस्त उन्ह कनेठी दे रहे ह। फिर भी वे किसी तरह यह कल्पना नही कर पाते कि दूसरे भी कुछ हो सकते ह क्याकि वे समझन हं कि विधाता न उन्हे मार रखा है, सृष्टि के आदिकाल मे ही चतुमुख ने अपन पहिय मे चाभी भर दी है और सृष्टि के अन्त तक वह चाभी खत्म नही होगी। उन्हे इकरस काम के जीवन मृत्यु रूपी डोगी पर कालस्रोत मे तरा दिया गया है।'

इन सब बातो को कहने के बाद वह अन्त मे कहते ह—"इसलिए यह स्वीकार करने मे मुझे लज्जा नही है (यद्यपि इसमे काफी भय है) कि अब तक चर्खे के आन्दोलन ने मेरे अन्तर को किसी प्रकार आन्दोलित नही किया। बहुत लोग इसे शायद मेरी स्पर्धा समझते हं और मुझ पर क्रोध करते ह, विशेष रूप मे मुझ पर वे नाराज होगे क्योकि, जब सिर पर घुमाकर जो जाल फैका जाता है, उसमे बहुत सी मछलिया तो फस जाए, तब यह इच्छा स्वत होती है कि जो मछली नही फसी उसे गाली दी जाए क्योकि उसे बिना गाली दिए तबीयत हल्की नही होती। फिर भी मै आशा करता हूँ कि मेरे साथ जिनकी प्रकृति मिलती है, ऐसे भी कुछ लोग ह।'

इस प्रकार अपने मतभेद को बताने के बाद वह फिर एक बार इतिहास की ओर जाते ह और कहते ह—'बुद्ध से लेकर भारत के मध्ययुग के साधु या साधक जो भी ससार मे किसी महावाना के वाहक बनकर आए हं, वे सभी अमनस्क यान्त्रिक बाह्य आचार के विरोधी ह। उन्होने सब बाधाओ को पार करके मनुष्य की अन्तरात्मा से सम्बन्ध स्थापित किया था। उन्होने सूम की तरह और हिसाबी बुद्धिमान् व्यक्ति की तरह ऐसा नही कहा कि पहले बाह्य और उसके बाद आन्तरिक, पहले अन्न वस्त्र इसके बाद आत्म शक्ति की पूर्णता आएगी। उन्होने मनुष्य से बडी माग करके उसे बडा सम्मान दिया था और उसी महान सम्मान के कारण ही उनका अन्तर्निहित प्रच्छन्न सम्पक साहित्य मे, गीतो मे, विभिन्न कलाओ मे प्रतिफलित होकर समाज को समृद्ध करा सका। उन्होने मनुष्य को रोशनी दी थी, जागृति दी थी यानी उन्होने उसे आत्मा की उपलब्धि का साधन दिया था। इसी से सब देना पूर्ण हो जाता है।"

इसके बाद वह मुगल पठान युग म आते हं और कहते ह—"एक दिन ज्योही मुगल पठानो का धक्का लगा, त्योही हिन्दू राज्या की छोटी–छोटी अलग–अलग गिटिटयो की कच्ची इमारते चारा तरफ से भडभडाकर गिर पडी। उस जमाने मे सूत का अभाव नही था, पर उस सूत से उस बिखरन की प्रक्रिया को रोका नही जा सका। उस समय राजाओ के साथ आर्थिक विरोध भी नही था क्योकि उसका सिंहासन देश के अन्दर ही था। जहा पेड थे, पके हुए फल उसी पेड के नीचे मिलते थे। आज हमारे देश मे राजा एक–आध नही, एक दम राजाओ की बाढ से भारत की मिट्टी घुलकर उसकी फसल को समुद्र पार ले जा रही है। इसमे जमीन का फल भी मारा जाता है और उसकी उपजाऊपन भी मारा जाता है। मुगल पठानो क आघात को हम रोक नही सके इसका कारण यह नही है कि हम म यथेष्ट सूत नही था। कारण यह था कि हम में मेल नही था, हम मे प्राण का अभाव था।"

इसके बाद वह फिर चर्खे पर आकर कहते ह—"बच्चो की लोरियो मे बच्चो को यह लोभ दिखलाया जाता था कि हाथ घुमाने पर लड्डू मिलेगे, पर केवल घुमा–घुमा कर हाथ चलाने से मन का जडत्व दूर होगा

ओर स्वराज्य मिलेगा, एसी बात वयस्क लोगो को शोभा नही देती। यदि बाहर की गरीबी को दूर करना है तो उसके लिए आन्तरिक शक्ति को बुद्धि के अन्दर बुद्धि मे, ज्ञान मे, सहयोगिता पूर्वक हृदय मे जमाना पडेगा।"

इस लेख मे आगे चलकर हम यह देखते है कि रवीन्द्रनाथ चर्खे से इतने नाराज शायद नही थे जितने कि इस बात से नाराज थे कि चर्खे को सब रोगो की दवा के रूप मे पेश करने की प्रवृत्ति पाई गई। उन्होने कहा— हम मे कुछ लोग यह कह रहे है कि हम ऐसा तो नही करते कि चर्खे के अलावा और कोई काम न करे। हो सकता है, पर और कौनसा काम किया जाए यह भी तो कोई नही बता रहा। क्या यह नही कहना ही एक प्रबल कारण नही है? स्वराज्य के मायनो मे एक ही काम का हुक्म, एक ही काम का आदेश बहुत ही स्पष्ट है जो चारो तरफ छपी।

इस लेख मे रवीन्द्रनाथ ने एक धनात्मक विचार सामने रखा था, वह था सामूहिक कार्य करने का जिसे उन्होने पाश्चात्य ही से सीखा था, पर हम यहा उसके विस्तार में नही जाएगे। कई पृष्ठो के सामूहिक कार्य पर अपने विचार देने के बाद वह कहते है— 'किसी—किसी का कहना है कि तुम जिस सामूहिक जीवन की बात कहते हो सब मिलकर चर्खा कातना भी तो वही है। मै इसे नही मानता। सारा हिन्दू समाज मिलकर कुए के पानी की शुद्धता की रक्षा करे, फिर भी उससे वह जीवाणुतत्व मूलक स्वास्थ्य विज्ञान नही हो जाएगा।"

अन्त मे वह महात्माजी का नाम लेकर स्पष्ट रूप से कहते है—"मेरे लिए यह बहुत ही अरुचिकर है कि महात्माजी के साथ किसी विषय पर मेरा मत या कार्य प्रणाली भिन्न हो क्योकि जिससे हम प्रेम करते है, भक्ति करते है, उनके साथ कर्म क्षेत्र मे सहयोगिता की तरह आनन्द और क्या हो सकता है। उनका महान चरित्र हमारे निकट परम विस्मय की वस्तु है। भारत के भाग्य विधाता ने उनके हाथो से एक देदीप्यमान दुर्जय दिव्य शक्ति हमारे पास भेजी है। यह शक्ति भारतीयो को अभिभूत न करे, बलशाली करे, उसे अपने मन मे जिन्दा करने, सकल्प करने, योग करने की शिक्षा दे, यही हमारी कामना है। जो कारण भीतर रहने के कारण राममोहनराय की तरह इतने बडे मनुष्य को भी महात्मा कहने मे कुण्ठित नही हुआ, यद्यपि मै उसी राममोहन को आधुनिक युग की सबसे महान् विभूति मानता हू उसी आभ्यान्तरिक मन प्रकृतिगत कारण से महात्माजी की कर्मधारा ने ऐसा रूप धारण किया कि मै उसे स्वधर्म करके ग्रहण नही कर सकता इस पर मै खिन्न हूँ। कई बार व्यक्तिगत प्रेम के कारण मेरे मन मे यह प्रबल इच्छा आई कि मै महात्माजी से चर्खे की दीक्षा लू, पर मेरी बुद्धि मे चर्खे की जितनी मर्यादा है कही उससे अधिक न मान जाऊ, इसलिए मै दुविधा मे पडकर पीछे हट गया। मै जानता हूँ कि महात्माजी मुझे ठीक समझते है और पहले भी मेरे प्रति उन्होने जो धैर्य दिखलाया आज वह भी रखेगे। आचार्य राय भी मत की स्वतन्त्रता की श्रद्धा करते है, इसलिए भले ही वह किसी सभा मे भाषण देते हुए मेरी ताडना कर जाए पर अन्तर से वे मेरे प्रति निष्करुण नही होगे।

इस प्रकार हम देखते है कि महात्माजी के प्रति पूर्ण श्रद्धा होते हुए भी रवीन्द्रनाथ चर्खे को राष्ट्रीय सग्राम के एक हथियार के रूप मे ग्रहण नही कर सके। हम इस पर यहा कोई अन्तिम निर्णय नही देने जा रहे है। हमने तो केवल इतिहास के एक अध्याय को पाठको के सामने रख दिया।

चार महान विभूतियों की भेंट

श्रीमती वेल्थी एच फिशर (डा०)

- गुरुदेव रवीन्द्र
- महात्मा गांधी
- दीनबन्धु एण्ड्रूज
- बिशप फिशर

१९२५ क बसन्त की बात है—शान्तिनिकेतन मे कवि क कुटी मे घर 'श्यामली' म ४ व्यक्ति मिले। ये थे, महात्मा गांधी सी एफ एण्ड्रूज, स्वय कवि व मेरे पति स्वगीय बिशप फिशर। श्यामली उद्यान के अन्त म आम्र कुज के मध्य बना एक सादा सा भारतीय आवास था। कवि के लिये बने बडे मकान म उनके पुत्र अपनी कलाकार पत्नी हेमलता सहित रहते थे। श्यामली म ही कवि से मिलने व उन्हे अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिये सभी राष्ट्रो व जातियो के व्यक्ति ठहरते थे। इस मकान के प्रवेश द्वार पर ही भारतीय कृषक नर-नारियो की काले पत्थर की मूर्तियां खडी थी।

चारो ईश्वरीय देवदूत अचानक ही शनिवार को एक साथ एकत्रित हो गये थे। उस दिन उन्होने समुद्रपारीय भारतीयो के सारे मामलो पर विचार किया और यह प्रश्न उठाया कि—ब्रिटिश साम्राज्य म नागरिकता का क्या तात्पर्य है जो ईसाई युग के प्रारम्भ मे सेंट पाल के लिये रोमन नागरिकता मे था। आज जब उस वार्तालाप के बारे मे सोचती हू तो मालूम होता है कि सम्पूर्ण विषय पूर्णत अस्थायी था और अब कदाचित ही इस विषय पर विचार होता हो।

अगले दिन रविवार को वार्तालाप अन्य विषयो की ओर केन्द्रित हो गया। गांधी व मेरे पति ने अहिंसा पर वार्ता की व उस बारे मे सोचा कि भारत मे इसे कैसे लोकप्रिय किया जा सकता है और भारत के लिये प्रभावशाली हथियार बनाया जा सकता है। दोनो इस बार म एकमत थे कि भारत मे अहिंसा की शक्ति बुद्ध दर्शन के कारण है जो भारतीय विचार धारा मे गहनता के साथ गुथा हुआ है। यद्यपि बुद्ध धर्म नाम से प्रसिद्ध धर्म, देश मे अधिकाशत लुप्त हो गया है। इतवार की सुबह मेरे पति ने मुझे बताया कि हम सब अपने विचारो को ईश्वर की चर्चा तक ले गये। हम सबने अपने विचारो का परिवेश और भी ऊपर उठाया। गांधीजी ने ईश्वर को अनश्वर के रूप मे लिया।



श्री नेहरू शान्तिनिकेतन मे हिन्दी भवन के उद्घाटन पर बोलते हुए। गुरुदेव व दीनबन्धु एण्ड्रूज भी बैठे है।

गुरुदेव ने ईश्वर को आकारहीन माना जो असीम तक हमे ले जाता है। सी एफ एन्ड्रूज ने उसे रहस्यमय अतित्व की सज्ञा दी और मने आधुनिक विश्व मे जीवित ईशु बताया।

गाधीजी न अछूतो को हरिजन' नाम दिया था। भारतीय नेताओ के मस्तिष्क मे यह भय अत्यधिक रूप मे मोजूद था। सब मे बडा प्रश्न यह था कि अछूत भी यह नाम पसद करते ह ? रविबाबू इस नामकरण मे सहमत नही थे। उनका विचार था कि इसमे एक अलग जाति का बोध होता है।

वार्तालाप अब धर्म पर उतर आया। फिर मूर्त्ति पूजा की चर्चा छिडी। इस बारे में रवीन्द्र व गाधी एक दम भिन्न थे। कवि न कहा कि, मूर्ति व मूर्ति पूजा, माला के दाने और रग हुए पत्थर इस कमरे के लिए आवश्यक नही है। यह हमारे लिए नही ह नो हमारी किसी भी जनता के लिये भी उनकी आवश्यकता नही है चाहे वह कितनी ही निम्न हो। इस समय कवि इतने उत्तेजित हो उठे कि बोले— "मैं हर प्रकार की मूर्तियो पर भाड़ लगा देना चाहता हूँ चाहे पीतल की हो या लकडी की, पत्थर की या मेलम की, म हर नगर गाम, हर मदिर व मोहल्ले मे इन मूर्तियो की सफाई कर देना चाहता हूँ। म चाहता हूँ कि सारे देश से इनकी सफाई कर इन्हे समुद्र मे फैक दिया जाय।

कुछ देर के लिए शान्ति छा गई। तब गाधीजी न उस निस्तब्धता को भग किया वे बोले— पेड के नीचे रखे उस लाल पत्थर के टुकडे को आप बाहर निकाल फेंकना चाहते ह जो ईश्वर का एक मात्र प्रतीक है व प्रतिदिन अधभूखे रहने वाले हमारे भाईयो की सेवा का साधन है' फिर शान्ति छा गई। गाधी फिर ममबेधी प्रेम के साथ बोले—"तुम एक लगडे के हाथ से उसकी बसाखी तब तक नही छीन सकते, जब तक कि उसे चलना न सिखादो।" गाधीजी ने हरएक के चेहरे की ओर देखा और बोले—यह काम बिशप का है, चार्ली का है, गुरुदेव और मेरा है।

सप्ताह के अत में मेरे पति जब घर लौटे तो मैने पूछा—आपकी गाधी और रवीद्र दोनो के बारे मे क्या राय है ?

वे कुछ मिनट सोचते रहे, फिर बोले—रवीद्र एवरेस्ट की तरह ऊचे ह व पहुँच से परे ह, वे विशुद्ध सत्य तक पहुँचे हुए ह, उन्हे केवल सर्वोच्चता ही सन्तुष्ट कर सकती । दूसरी ओर गाधी पवत के उस वेग पूर्ण झरने की तरह ह, जो हर कठोर पत्थर को तोडता फाडता दौडता है और उन्हे चर्गीत हुआ नीचे उतरने को उद्यत रहता ह व वहा तक पहुच जाना चाहता है जहा कि जनता रहती है और वह जनता को नये उत्साह मे आप्लावित कर देना चाहता है।

आज रवीद्र व गाधी दोनो अपूर्ण मे एकाकार हो गए ह। हम ऐसे भव्य कवि का समारोह मना रहे ह जब कि मानवता पूर्ण विनाश के भय से आक्रान्त है। कवि की यह कविता हमारी स्मृति को ताजा कर रही है—

'बर्फ जसी श्वेत शाति क बीच मनुष्य अपने दृढ निश्चय के साथ पहाडी की चोटी पर किसी प्रकाश सकेत की प्रतीक्षा मे खडा है और जब बादल घिरते ह और उल्लू चिल्लाते हुए उडते ह तो वह सहसा चिल्ला उठता है—भाइयो ! हताश मत हो, मनुष्य बहुत महान् है।"

बहुत वर्षो पूर्व इस कविता की पाडुलिपि कवि ने अपनी पश्चिम की यात्रा क दौरान हमे भेंट की थी जो आज हमारे परिवार के लिये एक अमूल्य रत्न के रूप मे सुरक्षित ह।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर व आधुनिक बंगाल

शिवनारायण रे

रवीन्द्रनाथ ठाकुर आधुनिक भारत के महानतम प्रवक्ता माने जाते हैं। १९ वीं शताब्दी में पश्चिम के प्रभाव में सुप्त इस महाद्वीप में जागृति आई, उसकी सर्वश्रेष्ठ एकल अभिव्यक्ति रवीन्द्र के जीवन व कृतित्व में प्राप्त होती है। अपने गीतों व कविताओं, नाटकों, लघु कथाओं व उपन्यासों में रवीन्द्र ने अपने समकालीन भारतीयों में पृथक कलाकार के रूप को प्रस्तुत किया। परन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उनकी कला में मानवीय भावना का स्पर्श है, जो आधुनिक सभ्यता को मध्यकाल से पृथक करती है। वे किसी भी प्रकार के सोंदयवाद व तमाच्छन्नता के विरुद्ध थे। आयु के साथ साथ उनके मानववाद में परिपक्वता आती गई, जिसने समृद्धता व स्पष्टता को जन्म दिया। इक्कीस वर्ष की आयु में बंगाली साहित्य—मंच पर वे दो महत्वपूर्ण गीतों के साथ आये थे—जिसमें एक स्वाधीनता विषयक था और दूसरे में अस्तित्व के गौरव व प्रसन्नता को निमत्रण था। जब कि मृत्यु शय्या पर लिखी उनकी अंतिम दो कविताओं में भय व कष्ट पर मानवीय भावना की विजय की घोषणा थी। वस्तुतः भारतीय पुनर्जागरण की भावना को जानने का सबसे श्रेष्ठ माध्यम, रवीन्द्र का कृतित्व ही है।

लेकिन आश्चर्य की बात है कि ऐसा महत्वपूर्ण प्रवक्ता अपनी निजी जनता के लिए अजनबी था। उसके दार्शनिक लेखन कदाचित ही पढ़े जाते थे, उसके उपन्यास कठिनता से बिकते थे। उसके नाटकों को सार्वजनिक रंगमंच पर अल्प सफलता मिली और कुछ प्रारम्भिक कविताओं को छोड़कर अन्य पूर्ण लोकप्रिय नहीं रही। मुझे तो संदेह है कि औसत बंगाली का रविबाबू से प्राथमिक परिचय उनके गीतों तक ही सीमित है। इन गीतों में वे परम्पराओं व लोक कथाओं के अधिक निकट थे। किन्तु, उनकी प्रतिभापूर्ण रचनायें उनके जीवन काल में ही उपाख्यान बन कर रह गई थीं। यह सही है कि वे बंगाली भाषा में क्रांति लाए, पर उनके विचार व आदर्शों ने आधुनिक बंगाल की मनोवैज्ञानिक मिट्टी में अधिक गहरी जड़ें नहीं जमाई थीं। जैसे जैसे उनकी मानवीयता में गहराई आई, अलगाव और अधिक बढ़ता गया। यहां तक कि उनके जीवन के अंतिम वर्षों में वे न केवल सामान्य समाज से भावनात्मक रूप से पृथक पड़ गये थे बल्कि उनके समसामयिक युवा लेखकों व उत्तराधिकारियों ने भी उनके नेतृत्व के विरुद्ध खुला विद्रोह शुरू कर दिया था। उनकी मृत्यु के बाद की दो दशाब्दियों में यह खाई और अधिक गहरी हो गई है।

इस आत्मविरोध के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। यह जानकारी चाहे साहित्यिक—आलोचना से समुचित रूप से सम्बन्धित न हो, पर इससे हम साथ ही टेगोर को भी समझ सकेंगे जो कि साहित्यिक कलाकार से कुछ और अधिक थे। हर स्थिति में, मैं इससे आधुनिक बंगाली मस्तिष्क के विकास पर कुछ प्रकाश डालने की

आशा करता हूँ। इससे हम सम्भवत यह अनुभव करने म मदद मिलेगी कि एक मौलिक प्रतिभा अपने युग के महान प्रवक्ता से कही बढ़कर है। वह उस युग की सजीव अन्तश्चेतना है। इस बात से हम जान सकते है कि टैगोर की अपनी जनता से अलगाव का कारण जहा जनता द्वारा उसके मूल्यो व आत्मज्ञान से लाभान्वित होने म असफल होना था, वहा टैगोर द्वारा अपने समकालीन साहित्यकारो व उत्तराधिकारियो को बहुत हद तक अपने साथ रखने मे असमर्थ रहना था।

बगाल के इतिहास मे आधुनिक युग का प्रारम्भ टैगोर के जन्म से लगभग ६० वर्ष पूर्व प्रारम्भ होता है। प्रारम्भ मे चार महत्वपूर्ण केन्द्र बिन्दु हम पाते है। १७८४ मे एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना। १८०० म सीरामपोर व फोर्ट विलियम कालिज और १८१७ मे हिन्दू कालिज की स्थापना। 'एशियाटिक सोसाइटी' का मुख्य कार्य प्राच्य इतिहास व संस्कृति मे विद्वान् योरोपीय प्रशासको द्वारा अनुसधान कार्यो को प्रोत्साहन देना था, पर इनमे वे भारतीय विद्वानो के सम्पर्क मे आए जो कि धीरे धीरे इनसे प्रभावित हुए। यह शताब्दियो से भारतीय बुद्धिजीवी परम्परा मे जिस वैज्ञानिक खोज व आलोचना का अभाव था, वह उन्हे प्राप्त हुई। बैप्टिस्ट बाइबिल के बगाली अनुवाद से बगालियो को अपने धर्म मे दीक्षित करना चाहते थे। वे धर्म परिवर्तन तो कुछ करा पाये, पर उनका महत्वपूर्ण योगदान यह रहा कि शिक्षित बगाली अपनी भाषा की बौद्धिक क्षमता से परिचित हुए इसके साथ ही छापे के शब्दो का प्रचलन हुआ। फोर्ट विलियम कालिज युवा ब्रिटिश कर्मचारियो के भारतीय प्रशासन मे प्रशिक्षण की दृष्टि से स्थापित किया गया था। यहा उन्हे स्थानीय जनता को जानना और उसकी भाषा से परिचित होना था। १८०१ म कालिज ने तय किया कि विद्वान् भारतीयो के लिए भी भारतीय भाषाओ मे साहित्यिक कृतित्व के प्रोत्साहन के लिए वह कार्य करेगा। ब्रिटिश कर्मचारियो को इससे क्या लाभ हुआ यह तो सदिग्ध है, पर कालिज ने बगाली जनता की ऐतिहासिक सेवा की। उनकी भाषा का विधिपूर्वक अध्ययन हुआ व वैज्ञानिक रूप से विश्लेषण हुआ। इसकी व्याकरण व शब्दावली सामने आई। प्रथम बार विभिन्न विषयो पर पुस्तके लिखी गई व छपकर जनता के सामने आई। इस तरह इन सस्थाओ की गतिविधियो ने आधुनिक पश्चिमी सभ्यता की सास्कृतिक उपलब्धियो से परिचित कराया व बगाली जनता को अपनी भाषा के विकास के लिए प्रेरित किया।

इस प्रकार एक क्रान्ति हुई। आधुनिक ज्ञान के लिए बढ़ी हुई भूख हिन्दू कालिज की स्थापना मे प्रत्यक्ष हुई। इस बार का प्रारम्भ शहरी मध्यमवर्ग ने किया था। यह कालिज शीघ्र ही बगला जागरण का प्रमुख केन्द्र हो गया। चिन्तन की वैज्ञानिक विचारधारा मे प्रशिक्षित व आधुनिक उदार मूल्याकनो से प्रेरित छात्रो ने अपने समाज के पूर्व युगीन रीतिरिवाजो व विश्वासो पर प्रश्न उठाना शुरू किया। अब तक के समाज मे व्यक्तिगत स्वाधीनता, निर्माणकारी-आत्माभिव्यक्ति व अप्रतिबन्धित बौद्धिक खोजबीन का उन्होने अभाव पाया था। अधिकार, दायित्वो के नीचे दब गये थे। सचाई का तात्पर्य आज्ञापालन मे माना जाता था। नैतिक व बौद्धिक तमाच्छन्नता व्याप्त थी। आधुनिक योरोपीय साहित्य सामाजिक विचारधारा व प्राकृतिक विज्ञानो के अध्ययन ने इन बातो को असह्य बना दिया और इस प्रकार पुरातन और नूतन विचारो के मध्य सघर्ष उत्पन्न हो गया। प्रारम्भ म ऐसा प्रतीत हुआ कि पुरातनवादी विचारधारा अधिक शक्तिशाली है किन्तु राममोहनराय

के अभियान से नई चेतना आई और नूतन विचारधारा को बल मिला। दुर्भाग्य से १८३१ में यूरेशियन युवक कवि डेरोजियो, राजा राममोहनराय के कट्टर विरोधी राधाकान्तदेव द्वारा नास्तिकता के आरोप में हिन्दू कालेज से हटा दिए गये। यह संघर्ष फिर भी यूनानिक रूप में जारी रहा जिसे श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर द्वारा ब्रह्म समाज आंदोलन को पुनर्जीवित करने में गति मिली। नये अभियान का मुखपत्र तत्वबोधिनी पत्रिका उस समय की आधुनिक विचारधारा के प्रसार के लिए एक प्रभावशाली साधन सिद्ध हुई। पाचवें दशक तक आधुनिक विचारधारा के लोगों का नेतृत्व ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के सबल हाथों में आ गया था जिन्होंने देश में उदारवादी वैज्ञानिक शिक्षा प्रसार के लिए अथक प्रयत्न किया। उनका यह दृढ विश्वास था कि भारतीय छात्रों का वेदान्त, सांख्य अथवा हिन्दू दर्शन के अन्य विचारकों की अपेक्षा बेकन और मिल से अधिक सीखना है। विद्यासागर हिन्दू कट्टरता से निरन्तर संघर्ष करते रहे और उन्होंने समाज सुधार तथा नारी उत्थान के पक्ष में जनमत तैयार किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने स्कूलों का जाल बिछा दिया और बंगला में नया साहित्य तैयार किया। बंगला गद्य को ओज, संश्लिष्टता और गठन प्रदान करने में इनका उल्लेखनीय योगदान रहा।

रवीन्द्रनाथ का जन्म उस काल में हुआ जब बंगाल में उदारवादी आन्दोलन चरम शिखर पर था। रवीन्द्रनाथ की बाल्यावस्था में ही इस आन्दोलन ने और भी अधिक उन्नति की ओर [illegible] में भी इसका प्रवेश हो चुका था। केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में धार्मिक व सामाजिक सुधार के क्षेत्र में अनेकों उग्र कदम उठाये गये। अन्तर्जातीय विवाह तथा ब्रह्म समाज के प्रजातान्त्रिक नियन्त्रण एवं सबसे प्रमुख बात सार्वजनिक जीवन में स्वाधीनतापूर्वक महिलाओं के भाग लेने के अधिकार की मांग थी। साहित्य में देखें तो टैगोर के जन्म के वर्ष माइकेल मधुसूदनदत्त ने मुक्त छंद में अपना महाकाव्य 'मेघनाथवध' रचा। वे कासमोपोलिटन व्यक्तिवादी थे। वे योरोपीय साहित्य को पूर्णत आत्मसात कर चुके थे और उनकी प्रतिभा ने बंगाली कविता को ग्राम्य नीरसता से अनेकरूपता प्रदान की। उनकी उक्त कृति विचार व अभिव्यक्ति से सशक्त एवं संवेदनशीलता में बंगाली साहित्य में अद्वितीय है। उन्होंने अनेकों नाटकों व काव्य संग्रहों का सृजन किया और शैली व स्वरूप में अनेकों नये प्रयोग किये। उनके तत्काल बाद ही बंकिमचन्द्र चटर्जी का उदय हुआ। उनका प्रथम उपन्यास दुर्गेशनन्दिनी जब प्रकाशित हुआ, उस समय रवीन्द्र की अवस्था चार वर्ष की थी। उनके और भी उपन्यास प्रकाशित हुए पर सम्भवत इस काल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना उनकी साहित्यिक पत्रिका "बंगदर्शन" का प्रकाशन था। १८७२ में यह पत्रिका बंगाल में आधुनिक भावना का सर्वाधिक शक्तिशाली मुखपत्र हो गयी।

रवीन्द्रनाथ के प्रारम्भिक वर्ष अत्यन्त आनन्ददायक वातावरण में बीते। अपने बौद्धिक व नैतिक विकास में वे राममोहन व विद्यासागर से अत्यधिक प्रभावित थे। यद्यपि अपने व्यवहार में माइकेल व बंकिम से वे अत्यधिक भिन्न थे, पर प्रारम्भिक बंगाली साहित्य की ग्राम्यता से एक कलाकार के रूप में अपनी मुक्ति के लिए उनके प्रति कृतज्ञ हैं। उनकी प्रारम्भिक कविता में उनके आलोचनात्मक गद्य की बौद्धिक भावप्रवणता 'पंचभूत' (१८९७), उनकी व्यंग्य रचनाओं के चपल व स्फुलिंगमय हास्य व्यंगपूर्ण 'गोडाय गलद' (१८९२), 'बकुण्ठर खाता' (१८९७), दुखान्त साहित्य की शक्ति व भाव प्रवणता 'राजा और रानी' (१८८९), 'विसर्जन'

(१८६०), ये सब पुनर्जागरण की भावना की अभिव्यक्ति है, जो उन्होंने अपनी प्रारम्भिक अवस्था में अपने पूर्वजों से प्राप्त की थी। उनके परिवार में भी इस समय नवीन परिवर्तन हो रहे थे। उनके बड़े भाई सत्येन्द्रनाथ प्रथम आई० सी० एस० भारतीय थे, जो जान स्टुअर्ट मिल के भारी प्रशंसक थे, उन्होंने अपनी पत्नी को इंगलैण्ड भेजा था और सार्वजनिक जीवन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया था। देवेन्द्रनाथ परदा तोड़ने के विरुद्ध थे पर सत्येन्द्रनाथ की पत्नी ने टगोर के नाटकों में भाग लिया था। एक दूसरे भाई ज्योतिरिन्द्रनाथ अपनी पत्नी के साथ घूमने जाया करते थे। रवीन्द्रनाथ की बड़ी बहन स्वर्णकुमारी प्रथम बंगाली महिला थीं जिन्होंने १८७६ में उपन्यास लिखा था और १८८४ में उन्होंने 'भारती' का सम्पादन किया। इस तरह जोड़ासाको नये जीवन से तरंगायित हो उठा।

पर टगोर के प्रथम कविता संग्रह के प्रकाशन के पूर्व ही प्रतिक्रियावादी धारा ने जन्म ले लिया था। अंग्रेजी राजनीतिक सिद्धान्तों में समानता व न्याय की बात थी, पर ब्रिटिश सरकार ने इसके विपरीत कार्य किए, जिससे बंगाली शिक्षित जनता, पश्चिमी सिद्धान्त व व्यवहार में अन्तर देखने लगी और उदार मूल्यों में उसका विश्वास डिग गया। इसी समय बंगाल में एक नये आन्दोलन ने जन्म लिया जिसमें बुद्धिजीवियों में अपनी सभ्यता व संस्कृति की प्रशंसा पर बल दिया गया। जनवाद, उग्र राष्ट्रीयता व धार्मिक पुनर्जागरण नये आन्दोलन के मुख्य सिद्धान्त थे। इसका प्रथम प्रभाव १८६७ में हिन्दू मेले में देखने को मिला। नई शक्तियों ने ब्रह्मसमाज को विघटित कर दिया। केशवचन्द्र सेन ने अपने उग्र सुधारवाद का ही खण्डन किया। आगामी दशाब्दी में इस प्रतिक्रियावादी धारा के प्रमुख नेता के रूप में बंकिमचन्द्र चटर्जी सामने आए। माइकेल मर चुके थे, विद्यासागर सार्वजनिक जीवन से चले गये थे। इस समय बंगाली साहित्य— हेमचन्द्र, नवीनचन्द्र, भूदेव, गिरीश घोष, जोगेन्द्र विद्याभूषण या चन्द्रनाथ से आव्याप्त हो गया। इस काल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विकास रामकृष्ण परमहंस के रूप में सामने आया। उन्होंने अपने आध्यात्मिक संघर्ष का एक परमानन्द पूर्ण हल खोज निकाला था। उनके शिष्य विवेकानन्द ने इसे बौद्धिक रूप देकर और आगे बढ़ाया और आगामी दशाब्दियों में निवेदिता, अरविन्द घोष, ब्रह्मबान्धव उपाध्याय व अन्य हिन्दू मध्यवर्ग पर छा गये। रवीन्द्रनाथ भी इससे अप्रभावित न रहे। यद्यपि वे पूर्णतः इन शक्तियों के प्रभाव में न बहे, फिर भी कुछ समय तक काफी प्रभावित रहे। यह बात कम से कम उनकी कविता में अवश्य अभिव्यक्त हुई। जिनमें उनकी कल्पना शक्ति नैतिक व दार्शनिक प्रश्नों के जटिल चिन्तन से गीतात्मकता से पृथक पड़ गई। इसी कारण १६वीं शताब्दी में लिखी गई उनकी कवितायें सुन्दर व प्रभावशाली होने पर भी उनकी बाद की कविताओं की तरह आध्यात्मिक प्राप्ति से पूर्ण नहीं हैं। बुद्धिजीवी के रूप में सामान्य जनता से शिक्षित लोगों के दूर होने पर उन्हें दुःख हुआ। कलाकार के रूप में उन्होंने माना कि बिना परम्परात्मक कला के वे तभी छिन्न होकर रह जायेंगे, पर राममोहन राय, विद्यासागर के प्रभाव ने उन्हें बंकिम के अनुसरण से रोका। रामकृष्ण विवेकानन्द के रहस्यवाद में भी उनकी रुचि नहीं थी। बंकिम, जिनकी प्रतिभा का वे बड़ा सम्मान करते थे, कुछ समय के लिए उनसे विवाद तक में उलझ गये। इस समय उन्हें हम दो मुँह से बात करते पाते हैं। एक ओर वे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता व मानवीय एकता के समर्थक थे, दूसरी ओर वे १६०२ में प्राचीन ब्राह्मण सभ्यता, वर्णाश्रम व

उग्र ाम्प्रि पु रुत्थानवाद के समर्थक रहे। एक कलाकार के रूप में इस द्वयर्थकता का उन्हें बहुत मूल्य चुकाना पड़ा। उनके उपन्यास 'चोखेरबाली' (१६०१ २) व नौका डूबी (१६०३–५) में, मनोवैज्ञानिक साहस व नैतिक कायरता का सम्मिश्रण है। इसमें अंत में रूढ़क समाजिक परम्पराओं व रीतियों के आगे अपना कलाकार की अन्तर्चेतना को दबा देता है।

पर उन्होंने भारी कीमत देकर सबक सीखा। बगाल विभाजन के आन्दोलन ने नये अनुभव दिए। पहले वे स्वयं उसमें साथ रहे पर जब आन्दोलन का हिंसा, विश्वासहीनता निर्दयता व वचना का रूप सामने आया तो उन्हें धक्का लगा। यहां उनका कलाकारत्व जागा और वे प्रारम्भिक वर्षों की द्वयर्थकता से मुक्त हुए। मान्य मूल्यों में उनका पूरा विश्राम हुआ। बहुत दिन बाद ७३ वर्ष की अवस्था में टगोर का पुनर्निमाण हुआ जब कि उन्होंने अपना उपन्यास 'चार अध्याय' लिखा। इस पुस्तक ने उनके देशवासियों में अत्यधिक कटुता व शत्रुता पाई, पर इस शताब्दी की प्रथम दशाब्दि के मध्य में वे अपने देशवासियों से अलग पड गए। इसके उदाहरण राजा व प्रजा व समूह, (१६०८) 'प्रायश्चित्त नाटक व 'गोरा उपन्यास (१६०७ व ६) है। आगामी दशाब्दी में टगोर की मानवीय भावना हर कृति में व्यक्त हुई। उनकी कल्पना शक्ति प्रखर होती गई। उनकी कला अपने प्रति आश्वस्त हुई और नई दिशा में नए प्रयोगों के लिए वे अधिक तत्पर हुए। प्रमथ चौधुरी के सम्पादकत्व में 'सबुजपत्र' के प्रकाशन से यह परिवर्तन और तेजी से आया। इस पत्रिका के आधे पृष्ठ टैगोर के लेखन से भरे रहते थे। इसमें टगोर की कविताओं में असाधारण प्रतिभा का प्रवेश है। सबुजपत्र ने बगाली-गद्य की शैली में भी एक क्रांति की।

१८ वीं शताब्दी के प्रारम्भिक पुनर्जागरण के नेताओं के साथ टैगोर के सम्बन्ध समय के साथ साथ और भी स्पष्ट होते गये। प्राथमिक रूप से कलाकार होने के नाते उन्होंने अपनी दार्शनिक विचार धारा व व्यावहारिक गतिविधियों में सौन्दर्य का एक नया परिवेश दिया जो राममोहनराय और विद्यासागर की क्षमता से परे था। अमूर्तता को उन्होंने मूर्तता दी। मानवीय विचारधारा के विशुद्ध दार्शनिक विकास में उनका योगदान भी उल्लेखनीय है। 'राष्ट्रीयता व व्यक्तित्व' (१६१७) मानुषेर धर्म (१६३३) व 'कालान्तर (१६३७) इसके उदाहरण हैं, पर उनकी प्रमुख उपलब्धियां दर्शन में नहीं साहित्य में थी। चतुरंग (१६१६) जोगा जोग (१६२६) हलधरगोष्ठी (१६१४) नामजूर गल्प (१६२५) नाटक—अचलायतन (१६१२) रक्तकरवी (१६२६) ताप्ती (१६२६) कविताओं में बलाका से मोहुआ (१६२६) परिशेष व पुनश्च (१६३२) हैं, पर इस समय वे बगाली जनता से पृथक भी रहे। इसी मध्य राजनीति में गांधीजी का उदय हुआ था। टगोर ने गांधीजी के राजनीतिक रहस्यवाद के विरुद्ध कहा, पर उनकी बात कम सुनी गई। इधर उदार मूल्यों के प्रति और नई शक्तियों ने जन्म लिया। उग्र हिन्दू राष्ट्रीयता मुस्लिम–साम्प्रदायिकता से भी अधिक आक्रमक रूप में सामने आई। इधर पश्चिम में साम्यवाद व फासिज्म का उदय हुआ। इस मध्य टैगोर की बात की सराहना तो की गई पर उन्हें पढा व समझा कम गया। टगोर ने जनता से अलगाव को स्वीकार तो किया परन्तु किसी भी प्रकार उन्होंने समझौता नहीं किया। इस बात की कटुता दुईबोन (१६३३) व मालाच (१६३४) नाटक—बसरी (१६३३) कहानी— लेबोरेटरी (१६४०) में झलकती है।

अत यह स्पष्ट है कि जनता से टगोर का अलगाव उनके कलाकार व विचारक रूप मे किसी दोष के कारण न था । इसका कारण यह नही था कि शिक्षित जनता उनको समझ नही सकी, वास्तव मे जनता को सदेह था कि टैगोर के ये मूल्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि तु मानववादी को उनके मूल स्रोत को ढूढ निकालना चाहिए और इनकी प्राप्ति मे आने वाली समस्त बाधाओ को साहस के साथ दूर करना चाहिए । आज टगोर से भी अधिक 'मनुष्य और इस सृष्टि मे उसके स्थान के क्रातिकारी पुनपरीक्षण की आवश्यकता प्रतीत हो रही है । इसके लिए भाषा और स्वरूप मे भी अभिनव प्रयोगो की आवश्यकता है ।

यह सही है कि बगाल मे टैगोर के बाद ऐसा कोई विचारक अथवा कलाकार पैदा नही हुआ जिसकी गुरुदेव से किंचित भी तुलना की जा सके कि तु उन जैसी महान विभूतिया अनेक शताब्दियो मे एक बार अवतरित होती है । चाहे कुछ भी हो ये नय परीक्षण पूर्णत निरर्थक नही रहे है । आज बगालियो का भविष्य चाहे कितना ही धूमिल हो कितु इन वर्षो मे दो कवियो सुधीनदत्त और जीवदानन्ददास तथा उपन्यासकार मानिक बनर्जी का योगदान निराशा मे आशा की किरण उत्पन्न करता है ।

• • •

दो झलकियाँ

पश्चिम के दाय को स्वीकार करते हुए भी व विदेशी रीति-रिवाज के अन्धानुकरण के कितने घोर विरोधी थे, इसका एक सस्मरण प्रस्तुत कर रहा हूँ ।

एकबार जब वे आगरा पधारे थे व वैश्य छात्रावास मे आमन्त्रित हुए । वहा की सुव्यवस्था देखकर वे बहुत सन्तुष्ट हुए किन्तु उनके वहा से विदा होते समय एक ऐसी घटना घटी जिससे उनकी सौम्य मूर्ति साक्षात रुद्रता मे परिणत हो गई । वैश्य छात्रावास के छात्र सामान्यत राष्ट्रवादी थे कि तु उनमे भावी डिप्टी कलक्टरी का स्वप्न देखने वाले दो एक विद्यार्थी अग्रेजी रग मे रगे हुए थे । उन्होने जोर से अग्रेजी मे चिल्लाकर 'हिप हिप हुर्रे' कहा । यह सुनते ही कवीन्द्र की मुख मुद्रा बदल गई । मुह लाल हो गया और क्रोध से उच्च स्वर मे गरज उठे ।

I can well understand an English audience cheering me in that way but I cannot understand an Indian gathering cheering me with that barbarous cry If Bande Mataram is agressively national a simple Namaskar would do I do not want to hear that cry again

—बाबू गुलाबराय

स्व० महाराजा भरतपुर श्री किशनसिह ने गुरुदेव को अपना राज्य देखने के लिए निमत्रित किया । पालकी मे जब गुरुदव चल रहे थे, तो भरतपुर नरेश गुरुदेव के आकर्षक व्यक्तित्व से इतने प्रभावित हुए कि गुरुदेव के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए, उन्होने गुरुदेव की पालकी को स्वय उठा लिया था । गुरुदेव की शुभयात्रा के सम्मान मे महाराजा ने अपनी भरतपुर रियासत में हिन्दी को राजभाषा घोषित कर दिया था । यह पहला भारतीय राज्य था जिसने हिन्दी को राजकीय कार्यों के लिए प्रयुक्त करने वाली भाषा के रूप मे मान्यता दी ।"

— बशनकपूर

न कर्हिचित् किल प्राची प्रतीच्या सगमिष्यति ।
पुरस्ताद्द रविस्तूद्यन् प्रतीचीमप्यरोचयत् ।।
दक्षिणामप्युदीची च व्यभासयदुरुक्रम ।
तत् पूज्यसे रवीन्द्र त्वमुत्तरस्या विशेषत ।।

—जे० एन० रच्यूटर

[फिनलैंड]



चिन्तामणि देशमुख

गान ऽ॑िक रिक्तकरा न यायात् पुरो गुरूणा न विनाय श्र य ।
न मन्दिर विस्मृत ग ८ माल्यो द्रष्टु च ब धु न विनोपहारम् ।।
राजा बृहद्‌वाड मय—मन्त्रेस्त्व गुरुनरोद्धार—पराशयानाम् ।
तन्वीश्वरो भारतभावनाना सवस्य ब धुवसुधा-कुटुम्ब ।।
उपस्थितोऽह तव दश नाय कवीश ! कि ते गुरु कल्पयेऽध्यम्
म दप्रबोधस्तमसावतौजा—रवी द्र ! मृतात्र इव प्रदीप ।।
स्मरामि रामाय तु ८ य रामा द तव्रणाङ्कानि ददौ फलानि ।
मेघाथ मच्य कुटज प्रसूनै श्चकार यत्त क्पणो विवासे ।।
पूगीफल मा यमवित्तदत्त भवत् कदाचित् विजयाह्वनिथ्याम् ।
शम्याश्च चामीकरमेव पत्र दाना ८ मा पु गणनावलम्बि ।।
तस्मात् कव स।हसमाननोमि कृताञ्जलिस्ते कवनापहारम् ।
समपयन् विस्खन्तिनानुबिद्ध विदन्त्स्ल्प हृदयोत्थित यत् ।।
धन्योऽस्मि यद्दशनमाप्नवास्ते-न्याय—प्रथा—मम—विचदगास्य ।
वाग्वजयन्ती—भर—नायकस्य—मनुष्य—कल्याण – धृतव्रतस्य ।।
त्वत्त समिद्धा हृदये स्फुलिङ्गा ये ये जनाना निविधासु दिक्षु ।
तेपा ज्वलत्य यतमो ममापि स्वान्त प्रविश्य स्व रति विनाश्य ।।
आशा ममपा यदय स्फुलिङ्ग स ० मानो ज्वलतु प्रकामम् ।
सव प्रदेया गुरुदक्षिणा ते स देशपूर्त्ति कथमन्यरूपा ।।
अल प्रलापेन न रुग्ण काया उद्वेजनीया गुरव श्रमार्त्ता
शान्ति सदा शान्ति-निकेतने ते विराजता स्वान्त विशोर जया ।।

राजस्थानी

नारायणसिंह भाटी

हे कविगुरु !
कल्पना कल्पबेल थारी
भांत भांत पुहप गंध छकी
छायी म्हारै भावुक हियै कुंज
मन हेतालू गैलीज लैरीजियो
अधखुली आंख उलझी
फूल पांख,
इण पांख री रेख रेख
क्रोड क्रोड रंग भरिया
चातरा चितेरा थै
जिण रंग में
रान्या है अंग अंग
चिर राग पली
माणस हुलास रा
हे रससागर !
किसा'क देस बिदेस री
माणस फुलवाडी सूं
भर भर रस घट
थारी अनूप अनुभव
भंवर लालसा करिया संचित
चढ माणस सिखर
सींची तिरखा सूं, थै जोग ध्यान
नित फूली, नित नवी
मदभीजी कल्पलता वाणीलता
हे सरसत रा पाटक पुजारी !
एक दिन
इणी लता रा भाव पुसप
राग रंग न्हायी
उसा रै आंचल तलै निम
थै घणै मान एक ध्यान



[चित्र रवीन्द्रठाकुर]

अरप्या माणस समद तीर
बाही तो नी थारी पुसपांजली
गीतांजली जिके फूल
अनुभूति लहर तिरता
देस देसांतर जाय आभडिया
अर सहस सहस
सहज वीणा रे तार
वाणी भवर
रसलीण झणकिया
धरणी अम्बर रा गूढ गीत
अनेक मुख एक रीत
हे संस्कृति सुर साधक !
जुग जुगरी सफल साधना
नवा वेस धर
उतरी थारै छंद छंद पावडिया
अरथ पायल झणकारा
भारत जन हियो
जागियो आलस मरोड
परजलतो रूप देख
सैंधो सरूप देख
ओलखियो अपणापो
हे कवि हंस !
इण वाणी विलास सर
कैई मराल दल
कर कर किलोल आप लोपिया,
पण थारी विलास लहर
लागा सतलगर
बाधिया लड मोती
डोढा सिर सुन्दर
समै भवर बिच ओपिया

●

| सी | मूल—फ़ारा सेइतलियेव
अनु—राजीव सक्सेना |

मै सारे भारत मे घूमा—सब ओर छोर, कुल आर पार,
सर्वत्र ठगी रह गयी सास सौन्दर्य देश भर मे निहार।
पर बहुत दिनो से मै जिसके दर्शन को था व्याकुल आतुर,
वह तो है एक मकान मात्र, रहते थे जहा कवीन्द्र ठाकुर।
क्या कभी भूल सकता कोई वह क्षण महान गौरव का पल,
वह सागर का कालीन नील, सूर्य की प्रभा परिलिप्त धवल,
तब कलकत्ता के एक सुविस्तृत जन पथ पर मेरी आकुल
आखे रवीन्द्र के एकाकी आवास सदन से मिली अचल।
था पिया अभी तक रस जिनका आखो ने—वे प्रासाद प्रवर
थे वैभवमय, या चकाचौधवाले पावन उज्ज्वल मदिर,
मै देख रहा था यहा किन्तु साधारण सा लकडी का घर
थी नही स्वर्ण सज्जा कोई, था नही सगमर्मर पत्थर,
थे नही सुगधित फौव्वारे, थी नही यहा पर जगर-मगर
रगीन झाड-फानूस—स्याह, साधारण सी थी छत ऊपर।
इन सहज वस्तुओ बीच—काल ने जिन पर छोडे चिन्ह अमित—
अब तक रवीन्द्र की महान् आत्मा अपरिवर्त्त शाश्वत सस्थित।
विख्यात तूलिका चित्रो से भी कही अधिक सौदर्यवान,
था टगा मेज के ऊपर ही सामान्य फ्रेम मे दीप्तिमान—
स्वयमेव गीत रवि ठाकुर का, आलोकित था सम्पूर्ण सदन।
जिनको सराहते लोग, वही गौरवशाली सारे मदिर,
जो स्वर्ण मुलम्मा ओढ दमकते है—उनका वैभव मनहर,
उनके फौव्वारा की शोभा थोथी—उनसे क्या तुलना तक
कवि की कुल एक पक्ति भर से—मार्मिक, हार्दिक भावोत्तेजक
वह जगर मगर होती जैसे मुक्ताओ का अनमोल हार,
जीवन्त आज तो है ही, फिर भी बनी रहेगी काल पाट—
जग की अत्यन्त अमूल्य महानिधि जो नित-प्रति ही दिन दुगनी
औ' रात चौगुनी छाप छोडती मानव आत्मा पर अपनी।
उनकी कविता अब एकमात्र है अ तरग आतिथ्य प्रिया,
मै आज अतिथि हूँ उसका ही, मैने अर्पित निज हृदय किया।

●●●



अंग्रेजी

मूल—जुलियन हक्सले

Firm lips and shaggy brows,
Hands that a little tremble
Deep eye that knows
Work and white hairs which resemble
Pure and perennial snows
On a mountain that once grew green,
But now by a glacial age of its own invaded
To snowy repose by that cold hand persuaded,
Grows to an end more stern but most serene
Remembering days that have been

अनु०—[illegible]त्त शर्मा

निश्चल अधर और लोमावृत भौंह,
किंचित स्पन्दित हाथ,
कर्म ज्ञान से सुविदित गभीर नयन,
श्वेत केश लगते निर्मल नीहार-राशि से
पर्वत पर जो एक बार
हरिताभ रूप उद्भुत हुआ था,
किन्तु काल की हिमाच्छन्नता से पीडित
वह बर्फीले विराम की ओर—
अधिक उग्र पर अधिक अचचल
संग अतीत की स्मृतियो के
उदासीन हाथो से प्रेरित हुआ—
अंत की ओर बढ रहा।

• • •

मूल—थ्योडोर ड्रेजर

That which was crooked straightened
That which was defeated
Joined with that which was victorious
And that which was beautiful
Blended
With that which was ill planned
To be separated
And made Crooked
Or straight again

अनु०—ब्रजेन्द्र कुमार

जो वक्र था, कर दिया गया सरल
पराजित, बदल कर पक्ष,
विजेता से जा मिला
सम्पन्न हुई संधि
असुन्दर की सुंदर से
ताकि उन्हे किया जा सके
पृथक—पृथक,
वक्र अथवा सरल
फिर से।



अमरीकी

८

मूल—एम० एनासाकी

अनु०—श्रीगोपाल पुरोहित

हिमालय नो
मिने नो हा सोमुरु
हि नो हिकारी,
स्यू वा गगा नो
नो वो तेरासुवेकु।
असाहिको नी
सासावारे हिराकु
फुन्दारिके,
इरो का नी मी सोरा नो
इनोची यादोशिते

देखो, ज्योतिप्रभा!
नीलारुण आभासित होती है
हिमगिरि की चोटी पर।
कर सकता है कौन यहा सदेह कि—
यही अ तत नही करेगी
आप्लावित गगा पठार को?
अरुणोदय की प्रथम रश्मियो के चुम्बन से—
स्वर्णिम जीवन को धारण कर,
आभामय सुगध बिखराते—
पुण्डरीक शतदल खिलते है

मूल—प्रेमेन्द्र मित्र

अनु०— एल० एम० सरकार (श्रीमती)

सब कथा स्तब्ध हले
देखि एक पवित्र यत्रणा
सृष्टिमूल थेके उत्सारित
समयेर शून्यपटे
ए के जाय ज्वलन्त विस्मय।
आनन्दात् एव खल्विमाणि—
जेनेओ ता रक्ताक्त सशय।
निजेके ता माटितेई बाधे,
कथा सुर छवि हये
सकलेर साथे हासे कादे।
तबू अनिर्वाण
सत्तार अतृप्त प्रश्न विद्रोहेर यत्रणा विधुर
उद्भ्रान्त विक्षुब्ध युगे हयत कखनो
नाम नेय रवीन्द्र ठाकुर!

हो गये सब कथन स्तब्ध
देखकर के एक पावन य त्रणा
सृष्टिमूल से उत्सारित
समय के शून्य पट पर
हुआ अ कित ज्वाल विस्मय।
'आन दात् एव खल्विमाणि'—
रक्ताक्त सशय जानकर भी।
उस मृतिका मे ही स्वय को बाधकर
आत्मसात हो सुर, कथा और चित्र मे
वे सभी के सग हसे रोये।
तभी अनिर्वाण
सत्ता के अतृप्त प्रश्न विद्रोह की यत्रणा से विधुर
उद्भ्रा त इस विक्षुब्ध युग मे
नाम लेते हे कभी हम—रवी द्रनाथ ठाकुर!

अनु०—एन चन्द्रशेखरन नायर

रोज रोज उस पुनीत गगा के
कर कमलो से प्रक्षालित बगदेश के
अमर जागरित ज्योति-पु ज, तेरे
चरण सरोरुह मे नमस्कार पाणि जोडे ।
तु ग सभ्यता से नित आन्दोलित
गीताजलि की पताका अतिरजित
फहराते निखिल विश्व के उर मे
लहरा रहे है आप मृदु स्वर मे ।
सदिया से भरे दृगो से आकुलित
तेरे दर्शन को था भारत लालायित
खिल उठा अभिलषित आशा सरोज ।
उसी की मादक व्यथा को पहचानने से
हुए अवतीर्ण उस पुण्यवती की कोख से
जिसने बरसो के पहले अति भाग्य से
उत्पन्न किये थे पुत्र कालिदास से
युगो के पहले तिरोहित वह रूपसार
ससार आज देखता है हो चकित
वह अमर जागरित ज्योति-पु ज हे,
चरण सरोरुह मे नमस्कार हाथ जोडे ।
तेरा रूप है सौम्य, ममता-युक्त बन्धुर काम्य
चिदानन्द वेदान्त-सार
आलोकित विचार-मधुर ।
दिखता प्रशान्त सन्ध्याकार
दीपित है दो नयन तारक
आच्छादित वस्त्र सन्ध्याकान्ति
धवलकेश है उज्ज्वलाभ्रदीप्ति ।
शोभित भाल पचम-कलाधर
चादनी ढुलकती चामरदाढी
क्षितिज तले छिपे दिनकर
ह आत्मचेतना का दिव्य दीप ।
अति विस्तृत आर्य सस्कृति
है आप मे सकुचित विराजती
तव गात्र तो हिम गिरि-सा
बढ रहा गुरु गभीर-सा
दर्शन पा बगाब्धि तरगे
इठलाती है गान-नाल ले
मानो, ये सम्मुख सलग्न हो
किसी राजर्षि के कीर्ति गान मे
हे गुरो भवदीय दर्शन सुधा
पड रही हमारी अज्ञ,
तमोमय हृदय कन्दरा मे
वदन चन्द्र से वरकाव्य मे
भवदीय कल्पना पतग तो
मडरा रही है विश्व मे
तव दार्शनिक सौन्दर्य लता
फल फूल ले शोभती बाग मे
नक्षत्र-पराग युक्त नीलोत्पल–
गगन मडल से हो कर आप
विचर रहे है कलादेवी की
पाणि लिये हो स्वच्छन्द ।
क्षुब्ध वसुधा की नव पुकार मे
घोर परिवर्तन के इस युग मे
अलापते है आप उन्मुख हो
नीति के पावन गानो को ।
भ्रान्त ससार तो एक बार
देख ले आपका शान्तिनिकेतन
करुणा कलित विश्वकवि तुम
अपनी जननी के सच्चे सरक्षक ।
करुणा के अवतार सिद्धार्थ ने
प्राणि होम से बचाया बुद्ध हो
भवदीय तूलिका के रग से
यह देश मूक जगे मत्र से
न तो आप एक कवि गधर्व है
आप तो स्वय विश्व-काव्य है ।
आप के सुकृत नाम पर
इस देश के ऋषियो को गर्व है ।

कलैमहल करणीर शोर
कविमहल कलगि वील
तलै महन् इरन्दा ने न्ड्रे
इ दियत्ताम् तविक्क
अलै कडकु अपल उल्ल
अरिज्ञरकल यारुम् एग
मलै बिलक्कु अविन्द् देन्न
मरेन्दनन कवि ताकूरे ।

चन्दिरन् किरणत्तोडु
सूर्यन् ओलि शेन्देन्न
शेन्द्रणल नेरुप्पिल नल्ल
शिलु शिलुप्पु इणैन्द् देन्न
अन्दुणार अमादियोडे
अरशरिन् आमै क्रट्टु म्
सुन्दरकनिकल पाडुम्
शोल वल मुडैयोन् ताकूर ।

करुणैयिन उरबु काट्टु म्
कवि रवीन्द्रनाथ ताकूर
अरुणनाम् उलहुक्केल्लाम्
अरिवोलि परप्पि वाल्न्दान्
मरुणेरि माट्र इन्द
मानिल मक्कट् केल्लाम्
पोरुणेरि शाति शोल्लुम
पुत्तकमाह् निर्पान ।

अरशियल पोराट्टत्तिल्
आल्न्दिलन इन्द्रिट्टालुम्
पुरै शेय्युम् अडिमै वालावन
पुणैये, एणिण एणिण
करै काण मुडिन्दिडाद
कनलैयाल करणीर पोग
उरै शोल्लि अडिमै कट्टै
उडैत्तिड त्तुडित्तोन ताकूर ।

कला की अधिष्ठात्रीदेवी को आसुओ मे डुबोकर कविता कामिनी को व्यग्र विमूर्छित कर, कवि ठाकुर स्वर्ग सिधार गये, मानो पर्वत का प्रकाशमान दीपक एक झटके मे बुझ गया हो । इससे भारत माता ऐसे दुख मे डूब गयी है मानो उसका ज्येष्ठ पुत्र मर गया है । ससार भर के समस्त विद्वान्, सागर पार के विज्ञ अपने मूर्धन्य साथी से बिछुडकर व्याकुल विह्वल हो गये है ।

कवि ठाकुर ऐसे वाक्सपन्न श्रेष्ठ कवि थे, जो चन्द्रमा की सुशीतल किरणो से सूर्य का तेज पुज पैदा कर सकते थे । धधकती ज्वाला मे चदन सी शीतलता ला सकते थे । ब्राह्मणो के शातिमय जीवन मे क्षत्रिय राजाओ जैसा पौरुष भर सकते थे । अपने सुदर पदो द्वारा समग्र ससार को वशीभूत कर सकते थे ।

कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर करुणा निधान थे और करुणा का रिश्ता इस ससार से जोडकर अरुण की तरह सारे ससार मे ज्ञान का प्रकाश फैलाते थे और ज्ञानमय जीवन व्यतीत करते थे । अज्ञान के गहन अधकार से घिरे भूलोक वासियो के दिल से उसे हटाकर शाति का मार्ग दर्शानेवाले सर्वोत्तम ग्रथ के रूप मे वे हमारे बीच मे विराजमान थे ।

यद्यपि ठाकुर राजनैतिक दाव-पेचो मे नही फसे तथापि कलकपूर्ण दासता के जीवन को उन्होने बडा हेय समझा । दासता के बधन से उनके दिल को बडी ठेस पहुची । वे दिल को छूने वाले मर्मस्पर्शी शब्दो द्वारा दासता के बधन से मुक्ति पाने की कोशिश मे लगे रहे । धीर वीर हृदय वाले कवि का हृदय अपनी परवशता का ख्याल कर तडप उठा । हा, ठाकुर ऐसे ही व्यक्तियो मे थे, जो अपने देश को अपनी आखो स्वतत्र होते देखना चाहते थे ।

अनु०—एन चन्द्रशेखरन नायर

मलयालम

रोज रोज उस पुनीत गगा के
कर कमलो से प्रक्षालित बगदेश के
अमर जागरित ज्योति पु ज, तेरे
चरण सरोरुह मे नमस्कार पाणि जोडे।
तु ग सभ्यता से नित आन्दोलित
गीताजलि की पताका अतिरजित
फहराते निखिल विश्व के उर मे
लहरा रहे है आप मृदु स्वर मे।
सदियो से भरे दृगो से आकुलित
तेरे दर्शन को था भारत लालायित
खिल उठा अभिलषित आशा-सरोज।
उसी की मादक व्यथा को पहचानने से
हुए अवतीर्ण उस पुण्यवती की कोख से
जिसने बरसो के पहले अति भाग्य से
उत्पन्न किये थे पुत्र कालिदास-से
युगो के पहले तिरोहित वह रूपसार
ससार आज देखता है हो चकित
वह अमर जागरित ज्योति-पु ज है,
चरण सरोरुह मे नमस्कार हाथ जोडे।
तेरा रूप है सौम्य, ममता-युक्त बन्धुर काम्य
चिदानन्द-वेदान्त सार
आलोकित विचार-मधुर।
दिखता प्रशान्त सन्ध्याकार
दीपित है दो नयन तारक
आच्छादित वस्त्र सन्ध्याकान्ति
धवलकेश है उज्ज्वलाभ्रदीप्ति।
शोभित भाल पचम-कलाधर
चादनी ढुलकती चामरदाढी
क्षितिज तले छिपे दिनकर
ह आत्मचेतना का दिव्य-दीप।
अति विस्तृत आर्य सस्कृति
है आप मे सकुचित विराजती
तव गात्र तो हिम गिरि-सा
बढ रहा गुरु-गभीर-सा
दर्शन पा बगाब्धि तरगे
इठलाती ह गान-ताल ले
मानो, ये सम्मुख सलग्न हो
किसी राजर्षि के कीर्ति गान मे
हे गुरो, भवदीय दर्शन सुधा
पड रही हमारी अज्ञ,
तमोमय हृदय कन्दरा मे
वदन चन्द्र से वरकाव्य मे
भवदीय कल्पना पतग तो
मडरा रही है विश्व मे
तव दार्शनिक सौन्दर्य-लता
फल-फूल ले शोभती बाग मे
नक्षत्र पराग युक्त नीलोत्पल-
गगन मडल से हो कर आप
विचर रहे है कलादेवी की
पाणि लिये हो स्वच्छन्द।
क्षुब्ध वसुधा की नव पुकार मे
घोर परिवर्तन के इस युग मे
अलापते है आप उन्मुख हो
नीति के पावन गानो को।
भ्रान्त ससार तो एक बार
देख ले आपका शान्तिनिकेतन
करुणा कलित विश्वकवि तुम
अपनी जननी के सच्चे सरक्षक!
करुणा के अवतार सिद्धार्थ ने
प्राणि होम से बचाया बुद्ध हो
भवदीय तूलिका के रग से
यह देश मूक जगे मत्र से
न तो आप एक कवि-गधर्व है
आप तो स्वय विश्व काव्य है।
आप के सुकृत नाम पर
इस देश के ऋषियो को गर्व है।

●●

कलैमहल कएणीर शोर
कविमहल कलगि वील
नलै महन इरन्दा ने न्ड्रे
इ दियत्ताम् तविक्क
अलै कडकु अप्पल उल्ल
अरिज्ञरकल यारुम् ए ग
मलै विलक्कु अविन्द् देन्न
मरेन्दनन कवि ताकूरे।

चन्दिरन् किरणत्तोडु
सूर्यन ओलि शेर्न्देन्न
शेन्द्रणल नेरप्पिल नल्ल
शिलु शिलुप्पु इणेन्द देन्न
अन्दुणर अमोदियोडे
अरशरिन् आमै कूट्टुम्
सुन्दरकविकल् पाडुम्
शोल वल मुडैयोन् ताकूर।

करुणैयिन उरवु काट्टुम्
कवि रवीन्द्रनाथ ताकूर
अरुणनाम् उलहुक्केल्लाम्
अरिवोलि परप्पि वालन्दान्
मरुणेरि माट्र इन्द
मानिल मक्कट केल्लाम्
पोरुणेरि शाति शोल्लुम
पुत्तकमाह निर्पान।

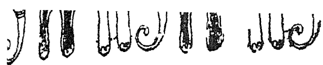
अरशियल पोराट्टत्तिल
आलन्दिलन इन्ड्रिरुलुम्
पुरै शेय्युम् अडिमै वार्लावन
पुरणैये, एरिणा एरिणा
करै काण मुडिन्दिडाद
कनलैयाल कएणीर पोग
उरै शोल्लि अडिमै कट्टै
उडैत्तिड त्तुडित्तोन ताकूर।

कला की अधिष्ठात्रीदेवी को आसुओ मे डुबोकर कविता कामिनी को व्यथा विमूर्छित कर, कवि ठाकुर स्वर्ग सिधार गये, मानो पर्वत का प्रकाशमान् दीपक एक झटके मे बुझ गया हो। इससे भारत माता ऐसे दुख मे डूब गयी है मानो उसका ज्येष्ठ पुत्र मर गया है। ससार भर के समस्त विद्वान्, सागर पार के विज्ञ अपने मूर्धन्य साथी से बिछुडकर व्याकुल विह्वल हो गये हे।

कवि ठाकुर ऐसे वाक्सपन्न श्रेष्ठ कवि थे, जो चद्रमा की सुशीतल किरणो से सूर्य का तेज पुज पैदा कर सकते थे। धधकती ज्वाला मे चदन सी शीतलता ला सकते थे। ब्राह्मणो के शातिमय जीवन मे क्षत्रिय राजाओ जैसा पौरुष भर सकते थे। अपने सुदर पदो द्वारा समग्र ससार को वशीभूत कर सकते थे।

कवि रवीद्रनाथ ठाकुर करुणा-निधान थे और करुणा का रिश्ता इस ससार से जोडकर अरुण की तरह सारे ससार मे ज्ञान का प्रकाश फैलाते थे और ज्ञानमय जीवन व्यतीत करते थे। अज्ञान के गहन अधकार से घिरे भूलोक वासियो के दिल से उसे हटाकर शाति का माग दशानेवाले सर्वोत्तम ग्रथ के रूप मे वे हमारे बीच मे विराजमान थे।

यद्यपि ठाकुर राजनैतिक दाव पेचो मे नही फसे तथापि कलकपूर्ण दासता के जीवन को उन्होने बडा हेय समझा। दासता के बधन से उनके दिल को बडी ठेस पहुची। वे दिल को छूने वाले मर्मस्पर्शी शब्दो द्वारा दासता के बधन से मुक्ति पाने की कोशिश मे लगे रहे। धीर वीर हृदय वाले कवि का हृदय अपनी परवशता का ख्याल कर तडप उठा। हा, ठाकुर ऐसे ही व्यक्तियो मे थे, जो अपने देश को अपनी आखो स्वतत्र होते देखना चाहते थे।



ओत्तुलैयामै एन्ड्रु
गाधियार उरैक्कुम् मुन्नाल्
इत्तुरैत्तततार तन्यो
डिणगिड प्पिणक्कि विट्टोन्
पट्टकल अवर मुन् तन्दु
पट्टमुम् परिशुम् वीशि
शुद्धिये मुदलिल चैय्द
सुतन्त्र वीरन् ताकूर ।
गाधियुम 'गुरुदेव' रेन्ड्रु
कै कुवित्तु इरैजुम् ताकूर
मादरुल पल नाट्टारुम
मतकलुम् मरुवि वालन्दु
तेन्डे नल्लरिवै अन्बै
जगमेल्लाम् परप्पवेन्ड्रे
'शातिनिकेतनम्' एन्ड्रु
समरस सवम् त दोन ।
ताम् मोलिप्पट्रुम तगल
कलैकलै त्तागि निकुम्
आय मैयुम बगालि क्के
अधिकमाम्, अदुनाल एल्ला
चीमैयुम् ताकूर पाट्टै
शिरप्पुरप्परप्पिनार्कल ,
वाग्मैयै त्तमिलर पोट्रि
नलर्परो तमिलिन् माण्बै ?

असहयोग अस्त्र का अ वेषण गाधीजी के करने के पूर्व ही ठाकुर ऐसे रूठे कि सत्ताधिकारी स्वय आकर उनमे हिले मिले । उन्ह अपनी ओर मिलान के लिये सरकार ने जो उपाधि पारितोषिक आदि देकर उनका सम्मान किया था, उसे उन्होने तिलाजलि दे दी । अपनी शुद्धि स्वय करने वाले वीर धीर पुरुषो मे ठाकुर ने अग्र स्थान प्राप्त कर लिया ।

ठाकुर ऐसे महान पुरुषो मे थे, जिन्हे गाधीजी भी 'गुरुदेव' कहकर प्रणाम् करते थे । ससार के सभी धमावलम्बी मिलजुल कर सद्धर्म का प्रचार करे और एक मन होकर विश्व मैत्री की प्रतिष्ठा करे—इस सदुद्देश्य से ठाकुर ने ऐसे समरस सन्मार्ग की सस्था कायम की जो 'शातिनिकेतन' नाम से ससार भर मे सुप्रसिद्ध है ।

मातृभाषा के प्रति अधिक प्रेम तथा अपनी सस्कृति व कलाओ के सवर्धन व परिमार्जन मे आसक्ति बगालियो मे अधिक मात्रा मे पाई जाती है । यही कारण है कि सभी राष्ट्र ठाकुर की काव्य कृतियो का सुदर प्रचार व प्रसार करते नजर आते हे । बगालियो के इस उत्तम सिद्धात का अनुकरण कर क्या आशा करे कि तमिल भाषा भाषी भी अपने समृद्ध—साहित्य व सस्कृति का प्रचार व प्रसार करेगे ?



मूल—नामाक्कल श्री वे० रामलिनम पिल्ले
अनु०—रा० वीलिनाथ

तेलुगु

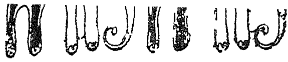
मूल—रायप्रोलु सुब्बाराव
अनु०—भीमसेन निर्मल

खिलखिलाते शिशु के होंठो पर,
छबीली युवती की कजरारी आंखो मे,
स्नेह भरे जननी के मुखडे पर,
प्रेम की कलाए ही देखी तुमने
कोमल हृदय ले हे गुरुदेव !
सुरभित कुसुमित मजुल कुज समूहो मे,
अमूल्य मोतियो की लडियो मे,
आवेग के मधुकोश (रूपी) गीताजलि को
चैतन्य के प्रकाश से सवारा तुमने
सूक्ति के सूत्रो मे ओ सुकवि ! ओ रवीद्र !
भानु की किरणो मे प्रतिबिबित तेज,
पवन के ताडव मे प्रवाहित प्राण,
प्रियरस की उपासना मे पल्लवित प्रेमाकुर की
दोहद के लिए अजुली भरी तुमने
वन आनन्द वीथि के विहारी ओ सुकवि !
ज्ञानयोगियो की अभीष्ट आनद ससिद्धि,
कर्मयोगियो का प्राप्य स्वर्गसुख,
भक्तियोगियो का काम्य कैवल्यसुख
छाया मे, शान्तिनिकेतन के सालवृक्षो की
सिद्ध की विश्वसौन्दर्य की पूजा।
नगी तलवारो से सवी कराल रात्रियो मे
भूख से सतप्त ऐश्वर्यो के मध्य मे
परिपक्व फलवृक्ष-वाटिका मे, स्वर साव
कोयल के सम प्रेम-कूजन करते तुम
मानव लोक की शान्ति के लिए ओ सुकवि !
हृदय की द्युति से ही सजोते रूप,
आत्मश्रुति मे लय कर सजोते गीत,
तव कान्तिपुज से प्लावित आगन मे
थक जाए कठ, रुक जाए लेखिनी,
सहृदयावर शरच्चन्द्र ! रवीन्द्र !

कन्नड

मूल—अम्बिकातनय दत्त
अनु०—प्रताप सुधाकर

विकल मन या श्रान्त तन हो,
तव वाणी भरती रस वहा।
मधुर गीत से हर ले जन दुख,
गुरुदेव, हमारा भाग्य कहा !
बालोचित चचलता या
विहगो की आकुलता मन मे,
तव दृष्टि भेदती
अन्तरिक्ष को क्षण मे।
स्नेह मूर्ति तुम, कुज
सने सब स्नेहामृत से,
खिल उठे सुमन तव
आनन की मजु प्रभा से।
मधुर गीत मे हर ले जन दुख
गुरुदेव, हमारा भाग्य कहा !
तव चरण पडे कभी खेतो मे,
मनचले ये चल पडे हवाओ मे।
शीत-ताप की परवाह न की, तुम
हर्षित होते भीग भीग विर्माक्रम मे ॥
मधुर गीत से हर ले जन दुख
गुरुदेव हमारा भाग्य कहा !
क्या पूरब, क्या पश्चिम,
रमे रहे तुम सभी दिशाओ मे।
तव गीतो पर मुग्ध हुआ जग,
बसा लिया उसने आंखो मे !
मधुर गीत से हर ले जन दुख
गुरुदेव, हमारा भाग्य कहा !



ओत्तुलैयामै एन्ड्रु
गांधियार उरैक्कुम् मुन्नाल
इत्तुरैत्तनार तगो
डिण्गिड प्पिणक्कि रिट्टोन्
पट्टकल अवर मुन् तन्दु
पट्टमुम् परिशुम् नीशि
शुद्धिये मुदलिल चैय्द
सुतन्त्र धीरन ताकूर ।

गांधियुम् 'गुरुदेव' रेन्ड्रु
कै कुवित्तु इरेजुम ताकूर
मादरुल पल नाट्टारुम
मतकलुम् सरूवि वालन्दु
तेन्ड्र नल्लरिवै अन्बै
जगमेल्लाम् परप्पवेन्ड्रे
शांतिनिकेतनम्' एन्ड्रु
समरस संघम् तन्दोन ।

ताम् मोलिप्पट्ट्रुम तगल
कलैकलै त्तागि निकुम्
आय मैयुम बंगालि क्के
अधिकमाम्, अदुनाल एल्ला
चीमैयुम ताकूर पाट्टै
शिरप्पुरप्परप्पिनार्कल,
वाय्मैये त्तमिलर् पोट्रि
वलर्परो तमिलिन् मार्बै ?

असहयोग अस्त्र का अन्वेषण गांधीजी के करने के पूर्व ही ठाकुर ऐसे रूठे कि सत्ताधिकारी स्वयं आकर उनसे हिले मिले। उन्हें अपनी ओर मिलाने के लिये सरकार ने जो उपाधि पारितोषिक आदि देकर उनका सम्मान किया था, उसे उन्होंने तिलांजलि दे दी। अपनी शुद्धि स्वयं करने वाले वीर धीर पुरुषों में ठाकुर ने अग्र स्थान प्राप्त कर लिया।

ठाकुर ऐसे महान पुरुषों में थे, जिन्हें गांधीजी भी 'गुरुदेव' कहकर प्रणाम् करते थे। संसार के सभी धर्मावलम्बी मिलजुल कर सद्धर्म का प्रचार करें और एक मन होकर विश्व मैत्री की प्रतिष्ठा करें—इस सदुद्देश्य से ठाकुर ने ऐसे समरस सन्मार्ग की संस्था कायम की जो 'शांतिनिकेतन' नाम से संसार भर में सुप्रसिद्ध है।

मातृभाषा के प्रति अधिक प्रेम तथा अपनी संस्कृति व कलाओं के संवर्धन व परिमार्जन में आसक्ति बंगालियों में अधिक मात्रा में पाई जाती है। यही कारण है कि सभी राष्ट्र ठाकुर की काव्य कृतियों का सुंदर प्रचार व प्रसार करते नजर आते हैं। बंगालियों के इस उत्तम सिद्धांत का अनुकरण कर क्या आशा करें कि तमिल भाषा-भाषी भी अपने समृद्ध-साहित्य व संस्कृति का प्रचार व प्रसार करेंगे ?



मूल—नामाक्कल श्री वे० रामलिंगम पिल्ले
अनु०—रा० वीलिनाथ

तेलुगु

मूल—रायप्रोलु सुब्बाराव
अनु०—[illegible] निर्मल

खिलखिलाते शिशु के होठों पर,
छबीली युवती की कजरारी आंखों में,
स्नेह भरे जननी के मुखड़े पर,
प्रेम की कलाएं ही देखी तुमने
कोमल हृदय ले हे गुरुदेव!
सुरभित कुसुमित मंजुल कुंज समूहों में,
अमूल्य मोतियों की लड़ियों में,
आवेग के मधुकोश (रूपी) गीतांजलि को
चैतन्य के प्रकाश से संवारा तुमने
सूक्ति के सूत्रों में ओ सुकवि! ओ रवींद्र!
भानु की किरणों में प्रतिबिंबित तेज,
पवन के तांडव में प्रवाहित प्राण,
प्रियरस की उपासना में पल्लवित प्रेमांकुर की
दोहद के लिए अंजुली भरी तुमने
बन आनन्द-वीथि के विहारी ओ सुकवि!
ज्ञानयोगियों की अभीष्ट आनंद संसिद्धि,
कर्मयोगियों का प्राप्य स्वर्गसुख,
भक्तियोगियों का काम्य कैवल्यसुख
छाया में, शान्तिनिकेतन के सालवृक्षों की
सिद्ध की विश्वसौन्दर्य की पूजा।
नंगी तलवारों से सजी कराल रात्रियों में
भूख से संतप्त ऐश्वर्यों के मध्य में
परिपक्व फलवृक्ष-वाटिका में, स्वर साध
कोयल के सम प्रेम कूजन करते तुम
मानव लोक की शान्ति के लिए ओ सुकवि!
हृदय की द्युति से ही सजोते रूप,
आत्मश्रुति में लय कर सजोते गीत,
तव कान्तिपुंज से प्लावित आंगन में
थक जाए कंठ, रुक जाए लेखिनी,
सहृदयावर शरच्चन्द्र! रवीन्द्र!

●

कन्नड

मूल—अम्बिकातनय दत्त
अनु०—प्रताप सुधाकर

विकल मन या श्रान्त तन हो,
तव वाणी भरती रस वहां।
मधुर गीत से हर ले जन दुख,
गुरुदेव, हमारा भाग्य कहां!
बालोचित चंचलता या
विहगों की आकुलता मन में,
तव दृष्टि भेदती
अन्तरिक्ष को क्षण में।
स्नेह मूर्ति तुम, कुंज
सने सब स्नेहामृत से,
खिल उठे सुमन तव
आनन की मंजु प्रभा से।
मधुर गीत में हर ले जन दुख
गुरुदेव, हमारा भाग्य कहां!
तव चरण पड़े कभी खेतों में,
मनचले थे चल पड़े हवाओं में।
शीत-ताप की परवाह न की, तुम
हर्षित होते भीग भीग रिमझिम में॥
मधुर गीत से हर ले जन दुख
गुरुदेव हमारा भाग्य कहां!
क्या पूरब, क्या पश्चिम,
रमे रहे तुम सभी दिशाओं में।
तव गीतों पर मुग्ध हुआ जग,
बसा लिया उसने आंखों में!
मधुर गीत से हर ले जन दुख
गुरुदेव, हमारा भाग्य कहां!

●●●

नेपाली

स्वागत

•

कविसिद्धि चरण श्रेष्ठ

शताब्दी माथि शताब्दी जाओस् तिमी छौ जीवित ।
हे विश्वकवि, वेहानी रवि, स्वागत, स्वागत !

हिमालय माथि चढेको तिम्रो घापमानुहाई ।
नेपाल तिम्रो वन्दना गर्द श्रद्धायो चढाई ॥

अधियारो फार्ने मित्रको रत्न विकाल सिकायौ ।
अमरबनी ज्यूनकोनिम्ति अमृत पिलायौ ॥

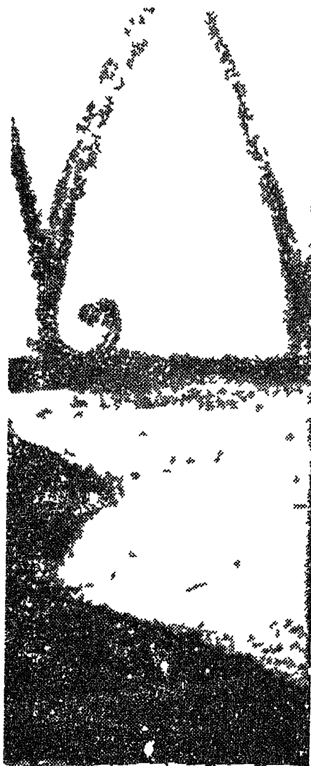
भेटेको उन्चवैभव स्वच्छ प्रेमकोपालाया ।
कविता पारी बाडेर गयौ सहस्रधारामा ॥

उन्मुक्त घोडा, यो विश्व छाडा मात्तिई हिंड छ ।
कआई हिंड्न लगाय तिम्रो अमर शब्द छ ॥

•



न कलाकार वलेरी यूग्लोव की तूलिका से गरिमामय, साहसी और नि स्वार्थ देशभक्त गोरा का अ कन



गोरा

●

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

[संक्षिप्त उपन्यास]

गोरा और विनय दोनो अनन्य मित्र थे। बचपन से साथ साथ खेले, पढे और बडे हुए। दोनो की अभिन्नता ऐसी, जैसे दो शरीर एक प्राण, किन्तु दोनो के स्वभाव मे पूरब-पश्चिम का अंतर था।

गोरा का पूरा नाम था गोरमोहन जो शरीर के गौरवर्ण के कारण ही रखा गया था। लम्बा, तगडा, बलिष्ठ शरीर, मुख पर तेज और विचारो की दृढता का तनाव मिश्रित भाव, जो दर्शक मे उसके विचारो को मान लेने की विवशता उत्पन्न करता था। वह विचारो से कट्टर हिन्दू था। उसका विश्वास था कि हिन्दू धर्म ही भारत का सच्चा प्रतिनिधित्व करता है और जिसे लोग हिन्दू-धर्म का पिछडापन और दोष बताकर उसकी निन्दा करते है, वही सच्चा भारतवर्ष है। उसमे यह पिछडापन और दोष इसलिए आ गए है कि हम अपने वास्तविक धर्म से वंचित हो गए है। धर्म के आचार-विचार और नियम-संयम का पालन कर उसको

फिर मे प्रतिष्ठित करना आवश्यक है। गोरा स्वय हिन्दू धर्म के आचार विचारो और नियम सयमो का पूरी कट्टरता से पालन करता था और उसने उनकी पुनर्प्रतिष्ठा के लिए उत्साही युवको का एक सगठन बना लिया था। आचार विचारो मे तनिक सी भी ढील उसे सहन नही थी। यही कारण था कि इधर कुछ दिनो से उसके और विनय के बीच कुछ खिचाव सा पैदा हो गया था।

विनय अपने नाम की सार्थकता के अनुकूल अत्यन्त विनयी और उदार था। वह गोरा की अपेक्षा भावुक था। अपनी इसी भावुकता के कारण परश बाबू के ब्रह्म समाजी परिवार मे उसका अचानक परिचय हो गया और न चाहते हुए भी घनिष्ठता बढ चली। उसका उदार और भावुक मन परेश बाबू के ब्रह्म समाजी परिवार के साथ अपने स्नेह सम्बन्धो मे कोई दोष या, हिन्दू-धर्म से अपने पतन के खतरे को नही देखता था। उसका मन कही अन्दर ही अन्दर कहता कि मनुष्य के परस्पर स्नेह सम्बन्ध मनुष्य होने के नाते अधिक श्रेयस्कर है। उन्हे धर्म या मतो की सीमा मे बाधकर कुछ के प्रति स्नेह सम्बन्ध स्थापित करना और कुछ से घृणा करना अनुचित है। लेकिन उसके मन के इस विश्वास का स्तर इतना क्षीण था कि वह विश्वास, विश्वास की दृढता नही प्राप्त कर सका था। उसकी स्थिति घडी के पेडुलम जैसी थी। कभी गोरा की ओर खिचता तो कभी परेश बाबू के परिवार के स्नेह की ओर।

× × ×

कृष्णदयाल बाबू सावले रग और दुहरे शरीर के व्यक्ति थे। नेत्र विशाल जिन पर दृष्टि बरबस जा पडती थी। एक समय था जब वे पश्चिम मे रहते थे और पल्टन मे अग्रेजो की सोहबत मे रहकर मद्य मास का खूब सेवन करते थे। लेकिन अब वे पूर्ण रूप से आचार निष्ठ ब्राह्मण होगए थे। न किसी के हाथ का बना और छुआ खाते, न किसी को (यहा तक कि अपनी पत्नी आनन्दमयी को भी) अपने पूजाग्रह मे प्रवेश करने देते। कृष्णदयाल बाबू की पहली पत्नी एक पुत्र को जन्म देने के बाद ही स्वर्गवासिनी हो गई थी। आनन्दमयी उनकी दूसरी पत्नी थी। उनके पहले लडके महिम का लालन पालन उसकी ननसाल मे हुआ था। अब बडा होकर वह उन्ही के साथ रह रहा था। दूसरी पत्नी से उनके कोई सन्तान न थी। गोरा वास्तव मे उनका पुत्र न था।

सिपाही विद्रोह के समय कृष्णदयाल बाबू ने अनेक अग्रेजो और उनके परिवार की रक्षा की थी। उसी मे एक अग्रेज गर्भवती महिला भी थी। उन्ही के घर उसके पुत्र जन्म हुआ और पुत्र प्रसव मे ही उसकी मृत्यु होगई। उस माता पिता से वचित बालक का आनन्दमयी और कृष्णदयाल बाबू ने अपने पुत्र के समान ही लालन-पालन किया। आनन्दमयी ने तो उसे ईश्वरीय प्रसाद ही माना और उसे अपने हृदय का समस्त वात्सल्य और ममत्व प्रदान किया। तब से समाज की दृष्टि मे गोरा उन्ही का पुत्र था।

गोरा भी अपने को बाबू कृष्णदयाल का पुत्र मानता था। गोरा मे बचपन से नेतृत्व की प्रवृत्ति थी। अग्रेजो के प्रति विद्रोह की भावना थी। मार्ग चलते वह उनसे मार पीट कर बैठता था। फिर

अचानक केशवच द के व्याख्यानो से आकर्षित होकर वह ब्रह्मसमाज की ओर झुका। उन दिनो कृष्णदयाल बाबू अत्यन्त आचार निष्ठ ब्राह्मण हो गए थे। उसे उनके आचार विचार पाखडपूर्ण चोचल लगने। तभी उनके पास आने वाले हि दूधर्म के अनेक विद्वानो मे से हरिश्चन्द्र विद्यावागीश ने उसे अत्यन्त प्रभावित किया। उन्ही दिनो एक अ ग्रे ज पादरी न हिन्दू धर्म और समाज पर लाछन लगाते हुए एक लेख प्रकाशित किया। उसे पढकर गोरा का अ ग्रे ज विरोधी मन एकाएक विद्रोह कर उठा और वह हिन्दू–धर्म का कट्टर समर्थक बन बैठा।

आन दमयी ने गोरा का लालन पालन कर यह विश्वास पाया कि कोई प्राणी पृथ्वी पर जन्म के समय कोई जाति लेकर नही आता। इस सम्बन्ध मे उनका अपने पति म मतभेद था। उनका विश्वास था कि मन, जाति या धम की मित्रता के कारण कोई मनुष्य ग्रहणीय और अग्रहणीय नही हो जाता। मनुष्य के रूप मे सब बराबर और परस्पर मेल-जोल तथा स्नेह के अधिकारी हे। अपने पति के हिन्दूधम और विशेषकर ब्राह्मण की उच्चता का प्रतिपादन करने वाले तर्को का खडन करती हुई कहती—"मै कहती हू कि क्या क्रिस्तान मनुष्य नही है ? तुम हि दू ही यदि ऊ ची जाति के हो और भगवान के अधिक प्रिय हो, तो वही भगवान तुम्हारे मस्तक का कभी मुगल और कभी क्रिस्ताना के चरणो पर क्यो झुकाते ह ?"

गोरा भी यद्यपि आनन्दमयी मे मा जैसी पूर्ण श्रद्धा रखता था, लकिन उन्हे धर्म भ्रष्ट मानकर उनके हाथ का भोजन न करता था। वह उनकी सेविका लछमनिया का भी घर मे रखने का विरोध करता था लेकिन गोरा के प्रति आन दमयी का स्नेह कम न होता था। गोरा का मित्र विनय भी उनका स्नेह पात्र था। उसे भी वह अपना बेटा मानती थी। विनय के माता पिता न थे। अत वह भी उन्हे अपनी मा ही मानता था।

× × ×

परेश बाबू कार्य मे अवकाश ग्रहण कर अपने परिवार के साथ कलकत्ते मे रहने लगे थे। उनकी पत्नी वरदा सुन्दरी के अतिरिक्त उनके परिवार के सदस्य थे—उनकी तीन लडकिया—लावण्य, ललिता, लीला तथा सुचरिता और उसका छोटा भाई सतीश। सुचरिता और सतीश के पिता परेश बाबू के मित्र थे। उनकी और उनकी पत्नी की मृत्यु के बाद से परेश बाबू ने ही सुचरिता और सतीश का लालन पालन किया था। अत वह भी उनकी पुत्री के रूप म ही जानी जाती थी। ब्रह्म समाज मे इस परिवार का विशेष सम्मान था। चारो ही लडकिया समाज मे अपनी परिष्कृत रुचि, शिक्षा और शालीनता के लिए प्रसिद्ध थी। परेश बाबू की सोम्यता और उनकी पुत्रियो, विशेषकर सुचरिता और ललिता का सुसस्कृत व्यवहार किसी का भी मन मोह सकने मे समर्थ था। यही कारण था कि विनय पहली बार सतीश के द्वारा खीच लाने पर फिर बार बार उस परिवार मे आने जाने लगा और उनके साथ खान पान मे भी उसे सकोच नही होता था।

परेश बाबू ने कृष्णदयाल बाबू की भी मित्रता थी। अतः गोरा उनके आदेश पर एक दिन परेश बाबू के घर गया। वह शायद न भी जाता लेकिन इसलिए और भी गया कि विनय के सम्मुख ही ब्रह्म-समाज के सिद्धान्तों का खंडन कर उस परिवार से मित्र के बढ़ते मोह को तोड़ सके।

गोरा वहाँ पहुँचा तब विनय पहिले से मौजूद था। मेज पर चाय नाश्ता रखा हुआ था। गोरा त्रिवेणी स्नान से लौटकर सीधा आया था। अतः माथे पर तिलक लगा था, मोटी धोती पहने था और कंधे पर एक मोटी सूती चादर लपेट रखी थी। ऐसा लगता था मानो वर्तमान युग के विरुद्ध मूर्तिमान विद्रोह के रूप में आ उपस्थित हुआ था। यद्यपि विनय द्वारा गोरा और उसके विचारों का थोड़ा बहुत परिचय इन लोगों को मिल गया था फिर भी परेश बाबू अपने परिवार से उसका परिचय कराने और कृष्णदयाल बाबू की कुशल पूछने के बाद बोले—"कालेज में, मैं और कृष्णदयाल बाबू एक मत के थे। दोनों ही मनमौजी थे और आचार विचार कुछ भी नहीं मानते थे।"

वरदा सुन्दरी ने पूछा—"और अब?"

गोरा ने उत्तर दिया—"अब तो वे हिन्दू आचार विचार में रहते हैं।" हिन्दू आचार-विचार का नाम सुनते ही वरदा सुन्दरी को तैश आ गया। फिर तो ब्रह्म समाज और हिन्दू धर्म का विवाद छिड़ गया। सुचरिता मन में सोचने लगी—"काश इस समय कोई ऐसा व्यक्ति होता जो इस उद्दंड व्यक्ति को हरा सकता।" विनय विवाद के दौरान में गोरा की उग्रता और परेश बाबू की प्रशान्तता को देखकर मन ही मन सोच रहा था—"मतामत मिथ्या है। हृदय के भीतर परिपूर्ण आनन्द और शान्ति का विकास ही मुख्य है।" सुचरिता चाय बनाकर इस दुविधा में थी कि किस किस को दे, तभी वरदा सुन्दरी ने गोरा से पूछा—"आप तो यह सब कुछ लेंगे नहीं!"

—"जी नहीं।"

"क्यों क्या जाति भ्रष्ट हो जायगी?" वरदा सुन्दरी ने व्यंग किया। फिर बात बढ़कर विवाद पर आ गई। सुचरिता ने बीच में टोकते हुए कहा—"मां! तुम इनके साथ व्यर्थ विवाद कर रही हो। यह हमारे हाथ का कुछ नहीं खाएंगे।" और विनय की ओर भी सन्देह से देखते हुए पूछा—"और आप...?"

विनय यद्यपि चाय नहीं पीता था, लेकिन इस स्थिति में वह मना न कर सका और चाय पीने लगा। यह सब चल ही रहा था कि ब्रह्म समाज के अग्रणी हारान बाबू जिन्हें परिवार के भी सदस्य पानू बाबू कहते थे आ उपस्थित हुए। उन्हें आया देखकर सुचरिता का मन उछलने लगा कि अब गोरा को विवाद में मुँह की खिलाने वाला आ गया और यह सोचकर वह पानू बाबू की विशेष खातिर करने लगी। थोड़ी ही देर में दोनों में विवाद आरम्भ हो गया जो शीघ्र ही इतना अप्रिय हो गया कि वरदा सुन्दरी विनय और लड़कियों को लेकर भीतर चली गयी और काफी देर तक गपशप करने के बाद जब वे वापस बाहर आयीं तब भी विवाद चल ही रहा था, लेकिन अब हारान बाबू तक छोड़ कटु भाषा पर उतर आए थे।

गोरा और विनय के चले जाने पर वह परेश बाबू से अपनी पराजय की खीझ निकालते हुए से बोले— 'घर की लड़कियों का पराए मर्दों के सामने इस तरह उठना बैठना, मैं ठीक नहीं समझता।"

सुचरिता के मन में हारान बाबू से जो आशा थी वह पूरी न हुई, अतः उसका मन वैसे ही खीझा हुआ था। हारान बाबू की बात सुनकर वह अपने को न रोक सकी, बोली—"आपकी इस बात को मान कर चली जाती, तो आपके साथ भी हम लोगों की बातचीत न हो पाती।

उसी दिन से हारान बाबू की ओर से उसका मन खिन्न हो उठा।

गोरा के चले जाने के बाद रात के अंधेरे एकान्त में वर्षा की फुहारों की पृष्ठभूमि में उसकी आंखों के सामने गोरा का अविचल तेजपूर्ण मुखमंडल बिजली की चमक की तरह चमक चमक उठता और उसके मन में बार-बार दूरस्थ गूंज की तरह गोरा के शब्द गूंज उठते—"आप जिन्हें अशिक्षित समझते हैं, मैं उन्हीं के दल का हूं, आप जिन्हें कुसंस्कार कहते हैं, मैं उन्हें ही संस्कार कहता हूं।" सुधार से बढ़कर स्वदेश-प्रेम है। जब हम लोगों का मत एक होगा विचार एक होंगे, तब समाज सुधार अपने आप हो जायगा। आप अलग होकर देश को अनेक खंडों में बांटना चाहते हैं, इससे सुधार कैसे होगा? आप अधिकांश पर कुसंस्कार ग्रस्त और पिछड़ा होने का दोष लगा, स्वयं को उनकी छूत से अलग रख अपने कर्तव्य की इति श्री समझे बैठे हैं। मैं उन्हीं में रहकर ऊपर उठना चाहता हूं—फिर समाज में कौन संस्कार रहे, कौन न रहे इसे तो देश जाने या उसके विधाता जानें। अहंकार का भाव छोड़कर नम्रता पूर्वक देशवासियों को अपना समझना, इस प्रेम-भाव के आगे सैकड़ों दोष शक्तिहीन हो जायगे। सबको छोड़ केवल अपने को ऊंचा उठाना तो शुद्ध स्वार्थ है।"

इसके बाद गोरा के सिद्धान्त विनय और सुचरिता के बीच प्रायः बातचीत का विषय बन गए। विनय गोरा का पक्ष समर्थन करता और सुचरिता ब्रह्म समाज का पक्ष लेती थी। जब तब परेश बाबू और घर के अन्य सदस्य भी उसमें भाग लेते, लेकिन गोरा उसके बाद उस परिवार में नहीं गया और न विनय का जाना ही उसे अच्छा लगता था। उसी बात को लेकर विनय और उसके बीच की खाई दिन दूनी बढ़ती गयी। कभी आवेग में पास आते भी तो दूने वेग से दूर हो जाते। इधर परेश बाबू के परिवार से विनय का सम्बन्ध घनिष्ठ से घनिष्ठतर होता गया। यहां तक कि समाज में वह चर्चा का विषय बन गया। लोग कहते, वह ब्रह्म समाजी बन रहा है। गोरा ने भी सोचा—"विनय को दूर से खींचे रखना कठिन है। अतः जहां से आशंका है, उसी स्थान पर पहरा देना उचित होगा। अगर मैं परेश बाबू के घर आता जाता रहूंगा, तो विनय को सीमा से बाहर न जाने दूंगा।" यह सोच गोरा फिर विनय के साथ परेश बाबू के घर जा पहुंचा।

जिस समय ये दोनों परेश बाबू के घर पहुंचे उस समय संध्या हो चली थी। हारान बाबू ऊपर के कमरे में परेश बाबू को अंग्रेजी का एक लेख सुना रहे थे। वास्तव में परेश बाबू तो माध्यम भर थे, वे उस लेख को सुचरिता को सुना रहे थे। ब्रह्म समाज में उनका सुचरिता के प्रति आकर्षण चर्चा

का विषय बन गया था। सभी समझते थे कि सुचरिता का विवाह हारान बाबू के साथ होगा। हारान बाबू भी सुचरिता के मन को जीतने का अवसर हाथ से न जाने देते थे। सुचरिता का मन हारान बाबू से न मिलता, लेकिन उसने हारान बाबू से अपने विवाह को एक अनिवार्यता मानकर स्वीकार कर लिया था। हारान बाबू शंकालु और ईर्ष्यालु स्वभाव के व्यक्ति थे। वे सुचरिता की अन्य के साथ बात चीत को भी शंका और ईर्ष्या की दृष्टि से देखते थे। तभी उस दिन उन्होंने घर की लड़कियों का हर किसी के सामने आकर उनसे खुलकर बात करने का विरोध किया था। वह विरोध सुचरिता को ही विशेषरूप से ध्यान में रखकर किया गया था। अतः विनय और गोरा की आने की सूचना पाकर वह उठकर जाने लगी तो परेश बाबू ने उसे रोक लिया—"बैठो, हमारे विनय तथा गौरमोहन बाबू ही तो आ रहे हैं।" सुचरिता शर्माती हुई बैठ गई। गोरा के आने की बात सुनकर उसके मन में प्रसन्नता मिश्रित लज्जा और बेचैनी का भाव उत्पन्न हुआ। बेचैनी इसलिए कि कहीं दोनों की बहस झगड़े का रूप न ले ले। गोरा का नाम सुनते ही हारान बाबू भी बेचैन हो उठे। गोरा के आने पर उन्होंने उसके नमस्कार का भी उत्तर न दिया। परेश बाबू को कहीं निमंत्रण में जाना था और उसका समय हो गया था। अतः वे औपचारिक बात करने के बाद सुचरिता के कान में कहकर कि मैं अभी आता हूँ, चले गए। उनके जाने के थोड़ी देर बाद ही हारान बाबू और गोरा में घनघोर शास्त्रार्थ छिड़ गया।

कलकत्ते के समीप किसी मेले में गवर्नर आने वाले थे। जिले के मजिस्ट्रेट मिस्टर ब्रैडला ने परेश बाबू की लड़कियों की अंग्रेजी की योग्यता के बारे में सुनकर यह आग्रह किया था कि उस अवसर पर गवर्नर के सामने उनकी कन्याएं कुछ सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करें और अंग्रेजी का एक नाटक भी खेलें। वरदा सुन्दरी अपनी कन्याओं के साथ उसी के अभ्यास में व्यस्त थी। बात उसी पर चल पड़ी कि अंग्रेजों और बंगालियों के बीच कैसे सम्बन्ध हैं। हारान बाबू ने अंग्रेजों से अच्छे सम्बन्ध बनाने पर जोर देते हुए बंगालियों की उपेक्षा पर बड़े जोर शोर के साथ दोष देना आरम्भ कर दिया और गोरा ने इस प्रवृत्ति का अंग्रेजों की चाटुकारिता कहकर मखौल उड़ाना आरम्भ कर दिया।

हारान बाबू बोले—"हमारे भीतर इतने कुसंस्कार तथा कुप्रथाएं हैं कि हम अंग्रेजों से सम्पर्क स्थापित करने के योग्य भी नहीं रहे।"

गोरा ने तपाक से उत्तर दिया—"अंग्रेजों के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए लार टपकाना भी लज्जा की बात है।"

हारान बाबू ने परेश बाबू के बारे में इशारा करते हुए कहा—"परन्तु इन जैसे योग्य व्यक्ति भी तो अंग्रेजों से सम्मान प्राप्त कर रहे हैं।"

गोरा ने उत्तर दिया—"जहां अनेकों का अनादर कर एक को आदर मिल रहा हो, हम उसे भी अनादर ही समझते हैं।"

इस उत्तर से हारान बाबू तिलमिला उठे। उनकी बहस में तर्कबल की अपेक्षा व्यंगबल अधिक आ गया। सुचरिता बहस के दौरान में तटस्थ होकर निरन्तर पंखे की आड़ कर गोरा के मुख को देख

रहा थी। बहस म अपना सतुलन खो बैठने क कारण हारान बाबू का पक्ष कमजोर पडने लगा और जैसे जैसे उनका पक्ष कमजोर होता जाता उतना ही वे बोखलाते जा रहे थे और उनकी मुखाकृति अजीब विद्रूपतापूर्ण होती जा रही थी। सुचरिता ने आज पहली बार गोरा को आखे भरकर देखा था। वह गोरा के समस्त दल, मत तथा उद्देश्य से पृथक केवल गोरमोहन अनुभव करने लगी। जैसे समुद्र को देखकर चन्द्रमा आनन्द मे भर उठता है उसी तरह वह गोरा को देखकर आनन्द से फूल उठी।

हारान बाबू सुचरिता के मन के भावो को समझ चुके थे। यही कारण था कि उनका तर्क और युक्ति बल कमजोर पड रहा था। अन्त मे वे अत्यन्त क्षुब्ध होकर उठ खडे हुए और सुचरिता को बडी आत्मीयता से पुकारते हुए बोले—'सुचरिता, तुम तनिक इस कमरे मे आओ। मुझे तुमसे एक बात कहनी है।"

कोई और समय होता तो शायद वह इस आत्मीयता का उत्तर आत्मीय-प्रदर्शन से दे भी देती लेकिन गोरा के प्रति मन मे उठ रहे भावो के कारण हारान बाबू द्वारा यह आत्मीयता का प्रदर्शन उसे सहन नही हुआ और उसने हारान बाबू की बात अनसुनी कर दी। उनके दुबारा आग्रह करने पर उसने उपेक्षापूर्ण स्वर मे उत्तर दिया— 'बाबूजी के आने पर सुन लूगी, अभी ठहरिए।'

तभी विनय ने उठते हुए कहा—"अच्छा, तो अब हम लोग चलते है।"

सुचरिता ने उसे रोकते हुए कहा—"नही विनय बाबू, आप लोग अभी न जाइए। बाबूजी आप लोगो को ठहरने के लिए कह गए है, वे आते ही होगे।

"तब मै यहा एक क्षण भी नही ठहर सकता।" कहते हुए हारान बाबू वहा से बाहर चले गए। बाहर आते ही उन्हे क्रोध में चले आने की भूल पर पश्चाताप भी हुआ।

हारान बाबू के यो चले जाने के बाद कुछ समय तक वातावरण बडा क्षुब्ध और स्तब्ध बना रहा। सुचरिता लज्जा मे सिमटी-सिकुडी बैठी रही। गोरा ने पहली बार एक टक उसको देखा। उसने शिक्षित स्त्रियो मे जिस उद्धत स्वभाव तथा निर्लज्जता की कल्पना कर रखी थी, सुचरिता के मुख पर उसका कही आभास तक न था। स्वाभाविक सलज्जता, विनम्रता और सौजन्यता के मिश्रण से उसका मुख और भी सुन्दर लग रहा था। उसकी सलज्ज और भावपूर्ण आखो के ऊपर धनुषाकार भोहे, उसके मुख की कोमलता और लावण्यता बरबस गोरा की आखो को उसके चेहरे से बाधे हुए थी। इससे पहले गोरा ने किसी नारी के मुख उसके वेश विन्यास आदि की ओर न देखने की जिद सी कर रखी थी। किन्तु, आज उसकी जिद अपने आप ही अनजाने मन की प्रेरणा से टूट सी रही थी। आज उसकी जिस दृष्टि ने नारी सौन्दर्य को देखा और सराहा था उस दृष्टि से आज उसे सब कुछ सुन्दर और नया-नया सा कुछ अजीब सा लगने लगा था। थोडी देर बाद विनय ने चुप्पी भग की—"मै सरकारी नोकरी करना चाहता था लेकिन गोरा ने मुझसे कहा—"नही, तुम सरकारी नौकरी नही कर सकोगे।"

गोरा का एकाएक सारा सकोच जाता रहा और उन्मुक्त रूप से वह बातचीत मे भाग लेता हुआ सुचरिता की ओर उन्मुख होकर बोला—"यह मत समझिएगा कि सरकार के ऊपर क्रोध करके मैने ऐसी बात कही थी। जो सरकारी अफसर हो जाते है, वे सरकार की शक्ति को अपनी शक्ति समझ कर स्वय को देश के अन्य लोगो से भिन्न अनुभव करने लगते है।" अपनी बात के प्रमाण मे गोरा एक उदाहरण देता हुआ बोला—"जो लोग दूसरे के कधे पर बोझ रखकर स्वय को हल्का अनुभव करेगे अथवा दूसरे को तुच्छ समझ कर अपने को ऊंचा मानेगे उनसे देश का कोई कल्याण नही हो सकता।" यह कहकर गोरा ने मेज पर इतने जोर से हाथ मारा कि दीपक हिल गया।

विनय बोला—"यह मेज सरकारी नही है और वह दीपक भी परेश बाबू का नही है।"

यह सुन गोरा उन्मुक्त रूप से हस पडा। थोडी देर मे ही वातावरण की क्षुब्धता समाप्त होगई और गोरा ऐसा अनुभव कर खुले दिल से बाते करने लगा जैसे सुचरिता से उसका बडा पुराना परिचय हो और वह उसी के बीच की हो। वह अत्यन्त ही आत्मीय स्वर मे बोला—"अंग्रेजो का अनुकरण करने से तो हमारा और भी पतन होगा। न हम ठीक ठीक हिन्दू रह पाएंगे और न अंग्रेज ही हो पाएंगे। मेरा तो आपसे अनुरोध है कि आप भारतवर्ष के भीतर आइए, उसकी बुराइयो के बीच आकर उनका सुधार कीजिए। इस मत के विरुद्ध खडे होकर अपनी नस नस मे ईसाइयत भर लेने से न आप हिन्दू-धर्म को समझ सकेगी और न देश का ही भला कर सकेगी।" इसी प्रकार उस समय तक गम्भीर हृदयग्राही वार्तालाप चलता रहा, जब तक कि वरदा सुन्दरी अपने परिवार के साथ वापस न आ गई। उस वार्ता को सुचरिता केवल सुनती ही नही रही बल्कि उसने बातचीत मे भाग भी लिया। सतीश के आग्रह पर विनय तो वही रुक गया, यद्यपि वह सकपकाया तो, लेकिन गोरा के कथन ने कि—विनय तुम यही ठहरो, उसे आश्वस्त कर दिया। गोरा के चले जाने के बाद ललिता ने विनय को बताया कि मा ने निश्चय किया है कि गवर्नर के आगमन के उपलक्ष मे जो नाटक होने वाला है उसमे आपको भी अभिनय करना होगा। विनय के आनाकानी करने पर ललिता व्यग करते हुए बोली—"मैने तो पहले ही मा से कहा था कि आपके मित्र आपको इस नाटक मे कभी भाग न लेने देगे।"

ललिता का विचार था कि विनय का अपना कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नही है, वह गोरा की ही बातो को दुहराता है। यद्यपि ललिता को विनय अच्छा लगता था, लेकिन उसकी इस व्यक्तित्वहीनता से निहायत चिढ थी। यह जानकर ही कि विनय अभिनय मे भाग नही लेगा उसने वह व्यग्य किया था।

यद्यपि ललिता को इस अभिनय मे स्वय कोई उत्साह नही था, लेकिन विनय को उसमे सम्मिलित करने की जैसे उसे जिद सी हो गई। वह चाहती थी कि विनय गोरा की मर्जी के विरुद्ध जाय।

एक दिन विनय से अभिनय पर बाते करते हुए उसने कहा—"अभिनय करने मे दोष ही क्या है?"

"अभिनय करने मे दोष हो या न हो लेकिन मजिस्ट्रेट के घर जाकर अभिनय करना मुझे अच्छा नही लगता ।"

"यह अपने मन की बात कह रहे है या दूसरे के मन की ।"

"मै दूसरे के मन की नहा, सदा अपने ही मन की बात कहता हू , आप चाहे विश्वास करे चाहे न करे ।"

ललिता उसका उत्तर सुनकर थोडा मुस्कुराती हुई बोली—"आपके मित्र गोरमोहन बाबू मजिस्ट्रेट का निमन्त्रण अस्वीकार करने मे तो बडी बहादुरी समझते है, मानो वे इसी प्रकार अंग्रेजो स लडाई कर अपने हृदय के घाव सहला लेते हो ।"

"वह समझता है या नही लेकिन मै अवश्य अनुभव करता हू कि जो लोग हमे मनुष्य नही समझते उनको प्रसन्न करने के लिए उनके इशारो पर नाचते रहने मे हम अपने स्वाभिमान की रक्षा कैसे कर सकेगे ?"

ललिता भी स्वाभिमानिनी थी, अत विनय के मुह स्वाभिमान की बात सुनकर उसे प्रसन्नता ही हुई लेकिन अपने पक्ष को कमजोर पडता जानकर व्यग-वचनो स विनय को चिढाने लगी । अन्त मे विनय ने कहा—"घुमा फिरा कर क्यो कहती हे । साफ क्यो नही कहती कि मै अभिनय मे भाग लू , तो ठीक है । मै आपकी इच्छा की खातिर अपने मनोभावो को त्यागकर अभिनय करना स्वीकार कर लू गा ।"

"मेरी इच्छा रखने के लिए आप अपने विश्वास क्यो छोड देगे ?"

"जो भी हो । मै आपकी इच्छा पूर्ति के लिए अभिनय मे भाग लू गा ।"

उसी समय वरदा सुन्दरी आगई और विनय ने उन्हे अपने निश्चय की सूचना दे दी । लेकिन ललिता विनय के निश्चय मे प्रसन्न न हो सकी, बल्कि उदास हो गई । उसे उदास देखकर विनय ने चलते चलते उससे कहा—"मे आपकी इच्छा रखकर भी आपको प्रसन्न न कर सका ।"

ललिता बिना उत्तर दिए चली गई । वह रोना नही जानती थी परन्तु आज उसकी आखो से आसू बरबस निकल पडना चाहते थे । वह सोच रही थी कि क्यो वह विनय बाबू पर बार-बार व्यग कर स्वय भी कष्ट पाती है और जब उन्होने उसकी मन चाही बात कर दी तो प्रसन्न क्यो न हो सकी, वह आखिर चाहती क्या है । उसका मन बडा खिन्न हो उठा और आसू फिर आखो मे आकर न रुक सके ।

दूसरे दिन ललिता ने सुधीर के द्वारा लावण्य को दिए गए गुलदस्ते मे से दो गुलाब के फूल निकालकर सतीश के हाथो विनय के पास भेज दिए । विनय भी स्वय हार मानकर ललिता को प्रसन्न न कर सकने पर बडा दुखी था । सतीश के द्वारा गुलाब के फूल पाकर और यह जानकर कि ललिता ने उसके लिए फूल भेजे है , उसका मन प्रसन्नता से भर उठा । शाम को जब वह ललिता के यहा पहुचा तो स्थिति वैसी ही थी । ललिता की बातो से वह फिर उलझन मे पड गया कि वह क्यो खिन्न है ।

पहले उसने अभिनय मे भाग लेने मे इंकार कर दिया था, परन्तु अनिश्चय की स्थिति मे उसने अभिनय मे भाग लेने का ही निश्चय किया।

अभिनय के रिहर्सल के अवसर पर विनय ने बिना किसी की सहायता के अपना अभिनय पूर्ण और आशातीत योग्यता से निभाया। यह देखकर ललिता को प्रसन्नता के साथ साथ ईर्ष्या भी हुई। वह आखिर चाहती क्या है और उसके क्या करने से उसके मन को शान्ति मिलेगी ? जिस कार्य मे सम्मिलित होने के लिए वह बार-बार विनय को प्रेरित करती रही है, अब उसके मान जाने पर वह उसे उस काम से विमुख करने के लिए लालायित हो उठी थी, लेकिन विनय को उधर से विमुख करने का कोई उपाय न देख उसने स्वयं को अभिनय से पृथक कर लेने का निश्चय अपनी मां को बता दिया। नाटक खेले जाने मे अब बहुत कम समय रह गया था और ललिता जब किसी प्रकार तैयार न हुई तो हार कर बात परेश बाबू से कहनी पड़ी तब कहीं उनके कहने पर वह अभिनय मे भाग लेने को तैयार हुई। जलसे की तैयारी का काम और तेजी से चलने लगा। ललिता के आग्रह पर सुचरिता भी उसमे रुचि लेने लगी।

पिछली बार गोरा से भेट और वार्तालाप के बाद सुचरिता कुछ अन्तर्मुखी सी हो उठी थी। कभी कभी किसी आने वाले की आहट से उसका मन उछलने लगता इस आशा से कि गोरा आया हो, लेकिन गोरा उसके बाद से फिर नहीं आया, क्योंकि वह अपने कुछ साथियों को लेकर देश भ्रमण के लिए पैदल ही निकल पड़ा था। इसी बीच अवसर पाकर हारान बाबू ने सुचरिता से विवाह की बात अविलम्ब पक्की कर दिए जाने के सम्बन्ध मे परेश बाबू से बात की। हारान बाबू को सुचरिता के मन की उथल पुथल का कुछ कुछ आभास हो चला था तभी इससे पहले कि वह उनकी पकड़ से दूर हो जाय, वे सुचरिता को विवाह बन्धन मे बांध लेना चाहते थे। परेश बाबू को भी सुचरिता के मन का कुछ आभास हो गया था इसलिए उन्होंने सुचरिता को हारानबाबू के सामने ही बुलाकर उसकी सम्मति जाननी चाही। सुचरिता चाहती थी कि अपने द्विविधा-युक्त जीवन को किसी भी एक स्थान पर समर्पित करने से उसकी जान बचे तो ठीक है। यही विचार कर उसने तुरन्त अपनी सहमति दे दी। यह निश्चय हो गया कि मजिस्ट्रेट साहब के निमन्त्रण से निश्चिन्त होकर एक दिन सब लोगों की उपस्थिति मे इस सम्बन्ध को पक्का कर दिया जाय।

अतः हारानबाबू दूने उत्साह से उत्सव की तैयारियां पूरी करके सबका साथ लेकर उत्सव से कुछ दिन पहिले ही निर्धारित स्थान पर पहुंच गये।

उधर गोरा भी दैवयोग से गांवों मे घूमता-घामता उसी इलाके मे जा पहुंचा। जब वह भ्रमण के लिए चला था, उसके साथ उसके चार साथी अविनाश, मोतीलाल, बसन्त और रमापति थे। लेकिन सभी एक के बाद एक किसी न किसी बहाने से उसका साथ छोड़ कर लौट गए। वहां उसे एक विचित्र भारतवर्ष देखने को मिला जो गरीबी और अत्याचार से पिसा हुआ था। वह एक गांव मे पहुंचा जिसे नील की खेती के अंग्रेज मालिकों के इशारे पर पुलिस वालों ने तबाह कर रखा था। एक जगह

उसने देखा कि एक हिंदू नाई एक मुसलमान के बच्चे का पाल रहा था। उसका पिता पुलिस के अत्याचारा के विरुद्ध जनता का नेता था जिसे पुलिस पकडकर ले गयी थी। उसका मन पुलिस के अत्याचारा के विरुद्ध विद्रोह कर उठा और उसने पुलिस के अत्याचारो के सहायक नील की कोठी के तहसीलदार मगला प्रसाद और पुलिस के दरोगा का जाकर करारी लताड बताई और फिर जाकर इलाके के अग्रेज मजिस्ट्रेट मि० ब्रडैला से जाकर भिड गया। यह वही मजिस्ट्रेट थे, जिनके निमत्रण पर हारान बाबू अपनी मडली को लेकर आए हुए थे। जिस समय गोरा वहा पहुचा उस समय हारान बाबू भी वही विराजमान थे। गोरा ने जाते ही घोषपुर गाव मे पुलिस के अत्याचार की शिकायत की। मजिस्ट्रेट के पास दरोगा और तहसीलदार ने पहिले ही गोरा की उदडता की सूचना भिजवा दी थी, अत मजिस्ट्रेट ने शुरू मे उसके साथ उपेक्षा और कडाई का व्यवहार किया और कहा—"मै तुम्हे चेतावनी दिए देता हू कि यदि तुम वहा के मामले मे हस्तक्षेप करोगे तो तुम्हे विद्रोही माना जायगा और फिर तुम्हे उसका दण्ड भी भोगना पडेगा।"

—"यदि आपका यही विचार है तो क्या कहा जाय! लेकिन ऐसी स्थिति मे, मै उस गाव के लोगो को पुलिस के अत्याचारो का विरोध करने के लिए सगठित होने की सलाह अवश्य दूगा।" यह कहकर गोरा वहा से तैश मे भरा चला आया। वहा से लौट कर उसने किसानो की जमानत कराने के लिए अपने सहपाठी वकील सातकौडी से भेट की। उससे निराश होकर उसने निश्चय किया कि अगले दिन कलकत्ता जाकर दूसरे वकीलो मे बात करेगा, लेकिन उसमे एक बाधा आ पडी।

मेले के अवसर पर स्थानीय टीम से मैच खेलने के लिए कलकत्ता के छात्रो की एक क्रिकेट टीम आई हुई थी। वे लोग क्रिकेट खेल रहे थे कि एक लडके के पैर मे गेद लगने से चोट आ गई। अन्य लडके उसे लेकर पास के तालाब पर जाकर पानी मे कपडा भिगोकर घाव पर पट्टी बाधने लगे। उसी समय एक सिपाही ने एक लडके की गर्दन पकडकर उसे गालिया देते हुए कहा—"मूर्ख, इस तालाब का पानी पीने के लिए है, गदा करने के लिए नही।"

एक सिपाही द्वारा इस प्रकार अपमानित होने पर छात्रो का रोष आ गया। अत सिपाही को उन सबने मिलकर पीटना आरम्भ कर दिया। यह देखकर घटनास्थल पर और भी सिपाही आ गए और लडको को मारते पीटते पकडकर ले जाने लगे। उसी समय गोरा उधर से जा रहा था। वह उनमे से कुछ लडको को जानता था, उनके साथ कलकत्ता मे क्रिकेट खेला था। अत आगे बढकर उसने सिपाहियो से कहा—"खबरदार, आगे मत बढना।" यह सुनते ही सिपाहियो ने गोरा को जैसे ही गाली दी, वैसे ही वह सिपाहियो पर टूट पडा और लगा उनकी पिटाई करने। अन्त मे सिपाही अन्य लडको के साथ उसे भी गिरफ्तार करके ले गए।

तीन-चार बजे के आस पास दो छात्रो ने डाक बगले मे जाकर विनय, हारान बाबू और परेश बाबू की लडकियो को सूचना दी कि गोरा तथा अन्य कई छात्रो को पुलिस पकडकर ले गई है और कल सबेरे मजिस्ट्रेट की अदालत मे उन पर विचार किया जायगा।

खबर सुन कर सब स्तम्भित और दु खी हो उठे। केवल हारान बाबू निर्विकार बने रह। उन्होने जानबूझ कर गोरा की मजिस्ट्रेट से हुई बातचीत को छिपाया था। विनय ने सातकौडी न मिलकर गोरा की जमानत करवाने का प्रयास किया। विनय के उससे मिलने पर गोरा को आश्चर्य हुआ कि विनय वहा कैसे पहु च गया, क्योकि विनय के अभिनय मे भाग लेने और उसी सम्बन्ध मे वहा पहु चन की बात का उसे बिल्कुल भी पता न था। यह सब उसके भ्रमण के लिए चले आने के बाद हुआ था, अत उसने विनय से पूछा—"तुम यहा कैसे ?"

विनय ने उसकी बात का उत्तर न देते हुए कहा—"मेरी बात बाद मे पूछना, पहिले तुम्हारी बात होनी चाहिए।"

"मेरी क्या बात है! मै तो राजा का मेहमान हू। वही मेरी चिन्ता भी करेगे।"

गोरा ने अपने लिए खाने का बाहर से प्रबन्ध करने के प्रस्ताव का भी विरोध करत हुए कहा –"हवालात मे जो सबको मिलता है, उससे अधिक मै कुछ नही चाहता।" उसने अपने को जमानत पर छुडाने का भी विरोध किया –"न मै वकील ही करूगा और न मुझे जमानत पर ही छुडाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।"

अन्त मे हारकर सातकौडी और विनय वापस लौट आए।

सुचरिता गोरा का समाचार सुनने की प्रतीक्षा मे उदास और उत्सुक मन से बैठी थी। विनय ने लौटकर गोरा के झगडे का जब सब हाल सिलसिलेवार सुनाया तो सुचरिता सुनकर स्तम्भित रह गई और ललिता के हाथ से सुई गिर गई, उसका चेहरा लाल हो उठा। हारान बाबू ने गोरा के कार्य की निन्दा की तो ललिता हारान बाबू का सब अदब कायदा भूलकर बौखला पडी–"क्या मजिस्ट्रेट और पुलिस का काम अन्यायपूर्ण नही है? गोरमोहनबाबू ने अपनी रक्षा के लिए वकील किए जाने का ठीक ही विरोध किया। मजिस्ट्रेट के लम्बे वेतन के लिए टैक्स भी हमी द और फिर उसके अत्याचारो से अपनी रक्षा के लिए वकील भी स्वय करे। उन्होन ठीक ही कहा कि ऐसे काम पाने की अपेक्षा तो जेल जाना ही उचित है।

हारानबाबू को बडा आश्चर्य हुआ कि जो ललिता कभी जुबान खोलना न जानती थी, आज ऐसी बाते कह रही है अत उसका ताडना देते हुए बोले—"तुम क्या समझो इन बातो को!" और यह कहते हुए हारान बाबू ने घोषपुर गाव मे पुलिस के अत्याचारो के मामले का लेकर मजिस्ट्रेट से गोरा की हुई झडप का सारा किस्सा कह सुनाया और सिद्ध करने का प्रयास किया कि व्यवस्था मे दखल देकर गोरा ने गैरसमझदारी का और मूर्खता-पूर्ण कार्य किया, अब उसे उसका परिणाम भोगना पडेगा।

हारानबाबू ने अब तक इन बातो को छिपाकर जिस क्षुद्रता का परिचय दिया था, उससे सुचरिता का मन आहत हो उठा और हारान बाबू के प्रति उसके मन मे अश्रद्धा का भाव और भी बढ गया।

दूसरे दिन अदालत मे गोरा ने पुलिस के अत्याचारो के बारे मे खब खुलकर कहा और खुद ही बहस की। मजिस्ट्रेट ने उसे एक महीने की कडी मेहनत के साथ सजा सुना दी।

अदालत से लौटकर विनय बस्ती से बाहर एक सुनसान जगह मे एक पड के नीचे शाम तक बैठा रहा। शाम को सुधीर और सुचरिता जब उसे लेने आये तब वह उन्मन सा उनके साथ डाक बगले वापस गया। वहा जाकर उसने देखा कि एक हगामा मचा हुआ था। ललिता कह रही थी कि वह मजिस्टेट के उत्सव मे किसी प्रकार सम्मिलित न होगी। वरदा सुन्दरी बडे सकट मे पड गई थी। हारान बाबू क्रोधावेश मे बोखलाकर कह रहे थे – "आजकल लडके लडकिया अदब कायदा तो जानते ही नही।" विनय को आया देखकर ललिता उससे बोली–" विनय बाबू तब मै आप लोगो की देश-भक्ति की बातो को न समझती थी। लेकिन अब सब बात साफ होती जा रही है। हारान बाबू कहते है कि मजिस्ट्रेट और अग्रेजो का शासन-विधान विधाता का विधान है। अगर यह बात सही है तो उस शासन को मन, वाणी तथा काया से अभिशाप देने की इच्छा का होना भी विधाता का विधान है।"

हारान बाबू ने क्रोधित होकर कहा "ललिता तुम "

ललिता हारान बाबू की ओर घूमकर उनसे झगड पडने की मुद्रा मे खडी होकर बोली–"आप चुप रहिए। मै आपसे बात नही कर रही हू और न बात करना ही चाहती हू।" फिर विनय से बोली— "विनय बाबू! आप किसी के भला-बुरा मानने की या अनुरोध की परवाह न करे। आज यह अभिनय किसी प्रकार भी न हो सकेगा।"

वरदा सुन्दरी ने बिगडती हुई स्थिति को रोकने के विचार से बीच मे ही बात काटकर कहा—"तू भी अजीब लडकी है। देखती नही विनयबाबू का चेहरा कैसा उतरा हुआ है। क्या तू इन्हे नहाने खाने भी न देगी।"

विनय बोला—"अब मै उसी मजिस्ट्रेट के यहा मेहमान के रूप मे रहकर इस घर मे नहाना-खाना नही कर सकूगा।"

वरदा सुन्दरी ने विनय को बहुत समझाने-मनाने की कोशिश की, सबके सामने अपना मुह न दिखा सकने की दुहाई दी, सुचरिता ने भी विनय को समझाने की अनुनय की लेकिन सब बेकार। विनय उसी क्षण कलकत्ता लोट जाने के लिए स्टीमर पर चला गया।

स्टीमर जब चलने ही वाला था कि ललिता भी घर छोडकर चली आई। दूर से आता हुआ देखकर विनय को आशका हुई कि वह उसे लोटाने आई है, लेकिन उसके पास आ जाने पर उसे पता लगा कि वह उसके साथ ही कलकत्ता लोट जाने के लिए ही उन लोगो से बिना कहे चली आई है और इस आशय का एक पत्र लिखकर रख आई है। अन्य कोई समय होता तो ललिता का यह दुस्साहस विनय के हृदय मे तिरस्कार का भाव उत्पन्न करता, किन्तु इस समय उसे ललिता के प्रति विस्मय-मिश्रित श्रद्धा उत्पन्न हो रही थी। वह उसके दुस्साहस के प्रति जितना सोचता उतनी ही उसके प्रति श्रद्धा बढती जाती। अपने आन्तरिक तेज मे जगमगाती हुई ललिता की कमनीया नारी मूर्ति विनय की आखो को एक अपूर्व अहिसा मे जगमगाती हुई प्रतीत होने लगी।

स्टीमर पर दोनो मे कोई विशेष बातचीत न हुई, लेकिन दोना के हृदय स्वत ही एक दूसरे क निकट आ गए, यद्यपि वह निकटता कसी है—यह न वह खुद ही जान पा रहे थे और न किसी ने उसे अभिव्यक्त ही करने का प्रयास किया।

विनय ललिना को साथ लेकर परेश बाबू के घर जा पहु चा। ललिता मन मे बडा आत्मविश्वास और साहस लेकर चली आई थी लेकिन घर आकर परेश बाबू के सामने जाने मे उसके पाव काप उठे। विनय बाहर मे उससे विदा लेकर चला जाना चाहता था, लेकिन ललिता ने उसे न जाने दिया। ललिता मन मे सारा साहस बटोरकर यह सोचते हुए कि उसने कोई अपराध या पाप नही किया है, बल्कि अन्याय का विरोध किया है। उसने घर जाकर परेश बाबू का सब कुछ बता देने का निश्चय किया। लेकिन परेश बाबू उस समय कही बाहर गए हुए थे। उनके आने मे विलम्ब देखकर ललिता ने विनय म कहा—"बाबूजी न जाने कब तक आए , आप इतनी देर क्यो ठहरे ? क्या आप गोरमोहन बाबू की मा के पास नही जाए गे ?" विनय चला गया।

घर आकर परश बाबू ने ललिता को अकेले ही लोटते हुए देखकर अनुमान लगा लिया कि कोई काड करके आई है। परेश बाबू मोन रूप मे ललिता के मुख स सारी घटना सुनने रहे और उन्होने गोरा के विषय मे चिन्ता व्यक्त करते हुए पूछा—"तुम आई किसके साथ ?"

"विनय बाबू के साथ।" ललिता साहस बटोरकर कह गयी। परेश बाबू उसके साहसी स्वभाव से परिचित थे और जानते थे कि उसके साहस मे गाम्भीर्य है , छिछोरापन नही। अत उन्होंने ललिता से कुछ भी न कहा। मन ही इन सोचा कि विनय के साथ अकेली चले आने के कारण काफी समय तक इसे दु ख उठाना पडेगा। ललिता ने उन्हे चुप देखकर कहा—"मै अपने अपराध की गुरुता को जानती हू लेकिन क्या मजिस्ट्रेट के ऐसे अन्याय को देखकर भी उसकी मेहमान बनी रहकर मेरा वहा ठहरना उचित होता ?" परेश बाबू ने मुस्कुराते हुए केवल इतना ही कहा—"तू तो पागल है ललिता।"

दूसरे दिन वरदा सुन्दरी और हारान बाबू सबको साथ लेकर कलकत्ता आ पहु चे। हारान बाबू ललिता के प्रति अपने क्रोध को रोक नही पा रहे थे अत वे आते ही उस सम्बन्ध मे परेश बाबू से बात करने जा पहु चे और वरदा सुन्दरी ने ललिता को मारे गुस्से के देखा तक नही। लावण्य और लीला भी नाराज थी। सुचरिता बेचारी किसी ओर से कुछ भी कह सकने की स्थिति मे न थी।

परश बाबू के कमरे मे घुसते ही हारान बाबू ने कहा—"बहुत बडा अन्याय हुआ है।" ललिता पास के ही कमरे मे थी। अत हारान बाबू की आवाज सुनकर वह भी आकर परेश बाबू की कुर्सी के पीछे खडी होगई। परेश बाबू ने हारान बाबू का उत्तर अत्यन्त शान्त वाणी से दिया—"ललिता से मैने सारी बाते सुन ली है और जो हो गया, उस पर बाते करने से लाभ भी क्या ?" हारान बाबू परेश बाबू पर व्यग और दोषारोपण सा करते हुए बोले—"घटना भले ही बीत जाय पर उसका कलक कभी नही मिटता। यदि ललिता आपसे बढावा न पाती तो वह ऐसा करने का साहस कभी भी न कर पाती।"

ललिता अपने को न रोक सकी—"हारान बाबू, समय आने पर ही आप जान सकेंगे कि सन्तान को सुशिक्षित बनाने के लिए स्नेह की कितनी आवश्यकता है।" इसके बाद उसने परेश बाबू को हठपूर्वक स्नान करने भेज दिया। उनके जाने के बाद कुर्सी पर जमती हुई बोली—"हमारे विषय में हमारे पिताजी को क्या करना उचित है और अनुचित, इसे वे आपकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानते हैं।" हारान बाबू जैसे ही ललिता की इस बात का उत्तर देने को हुए कि बीच में वह बोल पड़ी—"हम लोग आपका बड़ा सम्मान करते रहे हैं, लेकिन आपने यदि अपने को हमारे बाबूजी की अपेक्षा अधिक सम्मान्य समझा, तो इस घर में आपका कोई भी सम्मान न करेगा, नौकर तक भी नहीं।"

हारान बाबू की आंखें लाल हो उठीं—"ललिता, तुम बहुत बढ़ बढ़ कर बातें ।" ललिता बीच में बात काट कर गरज पड़ी—"चुप रहिए अब।" हमने आपकी बातें बहुत सुनी हैं। आप अपने को जितना बड़ा और समझदार समझते हैं, हमारे बाबूजी उससे कहीं बड़े और समझदार हैं।"

हारान बाबू आपे से बाहर होकर कुर्सी से उठते हुए सुचरिता से अपने सम्मान की रक्षा की दुहाई देते हुए बोले—"सुचरिता, क्या तुमको अपने सामने मेरा ऐसा ही अपमान होने देना चाहिए ?" सुचरिता ने शान्त स्वर में कहा—"वह आपका अपमान नहीं करना चाहती, वह चाहती है कि आप बाबूजी का उचित सम्मान करें।"

उसी समय सतीश आकर सुचरिता को अपने साथ घसीट ले गया—"चलो, तुम्हें एक चीज दिखाऊं।" साथ में ललिता भी चली गयी। सुचरिता की मौसी हरिमोहिनी आ गई थी। सतीश उन्हीं से मिलाने के लिए सुचरिता को ले गया था। हारान बाबू अकेले बैठे रह गए। परेश बाबू के स्नान से वापस आते ही उन्होंने विवाह की बात छेड़ दी और कहा कि अगले रविवार को पक्की की रस्म सबके सामने पूरी कर दी जाय।"

—"यह तो सुचरिता की इच्छा पर निर्भर करता है।" परेश बाबू बोले।

—"उनकी इच्छा तो पहले ही मालूम हो चुकी है।"

—"तो फिर ठीक है।"

× × ×

विनय अपने सूने घर को छोड़कर आनन्दमयी के पास ही जाकर रहने लगा था। वह चाहता था कि आनन्दमयी को गोरा का अभाव न अखरे। गोरा ने जेल से आनन्दमयी को एक लम्बा-सा पत्र लिखकर अपनी पूरी स्थिति से अवगत करा दिया था। वह पत्र उनके लिए विशेष सांत्वना का विषय था।

एक दिन आनन्दमयी ने परेश बाबू के परिवार के विषय में विनय से बात छेड़ दी—"परेश बाबू के घर का क्या हाल चाल है ?"

—"सब ठीक ही है।"

—"मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं परेश बाबू की लड़कियों से एक बार भेंट करूं।"

विनय ने उत्साहित होते हुए कहा—"मेरी कई बार इच्छा हुई कि मे उनसे आपकी भेट करा दू, पर गोरा के भय के कारण ऐसा न कर सका।"

बातो ही बातो मे आनन्दमयी ने परेश बाबू के परिवार के सभी सदस्यो और विशेषरूप मे सुचरिता और ललिता का पूरा परिचय प्राप्त कर लिया। बातो मे विनय स्वय ही इन दोनो के विषय मे कुछ अधिक बता गया। आनन्दमयी के स्नेह परिपूरित मन ने परेश बाबू के परिवार के किसी अंश से सम्बद्ध विनय की कोमल भावनाओ को पहचान लिया। उन्हे लगा कि जैसे गोरा के जीवन की जटिलता का समाधान भी कही परेश बाबू के परिवार मे ही है।

यद्यपि महिम की लडकी शशिमुखी का विवाह विनय के साथ करीब-करीब पक्का हो चुका था, लेकिन आनन्दमयी पहिले से ही समझती थी कि शशिमुखी के साथ विवाह करने की सहमति मे अवश्य कही, कोई विनय के मन की विवशता काम कर रही है। यह बात ललिता के विषय मे उसकी बात-चीत से तो और भी स्पष्ट हो गई। अत जब महिम ने विनय और शशिमुखी के विवाह की बात पक्की कर तैयारिया आरम्भ करने की बात की तो उन्हे स्पष्ट करना पडा कि शशिमुखी के साथ विनय का विवाह नही हो सकेगा। आनन्दमयी जानती थी कि इससे महिम मन मे सोचेगा कि सौतेली मा कभी अपनी नही होती, लेकिन जानते पूछते वह कैसे इसे होने दे सकती थी।

महिम के चले जाने के बाद विनय से जाकर उन्होने कहा ही था—"विनय, बहुत समय से तुम परेश बाबू के यहा नही गए?" ये बाते चल ही रही थी कि नोकर ने आकर सूचना दी कि कोई दो स्त्रिया उनसे मिलने आई है। नौकर के पीछे ही पीछे सुचरिता और ललिता ने प्रवेश कर आनन्दमयी के चरण स्पर्श किए, और अपना परिचय देती हुई बोली—"हम परेश बाबू के घर से आई है।"

आनन्दमयी स्नेहपूर्ण मुस्कान के साथ बोली—"मुझे अधिक परिचय की आवश्यकता नही है बेटी। मैने तुम्हे कभी देखा नही, फिर भी घर के आदमी की तरह ही मै तुम्हे जानती हू।"

ललिता ने विनय से पूछा—"आप हमारे घर कई दिनो से क्यो नही आए?"

—"बार-बार आपके यहा जाने से कही आप लोगो का स्नेह खो न बैठू, इसी भय के कारण नही आया।'

सुचरिता हसकर बोली—"लेकिन शायद आप यह नही जानते कि स्नेह बार बार कष्ट देने की ही अपेक्षा रखता है।"

आनन्दमयी बीच मे ही बोली—"सो तो यह कष्ट देना खूब जानता है। इसकी इच्छाए पूरी करते-करते तो मेरी नाक मे दम आ जाता है।"

"मा, शायद ईश्वर मेरे द्वारा तुम्हारे धैर्य की परीक्षा लेता है।" विनय ने कहा।

सुचरिता ललिता को थोडा धक्का-सा देती हुई बोली—"ललिता बहन! हम लोग शायद परीक्षा मे सफल न हो सकी।"

—"अब तो हमारा विनय अपने धैर्य की परीक्षा ले रहा है। आजकल तो तुम लोगो की ही चर्चा उसकी जुबान पर रहती है और परेश बाबू का तो वह बहुत सम्मान करता है। उसके साथी तो उसे ब्रह्मसमाजी कहकर उसे जाति मे अलग कर देना चाहते है।"

आनन्दमयी ने देखा कि ललिता के मुख पर लज्जा मिश्रित हर्ष की लाली दौड गयी, जो आनन्दमयी के मन की अदालत मे, उसके मन के बारे मे कुछ गवाही दे गयी। वे बोली—"तुम लोगो के यहा जाने पर तो इसका कई दिन तक पता भी नही मिलता। सोचा था कि मिलने पर तुम लोगो से झगडा करूगी, पर अब लगता है—मुझे भी इसके ही दल मे शामिल होना पडेगा।"

विनय मारे लज्जा के सिकुडा जा रहा था। उसकी रक्षा करती हुई सुचरिता बोली—"विनय बाबू, बाबूजी भी हमारे साथ आए है। वह बाहर कृष्णदयाल बाबू से बाते कर रहे है।" विनय तुरत उठकर बाहर चला गया। उसके जाने के बाद बातचीत का प्रसग गोरा पर आगया और वातावरण और भी वात्सल्य और स्नेहपूर्ण हो उठा। उस वात्सल्य का भाग सुचरिता और ललिता को भी मिला। ललिता हिदू स्त्रियो को बडा ही अभद्र समझती थी, लेकिन आनन्दमयी को देखकर उसके मन का भाव बदल गया। आनन्दमयी के प्रति श्रद्धा से उसका मन भर उठा। यही हाल सुचरिता का था। पिछले दिनो कलकत्ता वापस आने के बाद से ललिता के मन मे, विनय के प्रति अपने आकर्षण का रूप स्पष्ट होता जा रहा था। नित्य ही वह विनय के आने की प्रतीक्षा करती। सध्या को निराश होकर उसका हृदय फटने लगता और वह बिस्तर पर पडकर रोने लगती, क्रोध करती और सोचती—"मै अपने मन को कैसे समझाऊ ? ऐसे कब तक चलता रहेगा।" वह समझती थी कि विनय के हिन्दू होने के कारण उसके साथ उसका विवाह न हो सकेगा, फिर भी अपने मन को न समझा पाती। आज विनय से भेट करने की अदम्य लालसा से विवश होकर उसने सुचरिता और फिर उसके द्वारा परेश बाबू को, यहा आने के लिए तयार किया था।

उनके चले जाने के बाद विनय बहुत देर तक आनन्दमयी से बात करता रहा। बातचीत का विषय ललिता और सुचरिता ही थी। आनन्दमयी ने एकाएक गहरी सास लेकर कहा—"सुचरिता के साथ यदि गोरा का विवाह हो सके, तो मुझे बडी प्रसन्नता हो।"

विनय ने पूछा—"यह बात तो मेरे मन मे भी अनेक बार आई थी, लेकिन क्या आप ब्राह्म परिवार मे गोरा के विवाह की स्वीकृति दे देगी ?"

—"मुझे बडी खुशी होगी। विवाह की सार्थकता मनुष्य के साथ मनुष्य का मन मिलने मे ही है, मन्त्र पढने न पढने से कुछ नही होता।"

विनय ने विगलित होते हुए कहा—"मा ! तुमने इतनी उदारता कहा से पाई ?"

—"गोरा से।"

—"गोरा से ?"

"हा ! जिस दिन भगवान ने गोरा को मेरी गोद मे भेजा, उसी दिन उन्होने मुझे जाति, पाति, और धर्म के मत मतान्तरो मे ऊपर उठा दिया। यह सब भेद मिथ्या है, केवल मनुष्य सत्य है। मनुष्य की आत्मा की कोई जाति नही होती और न भगवान की ही।"

श्रद्धा विगलित होकर विनय ने आनन्दमयी के चरण स्पर्श किए—"मा, आज के दिन मेरा जीवन सार्थक हो गया। जीवन का वास्तविक तत्व किस सरलता से आज समझ मे आ गया !"

× × ×

सुचरिता की मौसी कट्टर हिन्दू थी। वरदा सुन्दरी का यह बदाश्त न था कि उनके घर मे ही मूर्ति-पूजा का पाखड चलता रहे। उन्होने हरिमोहिनी का घर मे रहना दूभर कर दिया। सुचरिता यद्यपि उनके उस पूजा पाठ को नही मानती थी, फिर भी कोशिश करती कि उसके कारण उन्हे कोई असुविधा न हो। जब वहा रहना दूभर हो गया तो परेश बाबू ने पडास मे ही सुचरिता के मकान का साफ कराकर उसमे उनके रहन का प्रबन्ध कर दिया। सुचरिता को भी अपने इस मकान का पता न था। वस्तुत सुचरिता के पिता परेश बाबू के पास सुचरिता और सतीश के लालन-पालन के लिए कुछ धन छोड गए थे। परेश बाबू ने उन्ही से सुचरिता के नाम दो मकान खरीद लिए थे। यह उन्ही मे मे एक था। सुचरिता को मौसी के पास रहना पडता था, अत यदि मन मे नही तो व्यवहार से उसे हिन्दू आचार विचारो पर चलना पड रहा था। मौसी के मुख मे ही उनके जीवन की करुण कहानी को सुनकर कि कैसे वह विधवा हुई, उनकी सन्तान की मृत्यु हो गई और देवरो ने भुलावा देकर सारी जमीन हडप ली सुचरिता के मन मे उनके प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो गयी थी।

सुचरिता को हिन्दू आचार विचारो का पालन करते देखकर हारान बाबू और वरदा सुन्दरी को सबसे अधिक चिन्ता होने लगी थी। ब्रह्मसमाज मे भी यह चर्चा का विषय हो गया था। वरदा सुन्दरी हारान बाबू दोनो ही सुचरिता के विवाह को जल्दी से जल्दी कर देने पर जोर देने लगे। सुचरिता का मन हारान बाबू से पहिले से ही खिन्न था, अब उसने विवाह स साफ मना कर दिया।

विनय फिर परेश बाबू के यहा आने जाने लगा था। वह भी हरिमोहिनी के पास अधिक उठने बैठने के कारण वरदा सुन्दरी और हारान बाबू के कोप का पात्र बन गया। विनय और ललिता का परस्पर आकर्षण इतना अधिक बढ गया कि सभी की दृष्टि मे वह स्पष्ट हो चला। हारान बाबू ने परेश बाबू मे आग्रह किया कि वह सुचरिता का उससे विवाह करने की सलाह देकर, उसे समाज से दूर होने से रोके। लेकिन परेश बाबू ने उनकी बात पर विशेष ध्यान न दिया। हारान बाबू अब खुल्लमखुल्ला परेश बाबू का समाज मे विरोध करने पर उतर आए। समाज मे ललिता और विनय को लेकर चर्चा फैल गयी कि ललिता एक हिन्दू से विवाह करने जा रही है। वरदा सुन्दरी ने विनय से कहा कि वह ब्राह्म-मत स्वीकार कर ले। उसके अस्वीकार करने पर घर के दरवाजे उसके लिए बन्द कर दिए गये।

अन्त मे विनय न ब्राह्म मत स्वीकार करने का ही निश्चय किया और जाकर, अपने निश्चय क प्रति वरदा सुन्दरी को सूचित कर दिया। निश्चय हो गया कि रविवार के दिन वह ब्राह्म मत स्वीकर कर लेगा। आनन्दमयी से जब उसन अपना निश्चय बताया तो उन्होंने कहा—"विवाह के लिए मत की एकता की अपक्षा मन की एकता आवश्यक है। तुम्हे मत परिवर्तन की कोई आवश्यकता न पडेगी।" ललिता भी मत परिवर्तन स्वाभिमान के विरुद्ध समझती थी। वह सीधी आनन्दमयी से मिलने गयी और बोली—"उनके दीक्षा लेने की क्या आवश्यकता है मा ?"

—"आवश्यकता नही है ! और फिर वह तो वचन भी दे चुका है।"

—"ऐसे मामले मे वचन देकर उसे बदला भी जा सकता है।"

—"लेकिन विनय तो यह समझता है कि तुम्हें पाने के लिए उसे दीक्षा लेना आवश्यकता है।

'नही ! हमारे उनक मिलने मे धर्म की काई बाधा उपस्थित नही हो सकती। हमारा मिलन ब्राह्म या हिन्दू के रूप मे न होकर, मनुष्य के रूप मे होगा।" फिर सारा सकोच त्यागकर विनय से बोली— "आप स्वय को छोटा कर मुझे प्राप्त करे, मै उसे सहन न कर सकूगी।"

× × × ×

गोरा जेल से छूटकर आ गया था। उसे आते ही विनय और ललिता के सम्बन्ध मे पता चल गया। वह किसी प्रकार विनय का साथ देने को तैयार न था। उसे सुचरिता के विषय मे भी पता चल गया कि वह अपनी मौसी के साथ अलग रहने लग गयी है। सुचरिता भी मन ही मन मे गोरा के प्रति आकर्षित होती जा रही थी। उसने गोरा की लिखी पुस्तको को पढ लिया था और उसके सिद्धान्तो पर अपना मन जमाने का प्रयास कर रही थी। गोरा जेल से छूटकर आन के बाद सुचरिता से मिलने जाने लगा। हरिमोहिनी सुचरिता के मुख से ही उसकी आचार निष्ठा सुनकर उसके आने पर बडी प्रसन्न हुई। गोरा और सुचरिता की बाते अब निबाध रूप मे होती और धीरे धीरे गोरा की बातें सुचरिता पर प्रभाव जमाती जा रही थी। गोरा न उसे बताया—"हिन्दू धर्म माता के समान है, जिसकी गोद मे सभी मतो को वात्सल्य प्राप्त होता है।"

गोरा का सुचरिता क यहा जाना नित्य का क्रम हो गया। सुचरिता का मन बडे वेग से उसकी ओर खिचता चला आ रहा था। यह बात न आनन्दमयी से छिपी रही, न विनय से और न हरिमोहिनी से ही। गोरा का मन भी उसके प्रति आकर्षित था पर इस आकर्षण का रूप क्या है, यह उसके मन मे स्पष्ट न था। अत एकाएक जब हरिमोहिनी न गोरा से साफ-साफ कहा कि उसका सुचरिता से रोज रोज एकान्त मे बात करना उचित नही तो एकाएक उसका मन झकझोर उठा और उसने सुचरिता क यहा जाना बन्द कर दिया।

उधर विनय स्वतन्त्र रूप से अपने विवाह की तैयारियो मे लगा था। आनन्दमयी उसमे पूरा सहयोग दे रही थी। शशिमुखी का विवाह भी अविनाश के साथ होना निश्चित हो गया था। महिम ने साफ कह रखा था कि वह अब इस घर म नही आ सकता। गोरा ने भी आनन्दमयी से आग्रह किया कि

वह उसके विवाह मे सहयोग न दे लेकिन आन दमयी ने कहा —"मै अगर उसका साथ न दूगा तो फिर कौन देगा।" परेशबाबू भी विवाह मे सहयोग दे रहे थे।

इस पर गोरा ने प्रायश्चित करने का निश्चय किया। उसके दल के लोग बडी धूम धाम म उसकी तैयारी मे जुट गये।

गोरा ने एक बार विनय स भी उसके विवाह के सम्ब ध मे बात करो का निश्चय किया। गोरा की बातो का उत्तर देते हुये विनय ने कहा—"मै समाज रूपी राक्षस को शा त करने क लिए मनुष्य की बलि चढाने का पक्षपाती नही हू और न ऐसे समाज की ज जीर ही अपने गले मे बाधने का तैयार हू ।

हरिमोहिनी ने सोचा कि वह सुचरिता का विवाह अपने देवर मे कर देगी। उ होने एक पत्र लिखकर उसे बुला भी लिया लेकिन सुचरिता ने उससे विवाह करने से साफ मना कर दिया।

गोरा पूरी तत्परता से प्रायश्चित के काम मे जुट गया। दूर-दूर मे विद्वानो को निमन्त्रित किया गया था। वह केवल गोरा का प्रायश्चित उत्सव ही न था वरन् हि दूधर्म की प्रतिष्ठा के उत्सव को वृहद रूप प्रदान किया जा रहा था। कृष्णदयाल बाबू ने गोरा को प्रायश्चित करने स रोकने का प्रयास किया, लेकिन गोरा प्रायश्चित करने से किसी प्रकार न रुका।

जिस समय उसका प्रायश्चित सस्कार हो रहा था, उसी बीच उसके एक साथी ने आकर सूचना दी कि उसके पिता अचानक अस्वस्थ हो गए है, उनके मु ह से खून जाने लगा है — गोरा को तुर त घर जाना चाहिए।

गोरा उसी समय भागता हुआ घर आया। कृष्णदयाल बाबू ने उसे अपनी शैय्या के निकट बुलाकर बडे ही क्षीण-स्वर मे उसके ज म की सारी कहानी उसे सुना दी। आन दमयी भी उस समय कृष्णदयाल बाबू की शैय्या के पायतान बैठी थी। अपने ज म की कहानी सुनकर गोरा की आखो के सामने सारी सृष्टि चक्कर काट उठी। एक क्षण मे वह बदल गया।

वह कृष्णदयाल बाबू से परेश बाबू के यहा जाने की आज्ञा मागकर सीधा उनके यहा पहुचा।

जब वह उनके यहा पहुचा उस समय वह शिमला जान की तैयारी मे व्यस्त थे। ललिता के विवाह से अप्रस न होकर सारा घर और समाज उससे अस तुष्ट हो गया था, अत उन्होने कुछ दिनो शाति लाभ के लिए सब झगडो से दूर, शिमला जाने का निश्चय किया। वे अकेले ही जाने की तैयारी कर रहे थे। परेश बाबू की स्थिति को देखकर सुचरिता को रोना आ गया। उसने कहा कि वह परेश बाबू को अकेला न जाने देगी, खुद साथ चलेगी।

जब गोरा ने परेश बाबू के कमरे मे प्रवेश किया उस समय सुचरिता दरवाजे की पीठ किए, बक्स मे कपडे रख रही थी। उसे आया जानकर झट-पट आखे पोछकर वह खडी हो गयी।

गोरा अब भी प्रायश्चित के समय के पवित्र रेशमी वस्त्र पहने हुए था। मस्तक पर तिलक लगा हुआ था। उसके उस वेश को देखकर सुचरिता को गोरा के उस दिन का वेश याद हो आया,

जिस दिन प्रथम बार वह विनय के साथ इस वर मे आया था, उसन मन मे साचा कि क्या यह आज भी उसी युद्ध का पहनावा हे।

गोरा ने आते ही परेश बाबू क चरणो पर माथा रखकर प्रणाम् किया। परेश बाबू न घबडा कर उमे बाहो मे भरकर उठा लिया।

गोरा ने कहा –"अब मैं पूर्ण स्वत त्र हू ।"परेश बाबू ने व्यग्र होकर पूछा – 'क्या मतलब।"

—" मे हि दू नही ।"

— 'हि दू नही हो ?"

—"हा।" और गोरा ने परेशबाबू को अपने ज म की सारी कथा सुना दी और बोला–"आज मै न हि दू हू और न अ य कुछ, मै शुद्ध भारतीय हू । भारतीय–जिसका हि दू, मुसलमान, ईसाई किसी से विरोध नही है। जीवन के सत्य को पाने के लिये आज तक मै भटकता रहा, वह मुझे मिल गया है। आज अपने भ्रम से मुक्ति पाने क बाद सर्व प्रथम आपके पास क्यो आया। हू ?

—"क्यो ?"

—"क्योकि इस मुक्ति का म त्र आपके ही पास है। मुझे आप अपना शिष्य बना लीजिए। आप मुझे उसी देवता का दर्शन दीजिए जो हि दू, मुसलमान, ईसाई, ब्राह्म सभी का है, जिसका द्वार किसी के लिए ब द नही हे।"

सुचरिता—आनन्द, आश्चर्य, कोतूहल मिश्रित भावो मे भरी एक टक गोरा को देख रही थी। गोरा ने हसकर उससे कहा—"अब में तुम्हारा गुरु नही हू सुचरिता, बल्कि मेरा हाथ पकडकर तुम मुझे अपने गुरु के पास ले चलो।" यह कहकर गोरा ने अपना दाहिना हाथ सुचरिता की ओर बढा दिया। सुचरिता ने उसके पास आकर अपना हाथ गोरा के हाथ पर रख दिया और तब गोरा और सुचरिता ने साथ साथ परेश बाबू को प्रणाम् कर उनके चरणो का आशीर्वाद प्राप्त किया।

× × ×

परेश बाबू के यहा से लोटने पर गोरा ने वर वापस आकर आनन्दमयी से कहा —" मा ! अब बुलाओ लछमनिया को, मै उसके हाथ का पानी पीऊ गा"

[सार सक्षेप—रामगोपालसिह चौहान]

●

शतवर्षोपरांत

•

अनु०—त्रिलोकीप्रसाद

सौ वर्षा के बाद आज क्या ढूंढ रही हो
जिज्ञासातुर तरुणी, तुम मेरी कविता में ?
नव बसन्त के उष काल की एक मधुर उल्लासी सिहरन
एक विहंसता फूल और प्रेमाकुल किसी विहग का मधुरिम गीत
तुम्हारे पास भेज पाने को मैं सामर्थ्यहीन हूं।
फिर भी तुम ओ अमित सुन्दरी !
सौ वर्षों के बाद
आज अपने गृह के दक्षिणी-द्वार के वातायन में—
बैठी हो तुम लेकर मेरी काव्य धरोहर
दिग् दिगन्त मे अवगाहन करती हो तुम कल्पना परी सी।
एक दिवस
सौ वर्ष पूर्व जब स्वर्गपुरी मे चचल पुलक राशि चमकी थी
फाल्गुन के दिन दक्षिण का सुरभित समीर—ले फूलो का स्वर्णिम पराग
गाता चलता था तरुणाई के गीत—
सहज, निर्बन्ध और उन्मुक्त, विचचल किसलय सदा डुला जाता था,
मस्ती भरा हृदय कवि का उस दिन जाग्रत था।
कितने अनगिन फूल उसी दिन अपरिमय अनुराग-राग मे फूल उठे थे।
किन्तु आज सौ वर्ष बाद
वैसे ही नूतन मधुरिम गीतो का गायक कवि
कौन तुम्हारे घर आया है ?
नव वसन्त सा मैं उसका आलोक पथ पर अभिनन्दन करने चलता हूँ।
सौ वर्षों के बाद आज मेरी यह उत्कट अभिलाषा है
मेरा यह बसन्त सा सुरभित गीत
तुम्हारे स्पन्दनशील हृदय मे वशीरव सा ध्वनित हो उठे।

•

निर्झर का स्वप्न-भग

अनु०— शम्भुनाथ सिह (डा०)

आज प्रात प्रात विहग ने
कौन गीत यह गाया रे!
दूर बहुत दूर गगन से
जिसका यह स्वर आया रे!
आ पहुची मुझ तक कैसे,
उसकी यह पथ भूली तान?
अन्ध गुफा मे भ्रम-भ्रम कर
गहन गुफा मे उतर उतर
रो रो कर जो हो कातर
परस रही है मेरे प्राण!
क्यो सहसा आज प्रात मे
रवि किरने राह भूल कर,
अनिकेतन आ पहुची है
मेरे प्राणो के भीतर?
बहुत दिनों बाद गुफा मे
आज, रवि-किरन को देखा,
खिची आज मेरे तम मय
जल पर सोने की रेखा!
रुक न पा रहा है आवेग,
कम्पित थर-थर जल का वेग,
टल-मल जल करता थल-थल
कल-कल कर छेड रहा तान!
जाने क्यो आज प्रात मे
जाग उठे है मेरे प्राण!
जाग देखता चारो ओर—
अपने, प्रस्तर-कारा घोर!
छाती पर बैठ अन्धकार
करता है अपना ही ध्यान!
जाने क्यो इतने दिन बाद
जाग उठे है मेर प्राण?
जाग देखता कि अन्ध-सा
तम मे, मै स्वय से बधा,
निज स्वर मे ही रहा मगन,
प्रतिध्वनि सुनते रहे श्रवण!
दूर, भेद तम की कारा
दिख जाता सन्ध्या-तारा,
उसका ही देख मुख उदार
हसना सीखता अन्धकार,
देख वही मुख, करता है
अन्धकार निशि का अवसान!
सिहर सिहर उठता रे जल
डोल डोल जाते रे प्राण!
प्राणो के ऊपर तिर-तिर
हास डोलता वह अस्थिर,
डोल रहा है प्राणो पर
मेरी आशा का सपना!
डोल रही तारक-छाया
सुख का आभास ज्यो घना!
और कभी-कभी किसी दिन
नभ हो जाता प्रकाश हीन,
घन-छाया से जल काला
बन जाता और भी मलीन!
अन्धकारमय इस जल पर
करता है जल झर झर झर!

झरता है निशि-दिन अविरल
वर्षा का दुख, आसू-जल !
सोया सोया मै दिन-रात
अनमना बना सुनता हू !
उनमे से एक एक को
मन मे निशिदिन गुनता हू !
उसके ही सग स्वर मिला
गाता हू मै कल-कल गान !
इस कल-कल झर-झर रव मे
रात्रि-दिवस का न रहा ज्ञान !
यो अपने को ही लेकर
रहता हू मै अपने पास !
मेरे इस तममय जल पर
करता है अन्धकार त्रास !
यो मै अपने ही आगे
खोला करता अपने प्राण !
यो ही मै औरो के पास
सुनता रहता अपने गान !
रवि-किरने आज प्रात की
प्राणो पर किस तरह घिरी !
कैसे तमपूर्ण गुफा मे
आ पहुचा प्रात-विहग-गान !
जाने क्यो इतने दिन बाद
जाग उठे है मेरे प्राण !
प्राण जगे, जल उछल उठे !
प्राण-वासना, उर आवेग
रोके से रुक न पा रहे !
काप रहे थर-थर भूधर
टूट-टूट गिरते पत्थर !
क्रोध से भरा फेनिल जल
भरता दारुण गर्जन-स्वर !
पागल बन कर इधर उधर
व्यर्थ काटता है चक्कर
चाह रहा बाहर जाना
पर दीखता न कारा-द्वार !
आज छीनने को ज्यो प्रात
फाड डालने को नभ गात
उठता ऊपर लेकिन फिर
गिर कर करता हाहाकार !
चाह रहा वह, यो छूटे—
सहोत्साह, गिरि-उर फूटे !
चाह रहा आलिगन को
बाहु तोल नभ मे उठ्ठे !
चाह रहा प्रात किरन मे
पागल हो जग मे लोटे !
प्रभु, क्यो इतनी शिला कठोर ?
क्यो उसका बन्धन सब ओर ?
तोड रे हृदय बन्धन तोड,
प्राणो के सब साधन जोड
लहरो पर तू उठा लहर
चोटो पर और चोट कर !
मत्त हो उठे है जब प्राण
कैसा तम, कैसे पाषाण ?
उद्वेलित जब कि वासना
फिर जग मे है किसका डर ?
आज देख कर मुझे लगा
सहसा क्यो जग-मुख नूतन ?
एक विहग की आधी तान
गाती ज्यो जग का गायन !
बाहर जाकर जग देखू
आज चाहता मन अपना !
बैठ गुहा के कोने मे

देखू गा अब क्यो सपना ?
ढालू गा करुणा धारा,
तोड़ू गा प्रस्तर कारा,
प्लावित कर दू गा गा गा—
पागल सा, यह जग सारा !
केश खोल, फूल जुटा कर
इन्द्रधनुष के पख उडाकर
बिखरा कर हास किरण मे
नये प्राण मै ढालू गा !

दौड़ू गा शिखर शिखर पर
लोटू गा भूधर भूधर !
खिल-खिल हस, कल कल गाकर
तालो पर ताली दू गा !

बह निकलू गा बन सरिता
जाऊ गा बहता बहता
हृदय-कथा कहता कहता
गाता जाऊ गा मै गान !

जितना दू, बह जायेगे,
शेष न होगे पर ये प्राण !

इतने है कथा और गान,
है इतने प्राण ये अथोर !
इतने ये सुख, इतनी साध !
प्राण आज हो गये विभोर !
है इतने सुख इतने रूप
है इतने खेल कहा पर ?
यौवन के वेग मे बहा
जाऊ किसके निकट किधर ?
आशा-वासना है असीम
जग को देखू है यह चाह !
साध जगी, विश्व डुबाता
बहता जाऊ अपनी राह !

ढाल सकू है जितने प्राण
वहन करू काल का प्रमाण !
डुबा सकू, है जितना देश
और कुछ नही मेरी चाह !

जाने क्या आज हो गया
जाग उठे है मेरे प्राण !
सुनता हू बहुत दूर से
जैसे मै महासिन्धु गान !

प्रस्तर के बन्धन टूटे
भीग जाय यह कठिन धरा !
क्षण मे सब फूल खिल उठे
कर दू वन को हरा भरा !
अपना सब प्राण ढाल कर
कर लू जब जग-उर शीतल,
आयेगा कौन प्राण मे ?
आओगे तुम्ही मुस्करा !
जाऊ गा आज जहा मै
भला कौन सा है वह देश !

ढालू गा मै जग मे प्राण,
गाऊ गा मै करुणा-गान
है उर आवेग से अधीर
जा सुदूर सिन्धु मे गभीर
प्राणो को लीन करू गा
गान करू गा निज नि शेष !

ओ रे, मेरे चारो ओर,
यह कैसा कारागृह घोर ?
तोड तोड तू यह कारा,
आघातो पर कर आघात !
गाया क्या गान विहग ने
आयी जब किरन आज प्रात ?

मुक्ति



अनु०– नद चतुर्वेदी

वैराग्य साधनो की मुक्ति
वह मेरी नही
सृष्टि के इन्ही असख्य
बधनों मे भर लूगा
मुक्ति का आनद,
मुक्ति का स्वाद।
इसी, इसी वसुधा की मृत्तिका के पात्र मे,
बार-बार भर कर
नाना वर्ण, गन्धमय
अमृत को ढालूगा
अहर्निश, अविरल।
तुम्हारे ही मदिर की शिखा मे
दीपक की भाति
जीवन की मेरी लक्ष वर्तिकाये जलेगी
तुम्हारे ही मदिर मे भरेगी आलोक।
इन्द्रियो का दमन, योगासन
साधना के पथ यह मेरे नही।
दृश्य, गध, गायन के सुख मे
सीमित है प्रभु!
तुम्हारा आनन्द
मोह मेरी मुक्ति मे जलेगा
प्रेम मेरी भक्ति मे फलेगा।



जाने न दूंगी

अनुवादक

हंसकुमार तिवारी

दोपहरी की वेला, गाडी द्वार खडी थी,
धूप शरत् की क्रम से होने लगी कडी थी।
धूल उडे मध्याह्न पवन मे सूने पथ पर,
बस्ती के। पीपल के छायातल मे सुखकर
थकी भिखारिन फटा पुराना वस्त्र बिछाकर,
निद्रा मे सो गई, रही झा-झा जैसे कर
धूपमयी रजनी, चहुँदिसि सुनसान सन्न सी,
केवल मेरे घर विराम की नीद नही थी।

•

गया क्वार। पूजा की छुट्टी बीत चुकी थी,
मुझे लौट जाना था अपनी दूर देश की
कर्मभूमि मे। नौकर-चाकर जुटे हुए थे,
असबाबो को बाध रहे रस्सा-रस्सी से।
घर मे मची हुई हलचल सी इधर-उधर थी–
बेचारी गृहिणी, आखे थी छलछल करती,
पडा कलेजे मे पत्थर-सा कसक रहा था
रो लेने का समय न उसको किन्तु जरा था
फिर भी, मुझे विदा देने की तैयारी मे
घूम रही थी व्यस्त, न पूरा लगता जी मे
जितना बढता बोझ, कहूँ मै करती हो क्या
इतना घट, इतना पट, हाडी ढक्कन, मटका
बोतल बक्स बिछौना यह सब दुनिया भर का
होगा भी क्या आखिर! रख जाऊ कुछ बोझा
कुछ ले जाऊ साथ।

•

मगर मेरे कहने पर—
कौन भला दे कान ?–"अचानक अगर वहा पर
इस उसकी पड जाय जरूरत आखिर को तो ?
उस विदेस मे कहा भला मिलने का बोलो!
सोना मूग, वासमती चावल, पान-सुपारी
उस हाडी मे कई एक है ढकी सवारी—
गुड की भेली। कुछ कुछ सूखे नारिकेल है
दो बर्तन भरकर सरसो का शुद्ध तेल है,
अमचुर थोडा और अमावट, दूध सेर दो
चूरन और दवाओ के सीसी-डब्बे जो
थोडी रही मिठाई उस हाडी के भीतर
सर की कसम, भूलना मत, खाना खयाल कर।"
समझ गया, समझाना व्यर्थ इसे है कुछ भी-
चीजे जमकर हुई प्राय पर्वत सी ऊँची।
घडी कलाई की देखी, फिर मुडा उधर को,
देख प्रेयसी को अपनी धीरे बोला—"तो
जाऊ मै।" झट फेर लिया उसने मुख चचल
गर्दन झुका आख पर अपनी खीचा अचल
लिया अमगल आसृजल को यो गोपन कर।

•

बैठी थी अनमनी द्वार के अपने बाहर
बिटिया मेरी चार साल की। अब तक लेकिन
हो जाता था उसका स्नान समाप्त और दिन,
गए न गए कौर दो उसके मुह मे दाने
पलके मुद आती निद्रा से। उसे न मा ने

आज निहारा। इतनी बेला हो आई पर
नही हो सका स्नान न भोजन। मुझसे सटकर
छाया सी वह बच्ची घूम रही थी अब तक
और देखती थी मूरत-सी मौन एकटक
तैयारी जाने की मेरी। अभी अभी ही
दरवाजे पर क्या जाने क्या सोच थकी-सी।
बैठी थी चुपचाप। कहा यह मैने जैसे
"बिट्टो, तो मै आऊ ?" दृग उदास कर वैसे
कहा मलिन मुख "जाने तुम्हे नही दूगी मै।"
मैने देखा, बैठी थी वह जहा वही है
पकडी बाह न, नही द्वार ही मेरा रोका
दावा केवल किया स्नेह-अधिकार हृदय का—
"जाने तुम्हे नही दूगी मै" यह जतलाया।
फिर भी हाय, समय जाने का हो ही आया।
जाने देना पडा।



मूढ ओ बिटिया मेरी,
बता कौन तू, पाकर शक्ति कहा की क्यारी,
बाली ऐसी बात और इतनी स्पर्द्धा से,
'जाने तुम्हे नही दूगी मै' किसको कसे
पकडे रख पाएगी उन नन्हे हाथो से।
अरी हठीली! भला लडेगी किससे किससे
बैठ द्वार पर अपने नन्ही थकी देह से,
केवल लिए लबालब अपने हृदय-स्नेह से।
व्यथित हृदय से डरते-डरते लज्जित होकर
जाहिर करना सिर्फ सोहता है विनती भर
यहा जगत मे। यह कहना—"जाने देने को
नही चाहता जी" है कौन यहा बोले जो
'जाने तु हे न दूगा'—सुन तेरे शिशु-मुख से
अरी, स्नेह की यह गर्वित वाणी, कौतुक से
खीच लिया ले गया मुझे ससार विहसकर
पराभूत केवल तू आखो मे आसू भर
बैठी ही रह गई मूर्ति सी दरवाजे पर।
मैने देखा, और चल दिया आख पोछकर।
चलते हुए निहारू दाए-बाए पथ के
शस्य भार से नवकर सारे खेत शरत के
धूप तापते है। कतार मे तरु सब सारे
ताक रहे है खडे सडक के उभय किनारे
अपनी छाया। भरी शरत् की गगा मचली
बही जा रही। एक खड सादी सी बदली
पीकर दूध अघाकर मा का सुख से सोया,
अभी अभी का जन्मा बछडा, ऐसी गोया–
नील गगन मे लेटी उज्ज्वल दूर अनावृत
थकी हुइ युग-युग की दिगदिगत तक विस्तृत
देख धरा को फेका मैने एक दीर्घ निश्वास।
कैसे गहरे दुख मे डूबा है सारा आकाश,
यह धरती। जितनी ही दूर लगा मै बढने

लगा करुण सुर एक वही कानों मे पडने
'जाने तुम्हे नही दूगी मै, एक ओर से
धरती के, अबर के सबसे शेष छोर से
गूज रहा चिरकाल अनादि अनत वही रव
'नही-नही, जाने मै तुम्हे नही दूगा' सब
कहते 'जाने तुम्हे न दूगा।' तुच्छ बहुत ही
दूब, उसे भी जकड कलेजे से मा धरती
कहती जी से 'तुम्हे नही जाने देने की।'
आयु क्षीण दीए की लौ बुझती बुझतीसी
कौन खीचता उसे अधेरे के जबडे से
कहते हुए 'नही तुमको जाने दूगा रे।'
यह चर अचर अनत स्वर्ग से लेकर भू तक
यही पुरानी बात सभी से, सबके घातक
रोना जग का, 'जाने तुम्हे नही दूगा मै'
तो भी जाने देना पडता, चल देता है।
ऐसे ही आये अनादि युग से हम राही
पकडे धार सृजन की प्रलय समुद्र प्रवाही
व्यग्र बाह फैलाए जलती आखो बहते
'नही,नही जाने दूगा' यह कहते कहते।
हू-हू करके प्रबल वेग मे बह जाते सब
तट पर जगती के भरकर कातरता कलरव ।।
पिछली लहर पुकारे आगे की तरग को
'नही, नही जाने दूगी' सुनता न किन्तु तो
कोई, उत्तर नही।

आज चारों दिश से आ
अविश्राम मेरे कानो मे बज बज उठता
अतर भेदी करुणा-क्रन्दन वही विश्व का
मेरी बिटिया की वाणी मे। शिशुओ जैसा
बोल अबोध जगत का मानो। सदा सदा से
जो भी पाता खो देना है, तो भी लो रे
ढीली नही हुई मुट्ठी, तो भी तो अविरत
चार साल की मेरी उस बच्ची सी सतत
अचल प्रेम के गौरव से कहता पुकार कर
'जाने दूगा नही' म्लान मुख आसू भर भर
हर क्षण हर पल टूट टूट जाती उसकी जिद
लेकिन प्रेम न हार मानने वाला हर्गिज
रुधे कठ विद्रोह भरा कहता यह निश्चय
'जाने दूगा नही,' लाख क्यो हो न पराजय
उतना ही कहता, करता हू जिसे प्यार मै
मुझे छोड वह दूर भला जा भी सकता है ?
मेरी आकाक्षा जैसी अकुलाई इतनी
इतनी अतिया कूलहीनता मेरी जितनी
इतना प्रबल और कुछ दुनिया मे है भी क्या ?
यह कहकर वह दर्प भरी घोषणा सुनाता—
'जाने दूगा नही' नजर तत्क्षण ही आता
सूखी सी नाचीज धूल सा ही उड जाता
एक सास मे उसके बड जतन का धन तो!
उमडे आसू मे खो जाते विकल नयन दो।।

छिन्नमूल तरु–सा पृथ्वी तल पर पडता गिर
झुका शीश हतगर्व। प्रेम कहता है फिर-फिर
सत्य भग होगा न दैव का। उनका मुझको
अगीकर मिल चुका है स्वाक्षर वाला जो
चिराधिकार लिपि। इसीलिए तो वक्ष फुलाए
शक्तिमान जो मरण सामने है मुह बाए

•

कहे खडी उससे मृदु देहलता वह दुबली
'मरण, नही हो तुम!' ऐसी वाणी गर्वीली!
मृत्यु विहसती बैठ। मरण पीडित चिरजीवी
उसी प्रेम ने ढक रक्खी यह सारी जगती,
सकल विश्व को। दुखी उदास नयन के ऊपर
अश्रु-वाष्प सा, व्याकुल आकाक्षाओ से भर
चिर कपित उर। आशाहीन श्रात यह आशा
घेरे यहा पडी है एक विषाद कुहासा
अखिल विश्वमय।

•

तिर–तिर आती आज नयन मे
पडी हुई है निखिल विश्व को घेर जकडकर
स्तब्ध सकातर। चचल सरिता की धारा पर
जडी हुई है जैसे एक अचचल छाया,
अश्रु वृष्टि से भरी हुई किस धन की माया!

•

इसीलिए सुनाता हू तरुओ के मर्मर मे
इतनी व्याकुलता। अलसित मध्यान्ह प्रहर में
अलसाई बयार करती है नाहक खेल।
सूखे पत्तो से। बीती जाती है वेला।

•

मीठे सुर रोती मानो अनत की बासी
जगती के प्रातर मे! सुनकर उसे उदासी
वसुधरा बैठी है केशराशि बिखरा कर
दूर प्रसारी शस्य क्षेत्र मे, गगा तट पर
रौद्र पीत फैलाए एक सुनहला अचल
वक्षस्थल पर अपने! दोनो नग्न अचचल
दूर नील नभ मे खोए से। शब्द न होठो
मैने देखा उस उदास मुख को इन आखो
वही द्वार पर लीन मौन मर्माहत ऐसी—
बैठी मेरी चार साल की बिटिया जैसी।

•••

उर्वशी
(मूल–बंगला)


नग्न हृदया चित्र–रवि ठाकुर

नह माता, नह कन्या, नह वधू, सुन्दरी रूपसी, हे नन्दनवासिनी ऊर्वशी ।

गोष्ठे यबे सन्ध्या नामे श्रान्तदेहे स्वर्णाञ्चल टानि,
तुमि कोनो गृहप्रान्ते नाहि ज्वालो सन्ध्यादीपखानि,
द्विधाय जडितपदे कम्प्रवक्षे नम्र नेत्रपाते
स्मित हास्ये नाहि चलो सलज्जित बासरशय्याते स्तब्ध अर्धराते ।
उषार उदयसम अनवगुण्ठिता तुमि अकुण्ठिता ।। १ ।।

वृन्तहीन पुष्पसम अपनाते आपनि विकशि, कबे तुमि फुटिले ऊर्वशी ।
आदिम वसन्त प्राते उठेछिले मन्थित सागरे,
डान हाते सुधापात्र, विषभाण्ड लये बाम करे,
तरङ्गित महासिन्धु मन्त्रशान्त भुजङ्गेर मतो
पडेछिल पदप्रान्ते, उच्छ्वसित फणा लक्ष शत करि' अवनत ।
कुन्दशुभ्र नग्नकान्ति सुरेन्द्रवन्दिता, तुमि अनिन्दिता ।। २ ।।

कोनोकाले छिले ना कि मुकुलिका बालिकावयसी हे अनन्तयौवना ऊर्वशी ।
आँधार पाथारतले कार घरे बसिया एकेला
मानिक मुकता लये करेछिले शैशवेर खेला,
मणिदीप दीप्तकक्षे समुद्रेर कल्लोलसङ्गीते
अकलङ्कहास्यमुखे प्रवाल–पर्यङ्के घुमाइते, कार अङ्कटिते ।
यखनि जागिले विश्वे, यौवने गठिता, पूर्ण प्रस्फुटिता ।
युग युगान्तर हते तुमि शुधु विश्वेर प्रेयसी, हे अपूर्व शोभना ऊर्वशी ।

मुनिगण ध्यान भाङि देय पदे तपस्यार फल,
तोमारि कटाक्षघाते त्रिभुवन यौवनचचल,
तोमार मदिर गन्ध अन्धवायु वहे चारिभिते,
मधुमत्त भृङ्गसम मुग्ध कवि फिरे लुब्ध चिते, उद्दाम सङ्गीते।
नूपुर गुंजरि, याओ आकुल अंचला विद्युत्-चचला ॥ ३ ॥

सुरसभातले यवे नृत्य करो पुलके उल्लसि हे विलोल हिल्लोल उर्वशी।
छन्दे-छन्दे नाचि उठे सिन्धुमाझे तरङ्गेर दल,
शस्य शीर्षे सिहरिया कांपि उठे धरार अंचल,
तव स्तनहार हते नभस्तले खसि पडे तारा,
अकस्मात् पुरुषेर वक्षोमाझे चित्त आत्महारा, नाचे रक्त धारा।
दिगन्ते मेखला तव टुटे आचम्बिते, अयि असवृते ॥ ४ ॥

स्वर्गेर उदयाचले मूर्त्तिमती तुमि हे उषसी, हे भुवन मोहिनी उर्वशी।
जगतेर अश्रुधारे धौत तव तनूर तनिमा,
त्रिलोकेर हृदिरक्ते आंका तव चरण-शोणिमा,
मुक्तवेणी विवसने, विकसित विश्व वासनार
अरविन्द माझखाने पादपद्म रेखेछ तोमार अति लघुभार।
अखिल मानसस्वर्गे अनन्त रंगिणी, हे स्वप्न सङ्गिनी ॥ ५ ॥

ओइ सुनो दिशे दिशे तोमा लागि कांदिछे क्रन्दसी हे निष्ठुरा बधिरा उर्वशी।
आदियुग पुरातन ए जगते फिरिवे कि आर,
अतल अकूल हते सिक्तकेशे उठिवे आवार,
प्रथम से तनुखानि देखा दिवे प्रथम प्रभाते,
सर्वाङ्ग कांदिवे तव निखिलेर नयन आघाते वारिबिन्दु पाते।
अकस्मात् महाम्बुधि अपूर्व सङ्गीतेर वे तरङ्गिते।
फिरिवे ना फिरिवे ना, अस्त गेछे से गौरवशशी, अस्ताचलवासिनी उर्वशी।
ताइ आजि धरातले वसन्तेर आनन्द उच्छ्वासे,
कार चिर विरहेर दीर्घश्वास मिशे रहे आशे,
पूर्णिमानिशीथे यवे दशदिके परिपूर्णहासि,
दूरस्मृति कोथा हते बाजाय व्याकुल करा बांशि, झरे अश्रुराशि।
तवृ आशा जेगे थाके प्राणेर क्रन्दने, अयि अबन्धने ॥ ६ ॥



उर्वशी

[गद्यानुवाद]

•

कैलाशचन्द्र मिश्र

न तुम माता हो, न कन्या हो, न वधू हो, सुंदरी रूपमयी, हे नन्दन वासिनी उर्वशी !

गोष्ठ मे जब सन्ध्या अवनमित हो आती है तब श्रान्तदेह पर स्वर्णाञ्चल खैच कर तुम किस गृह प्रान्त मे सन्ध्या का प्रदीप नही जलाती। स्तब्ध अर्द्धरात्रि मे, दुविधा से जकडे हुये पदो मे, कम्पित वक्षस्थल लिए नीचे नयन दृष्टि किये और स्मित हास्य धारण किये हुए लजाती हुई तुम सुहागशय्या की ओर नही जाती। उषा के उदय के समान अनवगुण्ठित (बिना घूंघट के) तुम, अकुण्ठित (निःसकोच) हो ॥ १ ॥

•

वृन्तहीन पुष्प के समान अपने मे आप ही विकसित होकर हे उर्वशी ! तुम कब प्रस्फुटित हुई थी ? (सृष्टि के) प्रथम वसन्त के प्रभात मे, मंथित सागर मे से, दक्षिण हाथ मे सुधापात्र और वाम कर में विषभाण्ड लिये हुए तुम उत्थित हुई थी। तरङ्गित महासिन्धु, मन्त्रशान्त भुजग के समान, अपने लक्षशत (लाखो) उच्छ्वसित फनो को तुम्हारे चरणप्रान्त मे अवनत किए हुए पडा था। कुन्द के समान शुभ्र, नग्नकान्ति हे ! अनिन्दिते ऊर्वशी ! सुरेन्द्र से तुम वन्दित हुई थी ॥ २ ॥

•

हे अनन्त यौवना क्या तुम किसी समय भी बालिकावयसी, कलिका नही थी ? अन्धकारपूर्ण सागर के तल मे, किस के घर मे, अकेली बैठ कर, माणिक्य और मोती लेकर तुमने शैशव की क्रीडा की थी ? मणिदीप से प्रकाशित प्रकोष्ठ मे, समुद्र के कल्लोलो (तरगो) के सङ्गीत मे, प्रवाल (मूंगे) के पर्यङ्क पर अपना अकलक हास्यपूर्ण मुख लिये हुये तुम किस के अङ्क मे सोया करती थी ? जब तुम विश्व मे जाग कर उठी, तब तुम यौवन से गठित और पूर्ण प्रस्फुटित थी। हे अपूर्व शोभना उर्वशी ! युग युगान्तर से केवल तुम ही विश्व की प्रेयसी हो। मुनिगण ध्यान भग करके अपनी तपस्या का फल तुम्हारे चरणो मे समर्पित करते है, त्रिभुवन का यौवन तुम्हारे कटाक्ष के आघात से चचल हो रहा है। चारो दिशाओ मे तुम्हारी मदिर गन्ध को, अन्ध पवन

वहन कर रहा है और कवि लुब्ध चित्त से, मधुमत्त भृङ्ग के समान, उद्दाम सगात गाता फिर रहा है। हे विद्युत् के समान चञ्चला, व्याकुल प्रञ्चला उर्वशी ! तुम नूपुर झकृत करती हुई चली जाती हो ॥ ३ ॥

●

हे विलोल हिल्लोल उर्वशी ! सुर सभा के बीच पुलकित और उल्लसित होकर जब तुम नृत्य करती हो, तब सिधु मे तरङ्गो के दल, उद ठद मे नाच उठते है, वरा (वरणा) का अ चल शस्य मजरियो की बालो मे सिहर कर कम्पित हो उठता है, नभस्तल मे तुम्हार स्तनहार से तारा टूट कर गिर पडता है, अकस्मात् पुरुष के वक्षस्थल मे उसका चित्त आत्मविस्मृत हो जाता है और उसमे रक्तधारा नाच उठती है। अयि असवृते (निरावरण) उर्वशी ! दिग त मे चमत्कृत करती हुई तुम्हारी मेखला टूट जाती है ॥ ४ ॥

●

हे भुवन मोहिनी ! स्वर्ग के उदयाचल पर तुम मूर्तिमती उषा सुन्दरी हो। तुम्हारे तनु की तनिमा (कृशता) जगत् की अश्रुधारा मे धौत है, तुम्हारी चरण शोणिमा त्रिलोकी के हृदयरक्त से अङ्कित है, हे मुक्तवेणी विवसने उर्वशी ! अपने अतिलघुभार (हलके) पादपद्म, तुमने विकसित विश्व वासना के अरवि द (कमल) पर रक्खे हुए है, हे स्वप्नसङ्गिनी ! अखिल विश्व के मानस स्वर्ग मे तुम विलास करने वाली हो ॥ ५ ॥

●

हे निष्ठुरा ! वह देखो तुम्हारे लिए दिक् प्रतिदिक् मे क्र दसी (द्यावा पृथ्वी) क्र दन कर रही है। वह पुरातन आदियुग क्या फिर कभी इस जगत् मे लौटकर आवेगा ? अतल अकूल सागर से सिक्तकेश धारण किये हुए क्या फिर तुम कभी उत्थित होओगी, प्रथम प्रभात मे क्या तुम्हारी वह प्रथम तनुलता फिर दिखाई देगी ? निखिल विश्व के नयनो के आघात से तुम्हारे सर्व अ ग, जल वि दुओ को गिराते हुए रोए गे। सहसा महाम्बुधि अपूर्व स ङ्गीत म तरगित हो उठेगा। वह गौरव शशी, वह अस्ताचलवासिनी उर्वशी अस्त हो गई है। अब वह नही लौटेगी, अर वह अब नही लौटेगी। इसीलिए तो आज धरणीतल पर वस त के आनन्द उच्छ्वास मे किसी के चिर विरह का दीर्घनि श्वास मिलकर बहकर आता है। पूर्णिमा के निशीथ मे जब दसो दिशाओ मे परिपूर्ण हास्यच्छटा छा जाती है तब कही से, दूरस्मृति व्याकुल कर देने वाली व शी बजाती है और अश्रुराशि झरने लगती है। अयि ! ब धनहीन उर्वशी ! प्राणो के क्र दन मे तब भी आशा जागती रहती है ॥ ६ ॥

●

डाको डाको डाको आमारे

•

अनु०—देवप्रकाश गुप्त

मुझे आवाज दो।
ओ तत्वदर्शी मन
आवाज दो॥
मोह जनित तमिस्राओं के आवर्त से
दूर करो
मुझे तलस्पर्शी रश्मि में ले आओ
सरल निर्बन्ध एवं शुभ्ररश्मि
जो स्वयंभू की अमृता शक्ति है
ओ तत्वदर्शी मन।
मुझे आवाज दो॥
मेरा मन दिनगत अमलिन विचारों
एवं, दूषित आस्थाओं में पडकर
धूलिसात् हो गया है
उसे निश्छल, निःसीम, निराकार और—
अनन्त शक्ति की छाँह में प्रश्रय दो
सभी कालिमाओं से मुक्त करो
मेरे वाह्यावरण छिन्न भिन्न हो जाये
अपना स्निग्ध, शीलपूर्ण एवं निर्विकार
स्नेह दो
ओ दिग्दर्शी मन। मुझे निर्बन्ध करो
मोह जनित सकल तमिस्राओं के आवर्त से
मुक्त करो।

•

गीताञ्जलि (गीत संख्या–११)

●

अनु०–मनोहर प्रभाकर

छोड तू भजन, कीर्त्तन और,
उच्च स्वर में यह मन्त्रोच्चार!
कर रहा किसका आराधन
रुद्ध कर मन्दिर के सब द्वार!

खोल कर निज नयनो को, देख
सामने छाया बस अंधियार!
चाह जिसके दर्शन की है
नही वह प्रभु सम्मुख साकार!

अरे! वह तो बसता है वहा
जोतता जहा जमीन किसान!
जहा पथ का करने निर्माण
तोडता है पत्थर इन्सान!

धूप–वर्षा मे रहता साथ
पहन कर धूल भरे परिधान!
फैक दे अपना पीताम्बर
भूमि पर उतर, छेड निज तान!

मुक्ति की तू करता है खोज
मिलेगी किन्तु कहा नादान?
सृजन के बन्धन मे बन्दी
बना खुद हर्षित हो भगवान!

दूर कर सुमन, अगरु की गन्ध
भग कर अपना सारा ध्यान!
अरे! क्या तेरा घटता है?
वस्त्र यदि हो जाये जो म्लान!

भाल पर श्रम–सीकर के बीच
मिलन कर प्रभु से मधुर महान!

●

नीलमणिलता

•

अनु०– कमलाकर

नीलमणिलता ! तेरे चरणो के नूपुरो मे फागुन ने क्या अपनी माधुरी गु जा नी है ?
व्योम सह पाता नही मौन भार
उद्वेलित शून्य मे अनन्त जो व्याकुलता है
उसकी ही धारा को नीलमणिलता, तूने पुष्प–पात्रो मे भरा ।
धरा का गभीर मौन दूर की पहाडी पर फैला कर नीली छाह
खोज रहा स्वप्न देह मध्यदिन मरीचिका से पूरित दिगत मे ।
मौन, मौन जो कि सागर की नीलिमा के अ तस मे खो जाना चाहे
वही अ तहीन मौन, तेरे नील–पुष्प मे प्रफुल्लित है, उल्लसित है ।
दुर्गम रहस्य सहज छन्द मे है आन्दोलित
मिलन सामीप्य जान जैसे नव दुलहिन की
काप-काप जाती देह
त्योही यह कपभर, तन्व गी नीलमणि, नीलाम्बर अ चल की ओट मे है निर्वाक् ।
मर्म के अबोले स्वर गहन नीलिमा मे मौन नही रह पाये
नीलमणि लतिका की पु ज–पु ज मजरी मे आकुल प्रसन्नता वह प्रस्फुटित हो ही गयी ।
किसी अनजान राहगीर महमान को ज्यो पास बुला कोई निज परिचय दे
त्योही हे लता, मुझसे परिचित हुई है तू ।
परिचय है मेरा बेला, जूही, शेफालिका से !
बार–बार फाल्गुन मे, सावन मे, आश्विन मे मेरा चित्त इन्होने रगा है प्रीत-रग मे ।
किस कठ–स्वर से सधी है नव चम्पक की कचनाभा ?
किस वेणी बधन का बधन है
गध नागकेसर से ?
कजरारे नयनो के नीर से नहाई ।
बरसात की चमेली यह करवी के गहन लाल रग मे झनकती है कगना की झकार
अ कित है निद्राहीन वेदना कदब मे ।

नीलमणि ! तुम कोई दूती हो सुदूर की अभी अभी आई हो।
कठ ध्वनि तुम्हारी नील नभ के समान स्वच्छ
किसी इतिहास के न घेरे मे बन्दी तुम
देश और काल से अतीत देववाणी सी
परिचय रहित इस निराली दुनिया मे भला अवतरित हुई हो क्यो—कौन जाने ?
क्यो—कौन जाने ?
यह मत्र जगा मेरे मन, तभी तो अकारण अनुरागवश
यहा मै आज गूथ रहा छन्दमाल।
वासन्ती फूल-फूल सौरभ तरगायित
मधु मक्षिका के मजु गु जरित गान सग
छाया पल्लवो की कापती है अमराई मे
दिव्य सतरगे पख फैलाती तितली क्यो-कौन जाने ?
रग रस गध का महान समारोह क्यो है कौन जाने ?
महिमा छवि प्राणो की प्रकट रूप-रगो मे।
जिस दिन दुपहरिया के शिथिल समीरण मे
छाह मे वितान की शरण ग्रहण की मयूर ने
तब तुम दोनो को एक साथ दृष्टि भर देखा
और पूछा अपने से भला ऐसा क्यो-कौन जाने ?
सीमा अभ्यास की है मर्यादित, चेतनता सकुचित है
धूल उड रही उदासीनता की विस्मय नयन का है शात
और मन मे प्रतीति होती जडता की, विश्व दिखता है जीर्ण
ऐसे मे कान मे क्या मेरे कह दिया तुमने
सारा ससार मुझे बदला सा लगता है
क्यो, कौन जाने ?
मुझ प्रवासी को कही आतिथ्य शाला मे सुनाई दे रही है-
नील सुषमा की सुरीली बासुरी-ध्वनि।
अतिम दिन वर्ष के है, चैत्र का है म्लान वेष
फूल खिल झरने से रिक्त सी हुई हो तुम
फिर भी मुझे तमने अपना अपूर्व रूप भला दिखलाया क्यों
कौन जाने ?

[रवीन्द्र द्वारा भरतपुर प्रवास-काल मे रचित]

●

एकला चलो रे

•

अनु०—सोमदेव एम ए

तेरी पुकार सुन कोई भी यदि नही आए
तो चलो अकेला रे।
चलो अकला, चलो अकेला
चलो अकेला रे।
काई यदि बात नही करे तो
(अरे अभागे ! अरे अभागे !)
हर कोई मुख फेरे तुझसे
हर कोई भय खाये, तो खोल हृदय
अपने ही मुख से अपने मन की बात
कहो अकेला रे।
हर कोई लौट चले तो
(अरे अभागे ! अरे अभागे !)
बीहड पथ चलना हो बढे
कोई साथ यदि नही चले
तो पथ के काटे
लहूलुहान चरण के नीचे
दलो अकेला रे।
तेरा दीप यदि नही जले तो
(अरे अभागे ! अरे अभागे !)
रात अधेरी, आधी बादल
दरवाजे पर खडे अगर तो
वज्रानल से छाती के पजर को जारे
जलो अकेला रे।
तेरी पुकार सुन कोई भी यदि नही आए
तो चलो अकेला रे।
चलो अकेला, चलो अकेला
चलो अकेला रे।

•



रवीन्द्रनाथ का कवित्व

सुमित्रानन्दन 'पंत'

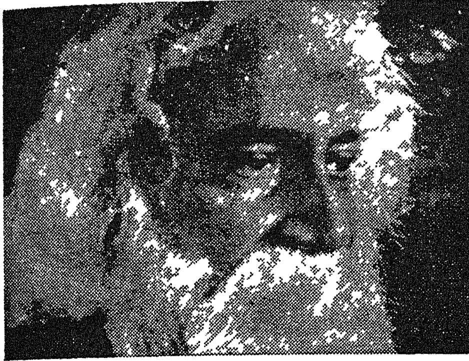
यदि मै कहू कि रवीन्द्रनाथ ने साहित्य के शिखर पर उदित होकर भारतीय कविता की परिभाषा ही बदल दी तो यह अत्युक्ति नही होगी। वास्तव मे रवीन्द्र समस्त भारत के भारतेन्दु कहे जा सकते है, जिन्होने भारतीय साहित्य मे अनेक नवीन दिशाओ का उद्घाटन कर, तथा सृजन कर्म को उच्च कोटि की कला-रुचि, भाव-सस्कार तथा नव-नवोन्मेषिणी कल्पना के ऐश्वर्य से सवार कर भारतीय चेतना मे महान् जागरण का एक अकल्पनीय तथा नवीन अरुणोदय उपस्थित कर दिया। उनकी अतुलनीय मनस्विता, बहुमुखी प्रतिभा, गभीर जीवन दृष्टि तथा आनन्द-द्रवित रसबोध से जो महत् प्रेरणा भारतीय-साहित्य को मिली, उसका अनुमान लगाना सरल नही है। उनकी काव्य-चेतना सहस्रो इन्द्रधनुषो मे लिपटे हुए विद्युत्प्रभ रसहरित मेघ की तरह भारतीय मानस-क्षितिज मे उमडकर सर्वत्र छा गई। साहित्य की जिस विधा, जिस क्षेत्र को भी उन्होने अपनी अद्भुत प्रतिभा के पखो मे छुआ, उसमे जैसे किसी जादू के बल से एक नवीन सौन्दर्य तथा सम्मोहन के चित्र दृष्टिगोचर होने लगे। निसन्देह रवीन्द्रनाथ जैसे महान् कलाकारो तथा जीवन-द्रष्टाओ की आत्मा को गढने के लिए इतिहास को सहस्रो वर्षो तक शुभ्र रस पीठिका पर अजस्र साधना करनी पडती है—जिनमे रवीन्द्रनाथ की कोटि

ह 'रसो वै स पुरुष' का अनतार अथवा आविर्भाव होता है। रवी द्रनाथ की प्रेरणा का महत्त्वमुख स्रात उनके गभीर रस समुद्र के समान अ तर मे था। अपनी अनेक कविताओ मे वह अपन अ तरतर मे स्थित ,वना का श्रद्धाजलि अर्पित करके उस सौ दर्य माधुर्य के गीत गाकर अपने अक्षय सगीत मे बिखेरते रहे है। उसी अ तर के गवाक्ष से वह मानव जीवन के सत्य का मुख निनिमेष भावबाध म दखते रह ओर उनके आलोक स धरती क जीवन के सौ दर्य को सवारते एव उसका सस्कार करते रह। अपन युग की व्यापक पीठिका पर एकाग्र-चित से रस समाधि लगाकर उन्होने सत्य-शिव सु दर के मूल्यो को परखने पहचानने तथा खोजने के लिए अत्य त कठोर साधना की और एक ओर पश्चिम की बढती हुई भौतिक सभ्यता के मूल्यो तथा जीवन प्रणाली का विश्लेषण तथा परीक्षण कर, उसके कल्याणप्रद भावात्मक तत्वा का आत्मसात् कर उसे अपनी विचार-सरणि, भावना धारा तथा सौन्दर्यबाध का अ ग बनाया और दूसरी ओर अपने देश मे सदियो म आई हुई मध्ययुगीन, जीवन विमुख, ससार के प्रति विरक्त, निषधात्मक, अ धरूढि रीतियो मे पथराई मानसिकता के कुहासे को अपनी कुशाग्र बुद्धि तथा सम्यक् दृष्टि मे चीरकर उन्होने भारतीय चैत य के अक्षय आन द, सक्रिय आलोक सि धु मे अवगाहन कर उसके शात, शुभ्र, मगलमय प्रकाश को अपनी अमरवाणी की झकारो के द्वारा लोक मानस म फैलाकर अपन देश मे व्याप्त युग-युग के निष्क्रिय अवसाद के अ धकार को मिटाया। इस प्रकार अपने गभीर अध्ययन मनन तथा चिन्तन के बल पर रवी द्रनाथ ने एक ओर जहा पूर्व और पश्चिम दोनो भू भागो के लिए मगलप्रद मानववाद तथा विश्वब धुत्व का स देश अपने युग को दिया, वहा दूसरी ओर अपनी विलक्षण प्रतिभा, अपराजेय-कल्पना तथा विश्वमोहिनी सृजन शक्ति के द्वारा एक नवीन जीवन, प्रिय तथा सौ दर्य सुघर प्राणवाद के मर्मस्पर्शी गीत गाकर जैसे वेदो के इ द्र को फिर मे मरुतो के रथ पर बिठाकर उन्होने जीवन-विजय की वैजय ती फहराई। रवी द्रनाथ की भाषा एव अभिव्यजना की शैली जितनी भी अलकृत तथा शब्द-बहुल रही हो और उनकी विचारधारा तथा जीवन दर्शन जितना भी अस्पष्ट तथा रहस्य की अनिर्वचनीय ऊ चाइयो तथा प्रसारो मे खोया हुआ सा रहा हो, उनके कृतित्व का महत्व युग की परिस्थतियो के परिवेश को सामने रखने हुए किसी कारण न्यून अथवा नगण्य नही कहा जा सका बल्कि इसके बिल्कुल ही विपरीत उसका मूल्य आकना इस सक्राि त युग की मानसिकता के लिए सभव एव शक्य नही है। समय आने पर जब इस परिवर्तन-काल के स देश का कुहरा फटकर विलीन हो जायगा और मनीषियो तथा जनसाधारण के मद का अ तरिक्ष नवीन आस्था की उज्जवलता मे निखर उठेगा, तब रवी द्र की वाणी अपनी रहस्य तथा भेद की गाठ जन मन मे खोलेगी और उनकी जीवन-दृष्टि का स्वच्छ सौन्दय लोगो के मन मे एक नवीन मानव स्वर्ग का निमाण करने मे सफल होगा। उनके उल्लास भरे, छद झकृ त, पद मधुर भाव, मुखर तथा रस द्रवित स्वरो मे विश्व जीवन तथा भू-जीवन के प्रति एक नई आस्था का उदय होगा जिसमे मानव आभा का आलोक, उसकी बुद्धि का ऐश्वर्य, उसके प्राणो का आन द-रस तथा इन्द्रियो का सौन्दर्य अपने वैचित्र्य की एकता मे घुल मिलकर मनुष्य के भीतर

अपने प्रति, समाज तथा विश्व के प्रति एक ऐसे महत् सामञ्जस्य भरे व्यापक दृष्टिकोण को जन्म देगे, जिसकी उस सफल तथा समग्र जीवन व्यतीत करने के लिए आज एकात एव अनिवार्य आवश्यकता है।

रवीन्द्र के पूर्व समस्त भारतीय भाषाओ का साहित्य मध्ययुगीन रीति प्रभावो से पीडित इतिवृत्तात्मक तथा पौराणिक पुरुषो के चतुर्दिक औपचारिक परिक्रमा कर उनकी गुणगाथा गाता हुआ, प्राचीन पिटे पिटाए आदर्शो का चर्वित चर्वण करता रहा। राम, कृष्ण, युधिष्ठिर आदि महत् नैतिक सामाजिक एव सार्वभौम व्यक्तित्वो के पीछे जो अविचल, अलघ्य, चैतन्य का पर्वत-शृंग-अपनी अनिमेष ध्यान मौन गरिमा मे तिरोहित रहा, उससे युग अनुरूप नवीन व्यापक मनुष्यत्व की प्रेरणा, जीवनी शक्ति तथा सौदर्य दृष्टि ग्रहण कर तथा आनन्द शुभ्र नवीन साहित्य का प्रासाद निर्मित कर रवीन्द्रनाथ जैसे प्रतिभाशाली कवि एव कलाशिल्पी समस्त विश्व को अपने महत् जीवन के स्वप्न से चमत्कृत कर गए। उनसे पहिले भारतीय भाषाओ मे उस औद्काम आलोक के रहस्यमय साक्षात्कार का महाप्राण सौन्दर्य तथा आनन्द नही प्रवाहित हो सका था। इस प्रकार वे एक प्रकार से समस्त आधुनिक भारतीय साहित्य बोध के जनक है जिन्हे नवीन युग का आदि कवि भी कहा जा सकता है। यह सच है कि रवीन्द्रनाथ का परवर्ती साहित्य, अनेक रूप मे अनेक दिशाओ मे बदल गया है और विचारो, मूल्यो, कला, शिल्प तथा रूप विधान की दृष्टि से उसमे प्रतिदिन अनेक प्रकार के नये परिवर्तन के चिन्ह प्रकट हो रहे है, पर उपलब्धि की दृष्टि से आज का कृति युग रवीन्द्रनाथ के स्वर्गचुम्बी व्यक्तित्व के टखनो तक भी नही पहुच सका है। जिस जीवन-दर्शन की गभीर नीव कवि रवीन्द्रनाथ साहित्य मे डाल गए है, उसके अनुरूप महत् अनुभूति के मगल विधान की रचना परवर्ती साहित्यकार नही कर सके है और अपने अहता के कूबड के बोझ मे दबी जो बौनी कलाकारो की जाति, उनके बाद साहित्य मे एक महाह्रास की प्रतिनिधि बन कर, जो बौद्धिक बालुका पर क्षणिक भावोद्वेगो तथा अस्तित्वो के चित्र विचित्र घरौंदे बना रही है, उनके तृणो के कीर्ति-स्तम्भो को काल उतने ही वेग से धराशायी भी कर रहा है। रवीन्द्रनाथ के महत् प्रकाशवान् व्यक्तित्व के सूर्यास्त के बाद युग सध्या के अधकार मे भटकती हुई, नयी पीढियो को रवीन्द्रनाथ के महान् उद्‌बोधन के सगीत को समझने के लिए फिर से एक नवीन सौन्दर्य के अरुणोदय को जन्म लेना होगा, जहा नये माधुर्य, आनन्द, प्रेम तथा शाति का अतर्जगत उनकी प्रतीक्षा कर रहा है और मानव-जीवन एव धराधाम को नयी स्वरसगति मे बाधकर मानव मन को नवीन चैतन्य के प्रकाश लोक मे प्रवेश कराने के लिए आतुर है, जहा कवीन्द्र अपनी भुवन-मोहिनी वीणा लेकर मदस्मिति मे उनके अभिवादन के लिए तत्पर मिलेगे। रवीन्द्रनाथ की काव्य चेतना मानव जीवन मे तथा इस धरती के आगन मे मूर्त होकर प्रतिष्ठित हो सके, काल उसकी अपेक्षा कर रहा है।

●



रवीन्द्र व हिन्दी साहित्य

•

नन्ददुलारे वाजपेयी

हिन्दी-साहित्य पर रवीन्द्र के प्रभाव की चर्चा करते हुए आरंभ मे कुछ मौलिक तथ्यो को स्पष्ट कर देना आवश्यक है। जब किसी देश मे कोई महान् लेखक या कवि उत्पन्न होता है तब उस देश के अन्य लेखको और कवियो पर उसका प्रभाव अनिवार्य रूप से पडा करता है। भारत जैसे बहु भाषा भाषी देश मे इस प्रभाव के दो स्वरूप हो जाते है। एक तो वह महान लेखक या कवि जिस भाषा मे अपनी कृतिया प्रस्तुत करता है, उसका अनुसरण उसी भाषा के दूसरे कवि और लेखक करने लगते है। समान भाषा भाषियो मे यह प्रभाव कभी-कभी विघातक भी होता है। वट-वृक्ष की छाया मे जैसे दूसरे वृक्ष या पौधे पनप नही सकते, उसी प्रकार महान कवि कुछ समय के लिए अपने समसामयिक अन्य कवियो को नगण्य कर देता है, उनकी प्रतिभा स्तब्ध हो जाती है और अधिकतर उस महान कवि के अनुकरण की भूमि के बाहर नही जा पाती। बगाल मे बहुत कुछ ऐसा ही हुआ था। इस दृष्टि से कुछ दूरी पर रहने वाले भिन्न भाषा-भाषी उस महान कवि के अनुवर्ती न बनकर उससे प्रेरणा और प्रभाव ही लेते है। हिन्दी मे बहुत कुछ ऐसा ही हुआ है।

दूसरी बात समय की है। हिन्दी प्रदेशो मे रवीन्द्रनाथ की ख्याति तब हुई जब १९१३ म उनकी 'गीताजलि' पर विश्वविख्यात 'नाबेल पुरस्कार' मिला। जिस विशेष पुस्तक—'गीताजलि' पर यह पुरस्कार दिया गया था, वह कवि के विकास के एक विशेष अवसर की कृति है। कदाचित् वह रवीन्द्रनाथ की सर्वश्रेष्ठ काव्य रचना नही है, परन्तु अधिक विज्ञापित होने के कारण १९१३ के पश्चात् हिन्दी-साहित्य पर गीताजलि-शैली की रचनाओ का प्रभाव विशेष रूप से पडा। कुछ एसे लेखको और कवियो को छोडकर जो बगला भाषा मे निष्णात थे और रवीन्द्रनाथ की समस्त कृतियो का पारायण कर चुके थे, हिन्दी के अधिकाश कवियो और लेखको ने गीताजलि मे ही प्रेरणा ग्रहण की। यद्यपि रवीन्द्रनाथ उन्नीसवी शताब्दी के चतुर्थ चरण से ही साहित्य रचना कर रहे थे, परन्तु पूरे चालीस वर्षो के बाद उनकी ओर हिन्दी साहित्यिको का ध्यान आकृष्ट हुआ। इसके पश्चात् हिन्दी साहित्य पर रवीन्द्रनाथ की छाप प्राय पन्द्रह बीस वर्षो तक रही। जिसे हिन्दी मे 'छायावाद युग' कहा जाता है वहा वस्तुत हिन्दी मे रवीन्द्र के प्रभाव का युग था। सामान्यत वह प्रभाव १९१३ १४ से लेकर १९३३ ३४ तक पाया जाता है। उसके पूर्व और पश्चात् रवीन्द्र का प्रभाव नही के बराबर है। उसका विस्तार-क्षेत्र बगला भाषा के विस्तार की अपेक्षा कही अधिक है। बिहार के पूर्णिया जिले से लेकर पजाब के मध्य तक और राजपूताने के उत्तरी भागो मे लेकर उत्कल के उत्तरी काठ तक हिन्दी भाषा के कवि और साहित्यिक फैले हुए है। इस सम्पूर्ण विशाल क्षेत्र की साहित्यिक रचना पर रवीन्द्र का प्रभाव आशिक और विरल ही कहा जा सकता है। इस सम्बन्ध मे यह बात भी स्मरणीय है कि कोई भी विशिष्ट कवि या लेखक अपनी साहित्य रचना के आरभिक चरण मे ही किसी बाह्य प्रभाव को ग्रहण करता है। ज्यो ही उसकी प्रतिभा प्रौढ हो जाती है, वह प्रभाव ग्रहण को छोड देता है और अपनी स्वतत्र कला का विकास करता है। अतएव हिन्दी साहित्य मे रवीन्द्रनाथ की प्रेरणा कवियो और लेखको की प्रारभिक कृतियो मे ही अधिक दिखाई देती है। आगे चलकर, उन लेखको और कवियो का व्यक्तित्व अधिक मौलिक हो गया है और उन्होने अपने साहित्य मे उसी मौलिकता को अभिव्यक्त किया है।

रवीन्द्रनाथ के प्रभाव का पहला सूत्र तो उनका व्यक्तित्व ही रहा है—उनकी दीप्तिमान मुख मुद्रा, उनकी लम्बी और सुविन्यस्त केश राशि, उनका विशिष्ट पहनावा और सबसे बढकर उनका सुशील, सुसौम्य व्यक्तित्व, हिन्दी साहित्यिको के लिए प्रगाढ आकर्षण का केन्द्र रहा है। छायावाद युग के आरभ मे रवीन्द्रनाथ के इस बाह्य और आभ्यतर व्यक्तित्व की छाया हिन्दी के कलाकारो पर पडने लगी थी। साहित्यिको की वार्तालाप की शैली पर रावीन्द्रिक शब्दावली का प्रभाव था। 'असीम' और 'अनन्त', 'सखि' और 'सजनि' शब्दो का हिन्दी-काव्य मे सहसा इतना प्रचुर प्रयोग हुआ कि साहित्य ससार मे कवियो की सज्ञा ही 'असीम' जी और 'अनन्त' जी हो गई। कवियो ने बहुत से उपनाम रवीन्द्र के काव्य से लेकर अपनाये।

सबसे पहले १९१३ १४ मे रायकृष्णदास की 'साधना' नामक गद्य काव्य की कृति प्रकाशित हुई, जिसमे रवी द्र की भाव धारा और शब्द योजना का सुस्पष्ट प्रभाव दिखाई दिया । इस कृति का हिन्दी साहित्य मे बडे उत्साह से स्वागत हुआ और अनेक गद्य काव्य लेखक हिन्दी काव्य क्षेत्र मे अवतरित होने लगे । चतुरसेन शास्त्री, वियोगी हरि और स्वय 'प्रसाद' जी ने इस प्रकार की कृतिया लिखी जिनमे अलक्ष्य प्रियतम के प्रति आत्मनिवेदन की प्रधानता है । गद्य काव्य का नूतन साहित्य रूप रवीन्द्र की ही देन है । 'प्रसाद' की आरभिक कविताओ मे विशेषकर 'चित्राधार' और 'कानन कुसुम' की प्रकृति सबधी रचनाओ मे रवीन्द्रनाथ की छाया देखी जा सकती है । हम कह सकते है कि सन् १९२४ तक 'प्रसाद' जी अन्य प्रभावो के अतिरिक्त रवी द्र के प्रभाव से अनुप्रेरित रहे है । 'आसू' काव्य के प्रणयन के पश्चात् यह प्रभाव तिरोहित हो गया । इधर बगाल के समीप उत्कल के माध्यम से मध्यप्रदेश के दक्षिणाचल मे रवी द्रीय काव्य की मलय वायु के हलके झोके आने लगे थे । लोचनप्रसाद पाण्डेय से भी अधिक उनके छोटे भाई मुकुटधर पाण्डेय की कविताओ मे इस मलय वायु की शीतल, मन्द, सुग ध लहर पाई जाती है । स्वय मैथिलीशरण गुप्त की 'झकार' पुस्तक के गीत रवीन्द्रीय प्रभाव की सूचना देते है । उनके छोटे भाई सियारामशरण की 'आर्द्रा' मे रवी द्र के आख्यान गीतो की शैली दृष्टिगत होती है । इसी प्रकार रूपनारायण पाण्डेय की 'पराग' काव्य पुस्तक मे रवी द्रनाथ की आशिक छाया देखी जाती है ।

हि दी के प्रमुख छायावादी कवि पन्त और निराला पर रवी द्र का प्रभाव भाषा-योजना, छन्द चयन तथा अलकारो और लयो के माध्यम से दिखाई देता है । इसे हम अधिक गभीर प्रभाव इसलिये कह सकते है कि इसमे काव्य रूप के अ तरग उपकरण भी नियोजित हुए है । निराला के काव्य मे दिखाई देने वाली अनुप्रयास योजना रवीन्द्रनाथ की अनुप्रास योजना के बहुत समीप है । निराला ने रवी द्र काव्य के काव्य के अ तरग और बहिरग की अनेकत प्रशसा अपने विविध लेखो और 'रवीन्द्र कविता कानन,' नामक पुस्तक मे की है । बिहार के श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' की 'एकतारा और 'निर्माल्य' काव्य पुस्तक रवीन्द्र प्रभाव को सूचित करती है । । उन्होने स्वय अपने को रवीन्द्रनाथ का शिष्य बताया है ।

हि दी के कथा साहित्य पर प्रेमच द जी के व्यापक प्रभाव के कारण रवीन्द्रनाथ की छाया अपेक्षाकृत कम है । पर तु राधिकारमण प्रसाद सिह और प्रसाद' की आरम्भिक कहानियो पर रवीन्द्र शैली की आशिक झलक अवश्य मिलती है । रवी द्रनाथ के 'घरे बाहिरे' उपन्यास को लेकर हिन्दी मे समान विचार दृष्टि के कई उपन्यास लिखे गये । जैनेन्द्रकुमार ने भी इस विचार-तथ्य को अपने आरम्भिक उपन्यासो मे अपनाया है । डा० देवराज की पुस्तक 'घर और बाहर' तो नाम के आकर्षण को भी छोड नही पाई । इसी प्रकार रवीन्द्रनाथ का 'गोरा' उपन्यास हि दी मे अनूदित होकर स्वतन्त्र कृतियो मे भी अपनी विचार-दृष्टि का पोषण करता रहा है । रवी द्रनाथ के काबुलीवाला' तथा अन्य उपन्यास भी हि दी मे अनूदित हुए और हि दी कथा शिल्प पर अपना प्रभाव छोड गये है ।

रवीन्द्रनाथ की नाट्य-कृतिया प्राकृतिक परिवेश से अनुप्राणित है । कुछ पौराणिक नाटको के अतिरिक्त उनके अधिकाश नाटक ऋतु सम्बन्धी है। हिन्दी मे 'प्रसाद' जी के राष्ट्रीय और सास्कृतिक नाटको के क्षेत्र मे रवीन्द्रनाथ का व्यापक प्रभाव दिखाई नही देता। परन्तु 'पन्त' का 'ज्योत्स्ना' नाटक और स्वय 'प्रसाद' जी का 'कामना' नाटक रवीन्द्र की प्रतीकात्मक नाट्य शैली की पद्धति पर लिखे गये है ।

अन्य साहित्यिक क्षेत्रो मे भी रवीन्द्र के प्रभाव के अवशेष दिखाई देते है। उनका 'साहित्य' शीर्षक समीक्षा प्रबन्ध अब भी व्यापक रुचि के साथ पढा जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रवीन्द्र के साहित्यिक विचारो का भावात्मक बताया है और साहित्यिक विवेचन की भूमिका पर सदेह प्रकट किया है, फिर भी छायावाद युग की समीक्षा मे उसके कुछ तत्व प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से स्वीकार किये गये है ।

रवीन्द्र का साहित्य यद्यपि बगाल की शस्य श्यामला-भूमि पर अवतरित हुआ है, और वहा के प्रादेशिक जीवन की बहुविध रोचक और रगीन रूपरेखाओ से समन्वित है, परन्तु वैचारिक दृष्टि से रवीन्द्र केवल बग देश के कवि नही है, उन पर भारतीय-दर्शन और विशेषकर उपनिषदो का गहरा प्रभाव है। कबीर और वैष्णव कवियो की भावधारा और गीतात्मक रचना पद्धति से सम्पूर्ण रवीन्द्र-काव्य अनुप्राणित है। इसके अतिरिक्त रवीन्द्रनाथ पर अग्रेजी और यूरोपीय साहित्य का भी यथेष्ट प्रभाव पडा है । इन्ही सार्वदेशिक प्रभावो के कारण रवीन्द्रनाथ सार्वभौम या विश्व कवि भी कहे गये है। हिन्दी के छायावादी-काव्य मे इसी प्रकार के देशी और विदेशी प्रभाव विद्यमान है। विशेषकर इस युग की प्रगीत शैली उन्ही उपकरणो से निर्मित है। छायावाद-काव्य-युग का प्रगीत-काव्य-युग कहना बहुत अनुपयुक्त न होगा। इस सम्पूर्ण प्रगीत-पद्धति का विकास रवीन्द्र की काव्य-साधना के विकास की भाति ही सार्वदेशिक आधार पर हुआ है ।

जीवन के वाह्य, राजनीतिक और सामाजिक प्रभावो से निर्मित होने वाले द्विवेदी-युग का काव्य छायावादी युग मे अधिक अन्तरग और अन्तर्मुख होने लगा था। प्रचारात्मक राजनीति और राष्ट्रीयता के स्थूल प्रभावो के स्थान पर अधिक मूल्यवान मानवीय तत्वो का सन्निवेश इस काव्य मे हुआ है। रवीन्द्रनाथ ने भी सामयिक राजनीति और राष्ट्रीय आदोलन से दूर रहकर अपनी काव्य साधना सम्पन्न की थी। हिन्दी के छायावादी-काव्य मे भी उसी पथ का अनुसरण किया गया है। हिन्दी-साहित्य को यह नया मोड देने मे रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा, उनकी जीवन-दृष्टि और जीवन साधना का सम्यक योग हम सभी स्वीकार करते है ।

●●

रवीन्द्रनाथ और हिन्दी

•

विनय मोहन शर्मा (डा०)

सन् १९२४ या २५ की बात है। उन दिनो मे हिदू विश्वविद्यालय का छात्र था। एक दिन सहसा सुन पडा, रवीन्द्रनाथ विश्वविद्यालय के उपाधि वितरण समारोह मे प्रमुख अनिथि के रूप मे आ रहे है। हृदय आनन्दातिरेक से स्पदित हो उठा। समाराह-दिवस की प्रतिदिन प्रतीक्षा करने लगा। मेर पडौस मे श्री माधव (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के वर्तमान सचालक) का कमरा था, जिसमे छात्रावास के दो चार साहित्य प्रेमी छात्र एकत्रित होकर रवीन्द्र की 'गीताजलि' के माधुर्य का रसपान किया करते थे। प्रसगवश यह भी चचा छिड जाती कि गीताजलि' के भावो पर कबीर के पदा की छाप स्पष्ट है। और इसका आधार यह था कि कवीन्द्र ने कबीर के पदो का अग्रेजी मे सुदर अनुवाद प्रस्तुत किया जिसका विदेशो मे भी स्वागत हुआ था। हिन्दी जगत मे क्यों यह प्रमाद फैला रहा। हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक भी यही प्रचार करने रहे। बाबू श्यामसुदर दास ने लिखा है—"बगाल मे वर्तमान कवीन्द्र रवीन्द्र को भी कबीर का ऋण स्वीकार करना पडेगा। अपने रहस्यवाद का बीज उन्होने कबीर मे पाया किन्तु उसमे पाश्चात्य भडकीली पालिश भी की है। भारतीय रहस्यवाद को उन्होने पाश्चात्य ढग से सजोया है। इसी से यूरोप मे उनकी इतनी प्रतिष्ठा हुई है।" सच बात ता यह है कि कबीर से परिचय प्राप्त करने के पूर्व ही उन्हाने अपनी रहस्य-भावना-सिक्त "गीनाजलि" की रचना कर डाली थी। हा तो कह रहा था रवीन्द्र के काशी आगमन की बात। चिर प्रतीक्षा क बाद वह दिन, वह क्षण भी आया, जब लम्बे चोगे मे सफेद दाढी और बाल वाले छरहरे लम्बे गौर बदन कवि हर्ष-निनाद के बीच मच पर पधारे और हम सब के मस्तक श्रद्धा से नत हो गए। ऐसा लगा मानो किसी स्वर्ग दूत का भूतल पर आगमन हुआ है। उन्होने नपे तुले शब्दो मे स्नातको को उपदेश दिया। वे स्नातक आज जहा भी होगे अपने भाग्य को सराहते होगे, क्योकि रोम्या रोला के शब्दो मे किसी आत्मा मे रचनात्मक कार्य की अग्नि जाग्रत करने को दूसरी आत्मा मे आने वाली एक चिनगारी ही बहुत हाती है। उस समय हमने यह कल्पना नही की थी कि भारन शीघ्र स्वाधीन होगा और इस विश्वकवि क एक गात का राष्ट्रगीत क रूप मे स्वीकार करेगा। फिर भी हम विश्वविद्यालय मे पहुचकर उनक सम्बन्ध मे पाश्चात्य साहित्य मर्मज्ञो के विचारो स अवगत हो यह जान चुके थे कि जो व्यक्ति आज हमारे बीच है उसका आतक पाश्चात्य साहित्य जगत मे भी छाया है। यूरोप के महान से महान साहित्यिक ने उनकी "गीताजलि" का "सर्वथा नवीन और अपूर्व" घोषित किया। साधु एड्रूज के वे ससमरण स्मृति पटल पर खिच आये जिनमे उन्होने लिखा था कि जब कवि इगलैण्ड मे थे, प्रसिद्ध कलाकार रायेन्टिन के यहा एक रात विश्रुत कवि यीटस ने कवि की कविताओ का प्रमुख

साहित्यकारो के बीच पाठ किया था, जिसे सुनकर श्रोता मण्डली झूम झूम उठी थी और उनकी अनुभूति की तुलना शैली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ आदि से की थी।

उस समय हिंदी मे छायावाद-रहस्यवाद का बोलबाला था। तरुण कवि अपने अटपटे गातो मे भी इसी भाव को ध्वनित करता था। हिंदी के प्रतिष्ठित समीक्षक उन पर भिन्न भिन्न रूपो मे व्यंग वर्षा करते थे। कहा जाता-'यह तो रवीन्द्र की छाया है,' 'बंगला की जूठन', 'आंग्ल रोमेण्टिक कवियो का प्रभाव है'। इन व्यंगाभिव्यक्तियो मे कुछ तथ्य भी था। हिंदी के मूर्धन्य कवि 'निराला', सुमित्रानन्दन पंत, प्रसाद आदि नए ढंग की कविता करने के लिए बहुत बदनाम थे। "निराला" की तो शिक्षा-दीक्षा बंगाल मे ही हुई थी और उन पर रवीन्द्र का रंग चढा भी था। कानपुर से प्रकाशित होने वाली "प्रभा" मे सम्भवतः स्व० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने 'निराला' की रचनाओ मे 'कवीन्द्र' की भाव-छाया का उद्घाटन भी किया था। 'प्रसाद' और 'पंत' पर भी प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष 'रवीन्द्र' का प्रभाव दिखलाई देता है। 'निराला' ने अपने एक लेख मे 'पंत' और रवीन्द्रनाथ के भाव-साम्य पर चर्चा भी की थी। महादेवी की कविताओ मे उपनिषदो की भाव धारा के बीच रवीन्द्र की भाव-लहरियो की बिछलन भी देखी जा सकती है। यद्यपि हिन्दी मे गद्यगीत 'गीतांजलि' के प्रकाश मे आने के पूर्व ही लिखे जाने लगे थे पर इसे मानने मे कोई संकोच नही होना चाहिए कि उनके अत्यधिक चलन मे 'गीतांजलि' की प्रेरणा निश्चय थी। हिंदी मे कवि के स्वर्गवास के समय तक निम्न ग्रन्थ अनूदित हो चुके थे-आंख की किरकिरी, नटी पूजा, मेरा बचपन, अचलायतन, आश्चर्य घटना, रवीन्द्र कविता-कानन, ईद का चांद, रवीन्द्र कथा-कुंज, राजरानी, कुमुदिनी, राजर्षि, ग्रन्थ-गुच्छ (चार भाग), राजा और प्रजा, गीतांजलि, रूस की चिट्ठी, गोरा, विचित्र वधू रहस्य, घर और बाहर, विचित्र प्रबंध, चार अध्याय, व्यंग्य कौतुक, चिरकुमार सभा, शिक्षा कैसी हो ?, चित्रांगदा, षोडशी, जीवनस्मृति, समाज, डाकघर, विश्व परिचय, प्राचीन साहित्य, स्वदेश, माली, साहित्य मुकुट, हास्य कौतुक व मुक्तधारा।

हिंदी मे आलोचना-साहित्य पर कवि के 'साहित्य' और प्राचीन 'साहित्य' नामक ग्रन्थो का भी कम प्रभाव नहो पडा। प्रभाववादी आलोचनाएं उनसे अधिकांश मे प्रभावित है। 'प्राचीन साहित्य' मे कवि ने साहित्य-उपेक्षिताओ के प्रति जो करुण उद्गार प्रकट किए है उनसे अनुप्राणित हो 'सरस्वती' सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी साहित्य की उपेक्षिताएं लेख लिखकर हिंदी कवियो का ध्यान 'उर्मिला' की ओर विशेष रूप से आकर्षित किया, जिसका परिणाम मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' और स्व० बालकृष्ण शर्मा की 'उर्म्मिला' है।

हिंदी के सम्बन्ध मे गुरुदेव उदार विचार रखते थे। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी जब तक कलकत्ते रहे, हिंदी-भाषियो को शांति निकेतन की यात्राएं कराते रहे। एक बार जब (डा०) माखनलाल चतुर्वेदी और श्री जैनेन्द्र उनके पास पहुंचे तो उन्होने उनसे कहा—"मै चाहता हूं हिंदी के साहित्यिक हमारे साथ रहे। मै हिंदी को एक सजीव भाषा बनाना चाहता हूं।" कवि हिंदी

द और लिख लेते थे और काम चलाऊ बोल भी लेते थे। जब महात्मा गांधी के प्रयत्न से सौराष्ट्र में गुजराती साहित्य सम्मेलन हुआ था, तब कवीन्द्र को आमंत्रित किया गया था और महात्माजी के आग्रह से उन्होंने 'बंगाली-हिन्दी' में भाषण भी दिया था। सन् १९१३ में जब कवि को विश्व साहित्य का 'नोबेल-पुरस्कार' प्राप्त हुआ था तब हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ कवि तथा लेखक स्व० पं० लोचन प्रसाद पाण्डेय ने उनका पत्र द्वारा अभिनन्दन किया था, जिस का उत्तर उन्होंने हिन्दी में ही दिया था। उसे श्री रामेश्वर गुरु ने 'धर्मयुग' के ६ अगस्त १९६१ के अंक में प्रकाशित कराया है। वह इस प्रकार है —

सहृदय महोदय,

यद्यपि ईश्वर की कृपा से हमको आज सम्मान प्राप्त हुई है तथापि हम अपने को सर्वविध सम्मान के अयोग्य हि समझते हैं। विशेष यह भी है कि कवि को कोई सम्मान की आवश्यकता है भी नहीं। हमारे परम देवता के चरण कमल पर जो गीतांजलि हम अर्पण किये हैं उस से उनकी प्रसन्नता और हमारी अन्तर की प्रसन्नता ही से हमारा जीवन धन्य है। पर आप ऐसे सज्जनों की अभ्यर्थना के अयोग्य होने पर भी आपकी प्रसन्न कृपा प्राप्त कर हम निज को परम धन्य समझते हैं। कितने कवि हो गए हैं, कितने मौजूद हैं, कितने आगे होने वाले हैं पर आप लोगों की सप्रेम शुभकांक्षा दुर्लभ ही है। इतने दूर से इतनी प्रसन्नता और पवित्र- ग्रामबेली कुसुमोपहार प्राप्त होकर हम यथार्थ धन्य हैं।

भगवान आपको नित्य कल्याण प्रेरणा किया करें और आनन्दमृत रस से नित्य तृप्त रखा करें।

शुक्ल चतुर्थी मार्गशीर्षया — भवदीय
संवत १९७० — प्रीति पत्र सम्मानित
शान्तिनिकेतन — -श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी से उन्होंने एक बार हिन्दी की प्रशंसा करते हुए कहा था कि मुझे कृत्रिम और अलंकार बोझिल रचनाएं नहीं रुचती। 'बिहारी सतसई' उन्हें रुचिकर नहीं प्रतीत हुई। क्योंकि उसके कुछ दोहों के अनेक अर्थ निकलते हैं जो विवादास्पद हैं। हिन्दी-मर्मी संत कवियों से भी वे क्षितिमोहन सेन के माध्यम से परिचित हो गए थे।। हिन्दी के अध्ययन अध्यापन के लिए उन्होंने शान्तिनिकेतन में हिन्दी-भवन की स्थापना की थी जहां डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वानों ने हिन्दी संत वाङ्मय का श्रेष्ठतम शोध कार्य किया। गुरुदेव की इच्छा थी कि 'हिन्दी भवन' में हिन्दी के मूर्धन्य विद्वान् स्थायी रूप से ठोस साहित्य-कार्य करें। द्विवेदी जी के वहां से चले जाने के पश्चात 'भवन' में आज डा० तोमर, श्री रामपूजन तिवारी, श्री मोहनलालवाजपेयी हिन्दी अध्यापन तथा साहित्य निर्माण का कार्य कर रहे हैं।

●

रवीन्द्र के प्रेम-गीत

रामपूजन तिवारी

रवीन्द्रनाथ ने प्रेम सबधी बहुत से गीत लिखे है। प्रेम सम्बन्धी इन गीतो मे मिलन, विरह अभिसार तथा प्रेमी की भिन्न-भिन्न मनोदशाओ के रूप देखने को मिलते ह। लेकिन इन गीतो म प्रेम का जो स्वरूप प्रकट हुआ है वह जैसे हमारी पकड मे आकर भी पकडाई नही देता। वह हमारे हृदय का आलोडित तो कर जाता है, रस-सिक्त तो कर जाता है, उसकी हमे अनुभूति भी होती है फिर भी जैस वह हमारे लिये अननुभूत ही रह जाता है, हमारी पकड के बाहर ही रह जाता है। गीतो के कुछ उदाहरणो से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

प्रेमिका प्रियतम की प्रतीक्षा करती हुई बडी उत्कठा एव आतुरता से उसका पथ निहार रही है। वह जानती है प्रियतम उसे कृतार्थ करने बाहर निकला है क्योंकि उसके वक्ष मे प्रियतम के पथ की वाणी ध्वनित हो रही है। सागर के तट पर, वन के छोर पर कब, कहा वह आया, आकाश जैसे इसी बात की कानाफूसी कर रहा है। प्रियतमा को इस बात से दुख हो रहा है कि इतनी दूर उसने घर बाधा है और उसके पास पहुचने के लिये प्रियतम को न जाने कब कितना घूमकर आना होगा। अपनी इस बेबसी मे वह और कुछ नही कर पाती इसलिये उसने अपने हृदय को बिछाकर सारा पथ ढक दिया है जिसमे उसकी व्यथा पर प्रियतम के चरण पडे।

> मे ये बाहिर हल आमि जानि, वक्षे आमार बाजे ताहार पथेर वाणी ॥
> कोथाय कबे एसेछे से सागर तीरे, वनेर शेषे, आकाश करे सेइ कथारइ कानाकानि ॥
> हाय रे, आमि घर बेंधेछि एतइ दूरे, ना जानि तार आसते हबे कबे कत घुरे।
> हिया आमार पेते रेखे साराटि पथ दिलेम ढेके, आमार व्यथाय पडुक ताहा चरण खानि ॥

इसी प्रकार आधी वाली रात मे अभिसार के लिये निकलने वाले 'परानसखा, बन्धु' के लिये प्रियतमा अपना द्वार खोलकर बार-बार रास्ते की ओर देख रही है। हताश-जैसा आकाश क्रन्दन कर रहा है और उसकी आखो मे नीद नही है। बाहर वह कुछ भी देख नही पाती और बराबर यही सोचती है कि प्रियतम का पथ कहा है। उस समय किस गहन वन के किनारे, किस गभीर अधकार मे दूर वह किस नदी का पार कर रहा है।

आज झडेर राते तोमार अभिसार, परानसखा ब धु हे आमार ।।
आकाश कादे हताश सम, नाइ ये घुम नयने मम, दुयार खुलि हे प्रियतम, चाइ ये बारे बार ।।
बाहिरे किछु देखिते नाहि पाइ, तोमार पथ कोथाय भावि ताई ।।
सुदूर कोन नदीर पारे गहन कोन वनेर धारे,गभीर कोन अ धकारे हतेछ तुमि पार ।।

कि तु प्रेमिका का दुर्भाग्य ! वह आता है और उसे दरवाजे से ही निराश लोट जाना पडता है । कभी वह प्रेमिका के निकट आता है लेकिन घोर निद्रा मे बेखबर पडी हुई वह उसका स्वागत नही करती। कभी उसके आलस्य क कारण, कभी उसकी निद्रा के कारण प्रियतम से उसका मिलन नही हो पाता । समय चूक जाने पर वह पछताती है, अपने को कोसती है । अपने इसी दुर्भाग्य क एक क्षण को याद करती हुई प्रियतमा कहती है, 'सुन्दर, लाल रग के पारिजात पुष्प को हाथ मे लिए हुए आज प्रात काल तुम आए थे । सारी पुरी निद्रा मग्न थी, रास्ते मे कोई पथिक नही था और तुम अपन सोने के रथ पर अकेले चले गए । एक बार रुक कर अपने करुण नयनो से तुमने मेरे वातायन की ओर देखा ।' फिर प्रियतमा कहती है कि उसके आने का पता उसे इसलिये चला कि उसके सपने न जाने किस गन्ध मे भर गये थे और उसके कमरे का अन्धकार न जाने किस आनन्द से काप उठा था तथा धूल मे पडी हुई उसकी वीणा न जाने किस आघात से अनाहत बज उठी थी । वह फिर कहती है कि कितनी बार उसने सोचा कि उठू और आलस्य का त्याग कर बाहर निकलू लेकिन जब उठी तब तक प्रियतम चले गए थे । शायद अब उसे प्रियतम के दर्शन नही होगे । सु दर आज प्रात काल आये थे ।

सुन्दर, तुमि एसछिले आज प्राते, अरुण वरण पारिजात लये हाते ।
निद्रित पुरी, पथिक छिल ना पथे एका चलि गेले तोमार, सोनार रथे—
बारक थामिया मोर वातायन-पाने, चेयेछिले तव करुण नयन पाने
सु दर, तुमि एसेछिले आज प्राते ।
स्वपन आमार भरेछिल कोन ग धे , घरेर आधार केपेछिल की आनन्दे ।
धुलाय-लुटानो नीरव आमार वीणा, बेजे उठेछिल अनाहत की आघाते ।
कतबार आमि भेबेछिनु उठि उठि, आलस त्याजिया पथे बाहिराइ छुटि,
उठिनु यखन तखन गियेछ चले—देखा बुझि आर हल ना तोमार साथे ।
सु दर, तुमि एसेछिले आज प्रात

इसी प्रकार अ य एक गीत मे प्रेमिका की निराशा और स्वय अपने ऊपर उसका आक्रोश अत्य त ही करुण रूप मे मूर्त हो उठ है । अपने भाग्य को दोष देती हुई अपने आपको कोसती हुई प्रेमिका कहती है कि मेरे पार्श्व मे आकर वह बैठा था फिर भी मै नही जगी । मै अभागिनी हू । कैसी मेरी नीद थी । वह नीरव रात्रि मे आया था और उसके हाथ मे वीणा थी । मेरे सपने मे वह गभीर

रागिनी बजा गया ।" वह फिर कहती है कि 'जागकर देखती हू कि उसकी गध दक्षिण पवन को मत्त बना घूम रही है, उसमें अधकार भर उठा है। किस प्रकार मेरी रात बीतेगी। निकट पाकर भी उसे निकट नही पाती।' वह फिर पूछती है कि 'क्यो' जी उसकी माला का स्पर्श हृदय को क्यो नही लगा।'

> से ये पाशे एसे बसेछिल, तबु जागिनि ।
> की घुम तोरे पेयेछिल,हतभागिनी ।
> एसेछिल नीरव राते, वीणाखानि छिलहाते
> स्वपन माझे बाजिये गेल, गभीर रागिनी ।
> जेगे देखि, दखिन हाओया, पागल करिया
> गध ताहार भेसे बेडाय आधार भरिया ।
> केन आमार रजनी याय, काछे पेये काछे ना पाय,
> केन गो तार मालार परश, बुके लागेनि ।

वास्तव मे इस प्रेम मे आकुलता है, प्रेम की मधुर व्यथा है तथा प्रबल और गभीर आकर्षण है लेकिन उच्छ्वास आतिशय्य नही । एक गीत मे प्रेम का यह स्वरूप मुखर हो उठा है । प्रेमिका अपनी सखी से कहती है कि सखि, 'बलि जाऊ', मुझे बासुरी के सुर मे किसने पुकारा है । सोचा था घर मे रहूगी कही भी नही जाऊगी । लेकिन वह देखो, बाहर बासुरी बजी, बोलो क्या करू । सुना है यमुना किनारे किस कुजवन मे मद समीर मे सध्यावेला बासुरी बजती है । सखि, तुम लोग अगर जानती हो तो मुझे रास्ता बता दो । मै जाकर उसके मुख की हसी देखू और फूलो की माला पहना उससे कह आऊ तुम्हारी बासुरी मेरे प्राणो मे बजी है ।

इस प्रेम मे तीव्रता तो है लेकिन लौकिक प्रेम की इन्द्रियासक्ति नही । यह प्रेम इन्द्रियातीत तथा अलौकिक है । इस प्रेम के स्वरूप को समझने के लिए रवीन्द्रनाथ के दृष्टिकोण को समझना आवश्यक है । रवीन्द्रनाथ पर उपनिषदो का बहुत अधिक प्रभाव है । साथ ही अन्य रहस्यवादी कवियो और साधको से उनके विचार बहुत दूर तक मेल खाते है । उपनिषदो मे ब्रह्म को रसस्वरूप कहा गया है—रसो वै स । उसे आनन्द स्वरूप कहा गया है और कहा गया है कि 'आनन्द रूपममृत यद्विभाति ।' अर्थात् सृष्टि मे जो कुछ प्रकाशित हो रहा है वह उसी आनन्द का अमृतरूप है । समस्त सत्ता उसी आनन्दमय सत्ता की अभिव्यक्ति है । प्रकृति का सौन्दर्य उसी आनन्द का व्यक्त रूप है । कवि ने अनुभव किया है कि एक अनन्त महिमा एव सौन्दर्य समस्त जगत् के कण कण मे परिव्याप्त है तथा सीमा के इस सौन्दर्य के पीछे उस असीम का सौन्दर्य ही उद्भासित हो रहा है । इस सोन्दर्य, इस प्रेम को कवि ने प्रत्यक्ष किया है । कवि ने नाना स्थलो पर अपनी इस अनुभूति का उल्लेख किया है । अपनी इस अनुभूति

का जिक्र करते हुए कवि ने 'जीवन स्मृति' मे लिखा है कि " मेरे मन मे एक अनुभूति का उद्भव हुआ क अन्तर की किसी गभीरतम गुहा से एक सुर की धारा बहती हुई देश-काल का अतिक्रमण कर रही है और फिर देश काल से टकराकर प्रतिध्वनि के रूप मे उसी आन द स्रोत मे लौट जाती है। असीम की ओर लौटते समय यह प्रतिध्वनि ही हमारे मन को सौ दर्य से व्याकुल कर देती है। सौदय की व्याकुलता यही हे। असीम से बाहर जो सुर सीमा की ओर आता है वह सत्य है, वही मगल है। वह नियमो मे बधा है। उसका स्वरूप निर्दिष्ट है। इस सुर की जो प्रतिध्वनि सीमा से असीम की ओर फिर लौटी जा रही है, वही सौ दर्य है, वही आन द है। ससीम और असीम के बीच यह लीला सर्वदा चल रही है। कवि ने 'आवर्तन' कविता मे ससीम और असीम के पारस्परिक आकर्षण की चर्चा करने हुए कहा है कि असीम ससीम को निविड भाव से पाना चाहता है और सीमा अपने को असीम मे खो देना चाहती है।

'असीम से चाहे सीमार निविड सङ्ग, सीमा चाय हते असीमेर माझे हारा।

सीमा और असीम की इसी प्रणय-लीला ने रवी द्रनाथ के प्रे म-गीतो मे रूप ग्रहण किया है।

रहस्यवादी साधक और कवि मानते है कि परमात्मा परम-सौ दर्य, परम आन द और परम-सत्य है और प्रकृति के कण-कण मे उसी का सौन्दर्य परिव्याप्त है। वे यह भी मानते है कि परमात्मा प्रेममय है और प्रे म का आनन्द पाने के लिए उसने जीव की सृष्टि की। मनुष्य के हृदय मे उसने इसीलिये प्रे म उत्प न किया कि वह उसका उपभोग कर सके। यही कारण है कि एक होते हुए भी अनेक रूपो मे उसने अपने आपको अभिव्यक्त किया। सूफी साधक कहते हे कि वह परम सौ दर्य अकेले था और उसके उस सौन्दर्य का आन द उठाने वाला कोई नही था। वह छिपा हुआ खजाना था लेकिन उसके भीतर यह व्याकुलता थी अतएव इस सृष्टि की उसने रचना की। जीव उसका अ श है। परमात्मा ही उसका आदि-कारण है। अतएव जीव बराबर इस बात के लिये प्रयत्नशील रहता है कि वह उसी मे लौट जाय और उसी मे विलीन हो जाय। उसकी विलीन हो जाने की यह आकुलना रहस्यवादी कवियो की रचनाओ मे रूपायित हुई है। आत्मा और परमात्मा की यह प्रणय लीला सर्वदा चल रही है और इस प्रे म की विशेषता यह है कि दोनो ओर प्रे म की तीव्रता और मिलन की उत्क ठा बनी हुई रहती है।

रवी द्र ने मनुष्य की सृष्टि का कारण बतलाते हुए कहा है कि 'मेरे भीतर तुम्हारी लीला चलेगी इसीलिये तो मै इस ससार मे आया हू।'

आमार माझे तोमार लीला हबे, ताई तो आमि एसेछिएइ भवे।

रवी द्रनाथ कहते हे कि उनके बिना परमात्मा का प्रे म, सार्थक नही होता इसीलिये वे उनके जीवन मे आते है। उनके हृद य मे रस का खेला चल रहा है और उ ही को लेकर त्रिभुवनेश्वर ने इस

सृष्टि का निस्तार किया ह । परमात्मा की इच्छा ही नाना रूप धारण कर मनुष्य के जीवत मे तरगित होती रहती है। उसी के हृदय को पाने के लिए वे राजराजेश्वर होकर भी मन को हरने वाला वश धारण कर तव त्र फिर रह हे और भक्त के साथ जहा यह सम्मिलन घटित हाता हे वही उनकी मूर्ति पूर्ण प्रकाश पा रही हे।

कवि आगे कहते हे कि " जिस दिन सौ दर्य अ तरात्मा को छू लेता हे उसी दिन उसक भीतर मे असीम उद्भासित हो उठता हे। उसी क्षण जैसे सम्पूर्ण मन गान गा उठता है, कि 'नही, नही, यह केवल वर्ण नही, यह केवल ग ध नही, यही तो अमृत है, यही उनकी विश्वव्यापी प्रसाद की धारा हे। यही आन द है, यही प्रसाद है।' यही देखना वास्तव म देखना हे। इस सत्य को प्रत्यक्ष कर ही हम जगत् मे लहराती हुई आन द धारा को देख सकते हे तथा उस परम-प्रियतम की लीला तथा उसके सौ दर्य का आन द उठा सकते हैं। कवि का कहना है कि सीमा के भीतर असीम अपना सुर बजाता है इसीलिये उसके भीतर असीम का प्रकाश इतना मधुर हो उठता है।

सीमार माझे, असीम, तुमि बाजाओ आपन सुर—
आमार मध्ये तोमार प्रकाश ताइ एत मधुर।

इस विराट् प्रेम का परिचय देते हुए रवी द्रनाथ ने स्वय कहा है कि हे हृदय को हरने वाले, पत्तियो मे सोने के रग का प्रकाश नाच रहा है, मधुरिमा से भरे हुए अलसाए बादल तिरते जा रहे हे, देह मे लगती हुई हवा अमृत का वर्षण कर रही हे यही तो तुम्हारा प्रेम है। प्रभातकालीन आलोक की धारा पे मेरे नयन तिर रहे हे। यही तो तुम्हारी प्रेम की वाणी मेरे प्राणो म आई है। तुम्हारा ही मुख वह झुका हुआ है। तुम्हारे नेत्र मेरे मुख पर लगे हुए है। आज मेरा हृदय तुम्हारे चरणो का स्पर्श किए हुए है।

एइ तो तोमार प्रेम, ओगो हृदयहरण,
एइ ये पाताय आलो नाचे सोनार वरण।
एइ ये मधुर आलसभरे मेघ भेसे याय आकाश– परे,
एइ ये बातास देहे करे अमृतक्षरण—
एइ तो तोमार प्रेम, ओगो हृदयहरण।

यही वह अलौकिक प्रेम का साम्राज्य हे जहा विरह मिलन, मान-अभिमान की लीला चल रही है। यह हमारी दुनिया का होते हुए भी हमारी दुनिया से अलग का है। इस प्रेम को पाने वाले की व्याकुलता परिचित हाते हुए भी अपरिचित है। इस प्रेम का पात्र उस प्रेम की तृष्णा मे कहा जाएगा यह नही जानता। उसके लिए पथ भी जाना हुआ नही है फिर भी अ धकार मे सूने घर मे रहना उसके

लिये कठिन है। उसका मन नही मानता। झर झर बरसने वाली वर्षा, निविड अ धकार तथा जलसिक्त पवन जैसे कभी किसी की वाणी उसके कानो मे लाते ह और कभी नही लाते।

साधारणत रवी द्रनाथ के प्र म सम्ब धी गीतो मे उसके इसी स्वरूप का चित्रण हुआ है। वैसे किसी किसी नाटक मे प्र म का लोकिक रूप भी देखने को मिल जाता है । 'चिरकुमार सभा' नाटक (सन् १९०४ ई०) मे तथा अ य नाटको मे कही कही कुछ ऐसे प्र म गीतो का भी परिचय हमे मिल जाता है जो उन गीतो से भि न हे जिनकी चर्चा हम अभी तक करते रहे हे। लेकिन रवी द्रनाथ के गीतो मे इस प्रकार के लौकिक प्र म की चचा गोण ही है। 'चिरकुमार सभा' के एक गीत से हम उस प्रकार के गीतो का सहज ही अनुमान कर सकते है। वह गीत कुछ इस प्रकार का है जिसमे नायिका मे कहा गया है—प्रिये, अलको मे कुसुम न देना, केवल कबरी को ढीला बाधना, काजल विहीन सजल नयनो से मेर हृदय द्वार पर आघात करना। आकुल अ चल मे पथिक के चरणो मे मरण की फास लगाना । हे निष्ठुरे, बिना वाद-विवाद किए जो मन की साध हो चुपचाप पूरी करना। बिना भूषण के ही आओ, आओ, उसमे कोई दोष नही। जो भी आवे आए अपना रूप तुम प्रयास किए बिना ही सजाना । केवल आखो के कोनो मे हसी का आघात कर आकुल हृदय को विमूढ करना।

अलके कुसुम ना दियो,
शुधु शिथिल कबरी बाधियो।
काजल विहीन सजल नयने
हृदय दुयारे ध्या दियो ।।
आकुल आचले पथिक चरणे
मरणेर फाद फादियो—
ना करिया वाद मने याहा साध,
निदया, नीरवे साधियो ।।
एसो एसो विना भूषणेइ,
दोष नेइ ताहे दोष नइ,
ये आगे आसुक ओई
तब रूप अयतन छादे छादियो।
शुधु हासिखानि आखिकोणे
हानि उतला हृदय धादियो ।।

प्र म का यह स्वरूप रवीन्द्रनाथ के गीतो मे कम ही देखने को मिलता है।

●

शिवपूजन सहाय

कवीन्द्र रवीन्द्र की शती जयन्ती के उपलक्ष्य मे हिन्दी के अनेक पत्रो ने अपने सुसज्जित विशेषाक प्रकाशित किये है। अभी तक वह क्रम चल ही रहा है। विशेषाको के अतिरिक्त पत्र पत्रिकाओ के साधारण अको मे भी हिन्दी के साहित्यकारो ने महाकवि पर असख्य लेख लिखे है। कई विद्वानो ने यह भी स्पष्ट लिखा है कि महाकवि को हिन्दी के कबीर, दादू, विद्यापति आदि कवियो से बहुत प्रेरणा मिली थी और इन हिन्दी कवियो की रचनाओ से महाकवि प्रभावित भी हुए थे। हिन्दी पत्रो मे ऐसे भी लेख निकल चुके है जिनमे प्राचीन सत और भक्त तथा शृङ्गारी कवियो की रचनाओ के उद्धरण देकर महाकवि की तदनुरूप रचनाओ का तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित किया गया है। किन्तु यह बात आज तक किसी ने कही नही लिखी कि महाकवि ने अपनी किसी ऐसी रचना मे उन हिन्दी कवियो का आभार अगीकार किया है या नही। आभार न सही नामोल्लेख ही सही। रवीन्द्र साहित्य के विशेषज्ञ मर्मज्ञ विद्वान् भी इस बात पर मौन साधे रह गये है। इस विषय मे हिन्दी पाठको की जिज्ञासा अभी तक शान्त नही हुई है।

महाकवि के सम्बन्ध मे हिन्दी साहित्य सेवियो ने ही यह भी लिखा कि वाल्मीकि और कालिदास के बाद आज तक महाकवि के समान कोई कवि हुआ ही नही। हिन्दी पाठको को यह भी जानने की उत्कण्ठा है कि हिन्दी के साहित्यकारो को अपना यह मत प्रकाशित करते समय सस्कृत के कई अन्य समर्थ कवियो और हिन्दी के कबीर, तुलसी, विद्यापति आदि का ध्यान था या नही। यदि इन पुराने लोकप्रिय कवियो का स्मरण रहते हुए भी उक्त मत व्यक्त किया गया तो हिन्दी पाठको का शका समाधान अब करेगा कौन? वे प्रश्न करते फिरते है, पर कोई उन्हे सतुष्ट नही करता। वे इतना तो जानते ही है कि प्रत्येक कवि अपने पूर्ववर्ती कवि से प्रभावित और अनुप्राणित होता है, भले ही वह इस तथ्य को स्वीकृत करने की सहृदयता या उदारता न दिखावे, पर वास्तविकता कभी छिप नही सकती। यह भी मानी हुई बात है कि पहले के कवि से बाद के कवि की भावना और भाषा परिष्कृत होती है। सूरदास से बिहारी और घनानन्द की ब्रजभाषा परिमार्जित कही जाती है, पर इससे वे सूर की बराबरी मे नही आ सकते।

महाकवि की रचनाओं से आधुनिक हिन्दी साहित्य प्रभावित तो अवश्य हुआ, उनके अनुवादों मे वह समृद्ध भी हुआ, उसके आगन छायावाद की छाह भी फैली, पर उसने भी महाकवि को हिन्दी पाठकों के घर घर पहुंचाकर अपना सारा ऋण चुका दिया। राष्ट्र भाषा हिन्दी की एक विशेषता यह भी है कि वह किसी का ऋण नही रखती। ऋण लेना तो एक सासारिक या सामाजिक व्यवहार है, पर वह उसे ग्रहण करते ही सूद के साथ चुकाने लग जाती है और पाई पाई भर पाई करके ही दम लेती है। कौन ऐसी भाषा है जिसके साहित्य को उसने क्षेत्रीय सीमा से बाहर निकालकर दूर-दूर तक नही फैलाया है। विशेषत बगभाषा को तो उसने व्यापक क्षेत्र मे ऐसा लोकप्रिय बना दिया कि हिन्दी के अनेक साहित्यकार उस पडोसी भाषा पर असाधारण अधिकार रखने का दावा कर सकते है। महाकवि की शती जयन्ती के अवसर पर हिन्दी ने स्पष्ट दिखला दिया है कि वह सचमुच राष्ट्रभाषा-पद की मर्यादा का पालन और निर्वाह करने मे पूर्णत समर्थ है।

महाकवि ने अपनी विश्वभारती मे हिन्दी-विभाग खोल दिया और साहित्यिक शोध के लिए सर्वाङ्गपूर्ण हिन्दी सग्रहालय भी स्थापित कर दिया, पर स्वय न तो हिन्दी बोलना सीखा न लिखना ही। यहा तक कि हिन्दी को पढने योग्य भाषा मानने की भी कृपा नही की। नागराक्षर मे हस्ताक्षर तक करने का कभी अभ्यास नही किया। अभी तक नागराक्षर मे उनके हस्तलेख का कोई चित्र कही छपा देखने मे नही आया है। कई हिन्दी साहित्य सेवियो ने उसकी सेवा मे उपस्थित होकर उनसे देवनागरी मे हस्ताक्षर कराने का सादर सविनय अनुरोध भी किया, पर उन्होने सदैव अपनी असमर्थता ही प्रकट की। कविजनोचित भाषा मे उनका यही उत्तर मिलता था कि टूटी फूटी हिन्दी बोलना सरस्वती का अपमान करना है। तब तो महात्मा गाधी के समान युगप्रवर्त्तक अवतारी महापुरुष को असख्य बार सरस्वती का अपमान करने का अपराधी कहा जा सकता है। नागराक्षर मे लिखे हुए महात्मा गान्धी के अनेक पत्र यत्र तत्र छप चुके है, जिनमे कुछ अशुद्धिया भी पाई जाती है। पर तब भी महात्माजी के हस्तलेखो को पाकर देवनागरी अपने को धन्य ही मानती है। महाकवि के समान युगद्रष्टा महापुरुष की अमर लेखनी से प्रसून नागराक्षर भी उसे धन्य ही बनाते, पर राष्ट्रभाषा हिन्दी को ऐसा गर्व गौरव प्रदान करने की कृपा महाकवि ने न दिखाई। उनकी तूलिका मे अकित अनेक अटपटे चित्र दर्शनीय कला की सज्ञा पाकर चित्रकला के क्षेत्र मे सुयश पा गये, पर राष्ट्रभाषा हिन्दी न उनकी वाणी के अमृत का एक कण ही चख सकी और न देवनागरी उनकी लेखनी के प्रसाद का कोई कण पा सकी।

महाकवि ने समस्त भूमण्डल मे भारत का मस्तक उन्नत किया। भारतीय साहित्य और सस्कृति की महत्ता से उन्हाने अखिल विश्व को परिचित कराया। वे इस युग के महामहिम महर्षि थे। उनपर भारत राष्ट्र के प्रत्येक अधिवासी को असीम गर्व है। सब सही है। तब भी राष्ट्रभाषा हिन्दी का उपालम्भ श्रद्धया निवदित है।

गीतो के देवता

परदेशी

नाद ब्रह्म के अमर पुत्र कवीन्द्र रवीन्द्र स्वरमयी भारतीय संस्कृति की शाश्वत प्राण धारा के साधक थे। इस पुण्यमयी धरती के जिन वरद पुत्रो ने चिरंतन चेतना की अखंड लौ से अपने अन्तर को आलोकित किया, उनमे कवीन्द्र का शुभनाम सदैव प्रकाशित रहेगा।

गीत के गायक अगणित रहे। संगीत के सिद्ध हजारो हुए। किंतु, मौन संगीत और प्रशांत गीतो के गायक, साधक और श्रोता दो चार ही होगे। गुरुदेव रवीन्द्र ने मौन-संगीत को अपने मे मुखरित पाया। प्रगाढ, प्रशांत मौन मे उन्होने जिस गीतिमाला का दर्शन किया, जिस गुंजन का अभिषेक किया, वह विश्व साहित्य मे सर्वत्र दुर्लभ है।

विजन वन के नितांत एकान्त प्रकोण मे, किसी नन्हे पीपल पादप के नवजात पल्लवांकुर के प्रथम स्वप्न को देखने, सुनने और समझने वाला यह दिव्य देही आर्ष जनवल्लभ द्रष्टा, विराट् का चित्रकार और गीतकार था।

कवीन्द्र ने अपने गीतो की कडियो मे निखिल को बाध लिया, समस्त को समेट लिया। परिश्रम मे परिश्रांत प्रभुपुत्र के स्वेदबिंदु मे उसने विराट् की कमनीय करुणा के स्वर्णसिंधु लहराते देखे। अश्रु माला मे विश्वपति के अनन्त वैभव का परिदर्शन किया। नर मे नारायण देखा और देखकर चुप न रह गया, उसका अभिनन्दन किया।

जहा कही जीवन गीत मर रहा था— नाद स्वर-प्राण के अभाव मे, भाव के अभाव मे, रस से विरहित होकर विच्छिन्न पडा था, वहा-वहा सरस्वतीपुत्र ने उसे स्वर, भाव, रूप, रस और ज्योति दी। स्वर को रूप दिया, रूप को सुगंध दी, सुगंध को ज्योति और ज्योति को रस दिया। उसका यही देय, उसका यही कथ्य, उसका यही नैवेद्य।

साहित्य और सरस्वती के असीम सीमालोको मे जीवनवंता भारतीय परम्पराओ की प्रतिष्ठार्थ उसने अपार योग दिया। अन्यथा, मृत्यु (क्रास और ताबूत) के पुजारियो की संकीर्ण सभ्यता के धुए से भारतीय अम्बर धूमिल होता जा रहा था। कवि ने प्रकाश को पुकारा, आलोक का अलख जगाया। वेदऋचा के रचयिता भरद्वाज के अक्षर शब्दो मे, रवीन्द्र 'करिकर्ता' और 'युग का मनुष्य' था—

"स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतु।
दूतश्च हव्यवाहन ॥" —ऋक्। ६। १६। २३॥

इसलिए, भरद्वाज का स्वर उसकी वाणी का अमृत बना—

"उच्छा दिवा दुहित प्रत्नवन्नो भरद्वाज व द्विधते मघानि ।
सुवीर रयि गृणते रिरीह् युरुगायमधि धेहि श्रवा न ॥
—ऋक् ६ । ६५ । ६ ।

—ओ प्रकाश की बेटी, यहा आओ, कवि कब स तुम्हारी बाट जोह रहा हे । लाल घाडा वाले अपने विचित्र, विस्तत स्वर्णरथ को यहा लाओ । रात्रि के सघन अ धकार को हटाओ ।

आज, व्यक्तिवादियो की— स्व' और 'अर्थ' मे सम्पूर्ण, व्यक्ति निष्ठ, निखिल की विरोधिनी नास्तिक प्रवृत्तिया साहित्य-क्षेत्र मे जिस सीमा तक प्रोत्साहन पा चुकी हे, वह सीमा बन या उठ न पाती, यदि कवीन्द्र रवीन्द्र कुछ दिन और जग जीवन की शोभा बनते । जब तक वे जीवित रहे, मरणवादी, अनास्थावादी, जीवनविरोधी, साम्राज्यवादी (आर्थिक और भौतिक) अ धकार को चुनौती देते रहे ।

अ धतमस् की अह ग्रस्त, निराशानिष्ठ, युद्धप्रवर्तक वृत्तियो का सर्व सहार कवि का जीवन-धर्म था, कर्मयोग था । जग जीवन के मगलमय ललित लोक मे अमगल, विसर्जन और विनाश का बीजारोपण करने वाले तामसिक मानस असुरो के विरुद्ध उसकी वाणी का आनन्द, उल्लास और हर्षप्रद सर्जन सगीत निरतर उठता रहा । उसके गीत मे आल्हाद और आनन्द की जो छटा छिटक रही है, ज्योति की जो किरण-रेखा प्रभासित है, वह जीवन की प्रखड परम्पराओ मे प्राप्त है, यही देवपुत्र कवि का वरदान है । अजस्र रस, अनन्त आनन्द, अखड तेज, अपार प्रेम, और असीम त्याग का तरग स्रोत कवि की वाग्धारा को मिला । कालिदास, कबीरदास, तुलसीदास, सूरदास, चदबरदाइ और रसखान इसी तेज और ज्ञान के अधिकारी थे ।

अपने देश की मिट्टी, आकाश, अनल, अनिल आदि तत्वो मे निर्मित देहधारी कवि ने अपनी माटी के प्रति अनन्त प्यार दरसाया । बग-भग के साम्राज्यवादी षडयन्त्र को ध्वस्त करने के लिए, उसने अपनी विद्रोहिणी वाणी का आधार दिया । जन जन के मन मे इस साजिश के खिलाफ महाकाल का रौद्र रोष जाग्रत किया । जलियावालाबाग के पाशविक अत्याचारो पर भी जब आग्ल फिरगी की सभ्यता का शर्म न आई तो कवि ने विदेशी की दी हुइ उपाधिमाला को जीर्ण वस्त्रो की भाति उतार फेका ।

फिर, जिन दिनो जवाहरलाल जेल मे थे, इगलैड की मिस रथबोर्न नामक लोकरम्भा ने दुर्गंधपूर्ण शब्दावली का प्रयोग कर कीचड उछालने की काफी कोशिश की । जवाहरलाल बदी थे, अत जवाब कोन देता, लोग सब देखते रह गए, किन्तु विद्रोही कवीन्द्र कैसे चुप रह सकते थे ? उनकी वाणी से वह्निधाराए फूट निकली और उन्होने लोकरम्भा रथबोर्न को लक्ष्य कर, साम्राज्यवादी ब्रिटेन को ऐसा करारा उत्तर दिया कि ससार चकित रह गया । जैसे, परमशान्त नगपति हिमाद्रि सुलग उठा । कवि का धैर्य जितना अगम, अथाह और असीम था, उतना ही प्रखर, अनम और अचल था, उसका आक्रोश और रोष ।

मिम रथबोर्न प्रकरण के अवसर पर विद्यार्थी के रूप मे, इन पक्तियो के लेखक को कवि क क्षितिज रहित और सीमा हीन स्नेहाश्रय का सौभाग्य सुलभ हुआ था। लेखक की रचनाओ को कवीद्र का आशीवाद प्राप्त हुआ था और कथा के क्षेत्र मे सतत साधना का सुझाव मिला था। उस नि स्वार्थ, निष्कलुष, निष्काम स्नेहवारि वषरा से स्नात् यह स्नातक, गुरुदेव की प्रेमदीक्षा से दीक्षित यह लेखक, आज यदि एक अक्षर भी लिख सकने मे समर्थ हुआ है, तो उसी तप पूत स्वर-श्रोत के सान्निध्य क कारण।

आज का जीवन देशी विदेशी राजनीति के अनेक कुनीतिपूर्ण षडयन्त्रो से आक्रान्त है। एशिया मे साम्राज्यवाद फिर मे आने को प्राणपण मे सचेष्ट है। साम्राज्यवाद का दूसरा, दुहरा दौर अधिक विषमय और अधिक प्रच्छन्न है। आर्थिक साम्राज्यवाद—एक ओर, इस देश के द्वार थपथपा रहा है और दूसरी ओर पृष्ठद्वार की अर्गला को विदेशियो के दलाल ऐन वक्त पर अवश्य खोल देगे। इसी भाति, वाणी स्वातन्त्र्य के नाम पर कूटनीतिक एव अनैतिक विदेशी-साहित्य का प्रचार प्रसार विविध साधनो की उपलब्धि पर सगठित है। यह बात नही कि साम्राज्य-वादियो के षडयन्त्र पहले नही थे और आज है, वरन् इतना ही कि आज वे अधिक वक्र और चक्रशील हो गए है। गाधी, रवीन्द्र और जवाहर अपने जीवन के किसी भी पल मे साम्राज्यवादियो के प्रलोभन जाल मे नही फसे। इसके अनेक कारणा मे से एक महत्वपूर्ण कारण यह भी रहा कि उनका जीवन पूर्ण त्यागमय था, जबकि हमारा जीवन पूर्ण रागमय है।

आज इस देश का जीवन इतना विलासकामी बन चुका है कि ग्राह्य-अग्राह्य और त्याज्य अत्याज्य का अन्तर मिट चला है। भौतिक आवश्यकताओ के अपने ही हाथो लगाए अम्बार मे आदमी खुद डूब गया है। अनैतिक आय ने उसकी बाहरी तडक भडक को बढा दिया है और उसकी वाणी को अहार्दिक शिष्टाचार की रसरकी वाक्यावली दी है। लेकिन, उसकी अन्तरात्मा मरुभूमि को मात कर रही है, जब कि उसे नन्दन कानन बनना था! अन्तर रिक्त है और वाह्य रक्तसिक्त है! ऐसे मे कैसे वह प्रकाश पाएगा?

आदमी अन्धकार मे भटक रहा है। इसलिए कि उसका मोह राग उत्पन्न कर रहा है और हृदय मे जडता बढ रही है। यह जडता जब व्यक्ति की चेतना का अपहरण करती है। तब स्वार्थ सवस्व बन जाता है। जीवन का ध्येय और साध्य 'पर' न रहकर 'स्व' मे सीमित हो जाता है फिर 'पर' यदि पहले नही तो, परमेश्वर कहा रहा? परमार्थ ही परमेश्वर है। स्वार्थ ही शैतान है। और यो, आदमी जाने अनजाने अपने अन्तरकक्ष से भगवान को निकालकर शैतान को बसा लेता है। शैतान के पास अनेकानेक आकर्षण सम्मोहन और साधन है। सोना-चादी वस्त्राभूषण, मकान, दूकान, भवन और ईट पत्थर है। लेकिन, उसके पास आलोक नही है, गहन अन्धकार है। शैतान अन्धकार से ही जीवित रह सकता है। प्रत्येक प्रकार की प्रकाश किरण उसकी शत्रु है।

चू कि भगवान खाली हाथ था, आदमी शैतान का वैभव विलोक कर भरमा गया। वैसे भगवान का राज-भडार खाली नही, पर यह भरा भडार हरेक को नजर नही आता और विशेषतया, आरम्भ मे जब आदमी शैतान से प्रभावित रहता है, भगवान और उसके भक्तो की, अध्यात्म और परमात्मवादियो की, 'स्व' का विसर्जित कर, 'पर' की रचना मे रमने वाले रमते जोगियो की प्रत्येक कृति, रति, मति, गति, धृति उसे अति मूर्खतापूर्ण प्रतीत होती है। साधना के अतलात तलवाले पाताल मे डुबकी लगाकर जाज्वल्यमान रत्नमणि–मुक्ताहारो को देखने का धैर्य उसमे कहा। इसलिए वह कठोर साधना पर प्राप्त वैभव को छोडकर, अति शीघ्र प्राप्त होने वाले ऐश्वर्य के भव मे भटकता है। कि तु बेखबर है कि इस भटकन का अ त नही है। माया का चक्र है कि सुदर्शन चक्र मे कम नही।

गीतो के कुबेर कवि ने इसी चक्र की परिधियो को चीरकर, आलोक के लोक मे आने का आग्रह आदमी से किया था। उसने उस लोक, समाज और परनिष्ठ व्यक्ति का स्वप्न देखा था, जहा 'सत्य' के बल पर 'सुन्दर' की सिद्धिया सुलभ होती है, जहा सत्य और सु दर शिव के कल्याण का आभा वलय रचते है। परन्तु भोला मनुज कैसे सहज मे यह समझ ले कि कल जहा जाना है, आज उसके निमित्त अभियान का दिन है। 'आज' हमे इसलिए मिला है कि 'कल' की तैयारी करे। कल आज का अ तिम छोर है।

दुख की अ धकारमय रजनी निर तर बढती जाएगी, यदि शाश्वत सुख के लिए हम 'मौन-सगीत' को सुनने और पाने के साधना–पथ की ओर न बढे। गुरुदेव ने कहा था (और यह उनका अ तिम गीत है स्वर्गारोहण की मूहूर्त वेला का) "'दुखेर आधार रात्रि बारे–बारे, ऐसे छे आमार द्वारे।" दुख की तमस् –कारा को भेद कर पूर्ण प्रकाश मे विलीन होने के लिए, मुक्ति कामी महापुरुष का यह अ तिम साधना-सघष था। वह जानता था और उसका यह ज्ञान ही उसका अमृत था, नवजीवन और पुनर्जन्म था कि दुख के अ धकार मे "उसे पुकारते हुए अनवरत सघर्ष ही 'मुक्ति' है। सिद्धि साधना की सहेली है।

साधना मे निरत न रहकर और विलास मे विरत न रहकर, व्यक्ति अपने विसर्जन का पथ प्रशस्त कर लेगा। विराग और साधना का यह तात्पर्य नही कि जग जीवन के दैनिक कर्म-क्रम और धर्मधार प्रवाह से परे रहा जाए। गृहस्थ को वनस्थ मु डी बनाकर' मुक्ति का स्वप्न, जो देखते है, वे मुक्ति और मनुज के मित्र नही है। स्वर्ग और मुक्ति इसी लोक मे है। और देवपुत्र कवी द्र ने कहा था "वैराग्य–साधनेर जे मुक्ति, शे आमार नाही।" वैराग्य और साधना पर जो मुक्ति मिलती है, वह हमारी नही है। हमारी मुक्ति तो वही है, जिसे समाज निष्ठ व्यक्ति अपने कर्म प्रवाह के अ त मे स्वाभाविक रूप मे पाता है।

●

रवीन्द्र और हिन्दी-कविता • रमेश कुंतल मेघ (डा०)

जब द्विवेदी युग के अत मे छायावाद युग आया, तब हिदी मे रवीन्द्र के काव्य तथा शरत्चन्द्र की कथा के लीला कमल खिल उठे और कातिमान हो गए। हिन्दी-काव्य ही क्या, समस्त भारतीय साहित्यो का सन् १९१३ से सन् १९२५ तक का काल रवीन्द्र-काल रहा है, बाद के सामूहिक तथा लोक व्यक्तित्व वाले युग ने तो उन्हे श्रद्धा से प्रणाम् मात्र किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से आरम्भ में हिन्दी-क्षेत्र मे रवीन्द्र-प्रभाव के दो वृत्त बने—पहले का केन्द्र वाराणसी तथा दूसरे का जबलपुर था, जहा क्रमश जयशकर 'प्रसाद' तथा मुकुटधर पाडेय हिन्दी के छायावादी काव्य को सस्कृत साहित्य की आभिजात्य नागरिकता एव बगला की रहस्य-भावना मे रवीन्द्रमय कर उठे। समानातर व बाद की कतारो मे निराला, पत, महादेवी और रामकुमार वर्मा, मोहनलाल महतो 'वियोगी' जनार्दन प्रसाद झा द्विज, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', सरदार पूर्णसिह, पद्मकात मालवीय, रूपनारायण पाडेय, हृदयनारायण पाडेय, 'हृदयेश', तारा पाडेय, तोरण देवी 'लली' आदि ने भी रवीन्द्र से बहुत कुछ लिया। छायावाद युग से पहले भी अग्रेजी और बग्ला के अनुवादो की वजह से मैथिलीशरण गुप्त के 'झकार' सियाराम शरण गुप्त के 'दूवादल' आदि मे रवींद्र-प्रभाव का भास होने लगता है। अफसोस इस बात का है कि हिन्दी पर आरभ के आदोलन कर्त्ता रवीन्द्र का ही प्रभाव पडा, बाद के प्रौढ चितक और गभीर मानवतावादी रवीन्द्र का कम।

वस्तुत रवीन्द्र के पहले भी हिन्दी मे स्वाभाविक स्वच्छदता की जो सहज और मद्र धारा बहती चली आ रही थी, वह घनानद, आलम, बोधा, ठाकुर, ग्वाल आदि से जोडी जा सकती है। इस धारा मे मध्ययुगीन सस्कार व विगत लोक सौदर्य एव जीवन आदि के मधुर सस्मरणो की प्रधानता रही है। प्रेमघन के जीर्णदत्तापुर के मधुर बीते दिन, श्रीधर पाठक के एकातवासी योगी का प्रेम योग, रामनरेश त्रिपाठी के नायको के राष्ट्र योग इसी स्वाभाविक मध्ययुगीन कला सस्कृति वाली स्वच्छदता को प्रतिबिंबित करते है। रवीन्द्र ने इन स्वप्नो को छीनकर नए नए वैयक्तिक आदर्शो वाले युटापियालोका के स्वप्न दिए। प्रसाद के 'आसू' का नया कवियक्ष, निराला के 'तुलसीदास' का नया समाज-द्रोही, पत की 'ग्रथि' का नया रोमाटिक प्रेमी इसके ही परिणाम है, जिनके केन्द्र मे स्वय वैयक्तिक कवि आसीन है। अत यदि उन्होने एक ब्रह्मसमाजी उपासक हाने के नाते सत्य-शिव-सुदरम् के सार्वभौम मूल्य प्रतिष्ठित किए, तो एक वैष्णव भक्त कवि की तरह प्रत्येक कवि को अपने-अपने सत्-चित् आनद प्रतिष्ठित करने के भी मत्र दिए जो वैयक्तिक विश्ववाद को विकसित करते गए। उनक इस विश्ववाद

का वजह से हिदी काव्य मे हृदयददता, जीवनदत्ता, साहि दत्ता तथा अ तन निष्पन्नता के सवाधन हृदय, जीवन साहित्य और विश्व मुक्ति क सदेश गु जान लगे। इस प्रकार र ीद्र न हि ी काव्य का स्वाभाविक स्वच्छदतावादी धारा को मोडकर कलावादी स्वच्छन्दतावादी धारा म बदल दिय, जिसका अपना सौन्दर्यशास्त्र या ऐस्थेटिक्स भो विकसित हुआ। उनक प्रभाव स इसमे एक ओर वैष्णव परपरा का भक्तियाग, सूफी रहस्य भावना की प्रेम की पीर तथा वेदातो ब्रह्म का ज्ञान याग है, दूसरी ओर योरोपीय रोमाटिक परपरा मे प्रेरित शैले का विश्व मानवतावाद, कीट्स की अ गमाधुरी की तृष्णा वर्ड्सवर्थ, ब्लैक का स्वगदूत जैसा प्रकृतिसदेश तथा अन्य कवियो, दार्शनिको आदि की उद्दाम शक्ति तथा आधुनिक बौद्धिकता सलग्न हुई। अस्तु ये सभी तत्व छायावादी काव्य मे मुखर है।

कवीद्र रवीन्द्र की वैष्णवगीतात्मक 'गीताजलि' का अ ग्रेजी म जा सभव गद्यात्मक ललित रूपातर हुआ और जिसक फलस्वरूप नया माधुर्य पद लालित्य, स दर्यबोध, भाव गौरव तथा नइ काव्यात्मक शैली प्रकट हुई उसन तो हि दी काव्य मे गद्य-गीत क नवलरूप को पुनरुज्जीवित कर दिया। रायकृष्णदास वियोगी हरि, दिनशनदिनी आदि क गद्यगीतो मे यह छाप स्पष्ट है।

रवी द्र के पद्यनाटको क प्रभाव मे छायावादी युग म गीति नाट्यो तथा भाव नाट्यो की एक लडी गू थी गई, जिसका सबल सूत्रपात मु शी अजमेरी के 'चित्रागदा' के अनुवाद से हुआ, यद्यपि यह कमावेश प्रभाव पहले से भी पडता चला आ रहा था। रवीन्द्र न 'चित्रागदा' मे नारी को दासता तथा पुरुषत्व स मुक्त कराके उसमे पत्नीत्व और सहज नारीत्व प्रतिष्ठित किया है। इसी ध्रुव धुरी के इर्दगिर्द ही गाविन्दवल्लभ पत के 'वरमाला', भगवती चरण वमा के 'तारा' तथा उदयशकर भट्ट के 'मत्स्यगधा' की नायिकाओ के चरित्र साक्षी होकर घूमते से लगते है।

इसी प्रकार रवी द्र-प्रभाव मे हिन्दी काव्य मे छायावादी 'उस पार' के लोको के साथ-साथ आश्रम और तपोवन, तथा वहा की वासिनी ऋषि कन्याए और वनबालाए भी अ कित होन लगी। निस्सदह इन नायिकाओ तथा इनक उद्दीपनो मे कालिदास की प्रियवदा, मालविका, शकु तला भवभूति की मालती आदि का तथा शेक्सपियर की ओफेलिया, पोर्शिया, जूलिएट, डेस्डिमोनिया आदि का भी हाथ है। किन्तु रवीन्द्र ने उन्हे आधुनिक परिवेश दिए है। रवीन्द्र ने प्रकृति प्रकृति के ऋतु शृ गार पुरुष प्रकृति की आध्यात्मिक प्रणय-लीला प्रकृति की आत्मा आदि के तत्वो को भी आत्ममुक्ति के आलाक मे तथा आश्रमो, तपोवनो क आलोक-क्रोड मे ज्योतिर्मय किया। अत पौराणिकता धार्मिकता, नैतिकता, मध्यकालीनता परपरादि मे भूला भटका भारतीय मानस एक नए सास्कृतिक रिनैसा से अनुप्राणित हो उठा और ये सभी नए मूल्यो मे अभिषेकित हो गई। हम तो यू भी कह सकते हैं कि रवी द्र ने हिन्दी के विद्यापति, कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि से जो लिया, उसे सवर्द्धित करके राष्टभाषा को पुन लौटा दिया जिसस वह भारत देश की एकता की विरासत हो गई।

●

रवीन्द्र | काव्य | उपभोग

• हरप्रसाद बागची

प्रत्येक बार मै सबसे अनुरोध करता रहता हू कि रवी न्द्र को समझने क लिए, उनके विभिन्न प्रकार के लेखो का रसास्वादन करने के लिए साधना की आवश्यकता है। रवी न्द्र को समझने के लिए हम लोगो की साधारण नि्द्या मे काम न चलेगा, उनकी कविता को भलीभाति हृदयङ्गम करन के लिए उस लेख का मूल स्रोत कहा है ? इस बात को बिना जाने उसका रसास्वादन सभव नही है। उनकी कविता को भली भाति समझन के लिए उसे बार बार पढना होगा, सुनना हागा, उसका मनन करना हागा और उसका निदिध्यासन करना होगा। इसके लिए क्या हम तैयार हे ?

मै यह समझता हू कि रविबाबू की कविता समझने के लिए हमे यह बात याद रखनी होगी कि उनकी कविता के कुछ एक मूल सूत्र हे। इन सूत्रो को न जानने म उनकी अनेक कविताए ही हम लोगो के लिए पहेली ही बनी रह जायगी। हमारा यह सौभाग्य है कि कवि ने स्वय ही कुछ एक ऐसे सूत्रो का पता हमे द दिया है। इसके अतिरिक्त प्रयत्न करने पर हम भी कुछ सूत्रो को पकड सकेगे।

(१) हम समझते है कि उनकी अनेक कविताए ही उपनिषदो मे वर्णित तत्त्व पर ही आधारित हे। उदाहरण के लिए हम कह सकते है जैसे ससीम-असीम तत्व। निरवच्छिन्न ससीम अथवा निरवच्छिन्न असीम नामक क्या कोई वस्तु है या नही या वे अ गाङ्गी भाव मे मिली हुई हे ? साकार निराकार को लेकर जो मतभेद है क्या वह कभी सभव हो सकता था यदि हम यह समझते कि एक की धारणा दूसर पर आश्रित है ? साकार कहते ही हम यह अन्तस्तल मे स्वीकार करते है कि साकार क बाहर भी ऐसी वस्तु है जिसका आकार नही। इसी प्रकार निराकार कहते ही हम साथ ही साथ यह स्वीकार करते है कि निराकार पर आश्रित साकार वस्तु है। पण्डित सीतानाथ तत्वभूषण की "शास्त्रीय ब्रह्मवाद और ब्रह्मसाधन" नामक पुस्तक स एक उद्धरण देकर हम अपने वक्तव्य को स्पष्ट करेगे।

"ससीम और असीम आपातत परस्पर विरुद्ध से ज्ञात होते हे। मालूम होता है कि दा मे स एक सत्य है और दूसरा मिथ्या। लौकिक चिन्तन मे ससीम ही सत्य है, असीम मिथ्या अथवा सदिग्ध जान पडता है। मायावादी के चिन्तन मे असीम ही सत्य है, और ससीम मिथ्या। उपनिषद् के भूमातत्व की आलोचना करने पर ज्ञात हाता है कि ससीम मे पथक् असीम मिथ्या और सदिग्ध है, किन्तु ससीम विशिष्ट और ससीम का आश्रयभूत, असीम ही केवल सत्य है ऐसा नही है, वही एक मात्र सत्य नही है। इसी प्र ार असीम से प्रथक ससीम यद्यपि मिथ्या है तथापि असीम पर आश्रित ससीम का मिथ्या होना तो दूर रहा, उसका छोड देने पर असीम भी छिन्न सत्ता, कल्पना-मात्र रह जायगा।"

अब हम रवीन्द्र की एक कविता पढते है। मिलाकर देखिए कि ऊपर की बात की यह कवित्वपूर्ण व्याख्या है कि नही।

धूप आपना के मिलाइते चाहे ग न्धे, ग न्ध मे चाहे धूपेरे रहिते जुडे।
सुर आपनाके धरा दिते चाहे छन्दे, छन्द फिरिया छुटे येते चाय सुरे।
भाव पेते चाय रूपर माझारे अङ्ग, रूप पेते चाय भावेर माझारे छाडा।
असीम से चाहे सीमार निविड सङ्ग, सीमा चाहे हते असीमेर माझे हारा।
प्रलय सृजने ना जानि ए कार युक्ति, भाव हते रूपे अविराम याओया आसा।
बन्ध फिरिछे खुजिया आपन मुक्ति, मुक्ति मागिछे बाधनेर माझे वासा।

अर्थ—धूप अपने को मिलाना चाहती है गन्ध मे। गन्ध जो है वह धूप से जुडी रहना चाहती है। स्वर अपने को छन्द मे पकडवाना चाहता है और छन्द लौटकर स्वर मे जाकर मिल जाना चाहता है। भाव, रूप मे अपने को साकार (साङ्ग) करना चाहता है और रूप भाव मे उन्मुक्त होना चाहता है। जो असीम है वह सीमा का निविड सग चाहता है और सीमा असीम मे खो जाना चाहती है। प्रलय और सृजन मे नही जानता किसकी युक्ति है। भाव से रूप की ओर अविराम आवागमन हो रहा है। बन्धन अपनी मुक्ति खोजता घूम रहा है और मुक्ति बन्धन मे अपना निवास माग रही है।

श्री रामकृष्ण परमहस ने भी यही बात अपनी अनवद्य वाणी मे कही है—"वे एक रूप मे नित्य है और एक रूप मे लीला। वेद उन (प्रभु) को सगुण भी कहता है और निर्गुण भी। वे ही जीव जगत बन गये है, चौबीस तत्व बन गये है। जब सृष्टि करते है, पालन करते है, सहार करते है—तब उन्हे मै 'शक्ति' कहता हू। ब्रह्म और शक्ति का अभेद है, जल स्थिर रहने पर भी जल है और हिलने डुलने पर भी जल ही है।"

स्थिर रहने की अवस्था है निराकार ब्रह्म, हिलने डुलने की अवस्था है साकार ब्रह्म। निराकार मे साकार की स्थिति है एव साकार मे निराकार की स्थिति है। क्या ऐसा नही है?

"रूप सागरे डुब दियेछि अरूप रतन आशा करि' (रूप सागर मे मैने डुबकी लगाई है और मैं अरूप रत्न की आशा करता हू) नामक रवीन्द्र की कविता मे उपर्युक्त तथ्य ध्यान देने योग्य है।

(१) आप सब ने वह कवि गान सुना है —

अल्प लइया थाकि ताइ मोर याहा याय ताहा याय।
कणाटुकु यदि हाराय, ता लये प्राण करे हाय हाय ॥ १ ॥
नदी तट सम केवलि वृथाइ, प्रवाह आकडि राखिवारे चाइ,
एके एक बुके आघात करिया ढेउ गुलि कोथा धाय ॥ २ ॥
याहा याय आर याहा किछु थाके, सब यदि दिइ सापिया तोमाके,
तबे नाहि क्षय सबइ जेगे रय तव महा महिमाय ॥ ३ ॥

तामाने रयछे यत शशीभानु, हाराय ना कभु अणु परिमाणु
आमारि क्षुद्र हारानिधिगुलि रवे नाकि तव पाय ।। ४ ।।

अर्थ— मे अल्प लिए हुए रहता हू इसीलिए जो कुछ मेरा जाता है वह जाता ही है । एक कण भी यदि खाता है ता उसी का लेकर प्राण हाय हाय कर उठत हे ।।१।। नदी तट की तरह ही केवल व्यर्थ ही मै प्रवाह को जकड कर पकडे रहना चाहता ह । छाती पर एक एक लहर आघात करके कहा दौड जाती है ।।२।। जो चला जाता है और जो कुछ बचा रहता है यदि उस सबको ही तुम्हे सौंप दू तब ता कुछ भी क्षय नहा हागा, सब तुम्हारी महा महिमा मे जाग्रत बना रहेगा ।।३।। तुम मे जितने शशि और सूर्य है वे सभी विराजमान है, वहा अणु परिमाणु भी नही खाता । मेरी क्षुद्र खोई निधिया भी क्या तब आप के चरणो मे न रह सकगी ? ।। ४ ।।

यह गान उपनिषद् क भूमातत्व के ऊपर अवस्थित है । छान्दाग्य उपनिषद् मे सनत्कुमार न भूमा की स ज्ञा इस प्रकार दी है—"यत्र ना यत् पश्यति, ना यत् शृणोति नान्यद् विजानाति स भूमा । अथ यत्र अ यत् पश्यति, अ यत् शृणोति, अ यद् विजानाति, तदल्पम् । यो वै भूमा तदमृतम्, यदल्प तन्मर्त्यम् ।" जहा अन्य कुछ नही देखा जाता । अन्य कुछ नही सुना जाता, अन्य कुछ नही जाना जाता, वही भूमा है (अखण्ड है) और जहा और कुछ देखा जाता है अ य कुछ सुना जाता है, अ य कुछ जाना जाता है वही अल्प अर्थात् ससीम, सा त है । जो भूमा है वही अमृत है और जो अल्प है वही मरणशील है ।" एक अ य स्थान पर उपनिषद् कहती है "यो वै भूमा तत् सुखम् नाल्पे सुखमस्ति ।" जो अखण्ड है, महान् है असीम है, भूमा है वही सुख है, अल्प मे सुख नही है ।" अल्प लेकर हम चलते हे, तभी तो एक कण भर खो देने पर हम हाय हाय करते रहते है । अब आप रवि ठाकुर की कविता का मम समझिए कि क्यो अल्प हमारे हाहाकार का कारण है ।

(३) वैष्णव कविता मे भगवान् का और भक्त का सम्बन्ध वर्णन किया जाता है—यहा द्वैतभाव रहता है । द्वैत न होने पर भक्ति भी नही होती, उपासना भी नही होती । इसके लिए ब्रह्म को भी रसास्वादन करने के लिए लीला की सृष्टि करनी पडती है । भक्त का जैसा प्रेम हाता है वैसा ही तेज भी । यदि द्वैत का ज्ञान न होता, ता भगवान् की वात भी कौन करता और कौन उसे पहिचानता सुतरा भक्त जानते है कि उनका भी बडा मूल्य है । इसी से वे कहते हे —

"आमा नइले, त्रिभुवनेश्वर तोमार प्रेम हतो ये मिछे,
आमार माझे तोमार लीला हवे, ताइ तो आमि एसेछि एइ भवे ।"

हमारे न रहने पर हे त्रिभुवनेश्वर ! तुम्हारा प्रेम ही मिथ्या हो जाता । हम मे तुम्हारी लीला होगी इसीलिए ता इस भव (स सार) मे हम आए हे ।

(४) अब हम रवि ठाकुर के शब्दो मे, उन्होने अपनी कविता के सम्बन्ध मे अपनी आत्मापरिचय पुस्तक मे जो कुछ लिखा है, उससे आपको कुछ बतलाते हे—

"केवल काव्य के माध्यम से मेरे लिए मेरा जीवन जिस रूप म प्रकाशित हुआ है उसी को म यथष्ट सक्षेप मे लिखने की चेष्टा करू गा। अपनी सुदीर्घकाल की कविता लिखन की धारा का घूम कर जब मै देखता हू तो यह मै स्पष्ट देख पाता हू कि यह एक एसा कार्यकलाप है जिसके ऊपर मेरा जरा भी कर्तत्व नही था। जब लिख रहा था तब सोचता था कि सचमुच मैं ही लिख रहा हू किन्तु आज मै जान रहा हू कि यह बात सत्य नही है। इसका कारण यह है कि उन खण्ड कविताओ म मेरे सम्पूर्ण काव्य ग्रन्थ का तात्पर्य पूरा नही हुआ है—वह तात्पर्य है क्या? यह बात भी म पहिले नही जानता था। इसीलिए दीर्घकाल के बाद एक दिन मैन लिखा था —

"ए कि कौतुक नित्य नूतन ओगो कौतुकमयी,
आमि याहा किछु चाहि बलिवारे बलिते दिनेछ कइ।
अ तर माझे तुमि अहरह, मुख हते तुमि भाषा केडे लह,
मार कथा लये तुमि कथा कह मिशाये आपन सुरे।
कि बलिते चाइ सब भूले याइ, तुमि या बलाओ आमि बलि ताइ,
सङ्गीत स्रोते कूल नाहि पाइ, कोथा भेसे याइ दूरे।"

अर्थ—नित्य नूतन यह क्या कौतुक है, हे कौतुकमयि! मे जो कुछ कहना चाहता हू उसे तुम कब कहने देती हो। अहरह (सदा) तुम अ तर मे विराज रही हो और मेरे मुख मे मेरी बात छीन लेती हो। मेरी वाणी द्वारा अपना स्वर मिला कर अपनी बात कहती हो। मै क्या कहना चाहता हू, सब भूल जाता हू, तुम जो कुछ कहलवाती हो, वही तो मै कहता हू। सगीत के स्रोत मे किनारा नही पाता, और न जाने कहा दूर बह जाता हू।

विश्वविधि का एक नियम मै यह देखता हू कि जो वस्तु आसन्न (पास) है जो उपस्थित है उसे वह खर्च या छोटा नही करने देता। फूल जब खिलता है तब ऐसा मालूम पडता है मानो वृक्ष का एक मात्र लक्ष्य यह फूल ही है—किन्तु यह फूल फल उत्पादन के लिए केवल एक उपलक्ष्य मात्र है, यह बात गुप्त ही रहती है। वर्तमान के गौरव मे पुष्प प्रफुल्लित रहता है, भविष्यत् उस अभिभूत नहीं करता। पुन फल को देखकर मालूम होता है—मानो यही सफलता की अ तिम सीमा है। किन्तु भावी वृक्ष के लिए वह बीज को अपने गर्भ मे परिणति प्रदान कर रहा है, यह बात गोपन ही बनी रहती है। काव्य रचना के सम्ब ध मे भी यही विश्व विधान दृष्टिगोचर है—अ तत अपने निज के विषय मे मैंने यही उपलब्धि की है। जब जो कुछ लिखा था उस समय उसी को परिणाम मान लिया था। इसी से उसी को सुधारने और पूर्ण करने के लिए अनेक यत्न और अनेक आन द अनुभव किए गए थे। कि तु आज मै समझ गया हू कि वह सकल लेख उपलक्ष्य मात्र हे वे लेख जिस अनागत को गढकर निर्माण कर रहे हे उस अनागत को वे पहिचानते तक नही है।

ये ही जो कवि हे जो मेरे समस्त भले बुरे, मेरे समस्त अनुकूल उपकरण लेकर मेरे जीवन की रचना करते चले जा रहे हे उ ही को मेने अपने काव्य मे जीवन देवता नाम दिया है। व केवल मेरे

तामाने रयेछे यत शशीभानु, हाराग ना कभु अणु परिमाणु,
आमारि क्षुद्र हारानिधिगुलि रबे नाकि तव पाय ।। ४ ।।

अर्थ— मै अल्प लिए हुए रहता हू इसीलिए जो कुछ मेरा जाता है वह जाता ही है। एक कण भी यदि खाता है तो उसी को लेकर प्राण हाय हाय कर उठते है ।।१।। नदी तट की तरह ही केवल व्यर्थ ही मै प्रवाह को जकड कर पकडे रहना चाहता हू । छाती पर एक एक लहर आघात करके कहा दौड जाती है ।।२।। जो चला जाता है और जो कुछ बचा रहता है यदि उस सबको ही तुम्हे सौंप दू तब तो कुछ भी क्षय नहा होगा, सब तुम्हारी महा महिमा मे जाग्रत बना रहेगा ।।३।। तुम मे जितने शशि और सूर्य है वे सभी विराजमान है, वहा अणु परिमाणु भी नही खाता। मेरी क्षुद्र खोई निधिया भी क्या तब आप के चरणो मे न रह सकगी ? ।। ४ ।।

यह गान उपनिषद् के भूमातत्व के ऊपर अवस्थित है। छान्दोग्य उपनिषद् मे सनत्कुमार ने भूमा की सज्ञा इस प्रकार दी है—"यत्र नान्यत् पश्यति, नान्यत् शृणोति नान्यद् विजानाति स भूमा। अथ यत्र अन्यत् पश्यति, अन्यत् शृणोति, अन्यद् विजानाति, तदल्पम् । यो वै भूमा तदमृतम्, यदल्प तन्मर्त्यम् ।" जहा अन्य कुछ नही देखा जाता। अन्य कुछ नही सुना जाता, अन्य कुछ नही जाना जाता, वही भूमा है (अखण्ड है) और जहा और कुछ देखा जाता है, अन्य कुछ सुना जाता है, अन्य कुछ जाना जाता है वही अल्प अर्थात् ससीम, सान्त है। जो भूमा है वही अमृत है और जो अल्प है वही मरणशील है।" एक अन्य स्थान पर उपनिषद् कहती है 'यो वै भूमा तत् सुखम् नाल्पे सुखमस्ति ।" जो अखण्ड है, महान् है, असीम है, भूमा है वही सुख है, अल्प मे सुख नही है।" अल्प लेकर हम चलते है, तभी तो एक कण भर खो देने पर हम हाय हाय करते रहते है। अब आप रवि ठाकुर की कविता का मर्म समझिए कि क्यो अल्प हमारे हाहाकार का कारण है।

(३) वैष्णव कविता मे भगवान् का और भक्त का सम्बन्ध वर्णन किया जाता है—यहा द्वैतभाव रहता है। द्वैत न होने पर भक्ति भी नही होती, उपासना भी नही होती । इसके लिए ब्रह्म को भी रसास्वादन करने के लिए लीला की सृष्टि करनी पडती है। भक्त का जैसा प्रेम होता है वैसा ही तेज भी। यदि द्वैत का ज्ञान न होता, तो भगवान् की बात भी कौन करता और कौन उसे पहिचानता सुतरा भक्त जानते है कि उनका भी बडा मूल्य है। इसी से वे कहते है—

"आमा नइले, त्रिभुवनेश्वर तोमार प्रेम हता ये मिछे,
आमार माझे तोमार लीला हबे, ताइ तो आमि एसेछि एइ भवे।"

हमारे न रहने पर हे त्रिभुवनेश्वर ! तुम्हारा प्रेम ही मिथ्या हो जाता। हम मे तुम्हारी लीला होगी इसीलिए तो इस भव (ससार) मे हम आए है।

(४) अब हम रवि ठाकुर के शब्दो मे, उन्होने अपनी कविता के सम्बन्ध मे अपनी आत्मापरिचय पुस्तक मे जो कुछ लिखा है, उससे आपको कुछ बतलाते है—

"केवल काव्य के माध्यम से मेरे लिए मेरा जीवन जिस रूप म प्रकाशित हुआ है उसी को मै यथष्ट सक्षेप मे लिखने की चेष्टा करू गा। अपनी सुदीर्घकाल की कविता लिखने की धारा को घूम कर जब मै देखता हू तो यह म स्पष्ट देख पाता हू कि यह एक ऐसा कार्यकलाप है जिसके ऊपर मेरा जरा भी कर्तत्व नही था। जब लिख रहा था तब सोचता था कि सचमुच म ही लिख रहा हू किन्तु आज म जान रहा हू कि यह बात सत्य नही है। इसका कारण यह है कि उन खण्ड कविताओ म मेर सम्पूर्ण काव्य ग्रन्थ का तात्पर्य पूरा नही हुआ है–वह तात्पर्य है क्या? यह बात भी मै पहिले नही जानता था। इसीलिए दीर्घकाल के बाद एक दिन मैने लिखा था —

"ए कि कौतुक नित्य नूतन ओगो कौतुकमयी,
आमि याहा किछु चाहि बलिबारे बलिते दितेछ कइ।
अ तर माझे तुमि अहरह, मुख हते तुमि भाषा केडे लह,
मार कथा लये तुमि कथा कह मिशाये आपन सुरे।
कि बलिते चाइ सब भूले याइ, तुमि या बलाओ आमि बलि ताइ,
सङ्गीत स्रोते कूल नाहि पाइ, कोथा भेस याइ दूरे।"

अर्थ—नित्य नूतन यह क्या कौतुक है, हे कौतुकमयि! मै जो कुछ कहना चाहता हू उसे तुम कब कहने देती हो। अहरह (सदा) तुम अ तर मे विराज रही हो और मेरे मुख मे मेरी बात छीन लेती हो। मेरी वाणी द्वारा अपना स्वर मिला कर अपनी बात कहती हो। मै क्या कहना चाहता हू, सब भूल जाता हू, तुम जो कुछ कहलवाती हो, वही तो मै कहता हू। सगीत के स्रोत मे किनारा नही पाता, और न जाने कहा दूर बह जाता हू।

विश्वविधि का एक नियम मै यह देखता हू कि जो वस्तु आसन्न (पास) है, जो उपस्थित है उसे वह खर्च या छोटा नही करने देता। फूल जब खिलता है तब ऐसा मालूम पडता है माना वृक्ष का एक मात्र लक्ष्य यह फूल ही है—किन्तु यह फूल फल उत्पादन के लिए केवल एक उपलक्ष्य मात्र है, यह बात गुप्त ही रहती है। वर्तमान के गौरव मे पुष्प प्रफुल्लित रहता है, भविष्यत् उस अभिभूत नही करता। पुन फल को देखकर मालूम होता है–मानो यही सफलता की अन्तिम सीमा है। किन्तु भावी वृक्ष क लिए वह बीज को अपने गर्भ मे परिणति प्रदान कर रहा है, यह बात गोपन ही बनी रहती है। काव्य रचना के सम्बन्ध मे भी यही विश्व विधान दृष्टिगोचर है—अन्तत अपने निज क विषय म मैंने यही उपलब्धि की है। जब जो कुछ लिखा था उस समय उसी को परिणाम मान लिया था। इसी से उसी को सुधारने और पूर्ण करने के लिए अनेक यत्न और अनेक आन द अनुभव किए गए थे। किन्तु आज मे समझ गया हू कि यह सकल लेख उपलक्ष्य मात्र है वे लेख जिस अनागत को गढकर निमाण कर रहे है उस अनागत को वे पहिचानते तक नही है।

ये ही जो कवि है जो मेरे समस्त भले बुरे, मेरे समस्त अनुकूल उपकरण लेकर मेर जीवन की रचना करते चले जा रहे है उन्ही को मैने अपने काव्य मे जीवन देवता नाम दिया है। व केवल मेरे

इसी जीवन की समस्त खण्डता को ऐक्यदान करके विश्व के साथ उसका सामजस्य स्थापन कर रहे ह, मैं तो समझता हू —मैं जानता हू कि अनादिकाल से विचित्र अवस्था के माध्यम मे वे मुझ, मेर इस वर्तमान प्रकाश मे ले आये हे—कि उसी विश्व के बीच से प्रवाहित होने वाली अस्तित्वधारा की स्मृति, उनका अवलम्बन किए हए हे और वे मेरे अगोचर होकर ही मुझ मे विराजमान ह। इसीलिए जगत् के तरु, लता, पशु, पक्षी के साथ मे एक पुरातन ऐक्य का ऐसा अनुभव कर सकता हू जिससे इतना विशाल रहस्यमय जगत् भी अनात्मीय और भीषण नही मालूम पडता।

आज मने हय सकलेरि माझे तोमारेइ भालोवेसेछि,
जनता वाहिया चिरदिन धरे शुधु तुमि आमि एसेछि।
चेये चारिदिक पाने कि ये जेगे उठे प्राणे।
तोमार आमार असीम मिलन येनो गो सकल खाने
कत युग एइ आकाशे यापिनू से कथा अनेक भूलेछि
ताराय ताराय ये आलो कापिछे से आलोके दाहे दूलेछि

अर्थ— आज मन मे आता है कि सकल के भीतर मैने तुम्ही से प्रेम किया है। जनता के प्रवाह मे चिरकाल से तुम और मै ही केवल चलते आए हैं। चारो ओर देखने पर प्राण मे क्या बात जाग उठती है कि तुम्हारा और हमारा असीम मिलन मानो सभी स्थलो मे हो रहा है। कितने युग मैने इसी आकाश मे व्यतीत किए है, यह बात मै बहुत कुछ भूल गया हू। तारे-तारे मे जो आलोक कम्पित हा रहा है, उसी आलोक मे हम दोनो झूले हे।

कवि के 'जीवन देवता' का अर्थ जाने बिना इस कविता को क्या हम भली-भाति समझ सकते थे ?

हम मे हमारे अन्तर्देवता के एक प्रकाश का आनन्द वर्त्तमान है—उस आनन्द ने, उस प्रेम ने हमारे समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्ग, हमारे बुद्धि, मन, हमारे सामने प्रत्यक्ष इस विश्व जगत् को, हमारे अनादि अतीत और अनन्त भविष्यत् को परिस्फुट कर रक्खा है। इस लीला को तो हम कुछ भी नही समझ पाते ह किन्तु हमारे भीतर ही नियत यह प्रेम की एक लीला है। हमारी आखो को जो प्रकाश सुन्दर लगता है, प्रभात सध्या मे जो मेघ की छटा सुन्दर लगती है, तृण तरु लता की जा श्यामलता अच्छी लगती है, प्रियजन की जो मुखच्छवि हमे अच्छी लगती है—यह सब कुछ ही उसी प्रेम लीला की उद्वेलित तरङ्गमाला है। जीवन के समस्त सुख-दुःख की, समस्त आलोक-अधकार की छाया उन्ही मे खेल रही है।

हमारे भीतर यह जो कुछ गढा जा रहा है और जो इसे गढ रहे है, इन दोनो के बीच जो एक आनन्द का सम्बन्ध है, जो एक नित्य प्रेम का बन्धन है उसको जीवन की समस्त घटना के भीतर उपलब्धि करने से सुख-दुःख मे भी एक शान्ति मिलती है। जब मै यह समझ पाता हू कि हमारे प्रत्येक आनन्द

क उच्छ्वास को उ होने खीच लिया है, हमारी प्रत्येक दु ख वेदना का उ होने स्वय ग्रहण कर लिया है, तब मे यह समझ जाता हू कि कुछ भी व्यर्थ नही हुआ है, समस्त ही एक जगद्व्यापी सम्पूर्णता की ओर धय हो गया है। जो शक्ति हमारे जीवन के समस्त सुख दु ख का, समस्त घटना को ऐक्यदान, तात्पर्यदान करती है, हमारे रूपरूपा तर, ज मज मातर को एक सूत्र मे गू थ रही है, जिसके भीतर मे हम विश्व चराचर मे ऐक्य अनुभव करते है उ ही का 'जीवन देवता' का नाम देकर मैने लिखा था —

ओहे अ तरतम, मिटेछे कि तव सकल तियास आसि अ तरे मम।
दु ख सुखेर लथ धाराय, पात्र भरिया दियाछि तोमाय,
निठुर पीडने निङाडि वक्ष दलित द्राक्षासम।
कत ये वरन, कत ये ग ध, कत ये रागिनी, कत ये छ द,
गाथिया गाथिया करेछि वयन वासर शयन तव—
गलाये गलाये वासनार सोना प्रतिदिन आमि करेछि रचना
तोमार क्षणिक खेलार लागिया मूरति नित्य नव।

अर्थ— अरे अ तरम! मेरे अ त करण मे आकर क्या तुम्हारी सब तृषा मिट गई है। दलित द्राक्षा के समान, वक्ष को निष्ठुर पीडन द्वारा निचोड कर, सुख दु ख की लाखो धाराओ से पात्र भर कर मैंने तुम्हे दिया है। कितने वर्ण, कितनी सुग ध, कितनी रागिनी और कितने छ द गू थ गू थ कर मैंने तुम्हारी सुहाग शय्या बुनी है। वासना का सोना गला कर प्रतिदिन मैने तुम्हारे क्षणिक खेल के लिए नित्य नूतन मूर्तियो की रचना की है।

आश्चर्य यह है कि मुझे प्रकाश मिल रहा है। मेरे भीतर क्या ही अनन्त माधुर्य है जिसके लिए मैं असीम ब्रह्माण्ड के अनगिनत सूर्य-ग्रह तारो की समस्त शक्ति के द्वारा लालित होकर इस आलोक मे, इस आकाश मे आख खोलकर खडा हुआ हू — मेरा कोई त्याग नही करता। मन मे केवल यही प्रश्न उठता है कि मैं अपने आश्चर्यपूर्ण अस्तित्व के अधिकार की कैसे रक्षा कर रहा हू— मेरे ऊपर जो प्रेम, जो आन द अश्रा तरूप से बरस रहा है वह यदि न होता तो अपने रहने की कोई शक्ति ही मुझ मे न रहती।

"आपनि वरिया लये छिले मोरे ना जानि किसेर आशे।
लेगेछे कि भालो हे जीवन नाथ, आमार रजनी आमार प्रभात
आमार नर्म आमार कर्म, तोमार विजनवासे।
वरषा शरते वसन्ते शीते ध्वनियाछे हिया यत सङ्गीत
शुनेछ कि ताहा एकेला बसिया आपन सिहासने।
मानस कुसुम तूलि अञ्चले गेथेछ कि माला, परेछ कि गले
आपनार मने करेछ भ्रमण मम यौवनवने।

कि देखिछ बधु मरम-माझारे राखिया नयन दुटि
करेछ कि क्षमा यतेक आमार स्खलन पतन त्रुटि ।
पूजाहीन दिन, सेवाहीन रात, कत बार बार फिरे गेछे नाथ
अर्ध्य कुसुम झरे पडे गेछे विजन विपिनं फुटि ।
ये सुरे बाधिले ए वीणार तार नामिया नामिया गेछे बार बार
हे कवि तोमार रचित रागिणी आमि कि गाहिते पारि ।
तोमार कानने सेविवारे गिया घुमाय पडेछि छायाय पडिया,
सन्ध्या वेलाय नयन भरिया एनेछि अश्रु वारि ।

अर्थ— तुमने स्वय ही मुझे वरण कर लिया था, नही जानता किस आशा मे हे जीवननाथ ! क्या मेरी रजनी, मेरा प्रभात, मेरा नर्म, और मेरा कर्म अपने निर्जन निवास मे तुम्हे अच्छे लगे थे ? वषा मे, शरद मे, वसन्त मे और शीत काल मे मेरा हृदय, जितने सगीतो मे ध्वनित हुआ है, अपने सिहासन पर अकेले बैठकर क्या उसे तुमने सुना है ? मानस कुसुमो को अञ्चल मे चुनकर क्या तुमने माला बनाई और उसे अपने गले मे पहिना है और मेरे यौवन-उपवन मे अपनी इच्छा से भ्रमण किया है ? अपनी दोनो आखे मेरे मर्म स्थल मे एकाग्र करके हे बन्धु ! तुम क्या देख रहे हो ? मुझमे जितने स्खलन, पतन और त्रुटिया हुई हे क्या उन्हे तुमने क्षमा कर दिया है ? पूजाहीन दिनो मे सेवाहीन रातो मे कितनी बार नाथ लौट कर चले गये हे, निजन विपिन मे फूल फूले और अर्घ्य के ये फूल झड गये है । हे कवि ! तुम्हारी रचित रागिनी को क्या मै गा सकता हू ? क्योकि जिस स्वर मे तुमने इस वीणा के तार बाधे, बार बार उस स्वर मे ये तार ढीले हो हो कर उतर गए ह। तुम्हारे उपवन मे मै सेवा के लिए गया हू और वहा छाया मे पडकर सो गया ह । सध्या वेला मे नेत्र भर कर मे यह अश्रुजल लाया हू ।

"यदि मन मे यह बात आवे कि मेरे वर्त्तमान जीवन मे इन जीवन देवता की सेवा की सभावना जितनी दूर जा सकती थी वह सब समाप्त हो गई है, जो अग्नि वे जलाकर प्रज्ज्वलित रखना चाहते है, मेरे वर्त्तमान जीवन का ईधन यदि भस्मीभूत होकर उस अग्नि की रक्षा न कर सके, तो क्या वे इस अग्नि को बुझने देगे ? इस अनावश्यक राख को फेंक देने मे कितनी देर लगेगी ? किन्तु इस कारण यह ज्योति शिखा क्यो कर बुझेगी ?"

एखन कि शेष हयेछे प्राणेश या-किछु आछिल मोर ।
यत शोभा यत गान यत प्राण, जागरण, घूमघोर ।
शिथिल हयेछे बाहुबन्धन, मदिरा विहीन मम चुम्बन,
जीवन कुञ्जे अभिसार निशा आजि कि हयेछे भोर ।

भेङ्गे दाओ तवे आजिकार सभा आनो नव रूप, आनो नव शोभा
नूतन करिया लह आर वार चिर पुरातन मारे।
नूतन विवाहे बाधिवे आमाय नवीन जीवन डारे।

अर्थ —अब क्या, जो कुछ भी मेरा था, हे प्राणेश वह समाप्त हो चुका है? मेरी जितनी शाभा जितने गान, जितना प्राण, जागरण और घोर निद्रा क्या सब समाप्त हो गये है? क्या बाहुब धन शिथिल हो गया है, मेरा चुम्बन मदिरा विहीन हो गया है और जीवन निकुञ्ज म अभिसार रजनी आज भोर मे बदल गई है? तब आज की इस सभा को आप भग कर दीजिए, नया रूप लाइए, नई शोभा लाइए और चिरपुरातन मुझे आप एक बार फिर मे नूतन कर लीजिये। जीवन की नवीन डोर से नूतन विवाह मे मुझे बाध लीजिएगा।

तात्पर्य यह है कि रविठाकुर के 'जीवन देवता' का अर्थ जाने बिना क्या हम इन सब कविताओ को इस रूप मे समझ सकते थे? हमारा सौभाग्य है कि रविबाबू अपने जीवन का परिचय देने वाली "छलेवेला" "आत्मचरित" और "जीवनस्मृति" नामक तीन पुस्तक लिख गये है। इसके अतिरिक्त कितनी ही पुस्तक रविठाकुर की कविता, उनकी भावधारा और उनके जीवन की घटनावली के सम्बन्ध मे लिखी जा चुकी है। हम मे कितने लोग उन सब को पढते है? मेरा वक्तव्य यही है कि रसास्वादन करने क लिए साधना चाहिए, भावुक (Sensitive) मन चाहिए, कवि के साथ सहानुभूति चाहिए। कहने की आवश्यकता नही कि जिसका मन जितना ही भावुक (Sensitive) होता है, उसकी रसानुभूति भी उतनी ही सूक्ष्म होती है—भले ही वह सुख की अनुभूति हो या दु ख की ही अनुभूति हो।

और एक बात कह कर मैं अपना वक्तव्य समाप्त कर दू गा। साधारण कविता अर्थात् जिसमे उपनिषद् की अथवा अन्य किसी गम्भीर तत्व की बात नही होती, उसे भी अच्छी तरह समझने के लिये, उसका रसास्वादन करने के लिये रसास्वादन की क्षमता होनी चाहिए। पुरातन भृत्य, नकल गड, येते नाइ दिव, पतिता, पुरस्कार, श्रेष्ठभिक्षा, अभिसार, पारस पाथर, इत्यादि कविताय मानो एक-एक हीरे का खण्ड है। 'अभिसार' नामक कविता की अन्त की चार पक्तिया कैसी सुन्दर है—

'के एसेछ तुमि दयामय' शुधाइलो नारी, स यासी कय
'आजि रजनीते हयेछे समय, एसेछि वासवदत्ता'

इन पक्तियो की अनुभूति क्या सब पाठको के हृदय मे एक जैसी होती है? 'पारस पाथर' कविता का तात्पर्य कितने लोग ठीक-ठीक हृदयङ्गम करने मे समर्थ है?

●

रवीन्द्र और संस्कृत साहित्य

अतुलचन्द्र गुप्त

कालिदास युगीन परम्परा मे जन्म लेकर रवीन्द्र की काव्य रचना की प्रकृति व परिमाण किस प्रकार के होगे—इसकी रवीन्द्र ने साकार कल्पना की थी। किन्तु, जहा इस बात पर सहज मे ही विश्वास हो सकता है कि कालिदास के लिखे एक मात्र श्लोक के स्तुतिगान पर ही राजा ने कवि को उज्जयिनी के प्रान्त मे उपवन म सुसज्जित सुखद आवासगृह दान कर दिया था, वहा यह बात नितान्त अविश्वसनीय लगती है कि कालिदास युगीन रवीन्द्रनाथ ने बिम्बाधरो के स्तुति गीतो मे अपनी काव्य प्रतिभा को निःशेष कर दिया और अपनी काव्य सृष्टि को दो एक मात्र छोटी-मोटी पोथियो मे भर दिया। मन्दाक्रान्त ताल मे त्वराहीन जीवन काटने का कोई लोभ या राजा की चित्रशाला की किसी भी मालविका का मोह उनके कवि मर्म के इस सकोच मे कमी नही कर सका था। उनकी काव्य-रचना का परिवेश मेघदूत की तरह ही अत्यन्त छोटा था। किन्तु, वह सख्या मे दो एक तक ही सीमित नही था। नर-नारियो के चित्त के सहज और सूक्ष्म बहुभाव व आकाक्षाये मानव के सग प्रकृति के निगूढ योग की परमाश्चर्यमयी लीला, अनेक खण्ड काव्यो मे सरस्वती की परिपूर्ण मूर्ति लिए फूट उठी, जिसकी अम्लान दीप्ति काव्यरसिको के मन को आज भी उद्भासित कर रही है। कालिदास युग मे जन्म लेने वाले रवीन्द्र के काव्य मे सस्कृत भाषा के अनुष्टप से स्रग्धरा तक के जो सब छन्द आविष्कृत हुए हे, उनकी विचित्र झकार और प्रभावलहरी डेढ हजार वर्ष के समय को लाघकर आज हमारे कान और मनो को आप्लावित किए देती है।

सस्कृत-काव्य-साहित्य, विशेषकर कालिदास के काव्य ने रवीन्द्रनाथ की कल्पना को नाना प्रकार से प्रेरित किया। इस कारण इस साहित्यकार के साथ रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा का दृढ योग है। रवीन्द्रनाथ स्वर और छन्द के सम्राट् थे। उनके स्वर रसिक मन और छन्दकुशल कानो ने सस्कृत काव्य की ध्वनि और छन्द के मध्य निज प्रतिभा के अश की गभीर ऐक्य उपलब्धि प्रतिपादित की है।

बाल-वयस मे जब सस्कृत काव्य का अर्थ जाना, उस समय रस-ग्रहण की आयु नही थी, तो भी उनके मन को उन छन्दो की तान और लय ने मुग्ध कर दिया था। रवीन्द्रनाथ ने अपनी जीवन स्मृति मे इस बात की साक्षी दी है। कालिदास के काव्य और भाषा मे भाव-प्रकाशन की क्षमता है और रसोद्बोधन की शक्ति है, जो चरम प्रगति पर पहुच गई है। इसके मूल मे दो उपादान है—कालिदास की शब्द-सम्पदा की परिपूर्णता और उनका अपूर्व ध्वनि सामजस्य—इसके मिश्रण

न जो कथा और भाव कालिदास प्रकाश मे लाए, उनकी दीप्त परिच्छिन्न मूर्ति उनके काव्य में फूट उठी। जो रस वे जगाना चाहते हैं वह 'शुष्केन्धन इवानला'' पाठक के चित्त को व्याप्त कर दना है। कालिदास की भाषा मे चित्र और गान दोनो एक साथ है। रघुवश का जा प्रारम्भ प्रथम यौवन मे नितात सरल व वर्णच्छटाहीन मालूम देता है, भाव-प्रकाशन मे वह कितनी अद्भुत क्षमता रखता है—

मन्द कवियश प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्राशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामन ॥

कितनी सहता है। कलाकार के चरम कौशल ने ही इस सहज की माया सृष्टि की है। यह उसी तरह सहज है, जैसे मानव देह का सामजस्य सहज है। यह इतनी सुसम्पूर्ण है कि हम इसे निताःत स्वाभाविक मानकर ग्रहण करते है। रचना मे जिस अद्भुत कौशल का सामजस्य आया है, उसकी बात नही सोची जाती—

''प्राशु लभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामन''

एक ही पक्ति मे असफल हास्य की निष्फल चेष्टा का चित्र कालिदास ने प्रस्तुत किया है, इस पक्ति का ध्वनिवैचित्र्य और सतुलन किया अद्भुत है। भाषा प्रयोग का यह चरम नैपुण्य केवल पृथ्वी के महाकवियो मे ही पाया जा सकता है जैसे—शेक्शपियर मे—

'And then it started like a guilty thing upon a fearful summons

a poor player

That struts and frets his hour upon the stage, And then is heard no more'

भाषा मे जो रेखा और ध्वनि का सयोग है, उससे भावो की मूर्ति स्वत प्रस्तुत हो जाती है। इस परिपूर्ण वाणी के अभाव मे अनेक श्रेष्ठ कवियो की प्रतिभा महाकवित्व के योग से वचित हो गई है, जैसे अग्रेज कवि राबर्ट ब्राउनिग। परतु रवीन्द्र की भाषा महाकवि की भाषा है— वह ध्वनि, रेखा, रग का अमृत रसायन है—

''वाणीर विद्युत दीप्त छन्दोबाणविद्ध वाल्मीकिरे''
''शस्य शीर्षे सिहरिया कापि उठे धरार अचल''
''पथेर आनन्द वेगे अबाधे पाथेय कर क्षय''
''अव्यक्त ध्वनिपुंज अधकारे उठिछे गुमारि''

इस बात मे कुछ भी आश्चर्य नही कि पूर्व भारत के अपभ्रश के इस महाकवि ने पन्द्रह शताब्दियो के व्यवधान को लाधकर उज्जयिनी के महाकवि के हाथ से हाथ मिलाया।

कालिदास ने ि श्व-प्रकृति के विचित्र रूपो क मध्य, मानव चित्त को समोहित किया है। उनक काव्य मे प्रकृति क सा य मनुष्य के भाव रस का पूर्ण मिलन है। यही कालिदास के साथ रवी द्रना य का निकटतम आत्मीयता है। मनुष्य के सा य प्रकृति के निगूढ योग की जो रसमूर्नि रवी द्रनाथ के काव्य म फूटी है, वह पृथ्वी क साहित्य मे अप्रतिम है। इस प्रसग मे अ ग्रे ज कवि वड् सवर्थ का नाम अ ग्रेजी रसिका के मन मे उठता है कि तु वड् सवर्थ मे प्रकृति के साथ मनुष्य का जो योग था, वह प्रधानत तात्विक–योग था, रस का नही। उसमे तो इसीका हिसाब है कि प्रकृति के साथ भावो के कार्य कलाप मे कवि का मन किस दिशा से कितना पुष्ट है, इसका आस्वाद भि न है। पर युगल मिलन का जो मधुर रस रवी द्रनाथ के काव्य मे भरा है—वह रस नही, अमृत है। प्रकृति के साथ मनुष्य का जो भावैकरसत्व मानव मन का विश्व-प्रकृति के मध्य परिव्याप्त कर देता है, विश्व प्रकृति का जो स्वर मनुष्य के मन का वीणा को बजाता है वह रवीन्द्र ाथ के काव्य के अतिरिक्त केवल कालिदास ने काव्य मे ही मिल सकती है। भारतवर्ष के अतीत और वर्तमान के ये दो महाकवि यहा परस्पर एक मात्र आत्मीय है।

कालिदास के काव्य और सस्कृत काव्य साहित्य मे श्रे ष्ठ अ श के साथ रवी द्र की प्रतिभा का इसी प्रकार का एक और योग हुआ है जो इतना प्रकट नही है पर वह भी गम्भीर प्रच्छ न योग है। वह है काव्य मे आभिजात्य सयम। महाभारत, रामायण व कालिदास मे समस्त भाव, रस और वैचित्र्य को एक गभीर शा त–रस मे व्याप्त किया हुआ है। यह सब प्रकार का आतिशय्य असयम से दूर है। इसका अर्थ यह नही कि इस सब काव्य का भाव गतानुगतिक है या रस-वैचित्र्यहीन है। कालिदास कवि-प्रसिद्धि के नेत्रो से पृथ्वी को नही देखते थे। उन्होने उसे सस्कारहीन कवि के नेत्रो स देखा था। अनको रसो की विचित्र नवीन लीला से उनका काव्य झलमल है, कि तु उनका काव्य कभी सयम का अतिक्रमण कर सो दर्य का यतिभग नही करता। यूरोपीय अ लकार की भाषा मे कालिदास के काव्य मे क्लासिसिज्म और रोमाटिसिज्म का अपूर्व मिलन है। रवी द्रनाथ की कवि-प्रतिभा इसी मिलन पथ का अनुसरण करती है। पृथ्वी के मध्य उनका स्थान सभवत सबसे ऊ चा है। मनुष्य मन के इतने असख्य भावो के रस का परिपूर्ण रूप और कही देखने को नही मिलता। प्राणो की प्रचुरता मे उनके काव्य मे हृदय के अ दर तक जाने की शक्ति है। किन्तु समस्त लीला और गति मे अ तर की एक गभीर अटलता है जो नटराज की मूर्ति के समान चिर सुन्दरता के छन्द मे फूट उठी है। यहा रवी द्रनाथ कालिदास के सहधर्मी है। रवीन्द्रनाथ के यौवन मे जिस काव्य-साहित्य का सबसे अधिक प्रभाव था, उन्नीसवी शताब्दि मे वही अ ग्रे जी काव्य श्रे ष्ठ एव आदर्श माना जाता था। इस मे भाव और प्राणो की बरसाती नदी बहुत से स्थानो मे रस की सीमा को बहाकर अदृश्य कर देती है। दोनो ही तटवर्ती रेखाओ के बीच मे किनारे किनारे पूर्व नदी का जो स्वरूप है, वही इस काव्य मे क्वचित् देखा जा सकता है। कारण, नदी का वेग जब उतर जाता है और जल सूख जाता है तो दलदल दिखाई देने लगता है जैसे—टैनीसन के काव्य मे। रवी द्रना य के पूर्व बगला काव्य मे इस

अंग्रेजी काव्य की भावातिशय्यता का प्रभाव अधिक मात्रा में था। रवीन्द्रनाथ की कविता इस प्रभाव से मुक्त रह सकी, इसका कारण उनकी प्रतिभा की धर्म वैशिष्ट्यता पर संस्कृत के काव्य साहित्य और विशेष कर कालिदास का प्रभाव होना था।

रवीन्द्रनाथ पर संस्कृत काव्य के प्रभाव का तात्पर्य यह नहीं कि उन्होंने उसका अनुकरण किया हो, यह प्रभाव उनकी प्रतिभा में आत्मसात होकर स्वतन्त्र नवसृष्टि के स्वरूप में आया है। रवीन्द्रनाथ के काव्य में संस्कृत काव्य का आस्वाद है, ध्वनि है और उसके भाव हैं किन्तु उनका आस्वाद संस्कृत का नहीं है। नई प्रतिभा की नवीन रसायन में उन्होंने नूतन रस की सृष्टि की है।

रवीन्द्रनाथ की कई श्रेष्ठ कवितायें संस्कृत कवियों या काव्य की कवितायें हैं, जैसे–मेघदूत' 'भाषा और छंद', 'सेकाल', 'कालिदासेर प्रति', 'कुमारसम्भव गान'। इन कविताओं में एक अभिनव काव्य सृष्टि है। यह काव्य, कवि की श्रद्धा, प्रीति या प्रशंसा की अंजलि का द्योतक नहीं है जैसे कि कीट्स की कविता या स्वयं रवीन्द्रनाथ की कविता––On Looking into Chapman's Homer 'जदिन उदिले तुमि, विश्व कवि, दूर सिन्धुरपारे'' है।

भौतिक वस्तु जगत कवि के चित्त को रस में समाहित करके काव्य को जन्म देता है। यहां कवि और काव्य के जगत ने रवीन्द्रनाथ के चित्त को उसी प्रकार रसाविष्ट करके इस अभिनव श्रेणी के काव्य का जन्म दिया है। रवीन्द्रनाथ का 'मेघदूत' कालिदास के 'मेघदूत' को पढ़कर प्रकट हुए, कवि चित्त के आनन्द का उच्छ्वास नहीं है। 'मेघदूत' और उसके कवि ने रवीन्द्रनाथ की अनुकूल कवि-कल्पना को जो प्रकम्पन दिया, उसी के फलस्वरूप नये रस की सृष्टि हुई। 'भाषा और छंद' कविता भी ठीक वैसी ही है। वाल्मीकि की रामचरित रचना के जिस काव्य में रामायण का आरम्भ है, रवीन्द्रनाथ की कल्पना में जाकर उसने एक नूतन रसमूर्ति धारण करली है।

रवीन्द्रनाथ के इस श्रेणी के काव्य में कहीं भी संस्कृत काव्य की प्रतिच्छवि है, यह बात नहीं मानी जा सकती, वहां तो सम्पूर्ण नूतन-सृष्टि है। कारण, इस सब काव्य में, कवि की मनोदृष्टि रवीन्द्र की मनोदृष्टि की सीमारेखा नहीं है। उनके काव्य पथ से ही रवीन्द्र के मन और नेत्र उसी वस्तु और भाव भूमि में जा पहुंचे जो कि उनके काव्य के मूल उपादान थे और उसी उपादान को अपनी प्रतिभा के छंद और रंगों में नूतन करके रवीन्द्र ने प्रस्तुत किया। 'मेघदूत' कविता का जो अंश प्रकट में कालिदास के मेघ के यात्रा पथ का संक्षेप मात्र है उस से भी इसी बात का परिचय मिलता है ––

''कोथा आछे
सानुमान आम्रकूटे, कोथा रहिया छे विमल विशीर्ण रेवा, विन्ध्या–पदमूले
उपल–व्यथित–गति, वेत्रवती–कूले, परिणत–फल श्याम जम्बुवनच्छाये
कोथाय दशार्ण ग्राम रयेछे लुकाये, प्रस्फुटित केतकीर बेडा दिए घेरा।''

यह 'मेघदूत' है किन्तु वैसा ही 'मेघदूत' नहीं। कालिदास ने अंगुली उठाकर जिस ओर संकेत किया है, कवि रवीन्द्र ने उसी ओर देखा है किन्तु देखा अपनी आंखों से है। ''भाषा और छंद'' कविता में,

"वीर्यकार क्षमारे करे न अतिक्रम, काहार चरित्र घेरि सुकठिन धर्मेर नियम
धरछे सु दर का ति मानिक्येर अ गदेर मतो, महीश्वर्य आछे नम्र, महादै ये हयनि नत,
सपदे के थाके भये, विपद के एका न निर्भीक, के पेयेछे सब चेये, के दिएछे ताहार अधिक
के लयेछे निज शिर राजभाले मुकुटेर सम, सविनये सगोरवे धरामाझे दु ख महत्तम।"

यह रामायण जैसा ही रामचरित्र है, कि तु रामायण के आदिकाण्ड के प्रथम सर्ग मे वाल्मीकि नारद-सवाद मे यह चीज नही मिलती।

महाभारत, रामायण और पुराणो के प्रसग रवी द्रनाथ के अनेक काव्यो के उपादान रह ह। प्राचीन भारतवर्ष का यह विशाल और महान साहित्य उनके चित्त मे अनेक रूप मे समाविष्ट हो गया था, किन्तु यहा भी उनकी प्रतिभा म जो सृष्टि हुई, वह नवीन थी। इस सब काव्य मे रवी द्रनाथ ने रामायण और महाभारत के अनेक सुपरिचित पात्रो को अपनी कल्पना के आलोक मे नये रूप मे उपस्थित किया है। "गा धारीर आवेदन" और "कर्ण कु ती सवाद" म रवी द्र, व्यास की रससृष्टि की धारा पर महाभारत के इन चरित्रो के अन्तस्तल मे पाठको को ले जाते हे। रवीन्द्रनाथ ने गाधारी और धृतराष्ट के मुख से जो बाते कहलायी है, वे सब महाभारत मे नही हे किन्तु वे सब महाभारन के ही धृतराष्ट और गाधारी, कर्ण और कु ती के ही कथन हे, इसमे सदेह नही। इन सब चरित्रो को रवी द्रनाथ ने पहले पूर्ण आत्मसात् कर लिया था और फिर उनके काव्य मे उनकी नई कथा और कार्य अत्यन्त परिचित जनो की स्वाभाविक कथा और कार्य बन गये—

"हेर देवी परिपारे पाण्डव-शिविरे, जलियाछे दीपालोक एवारे अदूरे
कौरवेर म दुराय लक्ष अश्वखुरे, खर शब्द उठिछे बाजिया।

यह महाभारत नही है कि तु महाभारत के युद्धपर्व मे युद्ध का जो भीषण गभीर रस है, वह उसी रूप मे यहा प्रस्तुत है!

'चित्रागदा' और 'विदाय अभिशाप' महाभारत की अति सामा य भित्ति पर स्थित कवि की सम्पूर्ण कल्पना सृष्टि ह। इन दोनो ही काव्यो मे जो रस है, उसके साथ महाभारत के उपाख्यानो का कोई सम्पर्क नही है। यहा पौराणिक चरित्र और आख्यानो ने कवि की कल्पना को नही जगाया है अपितु कवि कल्पना ने ही उनको आश्रय दिया है। इन दोनो जगह गल्प की धरती तो अवश्य है किन्तु रामायण के ऋष्यश्रृ ग के उपाख्यान से जो "पतिता" की कल्पना की गई है, वह रवी द्रनाथ द्वारा ही सभव थी।

भारतवर्ष की काव्य सृष्टि की धारा मे सस्कृत-काव्य के परम गौरवमय युग के साथ एक मात्र रवीन्द्रनाथ ही अपने काव्य को भुला पाये थे कि तु अपनी अपरूप कल्पना मे वे उज्जयिनी के राज कवि नही थे वे तो कैलाश के प्रागण मे महेश्वर के अपने कवि थे। रवी द्र उन्नीसवी व बीसवी शताब्दी के कवि थे कि तु उन्होने जन्म कालिदास के काल मे ही लिया था।

●

असम्पूर्ण पान्डुलिपि

• अरुण भट्टाचार्य

"सचयिता" की भूमिका मे रवी‍न्द्रनाथ ने बताया है कि मात्र इतिहास रक्षा के लिए ही इस सकलन मे उन्होने 'सान्ध्य सगीत', 'प्रभात सगीत' और 'छविश्रा गान' इन तीनो की कुछ कविताओ को लिया है, नही तो उनकी कविता के आदर्शानुसार 'मानसी' को उनकी पहिल की कविता के किसी भी सग्रह मे स्थान देना कठिन होता । वास्तव मे सगृहीत कविताओ मे से कुछ के यदि वे स्वय सकलनकता न होते तो ये कविता यो कही स्थान नही पाती । रवीन्द्रनाथ के उक्त अभिमत को केवल विनय मान लेना ही न्यायसगत नही होगा । वास्तव मे वे अपनी प्रथमावस्था मे लिखित कृतियो की अपरिपक्वता के लिए लज्जित थे । स्वय प्रवीण समालोचक होने के कारण इस अपरिपक्व अवस्था मे लिखी गई कविताओ को रद्द करने मे उन्हे किसी प्रकार दुविधा नही हुई ।

किन्तु मेरा प्रश्न है कि क्या वे सब कविताए जिनको कि 'मानसी' के पूर्व अध्याय मे स्थान मिला है, वास्तव मे बिलकुल कच्ची व काव्यरस शून्य है ? रवीन्द्रनाथ की परवर्ती कालीन रस-सयुक्त कविता के सहित क्या ये कविताए श्रेणीबद्ध नही हो सकती ? अथवा क्या रवीन्द्रनाथ ने पूर्व बगला कविता की शैली का अनुकरण करने मे ही केवल समय बिताया है ? अथवा किशोरावस्था की अस्थिरता' यथायोग्य अनुशीलन और उपलब्धि के अभाव से इन कविताओ का कलेवर वाङ्मय की श्रेणी मे नही आया । रवीन्द्रनाथ प्रतिभा नामक अलौकिक वस्तु को कितने अश मे साथ लेकर इस धरा पर आये थे, यह हम नही कह सकते किन्तु यह सत्य है कि उन्होने ठाकुर वश की ऐतिह्यमडित सस्कृति के सस्कार साथ लेकर जन्म ग्रहण किया था । वे स्वय ही अपने भाग्य के निर्माता थे, जैसे कि किवदन्ति सुनी जाती है कि नैपोलियन ने अपनी भाग्य रेखा स्वय छरिकाघात द्वारा निर्माण की थी । भारत का प्राचीन आदश, पिता का उज्ज्वल दृष्टान्त, बडे भाई का साहचर्य और व्यक्तिगत इच्छा शक्ति, यह सब ही उनके जीवन के सोद्देश्य सत्य हे । इसी कारण उन्होने बडी धीरता से स्वय को प्रस्तुत किया व दीर्घकाल तक धैर्य सहित उन्होने असम्पूर्णता से क्रमश पूर्णता की अपेक्षा की और निश्चित् पदक्षेप द्वारा अग्रसर हुए । कीट्स कविता को जो रूप और सौन्दर्य की पूर्णता २५ वर्ष की आयु मे दे सके थे, रवीन्द्रनाथ को उस पर्याय मे पहुचने के लिये कुछ और ज्यादा समय लगा था—किन्तु रवीन्द्र प्रतिभा के विषय मे यह बिल्कुल सत्य है कि उनका इसकी अपेक्षा मे दिन के तारे नही गिनने पडे थे । काव्य,

दर्शन, साहित्य, और विज्ञान के अध्ययन द्वारा उन्होंने निज को सर्व प्रकार से प्रस्तुत किया था, वे इस बात को जानते थे कि जमीन अच्छी होने से ही फलप्रसू होती है। मेरी धारणा है कि कवि गुरु द्वारा स्वयं के स्वभावसिद्ध प्रत्यय-बोध के कारण आलोच्य कविताओं को काव्य पद-वाच्य के रूप में स्वीकार न करने पर भी उनकी ये सब रचनायें उनकी असम्पूर्ण पाण्डुलिपि ही हैं जो परवर्ती काल में उज्ज्वल और भास्वर हो उठी हैं। यद्यपि अपरिपक्व अवस्था की छाप इनमें वर्तमान है तथापि ये काव्य के मौलिक गुणों से ओत प्रोत हैं। इनमें किशोर का आनंद और वेदना है, काव्य के प्रति ममत्व है और उत्साह का भी अभाव नहीं है। पार्थिव जगत् और मानव हृदय के विस्मय को एकसूत्र में गूंथने व बृहत् ऐक्य की सीमा पर पहुंचने का प्रयास है। इस समय की रचना को ही मैं 'असम्पूर्ण पाण्डुलिपि' की संज्ञा देना चाहता हूं।

बंगला-साहित्य के दीर्घ इतिहास की इस भूमि में रवीन्द्रनाथ की अकेली प्रचेष्टा कितनी फलीभूत हुई यह सर्वविदित है। परंतु कविता के क्षेत्र में उनका दान कितना विशाल है इसका अनुमान कविगण काव्य-चर्चा के समय प्रतिक्षण अनुभव करते हैं। बंगला साहित्य में गीति-काव्य ने जिस विशेष रस का संचार किया है उसका विकास वैष्णव साहित्य में होने पर भी उसने पूर्णता रवीन्द्रनाथ की कविता में ही प्राप्त की है। माइकेल मधुसूदनदत्त का व्यक्तित्व और वीररस की अभिव्यक्ति रवीन्द्रनाथ में किसी अंश तक अनुपस्थित होते हुए भी रवीन्द्र-साहित्य शक्तिहीन (पौरुष वर्जित) नहीं है। सर्वोपरि बंगला कविता की देशज और लौकिक धारा की स्निग्ध श्यामल पट्ट भूमि में पदार्पण करके कविगुरु ने उसे एक सर्वांगपूर्ण शिल्प का रूप दे दिया है। परन्तु ये सब विचार काव्य शास्त्र की परंपरा के अनुसार हैं। वस्तुतः रवीन्द्रनाथ ने ही सर्वप्रथम हमको आधुनिक कविता लिखना सिखाया एवं सर्वप्रथम विश्व की पट्ट भूमि में, भारत और विदेश में काव्य, कला और शिल्प कौशल को आयत्ताधीन करके प्रमाणित किया कि बंगला कविता केवल प्रान्तीय नहीं है अपितु उसका आयाम सार्वजनीन है तथा उसका प्रभाव अल्प नहीं है। संभवतः उसकी ख्याति आंखों को नहीं चौंधियाती बल्कि वह मानसगठन के लिये श्रेष्ठ विचारों की द्योतक है एवं शिल्परूप में निश्चित रूप से उद्भासित है। संभवतः हम रवीन्द्रनाथ के प्रत्यक्ष प्रभाव के बाहर रहकर उनके व्यक्तित्व की उपेक्षा कर सकते हैं किंतु काव्य की पट्ट भूमि में जो महीरुह वे अकेले ही रोपण कर गये हैं उसी के चारों ओर स्थित गुल्म लताओं में ही हमारा जीवन-यौवन बड़ी स्वच्छंदता से बीत रहा है।

रवीन्द्रनाथ के विराटत्व, व्याप्ति और विशाल गंभीरता के उपरांत भी मेरे विचार में यह बहुत ही दुःखद है कि वे 'गीतांजलि' के कवि होकर ही देश विदेश में विख्यात हुए। उनकी मध्ययुग की कविता भी विशेषरूप से चर्चित हुई किंतु प्रतिभा के प्रथम उन्मेषकाल में जिस काव्य प्रेरणा से वे अधीर और उन्मेषित हुए थे, उसके विषय में समालोचकगण प्रायः मौन रहे हैं। जीवन के संध्याकाल में उन्होंने कविता की शैली में तथा विषय वस्तु के संबंध में एक नवीन विचारधारा का प्रवर्तन

किया है । इस विषय मे उन्होने यथेष्ठ चर्चा की है व खुद की कविता की परम्परा का स्वयं नहीं भंग किया है। ये सब ही उनके जीवन की अपर्याप्त प्राणशक्ति और सृष्टिशीलता के द्योतक है किन्तु मुझको ऐसा लगता है कि किशोरकाल मे रवीन्द्रनाथ के काव्य मे जो इंगित पाया जाता है नाना कारणो मे वह इंगित उनके प्रोढावस्था के काव्यो मे नही पाया जाता । "सन्ध्या संगीत", 'प्रभात संगीत", "छवि ओ गान" और अंशत "कडि ओ कोमल" काव्य ग्रन्थो मे कुछ विशेष गुणावली वर्तमान है जिसे परवर्तीकाल मे रवीन्द्रनाथ ने क्रमश परित्याग कर दिया था । संभवत निर्लिप्त शिल्पी के समान केवल मात्र सौन्दर्य अनुभूति का ही सहारा लेकर उनकी कविता की गति मे परिवर्तन हो सकता था, परन्तु रवीन्द्र साहित्य मे मात्र सौन्दर्यबोध का ही स्थान नही है, प्रत्येक स्थल पर "शुभवाद' उसमे वर्तमान है, सत्य और शिव के लिये उनके शिल्प के सौन्दर्य मे व्याघात पहुंचा है ।

मेरा मंतव्य और भी स्पष्ट होगा यदि मै निवेदन करू कि रवीन्द्रनाथ ने इस समय की कुछ कविताओ का नामकरण किया था "शराबी", "चुम्बन", "स्तन", "मोह" इत्यादि और "तारका की आत्महत्या" "राहू का प्रेम", "निर्झर का स्वप्न भंग" । क्या हम विश्वास करे कि "गीतांजलि" के कवि ने अपनी किशोरकाल की कविताओ के नाम "शराब" और "स्तन" रखे थे ? किन्तु यह सत्य है कि रवीन्द्रनाथ ने भी मानव जीवन की एकनिष्ठ अनुभूति का वर्जन नही किया था, उसको उन्होने काव्यमयता से विभूषित किया है, शिल्परूप मे लाने का प्रयास किया है। ऋषि रवीन्द्रनाथ के काव्य इन्द्रियानुभूति का प्राणवस्तु है । तीव्र अनुभव और प्रबल कल्पना प्रसूत इन कविताओ मे एक नवीन सौन्दर्य है । स्वयं कविगुरु को इन कविताओ के विषय मे आपत्ति होते हुए भी अथवा समालोचकगण का इनके विषय मे औदासीन्य होने पर भी इन सब कविताओ ने मुझे बहुत ही मुग्ध किया है यद्यपि मै जानता हू कि रीति प्रकरण, कविता की व्याख्या इत्यादि प्रश्नो के उठाने से इन कविताओ का अमान्य किया जा सकता है । यद्यपि यह दृष्टव्य है कि नारी के स्तन वर्णन मे रवीन्द्रनाथ के प्रेम के विक्षुब्ध अंग का ही परिचय नही मिलता, शान्त स्निग्ध सुषमा मंडित वाणी की स्मृति भी मानस पटल मे विकसित होती है । उन्ह "सौरभसुधाय परान (प्राण) पागल" होते हुए भी, किशोरावस्था मे यह अनुभूति हो गई थी कि नारी का हृदय-मंदिर एक पवित्र तीर्थ है—अर्थात् उन्होने समझ लिया था कि नारी केवल प्रिया ही नही है, माता को मंगलमूर्ति भी उसमे ही प्रतिष्ठित है । इस विचारधारा से वे सदा प्रभावित रहे । नारी के सलज्ज हृदय के वर्णन मे "सहसा आलोते एसे गेछे जेन थेमे", इस प्रकार का इंगित प्रकृत काव्य के रसास्वादन मे कोई कमी लाता है क्या ? "चुम्बन" इसकी अपेक्षा कुछ दुर्बल है । किन्तु इस प्रकार की कविता की सृष्टि के फलस्वरूप रवीन्द्रनाथ के मन मे "व्याकुल वासना" का जन्म हुआ, प्रेम की विचित्र गति के अनुरूप ही उनका इस समय का काव्य स्थान स्थान पर सलज्ज द्विधाजडित, और कही कही स्पष्टरूप से उच्चरित हुआ है । "बाहु" कविता की प्रथम विख्यात पंक्ति के स्मरण मात्र से ही प्रत्येक युवकहृदय एक अद्भुत आकर्षण का अनुभव करता है, तथापि एक अदमनीय आकर्षण हमको मोहग्रस्त कर लेता है ।

"काहारे जडाते चाय दुटि बाहुलता"

निश्चय रूप से हमारे समय के कवि यह विचार कर कि इस प्रकार की करुण तथापि आवेगमय पंक्ति परवर्ती काल मे रवीन्द्रनाथ ने क्यो नही लिखी, अतृप्ति का अनुभव करेगे । केवल ये कविताए ही नही, "तारका की आत्महत्या" तथा "राहू का प्रेम" कविता के रूप मे कही कही शिथिल हो सकती हे, किन्तु इन दोनो कविताओ मे भाव-कल्पना और इ गितमय आलेख्य यथार्थ मे है इसका अस्वीकार नही किया जा सकता । ये दोनो कविताए एक फेटेसी काव्य अवयव से विभूषित हे—

"दु स्वप्नर मतो चिरकाल तोमारे बाहिरे घिरे,
दिवसरजनी रा मुख देखिब तोमार नयननीरे" —(राहूर प्रेम)

समालोचक इन पंक्तियो को रद्द कर दें, पर मे यह मानने को तैयार नही हू कि इनमे विशुद्ध कवित्व नही हे । प्रेम की व्यर्थता क पश्चात् सब कुछ ही दु स्वप्न के समान ही प्रतीत होगा तथापि प्रेम की प्रचड शक्ति की अवहेलना की क्षमता प्रेमिक की नही हो सकती । वैष्णव-काव्य के सहित इस स्थान पर "प्री रफेलाइट" कवि गोष्ठी की चित्रमयता का मिलन हुआ हे । इस स्थान पर वर्ण, रूप और रस से युक्त ऐसी पंक्ति रवीन्द्र-काव्य के विस्तृत प्रागण मे साधारणतया दृष्टिगोचर नही होती ।

परवर्ती काल मे रवीन्द्रनाथ ने क्रमश आवेग के वर्जन का प्रयास किया है । यह बात सत्य है कि मात्र आवेग द्वारा ही सार्थक कविता का निमाण नही किया जा सकता, किन्तु यौवन के आवेग का एक निजस्व सौन्दर्य है, एक ऐसी प्राणशक्ति हे जिसको शिल्प चेतना से पृथक करना कठिन होता है, किशोरकालीन कविताओ मे जिस परिमाण मे आवेग विद्यमान है, परवर्तीकाल मे ऐसा लगता है मानो रवीन्द्रनाथ ने नाना स्थान मे स्वय को शासित किया है, परिच्छन्न विशुद्ध (भाव की दृष्टि से) कविता लिखने के प्रयास मे उन्होने निर्दयभाव से ही मानो आवेग का परिहार किया है । प्रथम और शेष यौवन काल की कविताओ मे जो उत्ताप था, मध्ययुग मे वह मानो आत्मनिवेदन की हिम-शीतलता मे निर्जीव हो गया है । परन्तु क्या कवि के जीवन मे कभी यौवन नि शेष होता हे ? नही । कारण शेष अवस्था मे उनके नवीन तारुण्य ने हमको फिर मे विमूढ कर दिया था । यौवन का उत्ताप ही तो है काव्य का प्राण और कवि अनन्त यौवनशाली होता है । रवीन्द्र काव्य का यह एक बडा विस्मय है । मध्य वयस मे उनको शोक दु खो का सामना करना पडा था, समाज और परिपार्श्विक निर्दयता के कारण उनका गौरव कुछ म्लान हो गया था । किन्तु यह भी सत्य है कि पूर्ण विकास के युग मे ही उन्होने काव्य के उच्छ्वसित आनन्दमय मार्ग मे हटकर, भक्त के समान, शिष्य-प्रेरणा को कविता मे निवेदित किया । मेरे विचार मे यह भी एक दुर्घटना से कम नही है । वस्तुत "निर्झर का स्वप्न भग" कविता से आवेग और उत्ताप को यदि हटा दिया जाय तो फिर रह ही क्या जाता है । यह अवश्य सत्य है कि आवेग-आश्रयी होने के कारण यह कविता उनकी प्रथम श्रेणी की कविताओ मे स्थान नही पा सकी । इसको यह सौभाग्य प्राप्त न हुआ हो किन्तु इसमे उनकी काव्य-प्रेरणा का यह मूल हम खोज पाते हैं कि काव्य के प्राणमय अस्तित्व के सम्बन्ध मे कवि सचेत है —

"कि जानि की होला आजि, जागिया उठिल प्राण '
"थर थर करि कापिछे भुधर, शिला राशि राशि पडिछे स्प मे ।
फुलिया फुलिया फेनिल सलिल गरजि उठिछे दारुण रोपे ॥

आवेग, अनुभूति, दृश्यमानता और विस्मय सब ही कुछ इस कविता म विवृत हुआ है । प्रतीत होता है कि आखो के सामने रवी द्रनाथ ने जो दृश्यावली जैसी निरीक्षण की थी वैसी ही उन्होने शिल्प मे प्रतिष्ठापित की हे । दृश्यमानता के उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित पक्तियां इस तथ्य को और भी स्पष्ट करेगी ।

"केश रालाइया फूल कुडाइया । रामधनु आका पाखा उडाइया"

क्या इस प्रकार की दृश्यमानता विशुद्ध कविता का इ गित नही है ? रवी द्रनाथ ने इन विषयो पर स्वय विचार किया, नाना प्रकार के अनुभवो ने इस समय उनके हृदय को आलोडित किया अत वे भाव साम्राज्य मे इस समय विभोर थे । इस कारण सभवत उनको इतना सकोच था, तथापि मुझे ऐसा लगता है कि यही पर हम कवि रवी द्रनाथ का मौलिक परिचय प्राप्त करते ह । सकोच का यह कारण हो सकता है कि ये कविताए सर्वांग सु दर नही हुई और हम लाभान्वित हुए । इस कारण कि कवि रवी द्रनाथ का यथार्थ परिचय इ ही काव्यो से प्रकाश पाता है । "प्रभात सगीत ' व "सान्ध्य सगीत" मे कवि को हम विशेषरूप से निर्जन पाते है । इसमे एकाकी भार मे वे पीडित है, वाह्य जगत से शू यता का परिचय प्राप्त करने के लिये उत्सुक हे, किन्तु यह सुयोग उनके जीवन मे उस समय तक नही आया था । किन्तु कुछ समय के पश्चात् ही विश्व के साथ मानव हृदय के प्रथम सयोग मे व मदो मत हो उठे । कितनी आश्चर्य पूर्ण चेतना थी, कितनी विरल अनुभूति थी ! यह मानो एक अविस्मरणीय सवाद था जिसको वे समस्त पृथ्वी को उसी समय दान करना चाहते थे—

"आकाशेर पाने चाइ, सेइ सुरे गान गाइ एकला बसिया
एके एके सुरगुलि अनन्ते हाराये जाय आधारे या पशिया।"

पहिले इसी निर्जनता ने उन्हे दु खित कर रक्खा था । कि तु विश्व-प्रकृति के साथ जब उनका परिचय हुआ तो उनका मन एक अपरूप आनन्द मे विभोर हो उठा और वे "प्राणेर वेदना, प्राणेर आवेग" को बन्धन मे नही रख सके । जिस निर्जनता का उन्होने इतने समय तक पालन किया था, विश्वजगत के मध्य मे स्वय को स्थापित देखकर वे विस्मय से व्याकुल व प्राणमय हो उठे ।

रचना शैली मे उस समय श्री बिहारीलाल के शिष्य होने पर भी, काव्यानुभूति मे उ होन उस समय ही आधुनिकता की छाप प्रतिष्ठित कर दी थी । वे उसी समय समझ गये थे कि 'वर्णन' ही कविता का अ यतम निर्भर योग्य अ ग हे पर तु चित्र-सृष्टि का कौशल तत्पश्चात् चित्र कल्पना की स्वकीयता ही काव्य के प्राण है । उदाहरण स्वरूप एक सहज छवि का देखे —

'ममुवेर सरावर आला झिकिमिकि करे छाया कापिने छे थरथर।
जनर पाने त चेये घाटे बसे आछे मेये, मुनछे पातार मरमर।'' (पुरातन)

वर्णन के सहित ही चित्र सृष्टि की प्रचेष्टा दृष्टिगोचर होती है। केवल विवरण या वृतान्त होने से यह काव्य मन को नही भाता, कि तु ऐसी सरलीकृत पंक्तियो के मध्य मे अपूर्व चित्र मयता का साक्षात्कार हाता है इस कारण से इसका आवेदन चित्तपर बडा प्रभाव डालता है जैसे —

'मेघेर उपर मेघ करछे रगेर उपर रग। मन्दिरेते कासर घण्टा बजिल ठ ठ ।।'

इस प्रकार के स्थल सुन्दर वर्णन चित पर मुहूर्त्त मात्र मे ही विस्तारित हो जाते हैं। आरती के घोष से चित्त की स्मृति बहुत दूर दिगन्त मे पहु च जाती है, मेघ-वर्णन चित्त का मुग्ध कर देता है कि तु इसके बाद की पंक्तियो का देखिये —

''ओ पारिते बिष्टि एलो, झापसा गाछपाला, ए पारेते मेघेर माथाय एकसो मानिक जाला।''

वृक्षावलि वर्षाधारा से धु धली हो गई है, मेघो के शिरोभाग मे विद्युत द्वारा एक सौ माणक देदीप्यमान हो उठे है—यहा वर्णन चित्ररूप मे परिणत हुआ है। छवि चित्ररूप कल्पना मे उज्ज्वल हो उठी है। जिस कविता को शिशु पाठ की कविता समझकर अवहेलना करता आ रहा था, उसके गौरव से यौवन की शेष सीमा पर पहु च कर भी मुझे सिहरण अनुभूत होता है। हृदय मे कंपन, घर मे नटखट लडके की उछलकूद ('घरेते दुरन्त छेले' छ द को देखिये), अभिमानी ककावती, छाया से परिपूर्ण ('कालो' शब्द का दो बार व्यवहार करने के कारण एक शका की अवतारण होती है) 'बाज बिजली' (वज्र विद्युत का क्या अद्भुत सरलीकृत काव्यमय रूप है?) ये सब मिलकर इस कविता मे जो जादू उत्पन्न करत है उसकी तुलना बगला-काव्य मे विरल है। इस प्रकार का काव्य रवीन्द्रनाथ ने भी बहुत कम लिखा है। समालोचको की तो बात ही छोडिये, रवीन्द्रनाथ भी सभवत स्वय भी नही सोचते थे कि यह सामान्य बच्चो की लोरी किस प्रकार से Pragnant With Infinite Posibilities है। रवीन्द्र-काव्य की यह प्रस्तुति–पर्व मात्र भूमिका का ही नही है परन्तु ऐसा लगता है कि उनके काव्य एषणा का सबसे अधिक सभावनामय युग यही था। पाण्डुलिपि इस कारण से असम्पूर्ण रह गई कि काव्य शरीर गठन के लिए और भी अभिज्ञता एव प्रयास की जरूरत थी, किन्तु इस पाण्डुलिपि मे ही उत्तर काल की सार्थक कविता के सूत्रपात का इ गित यथेष्ठ था। किन्तु यह न कहने से सत्य का अपलाप होगा कि काव्य की जिस धारा मे रवीन्द्रनाथ की कैशोर कविता अग्रसर हुई थी, यदि उसका यथानुरूप अनुवर्तन हाता तो हम ''गीताजलि'' के कवि का न पाकर एक और ही नवीन कवि को पाते जो तीव्र आकाक्षा, अशान्त जीवन धर्म और अनुभूतिमग्नता मे अस्थिर रहते, सत्य शिव सुन्दर के शुभमिलन के लिए सर्वदा उदग्रीव नही होते, खण्ड विक्षिप्त मानव धर्म के मध्य मे भी शिल्परूप का अस्तित्व खोज निकालते।

●

अभयवाणी

अपराजिता रे (श्रीमती)

रवीन्द्रनाथ सत्यदर्शी ऋषि थे, इसलिये कवि वह वाणी दे गये जा युग युग तक मानव जीवन मे शान्ति लायेगी व प्रेरणा देगी। कवि की भाव धारा का भण्डार प्रचुर था। भाषा शक्ति अतुलनीय थी इसलिए कवि अपने काव्य, साहित्य एव सगीत मे तथा चित्रकला मे प्रकट हुये। कवि की यह प्रतिभा, उनका दर्शन व उनकी उपलब्धि किसी युग, किसी देश या किसी समाज की सीमा मे बद्ध नही है। काल की अनन्त गति के साथ, मनुष्य जीवन की अन्तहीन गति के साथ कवि की यह आत्मा भी अपनी प्रेरणा लेकर युग युग तक बहती हुई चली जायेगी।

रवीन्द्र-प्रतिभा की आलोचना करना मेरी सीमा से बाहर है। मनुष्य के हृदयावेग की धारा उनकी कविताओ मे ओत प्रोत है। उनकी सृष्टि केवल काव्य मे ही नही साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र मे उनका दान असामान्य है। आलोचना उपन्यास, नाटक, गीत, शिशु साहित्य, हास्य-रस—सभी क्षेत्रो मे उनकी लेखनी की प्रतिभा विराजमान है। कवि की लिखी पुस्तक, आलोचनात्मक रचनाये, 'शिक्षा और सस्कृति', 'शिक्षा के वाहन' 'स्वदेश और समाज', अर्द्ध शताब्दी पूर्व हमे जो आदर्श दे गयी है, आज के स्वतन्त्र भारत मे हम उनके रूप को सामान्य रूप म ग्रहण करने को तैयार हो रहे है। कदाचित् उसे सम्पूर्ण रूप से स्वीकार करने की योग्यता आज भी नही हुई है!

शिशुकाल से रवीन्द्र साहित्य के साथ मेरा परिचय है। इसलिये उनके साहित्य से व्यक्तिगत जीवन मे क्या अनुभव मिला है—वही व्यक्त करना चाहती हू। मै यहा यही कहना चाहती हू कि रवीन्द्र की सबसे बडी विशेषता यह थी कि वे श्रम, सघर्ष, दुख व निराशा के मध्य पल रहे मानव के आदर्श कवि थे। जिसके लिये बगाली कवि चन्डीदास जी ने गाया था—'मनुष्य के ऊपर कोई सत्य नही'। इस वाणी के श्रेष्ठ ज्ञाता रवीन्द्रनाथ ही थे। कवि ने जीवन मे प्यार किया था, प्यार किया था इस धरती मे। समस्त सृष्टि के प्राण-रस के अन्दर उसी जीवन को कवि ने देखा था। इसलिये रवीन्द्रनाथ के काव्य मे प्रकृति का सौन्दर्य ओर मनुष्य जीवन एक होकर आया है। पृथ्वी के धूलि-कण के साथ अपने को मिलाकर सृष्टि के मध्य एकाकार होने की कामना करते हुए उन्होने अपने गीत मे गाया है—

"मुझे वापस ले लो, अयि वसुन्धरे! गोद की सन्तान को अपनी गोद मे
तुम्हारे विशाल आचल मे, ओ मा तुम्हारी मृतिका मे स्वय को मिलाकर
अपने को चारो तरफ वसन्त के आनन्द जैसा विस्तार कर दू" (वसुन्धरा)

सृष्टि का रहस्य शायद मै नही जानती। सृष्टि का उद्देश्य शायद सदा अजाना ही रह जायगा। कि तु सृष्टि त। असत्य नही, उसका सौ दर्य मिथ्या नही है, जीवन की यात्रा तुच्छ नही है। आध्यात्मवादी कवि जीवन के प्रति पर्यवेक्षण मे सत्य का जान गये व उसी जीवन की सार्थकता का गीत गाया। हमारे अति साधारण जीवन मे जब व्यर्थता की पीडा हमे हताश करती है, जिन्दगी जब निरर्थक लगती है, हमारा स्वार्थमय जीवन जब कदम कदम पर आहत होता है, तब एक तरफ तो जि दगी को हम अभिशाप देते है और दूसरी तरफ उसी जि दगी की सार्थकता के लिये मुक्ति चाहते है। जिस मुक्ति का पथ हम नहा जानते, जिसका रूप हमारे लिए अव्यक्त है उसी को ढू ढते हुये व्यर्थता का भार हम बढा देते है। रवी द्र साहित्य इसी का समाधान है । दु ख, दरिद्रता, व्यर्थता हमारे जीवन म प्रतिदिन आघात कर रहे है। पर कवि ने उनमे निराशा नही पाई, वे आशावादी थे। उनकी आखो म जीवन सम्पूर्ण सु दर था। उन्होने जीवन और व्यक्ति को अलग नही किया, सारी सृष्टि के मध्य उसकी सार्थकता को देखा। उनकी कविता, 'प्रार्थना', मनुष्य के व्यथामय हृदय मे सा त्वना व शाति देती है —

> "विपदे मोरे रक्षा करो ऐ नहे मोर प्रार्थना, विपदे जेनो ना करि आमि भय।"
> दु ख तापे व्यथित चित्ते, नाइबादि लो सान्त्वना दु ख जेनो करिते पारि जय।
> सहाय भार ना यदि जुटे निजेर बल ना जेनो टुटे
> ससारेते घटिले क्षति, लभिले शुधु बचना निजेर भाव ना जेनो करि क्षय।
> नम्र शिरे सुखेर दिने, तोमारी मुख लइबो चिने।
> दु खेर राते निखिल धरा जेदिन करे बचना, तोमारे जेनो ना करि सशय।"

कवि कहते है कि विपद मे रक्षा करो, मै यह प्रार्थना नही करता। मेरी तो प्रार्थना है कि उससे भय न खाऊ शोक मे कोई सा त्वना भले ही न दे पर मै दु ख को जय कर सकू । अगर कोई सहारा न मिले तो अपनी हिम्मत न खोऊ ससार मे कोई क्षति हो, धोखा हो, तो अपना मान न खोऊ। सुख के दिनो मे भी नतशिर हो तुम्हे ही याद करू ।"

प्रार्थना की यही वाणी हमे आधी तूफान मे भी स्थिर रहने की शक्ति देती है।

प्रकृति के मुक्त सौ दर्य के मध्य मनुष्य जीवन, भगवान का यह श्रेष्ठ दान है। जीवन का जयगान ही मनुष्य जीवन मे कविगुरु का श्रेष्ठ दान है। जीवन एक नैवेद्य है जिसे सृष्टा के चरणो मे उत्सर्ग करने मे ही सार्थकता है। मनुष्य की कमजोरी और अज्ञानता कभी कभी उसे विफल रूप दिखाते है। लगता है जीवन व्यर्थ है कि तु जिसे असीम शक्ति ने हमे बनाया है उसकी सुन्दरतम क्षमा के स्पर्श से यह क्षणिक व्यर्थ भार सार्थक हो जायगा। एक दिन हमारी अज्ञान की नीद खुल जायगी और हम देखेगे हमारी जि दगी के बाग मे सार्थक फूल खिला है। वे आगे कहते है —

> "कभी कभी चि ता करता हू, आज कर्महीन, वेला नष्ट हुई, नष्ट हुआ दिन।
> नष्ट नही हुआ प्रभु वही सब क्षण, स्वय तुमने ही उसे किया है ग्रहण।"

हे अ तर्यामी प्रभु म निद्रालस, आलस्य शय्या के ऊपर श्रान्ति म भरा।
साचा था सारा कर्म सब या ही पडा है। सुबह उठकर जब नयन खोलकर देखा,
देखा, मेरा ही बागीचा भरा हुआ है ।।" (सफलता)

× × ×

पहले इसलिये सबकी सब सेवा प्रभु, शेष करके दत देत समय निकल जाता है
पर देखता हू तुम्हारी पूजा की थाली शू य पडी है, भय मे कातर हो दौडकर—
असमय आता हू आकर देखा, तुम्हारा समय नही गया । (प्रतीक्षा)

मनुष्य जीवन का जहा आरम्भ है समाप्ति भी वही है। सृष्टि का स्रष्टा मे अलग करके कवि ने नही देखा था, इसलिए स्रष्टा जहा अन त अनादि, आन द स्वरूप है सृष्टि भी उसी के रस मे रसमय है। उसी आन दमय परमात्मा का विकास जीवन के प्रत्येक उद म है इसलिए दुख के प्रत्येक आघात के मध्य भी कवि ने आन द का सुर सुना था—"दुखेर पथे तामार तूय बाजे' जिन्दगी के दुख का वरण करना चाहा इसलिये इन्होने कहा—

"दुख का अनुभव अगर न हुआ तो दुख तुम्हारा दूर कैसे होगा। विष द्वारा ही विष को पचाना पडेगा। दुख की वर्षा मे, आख का पानी जैसे ही आया, हृदय द्वार पर बधु का रथ वैसे ही आया।" दुख के साथ ही मनुष्य आत्म-शक्ति का परिचय पाता है इसलिए दुख की उपेक्षा करके या भय से दूर नही हटना चाहिये उसे वरदान समझकर ग्रहण कर जीवन पथ पर चलना पडेगा । शायद पथ की समाप्ति पर उसका फल मिलेगा।

"तुम्हारी करुणा, किस पथ मे किसको किधर ले जाती है,
मैने आख खोलकर जब देखा तब मैने स्वय को तुम्हारे ही द्वार पर पाया।"
"मे चुनकर तुम्हारा दान नही लूगा जो तुम दोगे वही मेरे लिये अच्छा है
तुमने दुख के पास ही आनन्द रखा है और अ धकार के साथ ही प्रकाश रखा है।"

हम मन को यह कहकर ही सान्त्वना देते है—"जीवन का कोई भी धन विफल नही जायगा।"
धूलि की तरह कितनी ही अवहेलना क्यो न हो, पुण्य का चरण स्पश उसके ऊपर है।

रवीन्द्रनाथ आध्यात्मवादी थे। फिर भी वे पार्थिक जगत को तुच्छ नही मानते थे। बाहर का सौदर्य, पृथ्वी का माधुर्य, स्थूल की शोभा कुछ भी उनके निकट अर्थहीन, मूल्यहीन नही थे। देह, प्राण मन सब एक होकर उसी सत्य स्वरूप को ही प्रकाशित करते है। इसलिये देह—सुन्दर, प्राण—चिर चचल, मन—आन द का भण्डार है।

देह प्रान और मन मे एकाकार होकर, यह कौन सी अपरूप लीला इस अ ग मे व्याप्त है । हे ईश्वर, देह मन प्राण से मै कितना सु दर हू। इस आन द लीला से कवि ने मुक्ति नही मागी थी।

पृथ्वी के प्रेम ने उन्हे आकर्षित किया था इसलिये कवि ने कहा था—

"यदि इच्छा हो तो मे वापस आऊ गा दुख सुख के तरगमय इस ससार के किनारे ।

इस पृथ्वी के अन्दर ही स्वय को मिलाकर परमसत्ता का अनुभव करना होगा। उह (भगवान) बाहर कहा ढूढोगे! वह तो यही पर है!

"विश्व के साथ जहा तुम मुक्त होकर रहते हो, उसी जगह मै भी तुम्हारे साथ हू।

इसलिए सब कुछ त्याग कर, ससार छोड कर सत्य का सधान कवि ने नही किया था। भोग के बीच जिदगी के सब आनद उत्सव के मध्य ही परमानद का स्पर्श उन्होने मागा था।

आखो के सामन, आस पास, चारो ओर जो आनन्द है तुम्हारा आनद भी उसके मध्य ही रहेगा"।

इस भोग के अदर काई अपवित्रता नही है। पार्थिव जीवन मे इसी सौन्दर्य की पूजा के माध्यम मे ही परम प्राप्ति है। इसलिए कवि कठ से बार बार जीवन का जय गान निकला था। बधन के बीच मुक्ति का स्वाद लिया था —

"मुझे सबके साथ मुक्त कर दो
मुक्त करो सब बन्धन, सचार करो सब कर्म मे अपना शान्त भाव।।"

यही प्रार्थना जिदगी मे सफलता लायेगी, अनाविल शान्ति लायेगी, प्रकाश देगी।

जिन्दगी के लिए जिनके मन मे प्रेम इतना गहरा था, उन्हे मरण से क्या भय है? हमारे जीवन के पथ पर सबसे अधिक भय की सृष्टि अज्ञात अन्धकार करता है। हम मरण की कल्पना करके भयभीत होते है व प्रियजन की मृत्यु मे दुख पाते है किन्तु जिस कवि ने हमे जिदगी से प्रेम करना सिखाया था वही फिर हमे मरण को बिना झिझक ग्रहण करने को कह गया। उन्होने कहा कि—जीवन और मृत्यु एक ही यात्रा की दो सीमाये है। जीवन मे जो सुन्दर व अपरूप है। मृत्यु के अन्दर भी वही आनन्दमय है। यहा जो कुछ अर्थहीन, असम्पूर्ण है, शायद वही मृत्यु के उस पार ज्योतिर्मय, उज्जवल प्रकाश से प्रकाशमान, सम्पूर्ण व अर्थपूर्ण है। पृथ्वी से जो विदा है वह मृत्यु व विच्छेद नही है —

भय सिर्फ समाप्ति है। सिर्फ सुख स स्मृति मे, व्यथा से गीत मे, मझधार से किनारे मे,
खेल से खेल क समाप्ति मे, वासना से शान्ति मे, खुले आकाश से नीड मे।

मृत्यु ही जीवन का शेष नही है। एक दिन जैसा अजाने जब मे जन्म लेकर पृथ्वी को हठात् परम-परिचित लगा था, वैसा ही मृत्यु के उस पार जाकर एक परिचित दुनिया का सन्धान मिलेगा। पृथ्वी मे जन्म लेने के लिये जैसे काई सकोच नही हुआ, प्रेम बन्धन से जो आनन्द हमे यहा मिला वैसा ही दुनिया मे जाकर भी परमानन्द को प्राप्त करेगे। इसीलिये मरण का आवाहन कर उन्होने कहा था— "मरण रे तुहु मम श्याम समान"। जीवन के प्रति प्रेम ने ही मरण के लिये उन्हे निर्भय बनाया है।

कवि का यह जीवन दर्शन अगर मनुष्य हृदय मे उत्साह भरता है, उसे जीवन-पथ पर चलने के लिए प्रकाश दिखाना है तो कवि की यह साधना सार्थक होगी। कवि की इस साधना-वाणी को ग्रहण करके ही हम अपनी जीवन यात्रा शुरू करे —

यात्रा करो वृथा सब अहकार छोड यात्रा करो छोड अहिसा देश।
यात्रा करो स्वर्गमय करुणा पथ पर मानकर सत्य का आदेश।

●

फारस यात्रा पर जाते हुए जोधपुर मे लिया गया फोटो



चित्र म खडे हुए (बाय म दाय) धीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, पन्नालाल नाग केदाररूप राय अनिल कुमार बद्योपाध्याय भारद्रनाथ गुप्त । (बठे हुए) कवि गुरु ग्रोर श्रीमती प्रतिमा देवी ।

(निष्ठा रवीन्द्र अङ्क)

रवीन्द्र और राजस्थान

• मोहन मुकर्जी

राजस्थान मे बगाल की दूरी लगभग एक हजार मील की है। फिर भी आज चोरगी मे मारवाडी सेठो को एव पीसागन मे बगाली डाक्टरो को पाकर हमे आश्चर्य नही होता। ऊटो की मथर चाल व घोडो की टापो के मध्य की शताब्दियो ने भारत के इन दोनो भागो के मध्य सम्बन्धो का अस्तित्व भी देखा है। यद्यपि बालू के टीलो, नागफनियो, चट्टानो व निर्जन वनो वाली राजस्थान की भूमि बगाल की उस हरी भरी धरती से बहुत भिन्न है—जो नारियल के वृक्षो, नदियो व लहलहाते खेतो मे हसती रही है। पर इतिहास से ज्ञात होता है कि अन्तत ये दोनो एक ही मातृभूमि के दो भाग रहे है। जब बगाल मे 'बारा भुइय्याओ' ने विद्रोह किया था, तो एक राजपूत राजा के नेतृत्व मे मुगल सेना उन पर विजय प्राप्त करने गई थी। उनके नेता प्रतापादित्य व कदारराय अभी भी बगाल के 'वीर पुरुष' माने जाते है, जब कि बगाल से आयी देवी 'काली' को श्रद्धाजलि अर्पित करने हजारो लोग आमेर आते है। बाद मे जब अठारहवी शताब्दी मे गुलाबी नगरी जयपुर का निर्माण हुआ तो उसमे भी बगाल के एक वास्तुशिल्पी विद्याधर के नाम पर एक सडक व उद्यान को भी स्थान मिला।

बगाल मे जब ब्रिटिश साम्राज्य के १०० वर्ष बाद राष्ट्रीयता की भावनाओ ने करवट ली तो राजस्थान व बगाल के मध्य, सम्बन्धो की एक और श्रृखला जुड गई। यद्यपि उस समय राजस्थान मे कोई हिसक विप्लव नही हुआ, पर जो लोग राजनैतिक रूप मे जागरूक थे उन्होने बगाल की राजनैतिक उच्चाकाक्षाओ से प्रेरणा ली। यद्यपि इन उच्चाकाक्षाओ को मुख्यत यूरोप के राजनैतिक साहित्य से जन्म मिला था, पर हमारे देश के इतिहास ने भी देश भक्ति की इस ज्वाला को प्रज्ज्वलित करने मे सहायता पहुँचाई थी। अत यह स्वाभाविक ही था कि बगाल के महान् कवि को राजस्थान की घटनाओ, परम्पराओ, उसके वीरो व उनके महान् कार्यो से प्रेरणा प्राप्त हुई। जिस समय रवीन्द्रनाथ की पुस्तक 'कथा ओ काहिनी' प्रकाशित हुई, उस समय उनकी आयु ३८ वर्ष की थी। इसमे राजस्थान सम्बन्धी छ कवितायें है। यद्यपि सैकडो मे छ कविताओ का होना महत्वहीन है पर इन छ कविताओ ने बचपन से बगाली जनता मे देश भक्ति की भावनाओ को लाने मे महत्वपूर्ण प्रभाव डाला था व अब भी डालती है।

अजमेर मे अन्नासागर के किनारे पर खडे दुर्ग की भग्न प्राचीरो वाली तारागढ की पहाडी को देखते समय रवीन्द्र की 'पन रक्षा' की ये सुप्रसिद्ध पक्तिया अनायास ही स्मृति को झकझोर देती है —

"मराठा दस्यु आसिछे रे ओई, करो करो सब साज"
आजमीर गडे कहिला हाकिया दुर्गेश दुमराज।"

(अजमेर दुर्ग के सेनाध्यक्ष दुमराज ने कहा—मराठे दस्यु आ रहे है, शस्त्र सुसज्जित हो जाओ)

अठारहवी शताब्दी मे अजमेर, महाराजा जोधपुर के हाथो मे पहुँच गया था। माधोजी सिंधिया नयी सेना लेकर उनसे लडने आये थे। उस समय वहा के दुर्ग के अधिपति दुमराज ने कहा कि प्राण रहते वह कभी आत्मसमर्पण नही करेगा —

प्राकारे चढिया देखिल चाहिया दक्षिण बहु दूरे, आकाश जूडिया उठियाछे धूला माराठि अश्वखुरे।
"माराठेर यत पतगपाल कृपाण-अनले आज, झापे दिया पडि फिरे नाको जेन" गर्जिला दुमराज।"

(मराठे टीढी दल की तरह है, पर हमारी तलवारा की अग्नि मे वे झुलसकर समाप्त हो जायगे।)

पर जब सिंधिया व मारवाड के राजा मे सधि हो गई तो सदेश आया कि दुर्ग का समर्पण कर दो। दुमराज का अपनी प्रतिज्ञा व स्वामी के आदेश मे से एक बात चुननी थी और मराठा घुडसवार ने पाया कि वीर दुर्गाधिपति ने दुर्ग के द्वार पर अपना प्राणान्त कर लिया है।

रवीन्द्र की ये कवितायें छोटी छोटी घटनाओ से सम्बन्धित हे, सुप्रसिद्ध वीरो के बार मे नही है। एक कविता सिरोही के राजा पर है 'मानी'। इस वीर ने अपने अचलगढ दुर्ग से मुगल सम्राट् औरगजेब का उस समय तक सामना किया, जब तक कि सम्राट् के राजपूत सेनापति महाराजा जसवन्तसिह ने उसे बन्दी न बना लिया। जब उसे सम्राट् के सामने लाया गया तो उसने अपना सिर झुकाने से इन्कार कर दिया। पर सम्राट् ने ऐसे बहादुर की सराहना की व उससे पूछा कि भारत मे वह कौन सा क्षेत्र लेना पसन्द करेगा। बन्दी ने केवल अचलगढ की अनुर्वर पहाडी की ही माग की।

राजस्थान के बच्चो मे उस हाडा सिपाही की कहानी प्रसिद्ध है, जो मेवाड के महाराणा की सेना मे था और जिसने बूदी के नकली किले की रक्षा मे अपने प्राण उत्सर्ग कर दिये थे। यह कथा 'नकलगढ' कविता मे वर्णित है।

एक कविता है—होरी खेला। इसमे कोटा की एक रानी की बहादुरी का चित्रण है। कोटा के राजा और रानी ने एक पराजय के पश्चात् कैथून के किले मे शरण ली थी। वसन्त आने पर रानी ने पठान सेनापति केसरखा को सदेश भेजा कि रानी अपनी राजपूतानियो के साथ होली खेलेगी। प्रसन्नता के साथ यह निमन्त्रण स्वीकार कर पठान सेनापति सदलबल उद्यान मे पहुंचा। राजपूत नारिया ने होली खेलनी शुरू की। पर पठानो को आनन्द नही प्राप्त हुआ —

"चोखे केन लागेछे नाको नेशो" मने मने भावछे केसरखा,
"वक्षे केन उठेछे नाको दुलि, नारीर पाये बाका नूपुरगुलि
केमन येन बलेछे बेसुर बूलि, तेमन करे काकन वाजछे ना।"
"चोखे केन लागछे नाको नेशा" मने मने भावछे केसरखा।

फिर रानी आयी। साथ मे नारियो के वेश मे राजपूत योद्धा भी। युद्ध के नगाडे बजने लगे और पठान जिस पथ से आये थे, वापस वही गये। केसरखा का खेल समाप्त हो गया।

एक कविता है—राज विचार। इसमे राजा रतनदेव का वर्णन है। एक ब्राह्मण आकर पूछता है कि एक व्यक्ति मेरी पत्नी को बेइज्जत करने घर मे आ घुसा था, उसे बाध रखा है। क्या सजा दू ?

राजा न वहा—मृत्यु । कुछ देर बा‍ ही सिपाही उस ब्राह्मण को पकड कर लाय व कहा कि इसने युवराज का मार डाला है । इस क्या सजा दे ? राजा न कहा—मुक्ति ।

एक कविता है—विवाह । इसमे एक युवराज का वर्णन है, जिसे बारात म मे ही युद्ध-भूमि मे बुला लिया जाता है। जब तक बारात लडकी के यहा पहुँची, समाचार मिला कि युवराज का लडाई मे मृत्यु हो गई । वधू ने आदश दिया कि बाजे बजते रहे । वधू भा वर चिता मे साथ ही चढ गई ।

निष्ठा, न्याय, ईमानदारी, व वीरता क चित्रणो स युक्त ये कविताय बगाली भाषा की प्रिय कविताओ मे स है । इन कविताओ मे हर बगाली के हृदय मे राजस्थान के प्रति आकर्षण का प्रादुर्भाव होता है । पर गुरुदेव स्वय राजस्थान मे केवल एक बार आये थे। उन्होन १९२० मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन मे भरतपुर मे भाग लिया था । भरतपुर मे वे आगरा और फिर अहमदाबाद गये थे । मार्ग मे वे श्री सुभाष मजूमदार के यहा जयपुर भी रुके थे । भरतपुर मे उन्होने 'नीलमणिलता' नामक एक कविता का भी सृजन किया था । बगला शब्द-कोष मे इस नाम की कोई लता नही है । बताया गया है कि भरतपुर प्रासाद मे नीले पुष्प वाली एक लता है । कवि ने इसी का नाम नीलमणिलता रखा था ।

●



रवीन्द्र के नारी पात्र   वलेरी यूग्लोव की तूलि

रवीन्द्रनाथ के चित्रा काव्य मे सौन्दर्य

• रसिक बिहारी

रवीन्द्रनाथ को अपनी काव्य रचना मे सबसे अधिक प्रेरणा सौन्दर्य और अनुभूति मे मिली है। इनकी अभिव्यक्ति उनके अपूर्व शब्द चयन, छन्द ध्वनि और अलकार प्रयोग मे हुई है। ससार की श्रेष्ठ कला कृतियो के मूल मे भी हम सौन्दर्य और अनुभूति का समावेश ही मिलता है, चाहे वह लियोनार्दो की 'मोनालिसा' चित्र हो या बिथोविन का 'सिम्फोनी' सगीत। जब हम इन दोनो प्रकार की रचनाओ की विशेषताओ पर गौर करते है तो हमे लियोनार्दो की रेखा और रग के मनोहारी समावेश और बिथोवेन के अभिनव ध्वनि समन्वय को देख-सुनकर दग रह जाना पडता है। पर यह भी मानना पडेगा कि इन कलाकृतियो की आनन्द-दायिनी शक्ति के मूल मे एक अव्यक्त, अदृश्य प्रभाव और एक इन्द्रियातीत अनुभूति है। कवि रसमय वाक्य के माध्यम से जिस आनन्दानुभूति का सधान देते है—ईसा, बुद्ध या चैतन्य उसी आनन्द को अपनी विशुद्ध आत्मिक उपलब्धि मे ढूढते है। रवीन्द्रनाथ भारतीय प्रतिभा के चारण है, तभी उनकी मनीषा मे हमे भारतीय ऐतिह्य की ही झाकी मिलती है।

रवीन्द्रनाथ के 'चित्रा' नामक काव्य मे हमे कवि के सौन्दर्य-बोध के साथ ही साथ उनके महत्तर जीवन के प्रति प्रबल अनुराग का भी परिचय मिलता है। 'कडी ओ कोमल' काव्य और 'चित्रागदा' नाटक मे उनके सौन्दर्य बोध मे भोग-प्रवृत्ति के मिश्रण से कुछ विकृति आ गयी प्रतीत होती है। उसी त्रुटि का निराकरण 'चित्रा' काव्य मे हुआ है। इसमे कवि ने सौन्दर्य को मानवीय सम्बन्धो के सब विकारो और मानव की आवश्यकताओ की सकीर्ण सीमाओ से परे रखकर देखा है। तभी उनको सौन्दर्य की विशुद्ध उपलब्धि हुई है।

'चित्रा' काव्य मे हमे कवि की सौन्दर्य-बोध सम्बन्धी कुछ कविताये मिलती है जिनमे छ प्रधान है। चित्रा, उर्वशी, विजयिनी, आवेदन ज्योत्स्ना राते और पूर्णिमा। इन कविताओ मे रवीन्द्रनाथ की सौन्दर्यप्रियता विशेष रूप से प्रस्फुटित हुई है। कवि ने विभिन्न भाव-प्रतिमाओ द्वारा इन कविताओ मे अपनी सौन्दर्यानुभूति को विभिन्न प्रकार से व्यक्त किया है। लेकिन इन सब के मूल मे एक ही बात है। एक ही अनुभूति विभिन्न प्रकार से व्यक्त हुई है।

इस काव्य मे कवि ने जिस प्रकार के सौन्दर्य की चर्चा की है वह मुख्यत वस्तुनिरपेक्ष है। जिस सौन्दर्य की तीव्र अनुभूति उन्हे अपने अन्तर मे हुई थी, उसी का प्रकाश उन्होने विश्व-प्रकृति के अनेक प्रकार के रूप आकार मे देखा है। यहा रवीन्द्रनाथ और वर्ड्सवर्थ मे हम बहुत कुछ

समानता पाते है। इसी सौंदर्य को हम बाहर चंचल गतिमान पाते हैं, पर अंदर यही शान्त और निश्चल होता है। बाह्य जगत के समग्र सौंदर्य का मूर्त रूप हम उनकी 'उर्वशी' कविता में पाते हैं। तात्विक दृष्टि से सौंदर्य एक सत्ता मात्र है, तभी मानव के मन में इसके लिये एक ऐसी आकांक्षा होती है जिसकी तृप्ति कभी नहीं होती। 'उर्वशी' के अंतिम अंश में हमें इसी सत्य की प्रतिध्वनि मिलती है—

फिरिबे ना फिरिबे ना, अस्त गेछे से गौरवशशि, अस्ताचलवासिनी उर्वशी।
ताई आजि धरातले वसंतेर आनंद-उच्छ्वास कार चिरविरहेर दीर्घश्वास मिशे बहआसे,
पूर्णिमा निशीथे जब दशदिके परिपूर्ण हासि दूरस्मृति कोथा
हते बाजाय व्याकुल करा बाशि, झरे अश्रुराशि।
तबू आशा जेगे थाके प्राणेर क्रंदने अयि अबंधन।।

'चित्रा' शीर्षक कविता में कवि ने सौंदर्य का बाहर एक तरह से देखा है, पर अंदर दूसरी तरह से। बाह्य सौंदर्य का उन्होंने प्रकृति की विविध वस्तुओं के माध्यम से अपनी अनेक प्रकार की इंद्रियानुभूति के सहारे वर्णन किया है। बाहर विभिन्न वस्तुओं में हम सौंदर्य को अनेक रूप में देखते हैं—फल, फूल, गंध, रंग, संगीत, रस आदि में। लेकिन बाहर का बहुरूपी सौंदर्य अन्तर में एक, अचल और अखंड रूप में बिराजता है। अनेक एक बन जाता है।

यही सौंदर्य जिसकी सत्ता की अनुभूति कवि ने बाहर और भीतर दोनों जगह की है, उसी का आवाहन उन्होंने 'ज्योत्स्नाराते' में अपने अशांत हृदय को शांत करने के लिये, अपने देह-मन के व्यथा विकार के निरसन के लिए किया है। सौंदर्य के पुजारी कवि का उद्वेलित अंतर आकुल होकर पुकार उठता है—

आमि एका जेगे आछि, तुमि एकाकिनि देह देखा
एई विश्वसुप्ति माझे, असीम-सुंदर त्रिलोक नंदन मूर्ति! आमि जे कातर अनंत तृषाय।

अन्यत्र इसी कविता में

कोनो मर्त्य देखे नाई
जे दिव्य मूरति, आमारे देखाओ ताई, ए विश्रब्ध रजनीते निस्तब्ध विरले।

जिस अनुपम सौंदर्य रस माधुरी का पान करने के लिये कवि व्याकुल है, पूर्णिमा की रात को वही सौंदर्य साकार होकर अभिसारिका के वेश में कवि के पास उपस्थित है। कवि का मुग्ध हृदय उच्छ्वसित होकर गा उठता है

हे सुन्दरी, हे प्रेयसी, हे पूर्ण पूर्णिमा,
अंतरेर अन्तरशायिनी, नाहि सीमा तब रहस्येर!

रवीन्द्रनाथ के मतानुसार सौंदर्य का अपना कोई प्रयोजन नहीं होता, वह अपने में सम्पूर्ण एक सत्ता, एन्टिटी है। जगत के रहस्य-पारावार के अतल में उसका जन्म होता है। उदाहरण के लिय, 'उर्वशी'

इस रूप की दुनिया मे एक अपूर्व सृष्टि है। सौन्दर्य की ऐसी तीव्र और निर्मल अनुभूति की दूसरा मिसाल संसार के साहित्य मे मिलना मुश्किल है। उर्वशी की कल्पना मे कवि ने सौन्दर्य लक्ष्मी का सब प्रकार के विशेषणो से अलग कर के दिखाया है। यह स्वयभू है। वह प्रथम से ही पूर्ण प्रस्फुटिता है। उर्वशी कवि कल्पना की साकार प्रतिमा है।

'विजयिनी' नाम की कविता मे कवि ने अपनी सौन्दयानुभूति का प्रकाश एक नारी के चित्र म किया है। यह विजयिनी सौन्दर्य की आदिसत्ता है। इस सौन्दर्य के दर्शन से मन स्थिर होता है, श्रद्धा जागती है, और वासना भागती है। इस कविता मे सौन्दर्य का चित्रण जैसे मूर्त हो उठा है। यह सौन्दर्य का पूर्ण चित्र है। इसकी महिमा से प्रभावित होकर कामदेव तक हारकर आत्मसमर्पण करते हे

> स मुखेते आसि थमकिया दाडाल सहसा।
> मुख पाने चाहिल निमेषहीन निश्चल नयाने क्षणकाल तरे।
> परक्षण भूमि पर जानुपति बसि, निर्वाक विस्मयभरे नतशिरे, पुष्पधनु पुष्प शरभार
> समर्पिल पदप्राते पूजा उपचार तून शून्य करि।

प्रकृत और पूर्ण सौन्दय की यही विशेषता है कि यह इन्द्रियजन्य कामनाओ के बहुत ऊपर होता है, तभी इसके सामने जाकर हम इन्हे भूल जाते हे और एक नैसर्गिक भाव और सतोष का अनुभव करते हे।

'आवेदन' नाम की कविता मे कवि ने सौन्दर्य देवी की परिचर्या का अनूठा आयोजन किया है

> शेफालीर वृन्त दिया रागाईब, रानी वसन वासन्ती रगे, पादपीठखानि
> नवभावे नव रूपे शुभ आलियने प्रत्यह राखिब अकि कुकुमे चन्दने कल्पनार लेखा।
> निकुजेर अनुचर, आमि तब मालचेर हब मालाकर।

फिर क्लाइमेक्स आता है

> अशोकेर किशलये गाथि दिब हार, प्रति सध्यावेला, अशोकेर रक्तकाते
> चित्रि पदतल, चरण-अगुलि प्राते लेशमात्र रेणु, चुबिया मुछिया लब एई पुरस्कार।

अत 'चित्रा' काव्य मे हम देखते हे जिस सौन्दर्य की अनुभूति कवि को बाहर और भीतर हुई है, उसी के साक्षात्कार के लिये वे व्यग्र होकर आवाहन करते हे। इस आकुल आवाहन को सुनकर सौन्दर्य देवी ज्योत्स्ना-रात्रि मे आकर कवि को अपना उदार सौन्दर्य दिखाकर तृप्त करती है। कवि उस रूप-माधुरी की प्रेरक-शक्ति से प्रभावित होकर 'उर्वशी' और 'विजयिनी' की सृष्टि करते है, जिनकी सौन्दर्य प्रभा के सामने हमे शुद्ध-बुद्ध होकर आत्म-समर्पण करना पडता है।

●

कथाकार रवीन्द्र

डब्ल्यू ए. क्लार्क

अंग्रेजी तथा बहुत अंश तक बंगाली के विद्वान आलोचकों का ध्यान अधिकतर रवीन्द्रनाथ की कविताओं पर गया है। नाटकों पर उनकी दृष्टि कविता की तुलना में कम ही गयी है और कवीन्द्र की गद्य रचनाओं को तो आलोचकों द्वारा उपेक्षित ही कहा जा सकता है।

रवीन्द्र के सर्वश्रेष्ठ गद्य जिस माधुर्य और गरिमा, तथा कल्पना के जिस प्रसार का परिचय देते हैं वे उन्हें उत्कृष्ट गद्य रचनाओं के समक्ष बनाने की योग्यता रखते हैं। कुछ में तो इतनी अधिक भावनात्मक कोमलता है, जिनकी समानता में उनकी 'येते नाही दिब' और वधू जैसी उच्चकोटि की कवितायें भी नहीं टिकती।

अपनी जमींदारी के प्रबन्ध के सिलसिले में टैगोर को ग्रामवासियों के निकट सम्पर्क में आने का अवसर मिला। ग्रामनिवासियों का रहन सहन उनकी दरिद्रता, उनका पिछड़ापन देखकर कवि का हृदय द्रयार्द्र हो उठा, उसमें एक तीव्रतम भावोद्रेक हुआ, जिसकी अभिव्यक्ति उनकी विषपान शीर्षक कविता में हुई है। इसमें कवि ने उनके जीवन, उनकी पीड़ाओं और उनके जीवन की दुःख भरी गाथाओं का मुखर चित्रण किया है।

रवीन्द्रनाथ की लघु-कथाओं का सर्वश्रेष्ठ संग्रह, 'गल्प गुच्छ' अनेक विषयों का प्रतिपादन करता है। अतीत और वर्तमान, वास्तविक और काल्पनिक, देशीय और इतर देशीय, जो घरबार की समस्याओं तक सीमित है, और अन्य जिनमें व्यापक पर सामाजिक एवं धार्मिक अर्थ और अभिप्राय अभिहित है। यह कहना अनुचित नहीं है कि जिन कथाओं में आडम्बर हीन, और निर्धन लोगों की चर्चा हुई है वे स्वयं रचयिता के हृदय का स्पर्श अन्य सबकी तुलना में अधिक निकट से करती हैं। टैगोर की कथा कृतियां ही उनकी कीर्ति को चिरस्थायित्व प्रदान करने वाली हैं। ये कथानक उनकी जन्मभूमि के जीते जागते चित्र हैं। इन कहानियों में जो चित्र उभरे हैं, वे बड़े कारुणिक हैं और कहीं कहीं तो कटु करुण भी। किन्तु इन सबके भीतर से झांकती है कवि की अन्तरस्थ संवेदना, जो उनके विषाक्त एवं दुर्वह जीवन के प्रति हिलोरे मार रही है।

रवीन्द्रनाथ में कमियां भी अवश्य थीं जिनमें से एक पूर्वालोचन के उस स्वानुशासन का अभाव है जिसके बिना कोई प्रयास—पद्य या उपन्यास अथवा लघुकथा के माध्यम से—उत्कृष्टता और महानता के गुणों में वंचित रह जाता है। पर लेखक एक शृंखला की भांति है, और जिस प्रकार शृंखला की परख उसकी सर्वाधिक सुदृढ कड़ी के आधार पर की जानी चाहिये, उसी प्रकार कवीन्द्र का भी हम उनके उत्कृष्ट गुणों के बल पर आंकने का प्रयास करें।

जिन कृतियों से रवीन्द्रनाथ टैगोर ने साहित्य भण्डार को समृद्ध किया है उनमें उनकी प्रतिष्ठा को स्थायी बनाने वाले प्रयासों की कमी नहीं है—और यह कहना कि सीधे सादे, निर्धन लोगों—ऐसे जो

अकारण कष्ट झेलते है, या जिन्हे अपने दोष के अनुपात मे कही अधिक दुख झेलने पडते है—के चित्रण उनकी स्थायी कीर्ति के आधार सिद्ध होंगे, निस्सन्देह उचित और युक्तिपूर्ण है।

टैगोर ने अपनी एक कहानी मे एक बालिका का चित्रण किया है, यह बालिका जन्म से ही गूंगी है किन्तु कहानीकार ने इसका नाम रखा है 'सुभाषिनी'। अपने बाल सहचर प्रताप के साथ खेलने मे रत यह बालिका टैगोर की लेखनी से बडी सजीव उतरी है। बडे होने पर उसके पिता को उसके विवाह की चिन्ता होती है। उसका विवाह एक ऐसे वर से कर दिया जाता है जिसे यह विदित नही है कि उसकी वधू जन्म से गूंगी है। इतना यथार्थ चित्रण रवीन्द्रनाथ की शायद ही किसी कृति मे मिले।

"अपनी गूंगी कन्या का पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न करा के सुभा के माता-पिता घर आ गये। अब इस लोक और परलोक दोनो ही अपनी जाति की सुरक्षा के प्रति निश्चिन्त थे।"[1]

कहानी का अन्त सहसा इस प्रकार होता है—

"दस दिन के भीतर ही सब जान लेते है कि वधू गूंगी है और उसके पति महोदय एक ऐसी कन्या से अपना दूसरा विवाह रचा लेते है जो बोल सकती है।"

कथानक की ऐसी परिणति पर पाठक को परिष्कार पूर्ण विचार के लिये बाध्य होना पडता है। यह पूर्व जन्म मे किये हुए कर्यो का फल है अथवा क्रूर समाज द्वारा मागा गया व्यक्ति के जीवन का मूल्य ?

इसके अतिरिक्त 'शेषेर रात्रि' शीर्षक हृदय-द्रावक कहानी मे हम मरणोन्मुख भतीजे की शय्या के किनारे खडी हुई मासी को देखते है। अपने रुग्ण भाजे की दारुण पीडा के प्रति उसकी पत्नी की निठुरता का समाचार रोगी तक न पहुंचने देने के लिए मासी कुछ उठा नही रखती है—वह अपने आपको धोखा देकर झूठ भी बोलती है। मासी की बात पर जोतिन विश्वास कर लेता है। माली द्वारा प्रस्तुत इस चित्र से कि उसकी पत्नी उसकी उपेक्षा नही करती बल्कि जब वह सोता रहता है तब उसे देख जाती है और शेष समय घर के कार्यो और रोते हुए बिताती है। जोतिन इतना अभिभूत हो जाता है कि अपनी सारी पैतृक सम्पत्ति—अपनी मासी की भी—की वसीयत अपनी पत्नी मणि के नाम कर देता है। किन्तु मरने के पूर्व जोतिन अपने एक नौकर से मणि के व्यवहार की वास्तविकता जान लेता है। किन्तु उसकी मृत्यु इतनी जल्दी होती है कि उसे इतना अवसर नही मिलता कि अज्ञान और शीघ्रता मे मासी के प्रति जो अन्याय उसने कर डाला है उसका शमन कर सके। रवीन्द्र की इस कहानी मे भी 'अन्त' है, किन्तु वास्तविक अन्त नही।

टैगोर की मास्टर मोशाय नामक कहानी मे भी हृदय को बेध देने वाले जो चित्र प्रस्तुत किये गये है वैसे अन्यत्र मिलने कठिन है।

●

दो उपन्यास

• नवल किशोर

एक भावभूमि

जब भी जैनेन्द्र के कृतित्व पर विचार किया ज ना है और सुनीता का प्रसग आता है, 'घरे बाहरे' की चचा का आना स्वाभाविक है। यह आवश्यक भी है क्योकि बिना ग्रहण और दान का ज्ञान, कृति का वास्तविक मूल्य ज्ञात नही होता और कृति के परिज्ञान के अभाव मे कृतिकार का महत्व भी अनिरूपित रह जाता है। 'सुनीता' की 'घरे बाहरे' के सदभ मे चचा इसलिए जरूरी नही है कि उस पर घर बाहरे' के प्रभाव अन्तर का विश्लेषण किया जाए अपितु इसलिए भी आवश्यक है कि उनमे जो दो युगो की भिन्न चेतनाए है उनके भिन्न स्पन्दनो को भी हम सुने।

'सुनीता' को लिखते समय जैनेन्द्र के मन मे 'घरे बाहरे' अवश्य रहा है। उसमे उठाई गई समस्या के प्रति उन्होने अपनी प्रतिक्रिया अपनी पुस्तक 'ये और वे' मे स्वय रवीन्द्र के सम्मुख इस प्रकार प्रकट की है—"क्या आपका अभिप्राय यह है कि घर और बाहर के बीच रेखा रहनी चाहिए 'घरे बाहरे' का सदीप मानो बाहर की ओर से प्रहार है। घर के अन्तरग को उससे अपने को बचाए रखना है। बाहर बहिर्गत और बहिष्कृत ही रहे। अन्त स्वीकृत होने देना, मानो विपदा मोल लेना है। क्या वस्तुस्थिति और 'घरे बाहरे' की परिणति यही है? इच्छा थी कि पूछू कि सदीप को वैसा लुब्धक अहेरी का सा रूप देकर आपने यही जतलाना चाहा है?"

इसीलिए 'सुनीता' मे उनका प्रयोजन है—"मैने चुनाचे समस्या के रूप मे भी कुछ भिन्नता देखी है और रखी है। बाहर को निर आक्रमण के रूप मे मैने घर के भीतर प्रविष्ट नही किया। हरिप्रसन्न पुस्तक मे वहा बाहर का प्रतीक है, किंचित् प्रार्थी भी है। वह निरा अनिमत्रित वहा नही पहुँचा। प्रत्युत् वहा उसकी अपेक्षा है। उसके अभाव मे घर एक प्रकार से प्रतीक्षा मग्न है, वहा अपूर्णता है, वहा अवसाद है मानो उस घर मे बाहर के प्रति पुकार है। इधर हरिप्रसन्न अपने आप मे अधूरेपन के बोझ से मुक्त नही है और जैसे वह एक प्रकार के उत्तर मे और एक नियति के निर्देश मे ही एक रोज अनायास घर के बीच मे आ पहुँचा है। पहुँच कर वह वहा स्वत्वारोपी लगभग है ही नही। अपने मे विवश होकर ही जा है सा है।"

इसलिए सुनीता पर 'घरे बाहरे' का प्रभाव तो असदिग्ध है, पर दोनो के मूलस्वर मे अन्तर है। 'घरे बाहरे' के घर और बाहर का द्वन्द्व 'सुनीता' मे भी है। 'घर बाहर' मे निखिलेश और विमला के बीच सन्देश व्यवधान बनकर आता है। 'सुनीता' मे श्रीकान्त और सुनीता के बीच हरिप्रसन्न को सेतु

बनाया गया है। बनाया गया इसीलिए है कि वह वैसा बना नही है। विमला की तरह सुनीता भी घर म लौट आती है, पर 'सुनीता' मे जिस आवा रखा गया है वह आगे चलकर 'सुखदा' एव अन्य उपन्यासा मे अनावृत हो जाता है, बाहर के आक्रमण स घर टूट जाता है। निखिलेश और श्रीकान्त दोनो पति के अधिकारो से पत्नी को वापिस नही करते, उसे अपने पथ पर स्वतन्त्र छोड देते हे। बाहर क दोना प्रतीक प्रकन्न महनीय उद्देश्यो क प्रति समर्पित किन्तु पथ-भ्रष्ट असामान्य पुरुष है। सन्दीप स्वदेशी आन्दोलन क नेता का नेता है और हरिप्रसन्न लाखो माहताजो के उद्धार क लिए रिवाल्वर से काम लन वाला क्रान्तिकारी। दाना मे नारी के प्रति लोभ है—सदीप मे प्रकट और हरिप्रसन्न मे प्रच्छन्न।

लेकिन कुछ ऊपरी समानताओ क अतिरिक्त 'घरे बाहर' और 'सुनीता' की समस्याओ मे मौलिक भिन्नता है। 'घर बाहरे' का निखिलेश नये युग का पुरुष है, जो पति क अधिकारो पर डाका डालकर पत्नी की आत्मा को लूटन का प्रयास नही करता, वह नारी का आनुगत्य नही चाहता उसका प्रेम चाहता है।

'सुनीता' की समस्या 'घरे बाहर' स आगे की है। वहा नारी अपनी सीमाओ को तोड स्वय आगे जाना चाहती है, वह बाहर के रहस्य से आलिगन को अधीर है, "और वह पत्नी है, फिर भी नारी है। कौन अपने आप मे पूर्ण है? कौन विमुखता मे, नकार मे पूर्ण होना चाहता है? और उसकी उम्र अभी है भी कितनी? उसमे जगत् के प्रति उत्सुकता सर्वथा शान्त हो गई है? वह कब वैचित्र्य के प्रति जिज्ञासु और सामर्थ्य के प्रति उन्मुख नही रही है? वह क्या हाड मास की नही है? वह पत्नी है पर नारी है। वह पति मे ही नही, स्वय भी है, तभी तो आग्रहपूर्वक श्रीकान्त के स्मरण और प्रतिस्मरण की उसमे अदभ्य, हठीली चेष्टा है, वह कि जिसका निमन्त्रण हरिप्रसन्न के द्वारा उस मिल रहा है क्या रहस्यमय नही है? इतने ही से नारी हृदय उस ओर बिना खिचे कैसे रहे? स्वय यह हरिप्रसन्न ही क्या रहस्यमय नही है? तब उस भेद को भी क्यो न नारी-हृदय घुसकर पा लेना चाहे?" युगा के सस्कार लेकिन उस रोकते है, घर मे वह अपने को सुरक्षित पाती है—"स्वीकार करो सुनीता को, जो घर की रानी है क्योकि घर की दासी है, हरीमद नही अमृत चाहा।"

निखिलेश श्रीकान्त से विपरीत है। वह पूजा नही मागता, प्रेम चाहता है। वह विमला को पर्दे स निकाल कर ससार स परिचित कराकर व्यक्तित्व देना चाहता है—"तुम एक बार ससार के बीच आकर अपने आप सब समझ लो। इस घर के धाचे मे घर गृहस्थी करने के लिये तुम भी नही हुई और मै भी नही। सत्य के बीच यदि हमारा परिचय पक्का हो तभी हमारा प्रेम सार्थक होगा।" श्रीकान्त क मन मे यह प्रेम पाने की कामना बहुत भीतर है, बाहर से वह शान्त है। तीन वर्ष ही हुए है विवाह को फिर क्यो जीवन मे ऊब पैदा हो गई है, उसे कही गहरे मे लगता है कि जैसे वह अपनी पत्नी का अनुराग जीतने मे असमर्थ रहा है। जिन्दगी मे कुछ नये रग के प्रवेश के लिए वह हरि को बुलाता है और सुनीता को उसके प्रति स्वय अभिमुख करता है। जब कि विमला को सदीप ससार के परिचय के मध्य आकस्मिक रूप मे ही बुलाता है। वहा निखिलेश अधिक यथार्थ है, वह केवल विमला के मार्ग मे हट

जाता है कि तु श्रीकान्त विलक्षण है जो पु सत्वहीन व्यक्ति की तरह अपनी पत्नी को स्वय पर पुरुष क प्रति प्रेरित करता है। श्रीकान्त क इस आचरण पर यदि मनाविज्ञान की दृष्टि मे देखा जाए तो बुरा क्या है? हरि की ओर चरम सीमा तक बढकर लौट आने वाली सुनीता के प्रति क्या उमे इतना मोह हो जाता है? क्या *Need for injured third Party* (आहत तृतीय पक्ष की आवश्यकता) का मनावैज्ञानिक सिद्धान्त तो मूल मे कायरत नही है, जैनन्द्र भले ही उससे परिचित न हो।

एक और भी कारण है जिसमे श्रीकान्त हरिप्रसन्न से अभिभूत है। आरम्भ मे उपन्यासकार न श्रीकान्त का जैसा परिचय दिया है उससे वह अन्तर्मुखी वृत्ति वाला व्यक्ति लगता है और हरिप्रसन्न अधिक बहिर्मुख है (आगे जरूर वह घोर आत्मलीन मिलता है)। बाहर श्रीकान्त शान्त है। पक्की सडक की राह चलते चलते श्रीकान्त गृहस्थ वकील बन गया है तब सोचता है कि अरे, वह हरिप्रसन्न कहा है? उसके दिल की पर्तो मे कही जीवन के साथ परीक्षण की महत्वाकाक्षा थी। हरि चू कि उस परीक्षण मे लगा है, अत उसके निकट इतना काम्य बन गया है। हरिप्रसन्न को प्यार कर वह अपने का ही प्यार करता है। इसलिए जब वह हरिप्रसन्न के भविष्य की बात करता है तो लगता है कि उसका चेतन अचेतन ईर्ष्या को छिपा रहा है। वह सत्या से कहता है—"हरिप्रसन्न जीवन मे कुछ प्रयोजन सम्पन्न करके आगे बढे, आइडिया दे और वह आईडिया समाज मे उगता हुआ दीखे। हरिप्रसन्न की प्रतिभा मे वह बीज है, लकिन वह सहानुभूति से खिचे तब।" श्रीकान्त उसे सहानुभूति स सीचन का जब सुनीता से आग्रह करता है तो उसका लक्ष्य निश्चय ही श्रेष्ठ है पर उसका अचेतन प्रेम के मैदान मे प्रतिद्वन्द्वी को पछाडने के दाव सोच रहा है और अन्त मे प्रतिद्वन्द्वी मैदान छोडकर भाग भी जाता है।

जैनन्द्र की नारी विवाह और प्रेम के द्वन्द्व मे पडी रहती है, पति क प्रति कर्तव्य का निवाहना चाहती है निवाह नही पाती, प्रेमी को प्यार देना चाहती है, दे नही पाती। 'सुखदा' और परवर्ती उपन्यासो मे यह द्वन्द्व स्पष्ट है। 'सुखदा' मे अन्त मे प्रेमी को बिछुडना होता है, पर पति भी छूट जाता है, क्योकि मनसा वह प्रेमी के प्रति उत्सर्ग हो चुकी है। 'सुनीता' की नारी अभी पातिव्रत्य क सस्कारो मे बधी है, पर विवाह के प्रति उसमे शका घर करने लगी है। "वह उस मीरा को समझना चाहती है जो पति मे सब श्रेय पा लेने के कर्तव्य से छूट गई, मीरा के लिए दो बूद आसू डालकर वह पूछना चाहती है—अरी प्रेममयी, तैंने वह कोन सा प्रेम पाया जिसने तुझे कठिनता दी कि पति के हृदय की पीडा को तू बिना पिघले सह ले।" यह सुनीता ही आगे चलकर सुखदा बन गयी है। हरिप्रसन्न के प्रति सुनीता के आकर्षण को उपन्यासकार ने बराबर छिपाया है, बीच बीच मे हरिप्रसन्न जब उसका हाथ अपने हाथ मे ले लेता है तो जैसे सुनीता इसे बहुत सहज भाव से भाभीपन से ही लेती रही है पर अन्त मे आकर स्थिति स्पष्ट हो जाती है। जैनेन्द्र ने उनके मध्य के प्रेम व्यापार पर दार्शनिकता का गहरा आवरण डालना चाहा है। अहिसा के दर्शन की व्याख्या—अह के विसर्जन द्वारा, पीडा सहकर पीडित को मुक्त करने के सिद्धान्त की चर्चा वे अपनी जीवन दृष्टि के सदर्भ मे बराबर करते है। सुनीता मे भी यह दर्शन आरोपित है, मूल म कथा श्रीकान्त की है जो पत्नी सुनीता को पा नही सका है, अत

पाना चाहता है और हरिप्रसन्न सुनीता परस्पर अनुरक्त होते हैं पर जैनेन्द्र की आदर्शवादिता उन्हें मिलने नहीं देती ।

पर रवि बाबू ने संदीप विमला के सम्बन्धों का वर्णन पूरी ईमानदारी से किया है, कहीं गोपन या दार्शनिक आवरण नहीं है । उन्होंने संदीप को वस्तुतः एक प्रतीक बनाना चाहा है । "पश्चिम से एक दस्युवृत्ति का प्रवेश हुआ है । वह बल को जानती है, वह स्फीत है और तुन्दिल । वह आखेट के लिए निकली है । मानो सब उसकी भूख के लिए भोज्य है । यही उसके होने की सार्थकता है कि वह भोग में आए । दर्पोद्धत यह दस्युता प्रभुता बनना चाहती है, पर मानव-संस्कृति क्षण के लिए भूले अंत में चेतेगी । वह भ्रष्ट न होगी नष्ट न होगी । संदीप में वही दस्यु-वृत्ति है । उसे परास्त और पराजित होना है ।" (१) हर लेखक के बावजूद किसी रहस्यमयी प्रक्रिया से उसकी कलात्मक प्रतिभा उसे दूसरी ही ओर प्रेरित करती है । रविबाबू संदीप पर काली स्याही पोतना चाहकर भी अंततः ऐसा नहीं कर सके, वे निखिलेश को सम्पूर्ण सहानुभूति देकर भी संदीप विमला के अनुराग को नहीं ठहरा सके। साथ ही निखिलेश के प्रति उसकी विधवा भावज के निष्कलुष प्रेम का भी उन्होंने बड़े सहज भाव से वर्णन किया है । जैनेन्द्र ने जहां काम को रहस्यमंडित रखा है, वहां रवीन्द्र ने उसे सर्वथा माननीय धरातल पर ही ग्रहण किया है ।

दोनों लेखकों के विषय परिवेश में भी अंतर है । जैनेन्द्र में जो राजनीति है, राष्ट्रीयता है, वह आरोपित है । 'सुनीता' के लिए इतना पर्याप्त था कि हरिप्रसन्न जैसा व्यक्ति उसके संपर्क में आ जाता । रिवाल्वर की निन्दा, अहिंसा का महत्व आदि चर्चाएं महत्वपूर्ण भले ही हों, केन्द्र में नहीं है । 'घरे बाहरे' में केवल नर नारी के सम्बन्धों का विश्लेषण ही नहीं है तत्कालीन राजनीति का भी विवेचन है ।

जहां तक उपन्यास कला का सम्बन्ध है रवीन्द्र और जैनेन्द्र में दो युगों का अंतर स्पष्ट है । रवीन्द्र में भारतीय उपन्यास कला के आरम्भिक चरण हैं, जैनेन्द्र में उसका पर्याप्त पुष्ट और विकसित रूप है । रवीन्द्र प्रथम महान् कवि हैं, जब कि जैनेन्द्र निपुण कथा-शिल्पी हैं । 'घरे बाहरे' में नाटकीयता नहीं है, हमें अधिकांश सूचनाएं लेखक देता है, 'सुनीता' में 'सिरजनहार' की तरह लेखक अधिकतर पात्रों में ही है—अलग बहुत कम । हम सीधे पात्रों के परिचय में आते हैं, उनके दिलों की धड़कन सुनते हैं और विचारों को पढ़ते हैं । अतः जैनेन्द्र की 'सुनीता' उपन्यास कला की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है, पर इसके बावजूद यह तथ्य है कि इसके पात्र सुनीता, श्रीकान्त और हरिप्रसन्न इतने विलक्षण हैं कि हम उनको विश्वास नहीं दे पाते, जब कि 'घरे बाहरे' के पात्रों को हम अपने अधिक समीप पाते हैं । यह अन्तर ही दोनों उपन्यासों की शक्ति और दुर्बलता को स्पष्ट करता है ।

● ●

(१) साहित्य की प्रतिक्रिया—डा० देवराज उपाध्याय

बच्चे की वापसी

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

नाटय रूपा०—विष्णु प्रभाकर

●

(प्रारम्भिक सगीत के बाद का गहन गम्भीर स्वर)

लेखक—जब रायचरण पहले पहल नौकरी पर आया था तब उसकी आयु कुल बारह साल की थी। तब मालिक के घर मे एक वर्ष का बालक था। उसको खिलाना-पिलाना, सार सभाल करना यही उसका काम था। धीरे धीरे वह बडा हुआ। स्कूल गया। स्कूल मे कालेज गया। फिर मुसिफ बना, रायचरण अब भी वही काम करता रहा। हा, अब उसका एक मालिक और बढ गया। घर मे बहूजी आ गई और इसलिए अनुकूल बाबू पर उसका अधिकार पहले जितना नही रहा। लेकिन थोडे दिन बाद घर मे एक बेटा पैदा हुआ। और जल्दी ही रायचरण ने अपनी मेहनत से उसे पूरी तरह अपना लिया। वह उसे बडे उत्साह और अनुराग से खिलाता रहता। बेमतलब के सवाल पूछता रहता। अपना मुह बच्चे के मुह के पास ले जाकर ऐसे हिलाता कि बच्चा खुशी के मारे किलक उठता। फिर बच्चा बडा होने लगा। अब वह घुटनो के बल चल कर चौखट पार कर जाता और जब रायचरण उसे पकडने आता तो किलकारी मार कर इधर उधर दुबकने की कोशिश करता। रायचरण उसकी चतुराई और विवेक देखकर दग रह जाता।

(स्वरोदय— बच्चे की किलकारी)

रायचरण—(भागते हुए) ठहरो तो लल्ला। मैं आता हू। बडे भागने लगे हो। है, है, है, मै छोडूगा नही। अरे कहा गए? लल्ला तुम कहा हो? ओ लल्लू किधर गया? ओ यहा छिपे हो। बडे चतुर हो। ए इस उम्र मे यह हाल। मुझे पता भी नही लगा। बहूजी, बहूजी, देखा तुमने।

बहूजी—(दूर से) क्या है? क्या देखने को कहता है?

रायचरण—बहूजी तुम्हारा यह बेटा बडा होने पर जज होगा।

बहूजी—(हसकर) क्यो रे, तुझे कैसे पता लगा।

रायचरण—कैसे पता लगा? भला बहूजी, इतनी उम्र मे कोई चौखट पार कर सकता है। मैं पकडता हू तो ऐसी जगह जाकर छिपता है कि ढूढना मुश्किल हो जाता है।

बहूजी–तो इसी मे त जान गया कि जज बनेगा ।

रायचरण–और नही तो जज का दिमाग है तभी तो अभी से इतना चतुर है। देख लेना पाच हजार रुपये पाया करेगा। हर कोई ऐसा नही कर सकता ।

(हसी–स्वर विलयन। लेखक का स्वर उठता है।)

लेखक–और जब बच्चा कुछ और बडा हुआ, मा को 'अम्मा' बूआ को उआ और रायचरण को चन्ना कहकर पुकारने लगा तो रायचरण को बच्चे के जज होने मे और भी विश्वास बढ गया। वह मुह मे रस्सी दबाकर घोडा बनता, पहलवान बनकर कुश्ती लडता और अगर उसमे हार कर जमीन पर गिर नही पडता तो बस उसकी शामत आ जाती। (विराम सगीत) इन्ही दिनो उनका तबादला पद्मा नदी के किनारे एक नगर मे हो गया। रायचरण बच्चा बाबू को खूब सजाकर बच्चा-गाडी मे बैठाता और दोनो वक्त हवा खिलाने ले जाता। उन दिनो वर्षा ऋतु मे पद्मा का रूप बडा भयकर हो गया था। एक दिन खूब पानी पडा। तीसरे पहर पानी तो रुक गया पर बादल घिरे रहे। ऐसे समय बच्चा बाबू हवाखोरी के लिए अड गए। बेबस रायचरण धीरे धीरे गाडी चलाता हुआ नदी के किनारे पहुचा। चारो ओर गहरा सन्नाटा था। न नदी मे नाव थी, न खेत मे आदमी ! तभी एक पेड की तरफ अगुली करके बच्चा बोल उठा। (स्वरोदय)

बच्चा–चन्ना। फू

रायचरण–(स्वगत) फू यानी फूल। हू कदम्ब के फूलो पर नजर है लल्लू की। कल गाडी बना दी थी इसलिए। ना, बाबा, इस वक्त दलदल मे जाकर फूल लाने की मेरी जरा भी इच्छा नही है।

बच्चा–चन्ना, चन्न। वह फू

रायचरण–(एकदम) वह देखो लल्लू, ओ ओ देखो, देखो चिरैया। है ना। देखो तो उड गई। आहा आइओ री चिरैया लल्लू को लड्डू दे जइयो। आहा वो आई चिरैया। देखो तो लल्लू कैसी सुदर है। तुम्हारे पास गाडी मे बैठेगी। बिठाओगे ना।

बच्चा–(बराबर चन्ना चन्ना करता रहता है।) न ई न ई, चन्ना फू

रायचरण–ऊ हू। तुम मानने वाले नही हो। जज बनोगे ना। कैसे मान सकते हो। यह देखो वह चिरैया फिर आ गई। आहा कैसे बोलती है। (चिरैया की आवाज करता है।)

बच्चा–न ई नई फू

रायचरण–(गहरी सास लेता है) बाप रे, कैसे बहकाऊ। कही कुछ है भी तो नही। फूल लाने ही पडेगे। अच्छा तो लल्लू, तुम गाडी मे बैठे रहना। है ना। मै अभी फूल ले आता हू। खबरदार, पानी के किनारे न जाना। (स्वर विलयन)

अनुकूल–लकिन हुआ उसका ठीक उल्टा। रायचरण पानी के किनारे जान म मना कर गया था इसीलिए कलकल छलछल करने पानी को देखकर मा-शिशु का चित्त चञ्चल हो आया। गाडी से उतर कर धीरे धीरे वह पानी के पास पहुच गया। रास्ने मे उसने एक लम्बा तिनका उठाया और पानी मे झुककर मछली पकडन का नाटक करन लगा। उधर नदी की चचल लहरे अपनी कलकल भाषा मे बार बार उसे अपने खेल मे शामिल होन को आमन्त्रित करने लगी। तभी पानी मे कुछ गिरने की आवाज हुई, पर बरसात म ऐसे शब्द बहुत हुआ करते ह। सो रायचरण बहुत से फूल ताड कर मुस्काना हुआ गाडी क पास आया। वह क्या देखता है कि बच्चा नदारद है। चारा तरफ काई निशान नही काई आहट नही। क्षण भर मे रायचरण का खून बफ हा गया। टूटे हुए दिल मे वह पुकार उठा–

रायचरण–लल्लू, लल्लू। मालिक मालिक । लल्लू लल्लू, हम फूल ले आए ह। लल्लू तुम कहा हो? सुनते नही। हम फूल ले आए है। लल्लू लल्लू। (दूर दूर गू ज उठती है। फिर धीरे धीरे विलय हो जाती है।)

लेखक–लेकिन किसी ने 'च ना' कहकर जवाब नही दिया। शरारत मे काई बच्चा खिलखिला नही उठा। उसकी पुकार व्यर्थ गई। बस केवल पद्मा पहले की तरह कलकल छलछल करती हुई दौडती रही! उधर शाम हुई तो बच्चे की मा चिन्तित हा उठी। चारो तरफ आदमी दौडा दिए। हाथ मे लालटेन लिए वे घूमते घूमते नदी के किनारे पहुचे।

(अनेक स्वर उदय होते हे।)

पहला व्यक्ति–इधर तो कही कुछ नही दिखाई देता।

दूसरा व्यक्ति–तो कहा गया? उधर देखो तो

पहला व्यक्ति–(सहसा) सुनो, सुनो, वह कैसी आवाज हे?

(बहुत दूर मे एक स्वर धीरे धीरे पास आता है। वह रायचरण का स्वर है। गला बैठ गया है।)

रायचरण–(पुकारता हुआ) लल्लू, लल्लू।

दूसरा व्यक्ति–अरे यह ता रायचरण का स्वर है। गला कैसा बैठ गया है। लल्लू, लल्लू चिल्ला रहा है।

पहला व्यक्ति–तो क्या लल्लू खो गया?

रायचरण–(पास आता हुआ) लल्लू, लल्लू, तुम कहा हो। बोलो, हम फूल ले आए। लल्लू

दूसरा व्यक्ति–रायचरण रायचरण, लल्लू को क्या हुआ? कहा है वह? बहूजी घबरा रही है।

पहला व्यक्ति–अरे तुम बोलते क्यो नही? ऐसे क्यो देख रहे हो। रायचरण, लल्लू कहा है? बोलो तो।

रायचरण–क्या बालू भाई! क्या बताऊ। (फिर पुकारता है।) लल्लू, लल्लू,

पहला व्यक्ति–अरे कुछ तो बताओ। कहा गया लल्लू।

रायचरण–यही तो पता नही। कहा गया। गाडी पर छोडकर मै फूल लाने गया था

दूसरा व्यक्ति–गाडी पर छोडकर फूल लाने गए थे, तो तो फिर ?
पहला व्यक्ति–फिर क्या ? समझ गया। उस पद्मा निगल गई।
दूसरा व्यक्ति–(एकदम) क्या, क्या कहत हो ?
रायचरण–(पूर्ववत पुकारता हुआ) लल्लू लल्लू।
पहला व्यक्ति–इस तरह पुकारने से अब लल्लू नही लौटेगा। घर चलो रायचरण।
रायचरण–लल्लू, लल्लू (यह स्वर मिटते जाते हे और बहूजी का व्यग्र स्वर पास आने लगता है।)
बहूजी–(रुंधा कण्ठ) रायचरण अभी तक नही आया। कहा चला गया ? मेरे बच्चे को कहा ले गया।
अनुकूल–वे कहा जाएगा। घबराओ नही। अभी आता होगा। रायचरण इतना पुराना इतना विश्वासी सेवक है। (स्वर पास आते है।) लो वे आ गए।
बहूजी–(उतावली होकर) रायचरण ! तू अब तक कहा था ? और लल्लू कहा है ? (गम्भीर पदचाप और पास आते है) अरे लल्लू तो दिखाई नही देता। लल्लू कहा हे ? रायचरण तू ऐसे क्या देख रहा है। मेरा लल्लू कहा है ?
रायचरण–(सहसा पैरो पर गिरकर चीख उठता है।) लल्लू कहा गया, कुछ भी पता नही लगा।
बहूजी–(चीखकर) क्या ? क्या
पहला व्यक्ति–बहूजी ! रायचरण बच्चे को गाडी पर छोडकर फूल लाने चला गया और फिर
अनुकूल–(एकदम) और फिर फिर क्या हुआ ? रायचरण फिर क्या हुआ ?
रायचरण–(पूवत) मालिक मुझे कुछ पता नही। सच, मुझे कुछ पता नही। मालिक मे
पहला व्यक्ति–साहब (शायद बच्चा पद्मा के पास चले गये और पद्मा इन्हे
अनुकूल–ओह ! पद्मा उसे बहा ले गई। रायचरण
बहूजी–नही, नही, यह नही हो सकता। यह नही हो सकता।
अनुकूल–रायचरण ! तुम फूल तोडकर लाए तो गाडी खाली थी।
रायचरण–हा मालिक।
अनुकूल–तुमने आसपास देखा ?
रायचरण–आसपास, दूर दूर तक सब कही देखा, पुकारा, पर लल्लू का कुछ पता नही लगा मालिक। कोई आवाज तक नही सुनी।
दूसरा व्यक्ति–(एकदम) साहब गाव के बाहर बनजारे ठहरे है, कही वे
अनुकूल–हो सकता है। तुम अभी जाओ। पता लगाओ। जाओ।
दूसरा व्यक्ति–अभी जाते है साहब।
(जाने के पदचाप)
बहूजी–नही, नही उसे बजारे नही ले गए। पद्मा ने भी उसे नही लिया। उसे तो रायचरण ने चुरा लिया है। रायचरण, रायचरण।

रायचरण–(चीखकर) मा ! मा !

बहूजी–तू मेरे लाल को लौटा दे। रायचरण तुझे जितने रुपये चाहिए मुझसे ले ले पर तू मेरे बच्चे को मुझे वापस कर दे।

रायचरण–मा ! मा ! (रोता है)

बहूजी–तू बोलता नही। तू जवाब नही देता। चला जा मेरे सामने से। निकल जा मेरे घर से। निकल जा।

रायचरण–मा ! मा !

बहूजी–चला जा। मै कहती हू तू मेरी आखो के सामने से हट जा। तूने मेरे बच्चे को चुराया है। मै तेरी सूरत नही देखना चाहती। जा, जा।

रायचरण–(रोता हुआ) अच्छा, अच्छा मा। (चला जाता है)

अनुकूल–(पास जाता हुआ) यह तुमने क्या किया ? रायचरण को क्यो निकाल दिया। वह बच्चे का इतना प्यार करता था। वह हमारा पुराना नौकर है उसने बच्चे को नही चुराया।

बहूजी–नही चुराया तो वह गया कहा ? उसके रहते वह पद्मा मे नही डूब सकता। बनजारे उसे नही छू सकते। नही, नही रायचरण ही उसे छिपा आया है। अब दिखाने को रोता है।

अनुकूल–लेकिन रायचरण ऐसा बुरा काम आखिर किसलिए करेगा।

बहूजी–क्यो ? लल्लू सोने के गहने जो पहने था। उन्ही के लालच मे रायचरण उसको चुरा ले गया।

अनुकूल–समझ मे नही आता। (स्वर विलयन)

लेखक–उनकी समझ मे नही आया और रायचरण अपने देश चला गया। होनहार की बात उसी साल उसके घर एक लडका पैदा हुआ और उसकी स्त्री मर गई। इस कारण रायचरण उस बच्चे को बैरी समझने लगा। उसकी बुआ ने उसे पाला लेकिन जब वह बडा हुआ तो उसने मालिक के बेटे की तरह चौखट पार करना शुरू किया। वह उसी तरह हसता और उसी तरह रोता। तब रायचरण की छाती धडकने लगती। जब वह बुआ को उआ कहकर पुकारने लगा तो उसे तनिक भी शका नही रही कि जरूर लल्लू ही अपने 'चन्ना' के मोह को न छोडने के कारण उसके घर आकर पैदा हुआ है। (स्वर विलयन)

रायचरण–(स्वगत) वही है। हा, लल्लू ने ही मेरे घर जन्म लिया है। देखा तो पहले मेरे कोई बेटा ही नही था। लल्लू के जाते ही यह फुलना पैदा हुआ फिर यह भी उसी तरह घुटनो के बल चलता है, डगमगाता हुआ घूमता फिरता है और बुआ को उआ कहता है। इसमे जज होने की सारी बाते है। जरूर यह वही है। तभी तो बहूजी ने मुझ पर सन्देह किया था। (सहसा भूतकाल मे पहुच जाता है)

बहूजी–नही, नही, उसे बनजारे नही ले गए। पद्मा ने भी उसे नही निगला। उसे तो रायचरण ने चुरा लिया है। रायचरण ! रायचरण !!

रायचरण–(चीखकर) मा ! मा !

बहूजी–तू मेरे लाल को लौटा दे। रायचरण, तुझे जितने रुपये चाहिए मुझसे ले ले पर तू मेर बच्चे को वापस कर दे।

रायचरण–मा ! मा !! (रोता रहता है)

बहूजी–तू बोलता नही, तू जवाब नही देता। चला जा मेरे सामने से। निकल जा मेरे घर से, निकल जा।

रायचरण–मा ! मा !

बहूजी–चला जा, मै कहती हू तू मेरी आखो के सामने से हट जा। तूने मेरे बच्चे को चुराया है। मै तेरी सूरत नही देखना चाहती।

(दृश्य विलयन)

रायचरण–हा, मा के मन ने ठीक पहचाना था कि किसी ने उसके बच्चे को चुरा लिया है। तभी तो वह मेरे घर आकर पैदा हुआ। (स्वर विलयन)

लेखक–फिर तो उसने अब तक जो लापरवाही की थी उस पर वह बडा पछताया। अब वह बच्चे को बहुत प्यार करने लगा। बडे घर के बच्चे की तरह पालने लगा। वैसे ही कपडे गहने लाया। गली मे न निकलने देता। हमेशा साथ रहता। जब वह पढने लायक हुआ तो जमीन बेचकर उसे कलकत्ते ले गया। वहा एक अच्छे स्कूल मे भरती कराया। खुद मुट्ठी भर चावल खाकर गुजारा करता पर फुलना को बढिया शिक्षा देने मे वह कोई कसर न रखता। और इसी तरह बारह साल बीत गए।

(सगीत)

बारह वर्ष बाद लडके का रूप निखर आया। वह जितना स्वस्थ था उतना ही शौकीन भी था। वह रायचरण को अपना बाप नही समझता था। खुद रायचरण ने ही यह बात छिपाए रखी। फुलना के सामने वह नौकर जैसा बताव करता इसी कारण फुलना के सगी साथी उसका मजाक भी उडाते। कभी-कभी उसके पीछे भी मजाक मे शामिल हो जाया करता। लेकिन वैसे सब उसे खूब प्यार करते थे। लेकिन उस प्यार मे पिता का स्नेह नही था, दया अधिक रहती थी।

(सगीत)

और फिर वह बूढा हो चला। रुपये की भी बहुत तगी थी। आखिर एक दिन काम से छुट्टी ली और पुराने मालिक के घर जा पहुचा। उस घर मे फिर कोई बच्चा नही हुआ था। बहूजी लल्लू के शोक मे ही जब तब आसू बहा लेती। द्वार पर पहुच कर उसने आवाज दी— (स्वरोदय)

यचरण–(पुकार कर) जय हो बहूजी की।

अनुकूल–(पास आते हुए) कोन हे ?

यचरण–नमस्कार मालिक। मै हू रायचरण।

अनुकूल–अरे रायचरण ! तुम कहा से आए ? कहा रहते हो ? क्या करते हो ? कैसे हो ?

रायचरण–ठीक हू मालिक, बहुत ठीक हू।

अनुकूल–पर तुम हो कहा ?

रायचरण–कलकत्ता।

अनुकूल–वहा क्या करते हो ? इतने बूढे हो गए यही क्यो नही आ जाते। रायचरण अब यही आ जाओ।

रायचरण–मालिक मे तो सिर्फ बहूजी की आशीष लेने आया हू।

अनुकूल–अरे हा, आओ, आओ, बहूजी अन्दर हे। (जाते जाते) अजी सुनती हो। देखो तो कौन है।

बहूजी–कोन आया है ? (उपेक्षा से) ओह ! रायचरण !

रायचरण–नमस्कार बहूजी।

बहूजी–नमस्कार। (क्षणिक मौन)

रायचरण–बहूजी आपसे एक बात कहने आया हू। (क्षणिक मौन)

अनुकूल–क्या कहने आए हो ? कहो न।

रायचरण–(झिझकते हुए फिर एकदम) बहूजी। मैने ही आपका लडका चुराया था। पद्मा ने नही, और किसी ने नही। उसका चुराने वाला मै ही हू। धोखेबाज पापी

बहूजी–(एकदम चीखकर) क्या ! क्या तू ने ही चुराया था ?

अनुकूल–क्या कह रहा है तू ? कहा है वह ?

बहूजी–कहा है मेरा बच्चा ?

रायचरण–जी मेरे पास है। परसो लेकर आऊगा। अवश्य लेकर आऊगा। (दूर जाते शब्द) (स्वर विलयन)

लेखक–और अपने वायदे के अनुसार तीसरे दिन सबेरे ही रायचरण फुलना को लेकर हाजिर हो गया। लडका देखने मे बहुत अच्छा था। उसके पहनावे, रहन सहन, किसी मे गरीबी का कोई लक्षण नही था। मु ह पर विनीत भाव देखकर अनुकूल के हृदय मे भी प्यार उमड आया। बहूजी ने तो कुछ पूछताछ ही नही की। चट से उसे गोद मे बिठाकर छाती मे चिपका लिया। मु ह चूमकर कभी रोती, कभी हसती, वह व्याकुल हो उठी।

बहूजी–मेरा बच्चा, मेरा लाल, मेरा खिलौना। हाय अब तक तू कहा था ? हा ! इस निर्दयी ने तुझे मुझसे क्यो छीना ? मेरे बच्चे, मेरे नन्हे, मेरे लल्लू सचमुच तू मेरा ही लल्लू है। मेरा ही बच्चा है। अजी देखो तो बिल्कुल वही है।

अनुकूल—देख रहा हू । रायचरण तुम्हारे पास कोई सबूत है ।

रायचरण—सबूत ! ऐसे काम का सबूत क्या होगा मालिक । मैने आपका लडका चुराया था, इस बात को मै ही जानता हू या भगवान जानते है । तीसरा कोई नही जानता ।

अनुकूल—हू । (स्वगत) सबूत हो भी क्या सकता है । और मा ने जिस आग्रह से बेटे को अपनाया है उसे देखते हुए सबूत चाहना भी व्यर्थ है । फिर रायचरण को ऐसा लडका मिल भी कहा सकता है । (प्रकट—लडके से) क्यो बेटा, यह रायचरण बचपन से ही तुम्हारे साथ है ?

फुलना—जी हा । ये मेरे पिता है ।

अनुकूल—ये तुम्हारे पिता हे ।

फुलना—जी हा । जब से याद है, मै तो यही समझता आया हू । वैसे बर्ताव इनका हमेशा नौकर जैसा रहा है । अब पता लगा हे कि

अनुकूल—हू । तो ठीक है । लेकिन रायचरण !

रायचरण—जी मालिक ।

अनुकूल—तू यहा से चला जा । अब तू हमारी परछाई भी न छू सकेगा ।

रायचरण—(गद्गद् कण्ठ से) मालिक, मालिक, अब इस बुढापे मे मै कहा जाऊ गा ?

बहूजी—नही, नही, इसे रहने दो । मेरा बेटा खुश रहे इसे मै माफ करती हू ।

अनुकूल—इसने ऐसा भयकर कसूर किया है कि इसे माफ नही किया जा सकता ।

रायचरण—मैने कुछ नही किया मालिक, भगवान ने किया है ।

अनुकूल—अपना पाप भगवान के सिर मढता है । नही, जिसने ऐसा विश्वासघात का काम किया है उस पर अब फिर विश्वास करना उचित नही है ।

रायचरण—मै ऐसा नही हू, मालिक ।

अनुकूल—तो कौन है ?

रायचरण—मेरी तकदीर । ससार मे मेरा और कोई भी नही हे मालिक ।

फुलना—पिताजी ! इसे माफ करदो । घर मे अगर नही रखना चाहते तो इसके लिए कुछ माहवारी बाध दो । (सगीत)

लेखक—यह सुनकर रायचरण ने फिर कुछ नही कहा । एक बार अपने इकलौते बेटे का मुह अच्छी तरह देखा । सबको प्रणाम् किया और फिर दरवाजे से बाहर निकल कर दुनिया के असख्य आदमियो मे विलीन हो गया । महीने के आखिर मे अनुकूल बाबू ने जब उसके घर के पते पर कुछ रुपये भेजे तो वे वापस आ गए । पोस्ट आफिस ने लिखा था—रायचरण के नाम का कोइ भी व्यक्ति यहा नही है ।

(स्वर विलयन—समाप्ति का सगीत धीरे-धीरे उभरता है, मिट जाता है ।)

●

• मामा वरेरकर
• लक्ष्मीनारायण लाल
• डा० ऋ मित्र

[एक परिसंवाद]

•

क्या रवीन्द्र के नाटक रंगमंच क उपयुक्त हैं

"क्या टैगोर के नाटक रगमच के उपयुक्त हे ?" यह सवाल ही गलत है। टैगोर के नाटक रगमच पर खेले गये हे, इसलिए वे रगमच के उपयुक्त है या नही यह सवाल ही नही उठता। वे नाटक स्टेज पर खेले गये है, दर्शको ने उन्हे सराहा है और एक बार नही अनक बार देखा है। कई नाटको मे तो स्वय रवीन्द्रनाथ ने अभिनय किया है और वे बहुत सफल रहे हे। इसलिए वे रगमच के उपयुक्त हे या नही यह प्रश्न ही असगत है।

आज भी 'बहुरूपी' सस्था टैगोर के नाटक रगभूमि पर प्रदर्शित करती है। 'रक्त करबी' नाटक इस सस्था द्वारा विगत सात वर्षो से बराबर खेला जा रहा है और उसकी बहुत ख्याति हुई है। 'डाक घर' और 'मुक्तधारा' इन दो नाटको का अभिनय 'बहुरूपी' सस्था ने कर के दिखाया है। इसी प्रकार म 'चार अध्याय' उपन्यास का नाटय रूपान्तर भी 'बहुरूपी' ने रगमच पर उपस्थित किया है।

'चिर कुमार सभा' नाटक कुछ वर्षो पहले बगला रगभूमि पर बहुत प्रसिद्ध था। 'बाल्मीकि प्रतिभा' नामक रवीन्द्रनाथ के प्रथम नाटक का अभिनय आज तक बगला रगभूमि पर होता रहा है। फिर यह प्रश्न क्यो ?

यह प्रश्न कुछ अलग ढग से रखा गया होता तो शायद अधिक अर्थपूर्ण होता। सही प्रश्न यह है कि टैगौर के नाटक पेशेवर या व्यावसायिक रगमच के लिए कहा तक उपयुक्त है ? व्यावसायिक रग भूमि क नाटक सर्व सामान्य दर्शको के लिए होते हे। उन विशेष नाटको की एक विशेष श्रेणी है।

पर नाटको के अभिनय के विषय मे भी टैगोर की कुछ विशेष धारणाये थी। उनकी कल्पना के हिसाब से उनके नाटको का अभिनय करना व्यावसायिक नाटक मडलियो के लिए असभव था। यदि टैगोर के नाटक ज्यो के त्यो वे स्टेज पर लाते तो सर्वसाधारण दर्शको के लिए वह आकर्षक नही बन पाते। टैगोर के नाटको की एक साहित्यिक मान्यता थी। वह व्यावसायिक नाटक मडलियो के लिए अभिनय की दृष्टि मे अनुकूल नही थे। इसलिए टैगोर के नाटको का व्यावसायिक रगमच पर खेला जाना असम्भव हुआ।

टैगोर के नाटको का अभिनय-मूल्य शेक्सपीयर या इब्सन के नाटको से बिलकुल अलग है। टैगोर के नाटको मे अभिनय-क्षमता की अपेक्षा काव्यात्मकता अधिक है। इसलिए उनके कुछ नाटक

अभिनय की दृष्टि मे उपयुक्त नही है। वे सर्वसाधारण दर्शको के लिए बहुत कठिन है, और साधारण दर्शक की समझ से परे है।

टैगोर ने जो नाटक लिखे है वे स्वान्तःसुखाय लिखे है। उन्होने नाटको मे साधारण दर्शक का ध्यान नही रखा। टैगोर के नाटक देखने वाले दर्शको के लिए भी एक विशेष श्रेणी का होना आवश्यक है।

वह दर्शक-वर्ग भी बुद्धि प्रधान होना चाहिए। वह दर्शक कवि हृदय अथवा कवि हृदय से तादात्म्य रखने वाला, सच्चा रसज्ञ होना चाहिए। व्यावसायिक रगमचीय दर्शको मे ऐसे दर्शक बहुत कम होते है।

'रक्त करबी' नाटक का जो अभिनय 'बहुरूपी' संस्था ने किया, वह इस दृष्टि से अपवाद रूप है। इस अत्यन्त कठिन नाटक को साधारण दर्शक के लिए भी आकर्षक बनाने का सारा श्रेय इसके दिग्दर्शक शम्भू मित्र को है। उनकी कुशलता से यह सम्भव हुआ। व्यावसायिक रगभूमि पर भी टैगोर के नाटक सफल हो सकते है। इसका प्रमाण 'रक्त करबी' है। ऐसी दिग्दर्शन शक्ति यदि व्यावसायिक नाटक संस्था मे हो तो टैगोर के नाटक साधारण रगमच पर भी सफल हो सकेगे।

इसलिए टैगोर के नाटक रगमच के लिए उपयुक्त है या नही यह प्रश्न बेकार है। इतना सच है कि आज के व्यावसायिक रगमच टैगोर के नाटक खेलकर सफल बनाने मे असमर्थ है। व्यावसायिक रगमच का स्टेंडर्ड जो आज गिरा हुआ है, वह टैगोर के नाटक आकर्षक बनाने मे सहायक नही हो सकेगा।

●

लक्ष्मीनारायण लाल

टैगोर के नाटक रगमच के लिये उपयुक्त है अथवा नही इसका उत्तर वस्तुतः टैगोर के प्रतिनिधि नाटको मे से किसी एक को भी मच पर प्रस्तुत करके देखने मे है। इसकी परीक्षा एक तरह से और भी हो सकती है। रसज्ञ पाठक इनके नाटको को पढते समय क्या अपने मानस मे नाटक के अन्तर्गत नाट्यध्वनि को साक्षात् देख पाते है अथवा नही। इन दोनो तरीको से टैगोर के नाटक तथा उनकी रगमचगत उपयुक्तता की सहज परीक्षा हो जाती है और इन दोनो विधियो से टैगोर के प्रायः समस्त प्रतिनिधि नाटक रगमच के लिये उपयुक्त सिद्ध हुए है। पर इस परीक्षा तथा आत्म अनुभव मे एक रहस्य की बात छिपी हुई है। वस्तुतः आज के आधुनिक रगमच पश्चिमी रगमच के चश्मे लगाकर टैगोर के नाटको की परीक्षा करने वालो के लिये टैगोर के नाटक रगमच के लिए उपयुक्त लगेगे? इसका कारण स्पष्ट है। टैगोर का समूचा नाट्य साहित्य और उसमे अन्तर्युक्त उनका रगमच विशुद्ध रूप मे भारतीय रगमच है, जिसकी आत्मा रस है। इसलिये टैगोर के नाटको मे गीतितत्व, इतिहास और कल्पना-तत्व तथा इन सबके अतिरिक्त रवीन्द्र के नाटको मे अपेक्षाकृत अधिक बल, कार्य मे अधिक कथन और काव्य-तत्व पर दिया गया है। इसी काव्य तत्व की प्रधानता के ही कारण प्रायः

आधुनिक समीक्षक और रगमचीय कार्यकर्ता टैगार के नाटको को रगमच क लिये अव्यवहारिक और अनुपयुक्त मान लेते ह। वस्तुत जा रवी द्र के रगमच की अपनी अपूर्व शक्ति है, वह सहसा उनक नाटक का मात्र एक बार पढकर नही पायी जा सकती। उनके नाटक विशुद्ध भारतीय रगमच (सस्कृत थियेटर) के स्तर से अभिनयात्मिकावृत्ति मे भरपूर ह। इस सत्य क उदाहरण मे टगार क सामाजिक ऐतिहासिक, पौराणिक तथा काल्पनिक नाटक बडी सफलता से रखे जा सकते हे।

नाटककार रवी द्र के अपने नाटको तथा रगमच के पीछे एक महान् उद्देश्य था। समूचे आधुनिक भारत मे रवीन्द्र वह पहले व्यक्ति थे जि होने भारतीय रगमच के अ धानुकरण को दूर करने मे इतनी बडी उपलब्धि दी। रवी द्र का यह दृढ विश्वास था कि योरापीय रगमच के दृश्य दृश्यावलियो तथा यथार्थवादी रगमच के तत्वो के अनुकरण से भारतीय नाटक की काव्यात्मक अभिव्यक्ति तथा उसका सुकोमल रस प्रभाव नष्ट हो जायेगा। इसके उत्तर म टैगोर के नाटक रगमच के स र्था उपयुक्त होने हुए भी अपने भारतीय अभिनय तत्वो के श्रेष्ठतम उदाहरण सिद्ध हुए हे। टैगोर ने इस सत्य को नाटक के विविध रूपो गीतिनाट्य नृत्यनाट्य, प्रतीकनाट्य आदि प्रकारो के माध्यम से बडी सफलता से व्यक्त किया है। 'डाकघर', 'रक्तकरवी', 'मुक्तधारा', 'ताशेर देश', आदि नाटको के रगत म जिन साकेतिक, प्रतीकात्मक मच-तत्व की व्यजना है, उनकी पूर्ण शोभा मच पर ही दिखाई जा सकती है और जिनकी पूर्ण अभिव्यक्ति से ससार के किसी भी देश का दर्शक बिना मत्रमुग्ध हुए नही रह सकता।

रवी द्र के नाटको की अपनी एक प्रस्तुतीकरण की कला है। जैसे—मच पर सकेत एव प्रतीक रूप मे न्यूनतम सामग्रियो, दीपक, स्तभ, कलावस्तु आदि का प्रयोग तथा दशको को बिना किसी तडक भडक के आकर्षित कर लेने तथा नाटक मे व्याप्त रस मे उनका अभिभूत कर लेना। इस कला मे बगला रगमच की अपनी परम्परा 'यात्रा नाटको' की प्रेरणा एक ओर है, दूसरी ओर सस्कृत रगमच की नाट्यरूढिया हे। रवी द्र के नाटको को समझने के लिए, उनमे व्याप्त रस का साधारणीकरण करने के के लिये उन्ह उ ही के अनुसार रगमच पर प्रस्तुत करने की शर्त बहुत बडी है। जिसमे सर्वत्र एक सौ दर्य दृष्टि छिपी हुई है और जो इस दृष्टि को नही पा सकता वह रवी द्र के नाटक तथा रगमच को नही समझ सकता।



शभू मित्र

रवीन्द्रनाथ के नाटक रगमच के उपयुक्त है कि नही इस सवाल के बजाय अगर यू पूछा जाता कि हमारे रगमच रवीन्द्रनाथ के नाटका के उपयुक्त है कि नही तो जवाब देने मे आसानी होती। सिर्फ इतना ही कह देना काफी होता कि 'नही, उपयुक्त नही है।' अगर कोई इस जवाब मे तृप्त न होकर हमसे पूछता कि 'आपके पास ऐसा क्या सबूत है जिसके बल पर आप कहते हे कि हमारे रगमच रवीन्द्रनाथ के नाटको के उपयुक्त नही है।' तो इसका भी जवाब देना आसान था। हम उनसे निवेदन करते कि इसका सबसे बडा सबूत तो यही है कि आज भी हम इस बात की आलोचना कर रहे है कि उनके नाटक रगमच के उपयुक्त है कि नही।

रवी द्रनाथ के नाटकों का मचाभिनय देखकर देशी, विदेशी अनेक मनीषी मुग्ध हुए है। मह मागाी 'डाकघर' का अभिनय देखकर चकित रह गए थे। तत्कालीन समाचार पत्रो मे रवी द्रनाथ के नाटकाभिनयो के बारे मे काफी बाते लिखी गई थी। बगाल के पेशेवर थियेटर के जो प्रधान नट थे और नाट्यकार के रूप मे, उनमे मे भी कइयो ने इन नाटकाभिनयो की तारीफ की थी। अगर वे मचाभिनय मुग्धकर न होते तो भला यह सब कैसे सभव था? इतने सारे ऐतिहासिक प्रमाणो के बावजूद आज फिर क्यो नए सिरे से यह प्रश्न उठाया जा रहा है कि रवी द्रनाथ के नाटक रगमच के उपयुक्त है कि नही? आज के बच्चो के पितामहो के सामने रवी द्रनाथ ने अपने नाटको को रगमच पर उतारकर यह साबित कर दिया था कि उनके नाटक भी दर्शको के हृदय को छूते है। आज अगर इन्ही दर्शको के पोते मुग्ध न होकर सन्दिग्ध हो उठे तो समझना होगा कि इन पोतो के खून मे ही कही पाप घुसा है। पितामहो के यौवन मे जो तेज था, जो गहराई थी वह पोतो के जीवन मे नही है। पोतो के कासमेटिक्स क्लिष्ट यौवन मे केवल सेक्स अपील की ही उच्छृखलता है।

दरअसल सन्देह इस बात का है कि रवीन्द्रनाथ के नाटक 'कमर्शियल' है कि नही। कारण, रवीन्द्रनाथ के निजी प्रोडक्शन से लेकर बहुरूपी के प्रोडक्शन तक यह प्रमाणित हो चुका है कि उनके नाटक मच के लिए सफल है। इसीलिए ऐसा शक होता है कि इस प्रश्न की बुनियाद कही और है। इसका स्पष्ट और सीधा जवाब यू दिया जा सकता है कि 'नही, रवी द्रनाथ ऐसे 'पापुलर' नही' है कि वे 'कमर्शियल' लाभ की उम्मीद रखे। उन्हे लेकर इस शतवार्षिकी साल मे काफी व्यापार हो रहा है पर यह स्थिति अस्वाभाविक है। एक साल के बाद सरकारी दानयज्ञ के समाप्त होते ही आप देखेंगे कि इस विराट रवी द्रमेध-यज्ञ भी धीरे धीरे मद्धिम पड गया है। आज के होता-गण यज्ञ घत के लाभ मे फिर कही अन्य वेदी पर मत्रोच्चारण के लिए दौड पडे गे। इस लालच मे कि कही देर हो गई तो फिर लाभ का अश कमजोर रह जायेगा। तब उस विरल वेदी पर स्तमित यज्ञाग्नि की धूमकुण्डली के बीच फिर वही रवी द्रनाथ फिनिक्स चिडिया की तरह पुनर्जन्म ग्रहण करेंगे। रवीन्द्रनाथ अमर है पर पापुलर नही। जिस अर्थ मे बम्बई की फिल्मे पापुलर है या प्लास्टिक की चीजे उस अर्थ मे वे पापुलर नही है और न ही उनके नाटक मचोपयोगी है।

परन्तु यदि हम नाट्याभिनय के मध्य जीवन की गहराई की उपलब्धि करना चाहे तो रवी द्र नाट्य मे वह है। मनुष्य के आवेग का काव्य जो हमारे मन को छूता है वह भी रवी द्र नाट्य मे है। नाटक के मनमुग्धकर होने के लिए जिन गुणो की आवश्यकता होती है वे सभी रवीन्द्र नाट्य मे है। पर तु बात यह है कि उन गुणो को उपलब्ध करने लायक मन की गहराई कलाकारो मे नही है। अत उनके नाटको को इनके द्वारा प्रकाश मिले तो कैसे? इसके लिए आवश्यकता है प्यार की, कवि के प्रति प्रेम और श्रद्धा की। कवि को उपलक्ष्य बना खुद को जाहिर करने की चेष्टा न कर उनकी गूढ बाते किस तरह से कही जाय इसकी चेष्टा करने से निश्चय ही उनके नाटको का सफलता से अभिनय किया जा सकता है। ●●

रवीन्द्र-कालिदास काल्पनिक-संवाद

• प्रमथनाथ विशी



[आत्मनिरीक्षण चित्र रवीन्द्र]

•

कालिदास–कवि आपके प्रति मेरी कृतज्ञता का पारावार नही है।

रवीन्द्र–महाकवि लज्जित न करो। मेरे प्रति कृतज्ञता! कविमात्र ही मनुष्य की कृतज्ञता का पात्र है। आप जैसे महाकवि महत्कृतज्ञता के पात्र है।

कालिदास–यही तो दुख की बात है कवि। मनुष्य मुझे महाकवि स्वीकार कब करते है।

रवीन्द्र–स्वीकार नही करते? भारत मे तीन ही तो महाकवि माने जाते है–वाल्मीकि, व्यास और कालिदास।

कालिदास–हा, महाकवि कालिदास। पर महाकवि के साथ उसके जीवन की कितनी उद्भट, अशिष्ट व मिथ्या कहानी का प्रचार किया जाता है। सुना है?

रवीन्द्र–सुनने मे बुरा होता है। आदि कवि वाल्मीकि के नाम मे भी तो दस्यु का अपवाद जुडा है।

कालिदास–वे ऋषि थे। उन्हे सब सह्य हो सकता है। किन्तु मै तो एक लौकिक कवि मात्र हू।

रवीन्द्र–ये कहानिया लौकिक कवि के प्रति जनता का सम्मान ही है।

कालिदास–सम्मान! ये अपमानजनक कहानिया?

रवीन्द्र–आपके मन मे ये बाते अपमान की हो सकती है पर इन बातो की रचना असम्मान के लिए नही की गई है।

कालिदास–तो?

रवीन्द्र–आपको सम्मानित करने की आशा मे।

कालिदास–ये स्थूल, रूढ, ग्राम्य गालिया?

रवीन्द्र—हा, गुप्त सम्राट जब राज्य के निरीक्षण के लिए बाहर निकलते तो जनपद के शिल्पीगण उन्हे जो कुछ अपने अपने ग्राम की भेट देते, क्या राजा उन्हे स्पर्श नही करते थे ?

कालिदास—अवश्य करते थ ।

रवीन्द्र तो क्या सम्राट सादर उन्हे ग्रहण नही करते थे ?

कालिदास—अवश्य करते थे ।

रवीन्द्र—तो सामान्य प्रजा अकिंचित भाव मे जो कुछ उपहार प्रस्तुत करती है उसमे उसके सरल हृदय के समान प्रदर्शन की ही इच्छा रहती है ।

कालिदास—निश्चय । कई बार विश्रम्भालाप मे महाराजकुमार न भी ठीक यही बात मुझसे कही थी किन्तु इन बातो क साथ मेरी कहानिया का क्या सम्बन्ध है ?

रवीन्द्र—आप अत्यन्त विचलित होकर यह बात कह रहे है । नही तो आप जैसे हृदयवेत्ता का यह बात पूछना आवश्यक नही था ।

कालिदास—व्याख्या करके बताओ ।

रवीन्द्र—लोगो का विश्वास है कि कवित्व इतना दुर्लभ देवगुण है कि चेष्टा से उसे नही पाया जा सकता और वह वस्तु हठात् आकाश से वज्राग्नि शिखा की तरह उतर आती है ।

कालिदास—इस बारे मे सन्देह ही क्या है ।

रवीन्द्र—आपका कवित्व आकाशोद्भव विद्युत है, सरस्वती के किरीट स गिरा शतदल पराग है, वह वस्तु प्रकृति से स्वतन्त्र है । यही बात बताने के लिए लोग ये कहानिया रचते है ।

कालिदास—यो कहिये मूर्ख बनाते है ? कहते है कि जिस शाखा पर बैठता है उसी को काटता था ।

रवीन्द्र—कवि माने है साधक । साधक क्या ससार की शाखा को नही काटता ?

कालिदास—और पत्नी से लाछना की बात ।

रवीन्द्र—वह नही समझे ?

कालिदास—बताओ न ।

रवीन्द्र—आपके काव्य मे पत्नी को चरम आदर्श रूप मे बताया गया है । अत इस कहानी मे पत्नी को चरम वास्तविकता मे दिखाया है । शून्य पात्र कितना शून्य होता है, यह दिखाया है । शून्य पात्र कैसे पूर्ण हो सकता है यह आपक काव्य मे बताया गया है । खेद न करो कवि । इसीलिए तो लोगो ने क्रौंच विरह पीडित कवि को पाषाण हृदय दस्यु बताया है । करुणा यदि पाषाण को भी विदीर्ण न कर पाये तो महात्म्य क्या ?

कालिदास—बात तो आपकी सही है । क्या आपके नाम मे कोई बात नही जोडी गई ?

रवीन्द्र—आज नही कल जुड जायेगी ।

कालिदास—अवश्य । भारत के चतुर्थ महाकवि की स्थानपूर्ति होगी ही ।

रवीन्द्र–कि तु आपने अपने दु ख की बात नही बताई ।

कालिदास–आपने वह दु ख दूर कर दिया ।

रवीन्द्र–कैसा दु ख ?

कालिदास–आत्म ग्लानि का दु ख ।

रवीन्द्र–आत्म ग्लानि ! आपको ?

कालिदास–हा ।

रवीन्द्र–पूर्ण बात खोलकर बताइये ।

कालिदास–अब तक लोग हमे सम्भोग के कवि, मिलन माधुर्य के कवि, शृ गार रस के कवि, ही कहकर मानते थे, उससे अधिक आदर नही था । क्या यही महाकवि के लक्षण होते हे ?

रवीन्द्र–नही ।

कालिदास–महाकवि की दृष्टि जीवन के क्षेत्र विशेष मे ही आबद्ध नही होती । महाकवि की महत् दृष्टि होती है । वह दृष्टि और जीवन समव्यापक होते है ।

रवीन्द्र–मुझे तो आपकी उसी जीवन दृष्टि से ईर्ष्या है । तभी आपके जीवन तत्व का समझने की चेष्टा करता हू ।

कालिदास–इसीलिए तो आपके प्रति कृतज्ञता का अ त नही है । सहृदय मल्लिनाथ ने अवश्य सरस टीका की है कि तु वे कवि नही थे, आचार्य मात्र थे । उ होने मेरे काव्य मे नैसर्गिक सौ दर्य दिखाने की चेष्टा की हे । कि तु क्या उससे अधिक का दावेदार मे नही हू ?

रवीन्द्र–यह जानने की चेष्टा हो रही है ।

कालिदास–चेष्टा ? सहृदय व्याख्या की यह सफलता कब देखने को मिलेगी । डेढ हजार वर्ष तो आप जैसे प्रतिभावान सहृदय की आशा मे बीत गये ।

रवीन्द्र–अभी बहुत सृष्टि की अपेक्षा करनी होगी । महाकवि आपके प्रति मेरी कृतज्ञता का कारण कितना गुरु है यह मै ही जानता हू । मै भारतवर्ष को आपके काव्य से ही जान पाता हू ।

कालिदास–कैसे ?

रवीन्द्र–भारतवर्ष को जानने के लिए किन महान् पुरुषो के द्वार नही खटखटाये । इतिहास पढा पर केवल तथ्य का आवरण पाया । वास्तुकारो के पास गया तो केवल स्तूप पाये, चिरन्तन सत्य नही । उपनिषदो की अरण्य छाया मे आभास मिला कि तु केवल तत्व । जीवन का सत्य तो है पर जीवन की समग्रता कहा है ? रक्त मास का सजीवित मानुष कहा है ? ऐसे ही समय मे आपके काव्य मे नई दृष्टि पाई ।

कालिदास–क्या पाया मै भी तो सुनू ?

रवीन्द्र–हा, गुप्त सम्राट जब राज्य के निरीक्षण के लिए बाहर निकलते तो जनपद के शिल्पीगण —
जो कुछ अपने अपने ग्राम की भेंट देते, क्या राजा उन्हे स्पर्श नहीं करते थे ?

नदास–अवश्य करते थे ।

रवीन्द्र तो क्या सम्राट सादर उन्हे ग्रहण नहीं करते थे ?

नदास–अवश्य करते थे ।

रवीन्द्र–तो सामान्य प्रजा अकिंचित भाव से जो कुछ उपहार प्रस्तुत करती है उसमे उसके सरल हृदय के समान प्रदर्शन की ही इच्छा रहती है ।

नदास–निश्चय । कई बार विश्रम्भालाप मे महाराजकुमार ने भी ठीक यही बात मुझसे कही थी किन्तु इन बातो के साथ मेरी कहानियो का क्या सम्बन्ध है ?

वीन्द्र–आप अत्यन्त विचलित होकर यह बात कह रहे है । नही तो आप जैसे हृदयवेत्ता को यह बात पूछना आवश्यक नहीं था ।

दास–व्याख्या करके बताओ ।

वीन्द्र–लोगो का विश्वास है कि कवित्व इतना दुर्लभ देवगुण है कि चेष्टा से उसे नहीं पाया जा सकता और वह वस्तु हठात् आकाश से वज्राग्नि शिखा की तरह उतर आती है ।

दास–इस बारे मे सन्देह ही क्या है ।

वीन्द्र–आपका कवित्व आकाशोद्भव विद्युत है, सरस्वती के किरीट से गिरा शतदल पराग है, वह वस्तु प्रकृति से स्वतन्त्र है । यही बात बताने के लिए लोग ये कहानिया रचते है ।

दास–यो कहिये मूर्ख बनाते है ? कहते है कि जिस शाखा पर बैठता है उसी को काटता था ।

वीन्द्र–कवि माने है साधक । साधक क्या ससार की शाखा को नहीं काटता ?

दास–और पत्नी से लाछना की बात ।

वीन्द्र–वह नहीं समझे ?

दास–बताओ न ।

वीन्द्र–आपके काव्य मे पत्नी को चरम आदर्श रूप मे बताया गया है । अत इस कहानी मे पत्नी को चरम वास्तविकता मे दिखाया है । शून्य पात्र कितना शून्य होता है, यह दिखाया है । शून्य पात्र कैसे पूर्ण हो सकता है यह आपके काव्य मे बताया गया है । खेद न करो कवि । इसीलिए तो लोगो ने क्रौंच विरह-पीडित कवि को पाषाण हृदय दस्यु बताया है । करुणा यदि पाषाण को भी विदीर्ण न कर पाये तो माहात्म्य क्या ?

दास–बात तो आपकी सही है । क्या आपके नाम से कोई बात नहीं जोडी गई ?

वीन्द्र–आज नहीं कल जुड जायेगी ।

दास–अवश्य । भारत के चतुर्थ महाकवि की स्थानपूर्ति होगी ही ।

रवीन्द्र–कि तु आपने अपने दु ख की बात नही बताई ।

कालिदास–आपने वह दु ख दूर कर दिया ।

रवीन्द्र–कैसा दु ख ?

कालिदास–आत्म-ग्लानि का दु ख ।

रवीन्द्र–आत्म-ग्लानि ! आपको ?

कालिदास–हा ।

रवीन्द्र–पूर्ण बात खोलकर बताइये ।

कालिदास–अब तक लोग हमे सम्भोग के कवि, मिलन माधुर्य के कवि, शृ गार रस के कवि, ही कहकर मानते थे, उससे अधिक आदर नही था । क्या यही महाकवि के लक्षण होते हे ?

रवीन्द्र–नही ।

कालिदास–महाकवि की दृष्टि जीवन के क्षेत्र विशेष मे ही आबद्ध नही होती । महाकवि की महत् दृष्टि होती है । वह दृष्टि ओर जीवन समव्यापक होते है ।

रवीन्द्र–मुझे तो आपकी उसी जीवन दृष्टि से ईर्ष्या है । तभी आपके जीवन-तत्व का समझने की चेष्टा करता हू ।

कालिदास–इसीलिए तो आपके प्रति कृतज्ञता का अ त नही है । सहृदय मल्लिनाथ ने अवश्य सरस टीका की है किन्तु वे कवि नही थे, आचार्य मात्र थे । उ होने मेरे काव्य मे नैसर्गिक सौन्दर्य दिखाने की चेष्टा की हे । कि तु क्या उससे अधिक का दावेदार मै नही हू ?

रवीन्द्र–यह जानने की चेष्टा हो रही है ।

कालिदास–चेष्टा ? सहृदय व्याख्या की यह सफलता कब देखने को मिलेगी । डेढ हजार वर्ष तो आप जैसे प्रतिभावान सहृदय की आशा मे बीत गये ।

रवीन्द्र–अभी बहुत सृष्टि की अपेक्षा करनी होगी । महाकवि आपके प्रति मेरी कृतज्ञता का कारण कितना गुरु है यह मे ही जानता हू । मै भारतवर्ष को आपके काव्य मे ही जान पाता हू ।

कालिदास–कैसे ?

रवीन्द्र–भारतवर्ष को जानने के लिए किन महान् पुरुषो के द्वार नहीं खटखटाये । इतिहास पढा पर केवल तथ्य का आवरण पाया । वास्तुकारो के पास गया तो केवल स्तूप पाये, चिरन्तन सत्य नही । उपनिषदो की अरण्य छाया मे आभास मिला कि तु केवल तत्व । जीवन का सत्य तो है पर जीवन की समग्रता कहा है ? रक्त मास का सजीवित मानुष कहा है ? ऐसे ही समय मे आपके काव्य मे नई दृष्टि पाई ।

कालिदास–क्या पाया मै भी तो सुनू ?

रवीन्द्र–ऋतुसहार को ही लो ।

कालिदास—वह काव्य तो एकदम किशोरकाल की रचना है।

रवीन्द्र—किंतु आपके उस अपरिणत काव्य में मैंने प्रकृति को देखा है, मात्र जड़ पदार्थ को नहीं। रंगमंच की मनोरम यवनिका मात्र रूप में नहीं बल्कि उसमें प्राणन्त न करके मानुष को उठाया गया है। मनुष्य के जीवन में जो ऋतुचक्र नित्य आवर्तित होता है उसी का बहिर्प्रकाश आपने प्रकृति की ऋतुओं में देखा है। उसमें प्रकृति का सत्य मानव जीवन का सत्य बन गया है।

कालिदास—सच है, कवि के अलावा ऐसा सहृदय द्रष्टा और कहां मिल सकता है।

रवीन्द्र—उसके बाद की नवीन दृष्टि पाकर आपकी मालविका, विक्रम, कुमार, शकुंतला, मेघदूत, व रघु कृतियां पढ़ी। मैंने पाया कि समस्त काव्य की सतह में एक ही स्रोत है, वह है आपका जीवन-तत्व।

कालिदास—यह तो बताओ कि किस तरह यह अनुभूत हुआ?

रवीन्द्र—समस्त काव्य में आपने एक ही सत्य प्रतिष्ठित किया है कि मनुष्य के घर में मानव शिशु का आविर्भाव।

कालिदास—पर मालविका में यह तत्व पल्लवित करने का सुयोग नहीं मिला। वह तो महाराजा के अनुरोध से एक उत्सव के उपलक्ष में लिखी थी।

रवीन्द्र—तो भी सौंदर्य का उसमें प्लावन कुछ कम नहीं है।

कालिदास—पर कुमार व शकुंतला सौंदर्य के मानसरोवर हैं। उनमें सत्य का श्वेतपद्म खिला है। किंतु आपका कथन भी गलत नहीं है। मालविका, विक्रम, कुमार व शकुंतला एक ही सूत्र के विन्यास हैं। परीक्षा करता चलता गया हूं।

रवीन्द्र—यह सही बात है। काव्य का परिणाम होता है विवाह में न कि मृत्यु में। आपके काव्य में यही विरचिह्नित पथ अनुसरित हुआ है। आपके काव्य का परिणाम है शिशु का जन्म ग्रहण।

कालिदास—ऐसा ही है। मालविका की कथा है मानव कल्याण की। किंतु शिशु आया। विक्रम में शापभ्रष्टा, अप्सरा की कथा है। जो स्वर्ग की अधिवासिनी है पर देवता नहीं है। शिशु वहां भी आया। किंतु मन कहता नहीं, नहीं, यह ठीक नहीं है मैं चाहता था कि मानव के घर में मानव शिशु हो। फिर कुमार आया। इसमें प्रकृतिरूप हिमालयपुत्री पार्वती व देवरूप महादेव का परिणय हुआ। पर मानव कुमार नहीं आया। शकुंतला में वह परीक्षा पूरी हुई। इस बार मनुष्य के घर में पूर्ण मानव आया। एक साथ स्वर्ग-मर्त्य अंतरिक्ष, तपोवन, व जनपद! विश्वामित्र के शांत तपस्या सागर में यौवन तरंगिणी अप्सरा मेनका के योग से कोमल अकलंक शकुंतला कन्या भूमि प्रस्तुत हुई।

रवीन्द्र—महाकवि के योग्य ही यह व्याख्या है।

कालिदास—उसके बाद और नयी बात नहीं रही। रघु तो मुझ निज का पुनरावर्त्तन है।

रवीन्द्र–किंतु मेघदूत ?

कालिदास–हां मेघदूत। वह तो एक बार अपनी कल्पना को मैंने छुट्टी दे दी मुक्त विचरण के लिए। वह जाने कहां कहां नूतन नूतन इंगित का अनुसरण करती रही। पर रघुवंश के स्वर्णपात्र मे मेरी जीवन की श्रेष्ठ अभिज्ञता संचित है। आदर्श नृपति, आदर्श राजत्व की इच्छा लेकर वह रचना की थी। अपनी आंखो से मैंने गुप्तवंश को देखा है। रघुवंश मे गुप्तवंश की ही कहानी है। उसके बाद अग्निमित्र का चरित्र आता है। पुरुरवा महान थे किंतु प्रेम के कैवल्य आदर्श नृपति-चरित्र तक नहीं पहुँच सके। उसके बाद महादेव का चरित्र अंकित किया। वे आदर्श पुरुष थे किंतु आदर्श मनुष्य नहीं। वे तो देवता थे। इसके बाद आये दुष्यन्त। दोष गुण, प्रेम, त्याग, वीरता, करुणा मे वे मेरे आदर्श के निकट तक पहुँच सके। उसके बाद दिलीप, अज, दशरथ, राम, आदि आये। किंतु सही तो यह है कि रघुवंश के अंतिम दिनो मे पूर्व का सा मनोयोग नहीं रहा था।

रवीन्द्र–क्यो ?

कालिदास–वार्धक्य और गुप्तवंश की दुरवस्था से मन पीडित था। उसके अलावा रामचंद्र सीता के अयोध्या लौटने के साथ ही काव्य की स्वाभाविक समाप्ति हो गई थी। शेष तो नियम की रक्षा मात्र है। किन्तु तुमने यह नहीं बताया कि भारतवर्ष को जानने मे मेरे काव्य से कैसे सहायता मिली ?

रवीन्द्र–हमारे देश मे समाज का जो गौरव है वह अन्यथा नहीं है। अन्य देशो मे राष्ट्र का गौरव है। अतः वहां राजा का स्थान सबसे ऊपर है। हमारे देश मे समाज केन्द्र होने से प्रधान स्थान नारी का है। आपकी अंकित उशीनरी, धारिणी, उमा, शकुंतला, सीता के निकट राजन्यगण नितांत हेय है।

कालिदास–यह गलत नहीं है।

रवीन्द्र–और भी सुनो। हमारे देश मे नारी केन्द्र बिंदु होने से विलासिनी नहीं चलने की, प्राणदायिनी भी नहीं, गृहिणी मात्र भी नहीं चलने की। उसके लिए अत्यावश्यक है जननी पद। इसी से आपके काव्यों मे शिशु का आविर्भाव अपरिहार्य रहा है।

कालिदास–चमत्कार है। डेढ हजार वर्ष से मै इस खोज की आशा मे था कि कोई मेरे काव्य-तत्व को जान सके। मै सृष्टा हूं और निश्चय तुम आविष्कर्ता हो, समय विशेष मे सृष्टि की अपेक्षा आविष्कार का ही मूल्य अधिक है।

रवीन्द्र–आपकी यह प्रशंसा अग्रज कवि का आशीर्वाद मानकर ग्रहण करता हूं।

कालिदास–कवि, स्वर्ग मे अग्रज-अनुज नहीं होते। सभी यहां समान है। यहां सभी का समान स्थान है, समान आदर है व समान वयस है।



टाल्सटाय और रवीन्द्र

निकोलाई रोरिक

•

"हर हालत मे टाल्स्टाय के दर्शन कर लो।"—ये शब्द थे सेट पीटर्सबर्ग लाइब्रेरी के एक
ाइरेक्टर स्टासोफ के। "इस मामले मे देर मत करो। दो तीन दिन बाद ही मै रिम्स्की कोरस्कोफ (रूस
े सगीतज्ञ) के साथ मास्को जा रहा हू। हिसबुर्ग (महान् शिल्पी) भी हम लोगो के साथ चलेगे। चलो,
ुम भी चलो।"

इस प्रकार एक दिन हम लोग रेल मे चढकर चल दिए। सत्तर वर्ष के स्टासोफ ने ऊपर की
ीट ली, क्योकि नीचे उन्हे नीद नही आ सकती थी। उनकी लम्बी सफेद दाढी लटक रही थी। एक
आपेरा' के बारे मे रिम्स्की कोरस्कोफ से बहस चलने लगी। स्टासोफ यथार्थवादी थे। उन्होने हसकर
हा—"ठहरो, इस मामले मे टाल्स्टाय मे बातचीत की जायगी। वे कहते हे कि उन्हे सगीत का ज्ञान
ही ह, लेकिन सगीत सुनकर उनकी आखो मे आसू आ जाते है।"

उन दिनो टाल्स्टाय के 'कला क्या है?' और 'मेरा विश्वास' नामक ग्रन्थो की बडी चर्चा थी।
ारो ओर टाल्स्टाय और उनके जीवन के बारे मे किस्से सुनाई पडते थे, जैसा कि अनेक महापुरुषो के
ारे मे होता आया है। अफवाहे उडाने वालो को कल्पना दौडाने के लिए काफी बडा क्षेत्र मिल गया
ा। लोगो की समझ मे यह बात नही आती थी कि काउण्ट टाल्स्टाय कैसे हल चलाते होगे और अपने
ूतो की मरम्मत कैसे करते होगे। टाल्स्टाय की नास्तिकता के बारे मे भी अनेक बहूदे किस्से चल पडे
। इन लोगो की समझ मे यह भी न आ सका कि कोई नास्तिक तीन तपस्वियो वाली कथा कैसे लिख
सकता है?

क्या कोई नास्तिक उन तपस्वियो का इतना मनोहर चित्रण कर सकता था—उन तपस्वियो
ा, जिन्हे प्रार्थना मे तेज-प्राप्ति हुई थी? वास्तव मे महान् तत्वदर्शी टाल्स्टाय के लिए प्रत्येक सत्य हृदय
े अत्यन्त निकट था।

मास्को पहुचकर दूसरे दिन हम लोग टाल्स्टाय के निवास स्थान हामोविकी गए। हम मे से
ात्येक अपने साथ कुछ न-कुछ ले गया था। रिम्स्की कोरस्कोफ अपनी एक नवीनतम ध्वनि लाए थे,
हिसबुर्ग टाल्स्टाय की ताबे की मूर्ति लाए थे, स्टासोफ कुछ नई किताबे और मै अपने 'दूत' का
ोटोग्राफ।

पुराने मास्को की सडको और ऐतिहासिक निवास-स्थानो से जो लोग परिचित है, वे वहा के
चिरस्मरणीय प्रभाव को भलीभाति समझ सकते हे। हवा मे सेबो की खुशबू आ रही थी और उसी मे
ाचीन पुस्तकालयो आदि की सुगध भी मिली हुई थी। हर एक चीज सरल थी, फिर भी उत्तम।

टाल्स्टाय के निवास स्थान पर उनकी पत्नी काउण्टेस सोफिया ऐ ड्रीजना ने हम लोगो का स्वागत किया। स्टासोफ उनसे बातचीत करते रहे और तब तक टाल्स्टाय भी आ गए। वे एक सफेद फतुही पहने हुए थे। उनकी इस सफेद पोशाक का प्रभाव सदा याद रहेगा।

केवल महान् व्यक्तियो मे ही सादगी और शानदार आकर्षण का सम्मिश्रण होता है। मै यह जानता हू कि टाल्स्टाय के लिए 'शानदार' शब्द रुचिकर न होता और इस पर उन्होंने कोई तीखी बात कह डाली होती, लेकिन सादगी उन्हे पसन्द थी। उनकी आकृति, भगिमा और वाणी मे जो शक्ति थी, वह उन्ही के समान महान् दार्शनिक, साहित्य प्रतिभा और विस्तृत ज्ञान वाले व्यक्ति मे ही पाई जा सकती है। यह कहा गया था कि उनके चेहरे पर सरलता है, किन्तु बात ऐसी नही है। उनके चेहरे पर मजबूती और रूसीपन की छाप थी। ऐसा चेहरा चतुर किसान और आस्तिक कहे जाने वाले लोगो मे ही मिल सकता है, जो नगरो से दूर रहते है। वास्तव मे इन चेहरो का भाव कठोर होता है, पर उनमे झुझलाहट नही होती, गम्भीर विचार झलकता है। भारत भी ऐसे चेहरो से भलीभाति परिचित है।

टाल्स्टाय ने हिसबुर्ग की कृति की प्रशसा की और उसके बारे मे कुछ बाते कही। इसके बाद मेरा नम्बर आया। स्टासोफ का कहना ठीक था कि टाल्स्टाय मेरे 'दूत' चित्र को केवल पसन्द ही नहीं करेगे बल्कि इसके ऊपर अपने विचार भी प्रकट करेगे। मेरे चित्र मे एक सन्देश वाहक नाव पर किसी सुदूर देश को यह सन्देश लेकर जा रहा है कि पास की जातियो ने हमला कर दिया है। टाल्स्टाय ने कहा—"क्या आपने कभी तेज नदी की धार को पार किया है? इसके लिए आप का पहले ऊपर जाना पडता है वरना धार के साथ बह जाने का डर है। इसी भाति नैतिकता मे भी सदा ऊचा लक्ष्य लेने की आवश्यकता है, वरना वह जीवन के बहाव मे नीचे की ओर खीच ले जायगा। अपने 'दूत' को ऊपर का लक्ष्य लेने दीजिए, तभी वह अपने गतव्य तक पहुच सकेगा।"

टाल्स्टाय का यह उपदेश मुझे जीवन मे अक्सर याद रहा है। फिर वे लोक कला और किसान के जीवन के चित्र के बारे मे बातचीत करने लगे, मानो वे मेरा ध्यान जनता की ओर निर्देशित करना चाहते हो। पुन उनके मुह से कुछ स्वयसिद्ध सत्य से भरे वाक्य निकले, जिनके पीछे इतना कला प्रेम था, सत्य की इतनी खोज थी और जन शिक्षा की इतनी चिता थी कि यह सब मिलकर मानव-सेवा के सगीत का रूप धारण कर लेते थे। सुबह से शाम तक टाल्स्टाय के यही चिरस्मरणीय शब्द गूजते रहे।

दूसरे दिन सुबह वापस लौटते समय स्टासोफ ने मुझसे कहा—"अब तुम्हे कलाकार का वास्तविक दर्जा मिला है।"

एक महान लेखक और कलाकार होने के नाते टाल्स्टाय का जीवन आश्चर्यजनक है। उनके जीवन की प्रत्येक घटना ने लोगो के मन मे उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर दी थी। जब उन्हे 'धर्मच्युत' किया गया तो जनता की सद्भावना उनके साथ थी। प्रकाशित ग्रन्थो के अलावा रूस के समाज मे उनके बहुत से जब्तशुदा निबन्ध और पत्र पढे जाते थे। धर्म से निकाले जाने के कारणो पर लोग चुपके-

चुपके बात करत थे । उनकी सम्राट से भेट क बारे मे भी अफवाह उडती थी । अनेक लाग उनकी भविष्यवाणियो पर बहस किया करत थे । बाद मे इन सब भविष्यवाणियो की चारणा अखबारो म हुई । इस दूरदर्शी को युद्ध तथा अन्य घटनाए पहले से ही दिखाई पड गई थी ।

उनके बारे म प्रत्येक खबर का जिज्ञासापूर्वक इतजार किया जाता था, मानो सरकार के मुकाबले मे भी उनके विचार शक्तिशाली हो । उनके साहित्य मे बुराई का मुकाबला न करने, मानव प्रेम और वास्तविक जन-शक्ति के जोरदार उपदेशो के सिवा बहुत से कारुणिक विवरण भी थे जैसे 'पेड की मोत पर'। भारत मे इन सरल सत्यगर्भित शब्दो का सही मूल्याकन होगा, जिनमे कि सर्वव्यापी जीवन शक्ति का विचार भरा हुआ है । टाल्स्टाय ने अपनी एक पात्री नटाशा के मुह से कहलवाया है—'हा, मै सोचती हू कि हम लोग जा रहे हे, हम लोग घर जा रहे है । लेकिन ईश्वर ही जानता है कि हम लोग इस अधकार मे किस ओर जा रहे है । शायद हम लोग कही पहुच जायगे और अपने आपको परियो की कहानी के देश मे पायगे । '

जब वे हाथ मे हल लेकर शारीरिक श्रम करते थे, तब उनके हृदय म एक सुदर देश की कल्पना निवास करती थी । यह व्यक्ति अथक परिश्रम म बीज बोता था, और ये बीज रूसी लोगो के दिमाग मे जमकर बैठ गए थे । टाल्स्टाय के नाम पर रूस मे असख्य म्यूजियम, वाचनालय, पुस्तकालय आदि हे । टाल्स्टाय ने एक छोटे से रेलवे-स्टेशन पर अपनी महायात्रा की । क्या इससे भी अधिक शानदार समाप्ति की कल्पना की जा सकती है । यह एक महान् यात्री की यात्रा का महत्वपूर्ण अन्त था । ऐसा अन्त कल्पनातीत है । इसलिए प्रारम्भ मे समूचे रूस को इस बात पर विश्वास नही हुआ । मुझे वह समय याद है, जब इलेना इवानोवना (मेरी पत्नी) ने इस दुर्घटना की खबर दी । वे बार बार कह रही थी—"इस पर विश्वास नही होता—विश्वास करने का जी नही चाहता । ऐसा प्रतीत होता है, मानो कोई विशेष चीज, रूस का कोई भाग हम लोगो ने खो दिया हो, मानो एक युग की ही समाप्ति हो गई हो ।"

इन पक्तियो को लिखते समय अचानक हिमालय की हिमाच्छादित चोटियो पर मुझे एक इन्द्रधनुष दिखाई देने लगा है, जो पृथ्वी से उठकर आकाश को छूता दिखाई दे रहा है । यह स्वर्ग से पृथ्वी तक एक शुभ चिन्ह मालूम पडता है ।

एक बार फिर इलेना इवानोवना एक खबर लाई, लेकिन यह दूसरी तरह की थी । वह एक किताब की दुकान से टैगोर की 'गीताजलि' का अनुवाद खरीद लाई । ये मधुर कविताए भी इन्द्रधनुष की भाति मनोहर थी । उस समय तक रवीन्द्रनाथ को रूस के लोग पूरी तरह नही जानते थे । यह तो सब जानते थे कि टैगोर का यश सारी दुनिया म फैला हुआ है, लेकिन तब तक हम लोगो को इस महाकवि हृदय को पहचानने का मौका नही मिला था ।

'गीताजलि' हमे देववाणी की तरह मालूम पडी । ये कविताए सभाओ और पार्टियो मे पढी गई । वास्तविक प्रतिभा के द्वारा ही एक दूसरे का भलीभाति समझना सम्भव होता है । एक दूसरे को

समझना ही रहस्यपूर्ण चीज हे । सादर्य क स्रोत को शब्दो मे अभिव्यक्त नही किया जा सकता । प्रत्येक हृदय ज्याति के सम्पर्क मे आने से आनन्दित हा उठता है । सौदर्य की यही अनुभूति टैगोर मे है । वे कैमे होगे ? यह महान् विचारक और सौदर्य स्रष्टा कहा और कैसे रहता होगा ? प्राची का स्वाभाविक ज्ञान और प्रेम इस कवि की करुणामयी पुकार मे भरी हुई वाणी म पाया जा सकता है । हर एक आदमी का हृदय टैगोर के प्रति प्रेम से भर गया । यह साफ जाहिर हो गया कि परस्पर विरोधी स्वभाव और विचार वाले जनो मे इस कवि की पुकार पर एकता स्थापित हो गई, जैसे मदिर मे गाए हुए प्रार्थना गीत पर सारे मानव हृदय एक हो जाते हे । हर कोई जानता है कि टैगोर क्षुद्र ससार के प्राणी नही है, वे सत्य और सौदर्य के ससार क वासी हे । मेरे मन मे एक अदम्य आकाक्षा जाग उठी—उनके दर्शन कब और कैमे हो ?

मै टैगोर स भेट करने की कल्पना कर ही रहा था कि वे मेर लदन के स्टूडियो मे पधारे । उन्होने मेरे रूसी चित्रो के बारे मे सुना था और मुझमे मिलना भी चाहते थे । उन दिनो मे हिन्दू सीरीज का चित्र 'प्राची का स्वप्न' बना रहा था । इस सयोग पर कवि का आश्चर्य मुझे याद है । मुझे अब भी याद है, किस सुन्दर और प्रभावशाली ढग से उ होने मेरी चित्रशाला मे प्रवेश किया था ।

टैगोर की यह मुलाकान हमारे लिए चिरस्मरणीय है । कला के ऊपर उनकी प्रेरणापूर्ण बातचीत और चित्रो के बारे मे पत्र भी उतने ही चिरस्मरणीय ह । इसके बाद हम लोगो की मुलाकात अमरीका मे हुई, जहा कवि ने सौ दर्य के नियम और परस्पर प्रेम सम्बन्ध पर प्रभावपूर्ण व्याख्यान दिए थे । हा कभी-कभी वे उतने ही आश्चर्यजनक प्रतीत होते थे, जितना कि टाल्स्टाय का परियो की कहानी का देश ! इसमे टैगोर की सफलता अधिक महत्वपूर्ण थी, जिन्होने सौदर्य का सदेश देते हुए सारे ससार की अथक यात्रा की थी । चीन मे कवि ने कहा था—"सभ्यता को अपनी आत्मा की अभिव्यक्ति सौदर्य पाने की आशा मे है ।" इस सम्बन्ध मे टैगोर की पुस्तको मे से उनकी प्रार्थनाओ और समुन्नत जीवन के लिए आदेशो के अनेक उद्धरण दिए जा सकते ह जो अत्यन्त सुन्दरतापूर्वक कवि के हृदय को चित्रित करते हे ।

क्या यह पुकार जीवन से दूर भागने की है ? क्या यह कोरी कवि कल्पना है ? नही, कभी नही । यह चरम सत्य पार्थिव जीवन मे ही प्राप्त हो सकता है । कुछ अज्ञान के पुतले कह सकते हे कि टैगोर और टाल्स्टाय के शब्द कारी कल्पनाए हे, यथार्थ नही । यह गलत है और सरासर गलत है । क्या यह कल्पना मात्र है कि लाग सुन्दरतापूर्वक रहे ? क्या यह कल्पना मात्र है कि लाग एक-दूसरे की हत्या न करे, सर्वनाश न करे ? क्या यह कल्पना-मात्र है कि लोग अपने चारो ओर के वातावरण मे ज्ञान फैलायें ? यह काल्पनिक नही, वरन् यथार्थ है—उतना ही सत्य है, जितना यह कि लोग यथासम्भव एक दूसरे की सहायता करें । यदि सौदर्य की ज्योति पृथ्वी तल पर नही आयगी, तो जीवन असह्य हो जायगा । मानवता कितनी कृतज्ञ है इन महान् विचारा के प्रति, जो सदा आत्मदान और जीवन के

वास्तविक आचार का पाठ पढाने रहे। सुन्दरता के इन नियमों के बिना जीवन इतना कुरूप हो जायगा, इतनी हैवानियत भर जायगी कि सास लेना भी मुश्किल हो जायगा। कुरूपता भयकर चीज है।

टैगोर मे हम एक महान् विचारक पाते है, कवि और गायक पाते है, शिक्षक पाते है। युगो से हम सुनते चले आ रहे है कि इन सबका एक व्यक्ति मे सम्मिश्रण असम्भव है, लेकिन जब हम उस मूर्ति को साक्षात् देखते है, तो ऐसा मालुम होता है, मानो एक नया युग ही प्रारम्भ हो गया हो। महान् कार्यों को देखकर मानव का हृदय कृतज्ञता से भर जाता है, लेकिन इन महान् विचारको को किसी की कृतज्ञता की भी आवश्यकता नही है। संस्कृति का कोई भी पहलू ऐसा नही है, जिसके प्रति टैगोर उदासीन रहे हो। अपने शिक्षा दान, सृजन और कला के साथ टैगोर केवल सवेदनशील ही नही है, बल्कि ठोस सहायता देने को आगे आते है। यह स्वाभाविक ही था कि रवीन्द्रनाथ ने विश्व-संस्कृति के कोषो को सुरक्षित रखने के सद्विचार मे योग दिया। सर्जन के फलो को सुरक्षित रखने के लिए टैगोर से अधिक किसका हृदय झंकृत होता? लेकिन आज की कठिनाइयो का भी उन्हे ज्ञान था। उन्हे मालूम था कि कितनी ईर्ष्या और तृष्णा इस समय दुनिया के ऊपर छाई हुई है। अखबार की खबरो से ही नही, बल्कि अपनी अन्तर्बुद्धि से भी टैगोर समझ जाते थे कि आज हथियारो से लदे संसार मे शांतिपूर्ण श्रम के लिए कितना जबरदस्त खतरा है। फिर भी सदा की भांति वे शांति और शिक्षा की बात हिम्मत से कहते थे।

अपने एक पत्र मे आज की दुनिया की हालत का विश्लेषण उन्होने खेदपूर्वक किया था। "प्रिय मित्र, आज शांति का प्रश्न ही मानवता का सबसे बडा प्रश्न है। फिर भी पश्चिम मे प्रबल वेग से आने वाले हैवानियत के तूफान के आगे हमारे सारे प्रयत्न कितने नगण्य प्रतीत होते है, कितने बेकार दिखाई देते है। सेनावाद की नंगी तस्वीर हमे दुखद भविष्य से आगाह करती है और सभ्यता पर से मेरा विश्वास उठता जा रहा है। फिर भी हम अपने प्रयत्नो को नही छोड़ेंगे, वरना हमारा अन्त और भी निकट आ जायगा।"

आज की अशांति और अव्यवस्था के कारण कवि का हृदय शोक से भर गया है। यह दार्शनिक कहता है कि संस्कृति के प्रत्येक कार्यकर्ता को चाहिए कि अपने अपने स्थान पर इस विश्व कोष की रक्षा करे। टाल्स्टाय का मानस सेवा का भाव भी यही है। जिस प्रकार टाल्स्टाय कभी राजनीतिक कार्यकर्ता नहीं रहे, उसी प्रकार टैगोर ने भी दृढतापूर्वक अपना कार्यक्षेत्र जीवन की शिक्षा को ही बताया।

ऊपरी तौर पर देखने मे टैगोर और टाल्स्टाय के व्यक्तित्व मे भिन्नता दिखाई पड सकती है। जो लोग विषमता मे ही दिलचस्पी लेते है। वे इस मामले मे भी अपनी बुद्धि लगायेगे और इन दोनो का वैषम्य देखने की चेष्टा करेगे। लेकिन अगर हम इन दोनो विचारो का विश्लेषण बिना किसी लगाव के उदारतापूर्वक करे, तो हमे अफसोस होगा कि टैगोर और टाल्स्टाय का कोई भी चित्र साथ-साथ नही है जिसमे दोनो दिल खोलकर मानव कल्याण की चिंता मे बातचीत कर रहे हो। ● ●

ह्विट्मैन और रवीन्द्र

लोकनाथ भट्टाचार्य

प्राच्य और पाश्चात्य दार्शनिका न बताया है कि सत्य एक और अविभाज्य है। किन्तु मानवीय क्रिया कलापो मे यह इतना प्रकट रूप से प्रतीत नही हुआ। यह न केवल खडित और वस्तुत विभाजित हुआ—एक सत्य के सैकडो, हजारो यहा तक कि लाखो रूप सामने आए, अपितु उसके रूप रग और यहा तक कि कभी कभी मूल तत्व भी पूर्णत परिवर्तित हो गये। नि सदेह, यह प्रक्रिया समाप्त नही हुई। जब भी द्व द्व होता है, चाहे उसका आकार कोई क्यो न हो, अधिकाशत मेरे और आपके सत्य के बीच द्व द्व होता है।

युग युगो से ऐसे मनीषी हुए है जिन्होने सत्य के विविध रूपो को अस्वीकार किया है और ईमानदारी से सहज और एक सत्य का अन्वेषण किया है। विश्व ने जिन्हे महान् और विवेकी के रूप मे मान्यता दी है, उन्हे इसलिए मान्यता नही मिली कि उन्होने अतिम रूप मे एक बार ही न सुलझाए जा सकने वाले प्रश्न को सुलझा लिया, बल्कि इसलिए कि उन्होने वास्तविकता के मूल मे छिपी एक वास्तविकता को प्रकट करने तथा उसे दिखाने का प्रयत्न किया।

मई के माह मे ऐसे दो मनीषियो का जन्म हुआ—वाल्ट ह्विटमेन और रवीन्द्रनाथ ठाकुर जो ऊपर से इतने भिन्न है कि उनमे न वातावरण की विरासत ही भिन्न है बल्कि विरोधी सामाजिक तथा भौतिक स्थितियो से भी प्रभावित है। और वे विभिन्न देशो मे विभिन्न पीढियो मे पैदा हुए है। फिर भी दोनो की रचनाओ मे एक सी आध्यात्मिक धारा के दर्शन होते है। इन दोनो कवियो के साम्य को अमरीकी कवि रैंडल जैरॅल ने 'देश और काल की प्रातीयता' की सज्ञा दी है।

मई मे दोनो का जन्म एक सयोग की बात है जिसका कोई विशेष महत्व नही। इससे केवल हम दोनो को एक साथ श्रद्धाजलि अर्पित करने मे समर्थ होते है, लेकिन दोनो के बीच और भी गहरा सम्बन्ध है।

ह्विटमेन और रवीन्द्र के साहित्य मे जो आत्मिक सहानुभूति के दर्शन होते है, वह दोनो के इन दृष्टि बिन्दुओ को एकात्मता प्रदान करती है। ह्विटमेन और रवीन्द्र दोनो ने वाद विवाद मे अविच्छिन्न विश्व के प्रति तादात्म्यता पर जोर दिया, भविष्य मे आस्था प्रकट की तथा मानव कल्याण के लिए प्रयत्न किया।

हो सकता है कि दोनो कवियो का प्रेरणा स्रोत एक हो। जीवन के प्रति यह समग्र दृष्टि, जो दोनो मे मिलती है, वेदात दर्शन ने अभिव्यक्त की है जिसकी रवीन्द्र सर्वमान्य उपज कहे जाते है। हाल ही मे प्रमाण उपलब्ध हुए है कि ह्विटमेन ने भी वेदात से प्रेरणा ली थी।

यद्यपि यह सभव नही कि कवि पर दशन का इतना अधिक प्रभाव रहा हो कि उसकी मूल चिंतन धाराओ को ही पूर्णत परिवर्तित कर दे लेकिन फिर भी दोनो महान कवियो के बीच समानता दृष्टव्य है और यह अनुमान किया जा सकता है कि सभवत वेदात ही दोनो का प्रेरक रहा है।

वाल्टव्हिटमेन ने अपने आपको सीधासादा, पौरुषयुक्त, सहृदय, चितक ऐन्द्रिक और ढीठ कहा है। उन्होंने अपने आपको विविध रूपो मे देखा है। "क्या मैं स्वय का खण्डन करता हू ? अच्छा, तो मैं स्वय का खण्डन करता हू।" और, चितन उन्हें आमत्रित करता है—"ऐसा गीत गाओ जैसा अभी तक किसी कवि ने नही गाया, सार्वलौकिकता का गीत गाओ।"

वस्तुत व्हिटमेन एक साथ अमरीकी और सार्वलौकिक थे, अमरीका के प्रति उनका प्रेम, यदि यो कहा जाय उनका 'अमरीकीपन' शेष मानवता मे आध्यात्मिक तादात्म्य मे बाधक नही, सहायक सिद्ध हुआ।

रवीन्द्रनाथ ने एक बार अमरीका मे कहा था—"व्हिटमेन आपके महान् कवि है। उनकी रचनाओ से मै आपके देश को जानता हू और उसकी हृदय की धडकन को समझता हू। वह आपके राष्ट्र की महान वाणी है, शायद इतनी महान् अन्य कोई नही।" साथ ही व्हिटमेन की समस्त रचनाओ की मुख्य कुजी वह एकता है जो विभिन्नताओ को एक सूत्र मे पिरोती है—

मै अपने आपका गीत गाता हू, एक सहज पृथक व्यक्ति का,
फिर भी लोकतात्रिक, समष्टि का शब्द उच्चारता हू।

यह दृष्टिकोण तब सभव है जैसा कि वेदान्त मे बताया गया है, जब ऐसी चेतनता व्यक्ति प्राप्त करे कि सब न केवल एक प्रतीत होने लगे अपितु सबसे तादात्म्य स्थापित हो जाय। सनातन अनित्य है, शायद व्हिटमेन ने लिखा—"यह सब मै अनुभूत करता हू अथवा हू,"

उन्होंने आगे कहा

आकाशज, सब मे व्याप्त है
सब रूपो का सार, वास्तविक तादात्म्यता का जीवन, स्थायी, यथार्थ
मै, व्यापक आत्मा हू

यहा वह विशिष्ट तथा ससीम से भी ऊचा अनुदर्शन प्राप्त कर लेते है—उनकी सहानुभूति की परिधि विस्तृत हो जाती है जिसमे सभी मानव समाविष्ट है। व्हिटमेन यद्यपि "एकाकी पृथक व्यक्ति" है, फिर भी "लोकतात्रिक" तथा "समष्टि" सर्व पृथक नही किए जा सकते है—

मै अपना उत्सव मनाता हू, अपना गीत गाता हू।
जो मै सच मानता हू, उसे तुम सच मानोगे।

सन १८५५ मे 'दी लीव्ज आफ ग्रास' के प्रथम प्रकाशन पर थोरो ने यह टिप्पणी की थी कि पुस्तक 'आश्चर्यजनक रूप से प्राच्य' है, एमर्सन ने उसे भगवद्गीता से प्रभावित बताया था।

'पेसेज टू इण्डिया' शीर्षक से उनकी कविता तथा वेदाती विचारधारा म साम्य के बावजूद भारत के बारे मे उनकी जानकारी वास्तविकता मे कोसो दूर है। यह भी नही कहा जा सकता कि उ होने अपनी काव्य रचना के पूर्व प्राच्य साहित्य का वस्तुत अध्ययन किया था। हाल ही के शोधकार्य से यह सकेत मिलता है कि उनका रहस्यवाद, प्राच्य की हर्षातिरक करने वाली पुस्तको से प्रभावित है। फारसी और हि दू-कवि तथा भगवद्गीता जिनका वे वर्जीनिया के फालमाऊथ गृह युद्ध अस्पताल शिविर मे रुग्ण सैनिको के सामने पाठ किया करते थे। ''लीव्ज आफ ग्रास' के प्रकाशन के ७ वर्ष बाद गृह युद्ध हुआ, लेकिन इसके विभिन्न सस्करणो के लम्बे चौडे प्रस्तावना खण्ड यह प्रकट करते ह कि व बडे अध्ययनशील थे और श्रम साध्य आत्म शिक्षक थे। हो सकता है कि प्राच्य साहित्य का उन्होने काफी पहिले अध्ययन कर लिया हो।

सन् १८३९ और १८५० के बीच मे वे विविध पत्र पत्रिकाओ से अनेक रूपो मे सबद्ध रहे। इनके सपादन मे उन्हे अपने युग का साहित्य, समालोचना के लिए पढना पडा। निस्सदेह कुछ ने उनके ज्ञान को विस्तृत किया और उन्हे नए दृष्टि बिन्दु प्रदान किए। १९ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे, अमरीका म अद्वैतवादी वेदान्ती साहित्य व विशेषत राममोहन राय की रचनाए पढी जाती थी। इन रचनाओ का विशेषत एमर्सन का ह्विटमेन पर प्रारम्भिक जीवन काल मे, निश्चित रूप से प्रभाव पडा होगा।

महत्वपूर्ण बात यह है कि वेदात के उसी सार्वलौकिक दृष्टिकोण के दर्शन ह्विटमेन की मा यताओ और रचनाओ मे होते है। वही अ तर्ज्ञान (एहलाम), वही इन्द्रियो तथा बुद्धि से परे स्व अस्तित्व मे ज्ञानार्जन का मार्ग, अथवा आत्म बोध—ह्विटमेन का आत्म-दर्शन और मूलबिन्दु—और व्यष्टि तथा समष्टि की वही मिलन स्थली उनकी कविता मे प्रकट हुई है। वेदात की भाति ही, ह्विटमेन का आत्म-दर्शन, रहस्यमयी आत्मा, समष्टि को व्याप्त करती है और धरातल के नीचे 'गुणो और वस्तुओ की गहराईयो' मे बैठती है और 'मूल सिद्धातो' को स्पर्श करती है। उनके विचार और उपनिषद् की 'आत्मन् ब्रह्मन' की परिकल्पना म इतना साम्य उल्लेखनीय है।

उसी यथार्थ को सर्वत्र दर्शन करने, जगत मे उसके क्रिया कलापो और परिणामो के बीच रहने सभी अनुभवो को प्राप्त करने तथा फिर भी उनमे पृथक रहने की यह स्थितप्रज्ञ की सी स्थिति है। ह्विटमेन कहता है।

> निराशाए और हर्षातिरेक,
> युद्ध, भ्रातृवध युद्ध की विभीषिकाए, सदिग्ध समाचारो का ज्वर, उत्तेजनापूर्ण घटनाए,
> ये मुझे निशिवासर मिलती है, और चली जाती है, किन्तु वे 'मै', मेरी नही।

जगत मे अलगाव का यह उनका विरोधाभास और साथ ही उससे तादात्म्य आत्मज्ञान से उद्भूत उनके विचार से मेल खाता है। लोकतन्त्र आवश्यकीय रूप म आध्यात्मिक सिद्धात है, समता केवल न अभिन्न व्यक्तित्वो के विश्व मे ही सभव है।

वास्तविक व्यक्तिवाद और सार्वलौकिता एक ही है। इस दृष्टि मे भी ह्विटमेन वेदाती जैसा ही हैं। और जब वह अपनी 'लीव्ज आफ ग्रास' का, जो अमरीकी स्वतन्त्रता दिवस पर ४ जुलाई को प्रकाशित हुई थी—"लोकतान्त्रिक वनस्पति' बताते हे, तब वह उसे अमरीकी आत्मा से एकरूप करते है। उन्होने अपने सकलन को समुचित सज्ञा दी है। लेकिन यह 'अमरीकी वनस्पति' से कुछ अधिक है, क्योकि अपनी कविता "सेलुट ए' मोंडे" मे वह न केवल अमरीकी बल्कि समस्त मानवो को असीम मानव समुदाय मे शामिल करते हे। उन्होने कहा है कि राजनीतिक लोकतत्र विश्व के सभी लोगो के लिए महान है क्योकि सनातन नियमो के अनुकरण मे वह विश्व पर शासन करेगा।

वेदात का मुख्य सदेश है—पृथकत्व की भावना व विभिन्न होना अज्ञान जन्य है। वास्तविक ज्ञान सबको एकरूप मानने और समष्टि मे व्यष्टि और व्यष्टि के दर्शन करने मे है। जिसे यह सर्वोपरि चेतनता प्राप्त हो जाती है, वह समस्त दुखो और पीडाओ से मुक्त हो जाता हे, और चूकि वहा प्रत्येक दूसरे मानव मे आत्मन् का दर्शन करता है—अत किसी के प्रति घृणा नही कर सकता। यह चेतनता केवल प्रेम मे सभव है, एक मात्र प्रेम ही विश्व मे एकता कायम करने की शक्ति है। प्रेम असीम है। समूची सृष्टि के मूल मे प्रेम ही यथार्थ तत्व हे और यही जीवन की निरतरता के मूल मे है। इसके अभाव का अर्थ है नाश (मृत्यु)।

यही दार्शनिक पृष्ठभूमि है जिसमे ह्विटमैन और रवीन्द्र का विवेचन किया जाना चाहिए।

रवीन्द्र ने एक बार लिखा था—"मै एक ऐसे परिवार मे पैदा हुआ था जो उस समय उपनिषद् के दर्शन पर आधारित एक ही ईश्वर मे विश्वास करने वाले धर्म को विकसित करने मे पूरी सच्चाई के साथ सलग्न था।" उस दर्शन की एकता उनकी क्रियाशील विविध जीवन की विशिष्टता है, जो उनकी रचनाओ मे प्रसारित हुई है। एक उद्धरण देखिए —

यह मेरा एक जन्म अनेक परिवर्तनशील रूपो के अनेक जन्मो मे बुना हुआ है
जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश विविध किरणो से बना है—एकता मे
प्रत्येक प्रतीति अगणित अदृश्य अन्य रूपो से वेष्ठित है।

शातिनिकेतन का उद्देश्य, जो व्यावहारिक जगत् मे उनके सृजन का एक उदाहरण हे, वेदान्तिक है। "यात्रा विश्वम् भावात्येकानिदम्"—जहा विश्व एक ही घोसले मे अपना निवास बनाता है।

यदि रवीन्द्र कमजोर की कायरता, शक्तिशाली की जिद, सपन्नता का लोभ, जाति के घमण्ड की कडुवाहट और मानव के अपमान को कैसे जानते हे? वे यह कैसे लिख सके—

विज्ञान से प्रदीप्त उर्ध्व व्योम मे, शक्ति अपने आपको विस्मृत कर देती हे,
जब भूख और अत्यधिक लोलुपता, एक दूसरे से टकराती हे
तब तक कि पृथ्वी कापना शुरू नही कर देती
और विजय के स्तम्भो मे भय से दरारे नही पड जाती,
और हतप्रभ सान्ध्या के कगार तक बहाकर उन्हे नही ले जाती?

ह्विटमेन की भांति ही रवीन्द्र मे प्रत्यक्ष और सनातन के विरोधाभास के बीच समन्वय का स्वीकारने की क्षमता और उसकी आवश्यकता पाई जाती है। दोनो म उसी समन्वय पर जोर है ।

रवीन्द्रनाथ ने लिखा—"यह उल्लेखनीय है कि सभी महान् धर्मो का ऐतिहासिक मूल उन व्यक्तियो मे है जिन्होने अपने जीवन मे एक सत्य के दर्शन किए जो मानवीय तथा शुभ था । उन्होन धर्म को आसुरी शक्ति के जादुई रूप मे बचाया। वे उसे मानव के अन्तस्थल के निकट लाए और उसे किसी व्यक्ति विशेष के भले के नही अपितु समूची मानवता के कल्याण मे उसकी सिद्धि देखी।" सभी महान् धर्म स्वीकारते है " सर्वोपरिसत्ता का प्रेम और बुद्धि, जो हम सबसे ऊपर है, जिसके प्रति प्रेम, जीवमात्र से प्रेम है, और समस्त प्रकार के प्रेम की तुलना मे शक्ति और गहराई मे सर्वोत्कृष्ट है, जो कठिन कार्यो और बलिदान त्याग के लिए अनुप्रेरित करता है, उसका प्रतिफल अन्य कुछ नही इस प्रेम की ही सिद्धि मे है।"

वेदान्त की निम्नलिखित पक्तियो मे ह्विटमेन अथवा रवीन्द्र के कथन अथवा अनुभूति मे आश्चर्यजनक साम्य है—"जो सब वर्णो से ऊपर है, और जो अपनी बहुविधि शक्ति से सभी वर्णो के लोगो की निहित आवश्यकताओ की पूर्ति करता है, जो सृष्टि के अथ और इति मे है, वह हमे सदिच्छा से एकरूप करे।"

इसी भावना से प्रेरित होकर ह्विटमेन ने अपनी 'पेसेज टू इडिया' मे लिखा—

> हे ! आत्मा, क्या तुमने प्रारभ से ही ईश्वर के मतव्य को नही समझा ?
> पथ्वी एक सूत्र मे पिरोई जाने को है, जातिया, पडौसी एक दूसरे से विवाह रचाये,
> जलधि पार किए जाने का है, दूरी निकटता मे बदली जाने को है,
> भूखण्ड एक दूसरे मे आलिगित होने को है।

वस्तुत ह्विटमेन अमरीका की और रवीन्द्र भारत की आत्मा है किन्तु दोनो, राष्ट्रीय सीमाओ को लाघते है। रवीन्द्र ने कहा—"मै भारत को प्यार करता हू, इसलिए नही कि मै भौगोलिक परिधि का भक्त हू बल्कि इसलिए कि उसने आशा भरे युगो मे मनीषियो के जीवत मत्र सुरक्षित रखे।

रवीन्द्र मे अमरत्य मूल सिद्धातो और आज की यथार्थताओ की रोशनी मे वेदान्त की एक नये सिरे मे व्याख्या है। वह एक ऐसे दर्शन की व्याख्या है जिसे कार्यरूप मे परिणित किया गया और जिसे गुरुदेव ने अपने जीवन मे उतारा। प्रत्यक्षत विरोधी तत्वो के अनुभव का वही सामजस्य हमे ह्विटमेन के जीवन और साहित्य मे मिलता है।

अन्त मे, मेरा तो यह मानना है कि दोनो कवियो की तुलना करना निरर्थक है अथवा दोनो का पूर्णत एक धरातल पर खडा करना अर्थहीन है। कलाकार का जगत् उसकी स्वय की सृष्टि होती है, जो सदैव अद्वितीय होती है।

●

पाश्चात्य साहित्यकार और रवीन्द्र

बुद्धदेव बोस

•

"रवीन्द्रनाथ की रचनाए वह यूरोपीय साहित्य है जो बगाली भाषा मे लिखा गया है। ये रचनाये अपने क्रम मे प्रथम है।" ये शब्द एक प्रमुख बगला-कवि के है।

वास्तव मे यह अतिशयोक्ति है, लेकिन यह ऐसी अतिशयोक्ति है जो एक पल के लिये सत्यता को सामने लाकर रख देती है, यह कहकर रूढिवादी रवीन्द्र पथियो पर लाछन लगाया जा सकता है। इस प्रकार का आरोप उस पीढी पर भी लगाया जा सकता है, जो यह मानकर चलती है कि पश्चिम मे ही सभी करने योग्य कार्य पहिले ही कर लिये गये है। और कुछ शेष नही रखा गया है। रवीन्द्र यूरोप मे पूर्वी सत के रूप मे प्रख्यात हुए जो पश्चिमी अशाति के विरोधी और शाति-भक्त थे। शाति—जो "सत्य शिव सुन्दरम्" का ज्ञान देती है। हमे मानना होगा कि रवीन्द्र का उनकी स्वय की इस विचारधारा को समुचित योग रहा है। पश्चिम ने रवीन्द्र को स्वीकार किया, इससे पूर्व और अनन्तर दोनो ही समय मे उनकी निजी विचारधारा को यह योग मिलता रहा था। लेकिन फिर भी बगाली का कोई भी प्रबुद्ध पाठक यह मानेगा कि रवीन्द्र अत्याश मे यूरोपीय ही थे।

शिक्षा के क्षेत्र मे 'प्रभाव' शब्द का तात्पर्य अधिकाशत प्राविधिक ढग पर लगाया जाता है। बर्नार्ड शा ने इब्सन के 'घोस्ट' का अध्ययन किया और 'विडोअर्स हाउसज' नामक पुस्तक लिखी। इलियट ने भगवद्गीता का ही छायानुवाद किया है। और भी ऐसे उदाहरण है किन्तु, जहा प्रभाव गूढ और अनिवार्य होता है वहा अधिकाशत वह गुप्त ही रहता है।

इस प्रभाव के अश को जान पाने मे रवीन्द्र के विषय मे यह कठिनाई है कि उनकी जीवनी सम्बन्धी जानकारी बहुत कम उपलब्ध होती है। हम यह भी नही जानते कि उन्होने कितना अध्ययन किन-किन विषयो पर किया। किन पुस्तको को उन्होने भली भाति पढा और किन मे उन्हे आनन्द मिला तथा किस पुस्तक का अध्ययन उन्होने तन्मयता के साथ किया। अपनी रचनाओ मे उन्होने अन्य पुस्तको का उल्लेख बहुत ही कम किया है और जहा कही किया भी है तो केवल सस्कृत ग्रन्थो, कालिदास और वैष्णवो के अतिरिक्त किसी का भी उल्लेख नही किया है। अग्रेजी मे तीन साहित्यकार वर्ड्सवर्थ, शैली और कीटस का उल्लेख रवीन्द्र ने किया है। प्रत्यक्ष रूप से जिन पद्यो का उन्होने अपनी रचनाओ मे लिया है, उनमे से है—'वर्ष शेष' (वर्ष का अन्त), जिसकी समानता 'ओड टू दी वेस्टर्न विण्ड' से और 'मानस-सुन्दरी' की समानता 'हाइम टू इन्टलेक्चुअल ब्यूटी' से की गई है। वास्तव मे इन

समानताओं का अत्यधिक महत्व है। किंतु इस प्रकार कुछ अंश ग्रहण करना और बात है और किसी रचना से 'प्रभाव' ग्रहण करना और बात है। हमे अभी यह ढूढना होगा कि रवीन्द्र ने किन किन पुस्तको को अपनाया। उनकी वृद्धावस्था मे लिखी गई पुस्तको मे इब्सन और जान डोने के नामो के उल्लेख हे। यूरोपीय पद्यो मे से यदि इन्होने किसी की पुनरावृत्ति की है तो वह कीटस के 'ब्यूटी इज टुथ एण्ड टुथ ब्यूटी' रचना है, लेकिन इसका प्रयोग पद्य के रूप मे नही किया गया है, बल्कि सौंदर्य शास्त्र के रूप मे उसे अपनाया गया है।

यह असभव है कि रवीन्द्र ने केवल आधे दजन पुस्तके पढी, हो सकता है कि उन्होने असख्य पुस्तक पढी हो। किंतु आधुनिक पाश्चात्य लेखको से भिन्न उन्होने अपने विषय की इस जानकारी को गुप्त ही रखा है। उनकी रचनाओ मे, यद्यपि वे बहुत बडी बडी है हमे यह जानकारी बहुत कम मिलती है कि उन्हे प्रेरणा किसमे मिली। हम इतना जान पाते है कि उन्हे नक्षत्र-विज्ञान, ऋतु विज्ञान और जातियो सम्बन्धी पुस्तको मे रुचि थी। वे 'एमिल्स जनरल' की प्रशसा करते थे और 'मेडेमोइस्ले डी मापिन' को अस्वीकार करते थे। अपने अंतिम जीवन मे आपने स्टुर्ज मूरे की प्रशसा की। जो कुछ साक्षी हमारे पास स्वय रवीन्द्र द्वारा छोडी हुई उपलब्ध है, हम निश्चय पूर्वक यह भी नही कह सकते कि उनकी रुचि क्या थी। उन्होने एक बार भी नये और अधिकृत कवियो का उल्लेख नही किया है, जो समकालीन और कुछ पहिले के थे, ऐसे कवियो मे बोदलेयर या स्विनबर्न, वरलाइन या मलार्मे, वलेरी या रिलके का नाम आता है। एक बार भी उन्होने रूस की कथाओ, फ्रास की चित्र कला, और जर्मनी के सगीत का उल्लेख नही किया।

रवीन्द्र के मस्तिष्क मे जो सघर्ष चल रहा था, उसे कोई भी आसानी से जान सकता है। यह सघर्ष कवि और भारतीय राष्ट्रवादी मे, कलाकार, धार्मिक और समाज सुधारक मे, सौंदर्योपासक और साम्राज्यवाद के शत्रु मे था। ऐतिहासिक दृष्टि से उनकी जो स्थिति थी, यह सघर्ष अनिवार्य था। इस आधार पर हम कह सकते है और जान सकते है कि उनके जीवन मे और साहित्यिक कृतियो मे जो विरोधाभास है, उसका होना स्वाभाविक भी था। इसका एक परिणाम यह हुआ कि उनकी दोहरी आत्मा का विकास हुआ—एक मे विश्व का मुकाबला करने के लिये और दूसरी मे गभीर और गूढ कविताओ की अभिव्यक्ति के लिए।

एक समारोह के अवसर पर लिखे गये गद्याश मे रवीन्द्र ने यूरोपीय साहित्य मे अपने सम्पर्क की रूपरेखा दी है। रवीन्द्र ने दाते और गेटे को चुना और शातिनिकेतन मे रहने वाली एक महिला की सहायता से हीने का कुछ अध्ययन किया, लेकिन शीघ्र ही आपने दोनो का ही छोड दिया। रवीन्द्र ने लिखा है—'हम भारतीयो ने अंग्रेजी मे कुछ ग्रहण करने के बजाय उत्तेजना अधिक ली है। रवीन्द्र ने अपने देशवासियो पर आरोप लगाते हुए लिखा है कि उन्होने अंग्रेजी साहित्य मे वह अंश नही ग्रहण किया है, जिसके द्वारा शात-रस मिलता है।

सिद्धातत रवी द्र ने स्वय को पाश्चात्य कला का विरोधी घोषित किया, लेकिन व्यवहार म बात विपरीत थी। आपन कहा मैन गेटे को छोड दिया। हीने के बारे मे बहुत कम जानकारी प्राप्त की। कि तु १७ वष की आयु मे आपने गेटे पर और जिसस वह प्र म करता था उस महिला पर एक लेख प्रकाशित किया। गेटे ही केवल एक गैर यूरोपीय कवि है, जिसका सीधा प्रभाव रवी द्र पर पडा है। टैगोर ओर जर्मन यहूदी के बीच मुकाबले का ही परिणाम था कि आपन 'क्षणिका' की उत्कृष्ट रचना की। अधिकृत स्तर पर आपने शेक्सपियर को पस द नही किया।

साक्षी प्रस्तुत करने के लिये रवी द्र के चित्रो का उल्लेख करने की आवश्यकता है। जो कुछ उन्होने लिखा है, उस मे भी काफी सामग्री इस आशय के लिए उपलब्ध है। उनकी ज म समारोह वाली कविताए कुछ भि न हो सकती है, लेकिन उनके अ य पद्यो मे अशाति, स घर्ष और अप्रस नता का आभास है। मेरा कहने का यह आशय नही है कि वे यूरोपियनो का उससे अधिक जानते थे, जितना कि वे बताते थे। मेरा आशय यह हे कि उ होने उन कवियो को इस प्रकार नही जानना चाहा जिस प्रकार कि एक विद्यार्थी या अध्यापक जानता है। एक कवि के दूसरे स प्रभावित होने के लिए प्रथम परिचय भी आवश्यक नहो होता है। शेक्सपियर ने केवल सुनी सुनाई जानकारी के अधार पर ही पश्चिम की प्राचीन घटनाए अपने साहित्य मे सजो दी। फिर यह रवी द्र के बारे मे ही क्यो नही लागू होता ? हमे यह कहने का कोई अधिकार नही कि जिन कवियो का उ होने कभी उल्लेख नही किया या जिनकी विचारधारा को उ होने पसद नही किया, उनका रवी द्र के निर्माण मे कोई हाथ नही है। हम यह विश्वास नही कर सकते कि रवी द्र की युवावस्था मे फ्रास मे जो कवि यूरोपीय काव्य का पुर्ननिर्माण कर रहे थे, उ ह वे जानते नही थे। रवी द्र की 'निरुद्द श्य-जात्रा' बहुत कुछ अ श तक बोदलेयर की 'वायेज' और रिम्बोद की 'ड्र कन बाट' के अनुरूप है। यह उल्लेखनीय है कि इसकी रहस्यमय महिला विदेशी है और स्वर्णिम नौका पश्चिम की ओर यात्रा पर है। यह इस बात की अवगु ठित स्वीकारोक्ति नही है कि रवीन्द्र पश्चिम के प्रति ऋणी रहे हे।

●●

पश्चिम का ऋण

रवी द्रनाथ ने किसी व्यक्ति अथवा देश विशेष की सीमा मे अपने को बाधकर नही रखा था। विभि न देशो के विद्वानो और उनके कार्यकलापो से परिचय प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा लेकर उ होने कई बार पृथ्वी का पर्यटन किया। इ ही यात्राओ मे उहोने हर व्यक्ति के हृदय को छूआ। इस सम्ब ध मे पश्चिम के योगदान को स्वीकार करते हुए उ होने कहा—

पश्चिम आजि खुलियाछे द्वार सेथा हते सबे आने उपहार,
दिबे आर निबे मिलाबे मिलिबे, पावे ना फिर।

●●

सभ्यता राष्ट्रीयता मानवता

(रवीन्द्र-वेल्स वार्ता)

•

रवीन्द्र—आधुनिक सभ्यता का आग्रह दुनिया को एकरूपता क साचे मे ढाल देने का है। कलकत्ता हो या बम्बई, हागकाग हो या कोई और शहर सभी प्राय एक जैसे ही ह। वे जिस नकली चेहरे को पहने हुए है, वह किसी विशेष देश का परिचायक नही।

वेल्स—क्या आप ऐसा नही सोचते कि इस आग्रह के भीतर ही इस बात का प्रमाण छुपा हुआ है कि हम हाथ फैलाकर किसी नये विश्वव्यापी मानव समाज को टटोल रहे हे जा किसी देश विशेष की सीमा मे अपने को आबद्ध नही करना चाहता ?

रवीन्द्र—हमारा व्यक्तिगत रूप रग, चेहरा मोहरा सब बिल्कुल एक जैसा ही हो ऐसी तो कोई बात नही। मनुष्य का चित्त सार्वभौम हो किन्तु इसके लिए व्यक्तिगत विशेषता की बलि न दे दी जाए।

वेल्स—हम लोग तो आज क्रमश ऐसी एक मानव-सभ्यता की परिकल्पना करने लगे है जिसमे व्यक्ति अपनी सार्थकता लाभ करने का अधिकतर मौका पा सकेगा। व्यक्ति जैसा बना हुआ है, उस देखते हुए तो हम यही अनुभव करते है कि आज तक सभ्यता क खडित होने से ही उसकी इतनी हानि हुई है। मनुष्य के विकास का स्वाभाविक पथ तो इन खडित अ शो का किसी विश्वव्यापी समष्टि के भीतर पर्यवसित होना ही है।

रवीन्द्र—मेरा विश्वास हे कि मैत्री और सहयोग की भावना के द्वारा ससार की विविध सभ्यताओ को जाड रखने मे ही मानव सभ्यता की एकता अधिक सुरक्षित रह सकती है। क्या आप ऐसा समझते है कि इस समय ससार मे केवल एक ही सार्वभौमिक भाषा का आदर्श प्राप्त करने की ओर ही दुनिया का रुझान है ?

वेल्स—हम चाहे या न चाहे, लेकिन एक सार्वजनीन भाषा मानव समाज के सिर मढ ही दी जाएगी। पुराने समय मे सस्कृत विचारो वाले मनुष्यो की टुकडिया नई नई बालियो को ज म दिया करती थी। अब तो जरूरत के दबाव से ही हमे सार्वजनीन भाषा को स्वीकार करना पडेगा।

रवीन्द्र—बिल्कुल सही हे। प चकोसी बालियो का जमाना बडी तेजी से लदा जा रहा है। आवागमन के द्रुततर साधन आज सार्वजनीन भाषा के बनने मे मदद कर रहे है। लेकिन ऐसी

भाषा राष्ट्रीय भाषाओ को देश निकाला नही दे देगी। एक और बात बडे मजे की देखने को मिल रही है कि जहा एक तरफ मानव चित्त प्रगाढ एकता की ओर झुक रहा है वहा साथ ही साथ राष्ट्रीय आत्म चैतन्य क्रमश और भी विकसित होकर राष्ट्रीय भाषाओ के निर्माण व पुनरुत्थान की ओर हमे बरबस लिए जा रहा है। क्या आप ऐसा नही सोचते कि अमरीका मे अ ग्रेजी भाषा, इ ग्लैड और अमरीका के अनवरत सम्ब धो के होते हुए भी, निश्चित रूप से सशोधित और परिवर्तित होती रही है।

वेल्स–मै नही समझता कि इस समय भी ऐसा हो रहा है। आज से चालीस पचास बरस पहले शायद ऐसा हुआ था लेकिन अब तो साहित्य मे और आम बातचीत की भाषा मे अ ग्रेजी तथा अमरीकन भाषाओ को विशिष्ट करके देख सकना और भी कठिन होता जा रहा है। बल्कि अ य दिशाओ मे इसका प्रभाव कही अधिक देखा जा सकता है ? आज हम शब्दो को दूसरे के चित्त तक पहु चाने वाले भौतिक साधनो को ही अधिक विस्तृत या पूर्णतर बनाने मे लगे हुए है। अनुवाद का रास्ता एक खासा झमेला ही समझिए। अपनी कविताओ की ही बात लीजिए न ? तर्जुमे के भीतर क्या उनका बहुत-कुछ ऐश्वर्य खो नही जाता ? अगर ऐसा कोई साधन होता जिसमे आप सब लोगो के निकट एक ही साथ अपने काव्य का आवेदन पहु चा सकते तो सचमुच ही कैसे आश्चर्य की बात होती।

रवीन्द्र–नाना देशो के सगीत का आभ्यतरिक आधार एक ही है मगर इसका यह मतलब तो नही होता कि सतत्र देशो के सगीत को जीने का कोई अधिकार ही नही। मेरा ख्याल है कि साहित्य-क्षेत्र मे भी यही बात सच है।

वेल्स–आधुनिक सगीत एक देश से दूसरे देश मे बिना अपना कुछ खोए ही जा रहा है–पर्सेल मे बारब फिर ब्राह्स, फिर रूसी सगीत और फिर प्राच्य सगीत तक। दुनिया की सब चीजो मे सगीत सबमे अधिक अ तर्राष्ट्रीय है।

रवीन्द्र–देखिए मै बताऊ आपको। मैने लगभग तीन सौ गान रचे है किन्तु वे सब पश्चिम के लिए ब द पडे है क्योकि उ हे आपकी अपनी स्वरलिपि मे ठीक ठीक व्यक्त नही किया जा सकता। अगर मै उ हे यूरोपीय स्वरलिपि मे लिखवा भी डालू तब भी वह आपके देशवासियो के लिए आस्वाद्य न हो सकगे।

वेल्स–पश्चिम के श्रोता, धीरे धीरे पूर्व का सगीत सुनने के आदी हो जाए गे।

रवीन्द्र–पूरब की तानो और श्रुतियो के कुछ रूप जबकि हमे भीतर तक हिला देते है तब उ ही को सुनकर पश्चिम के दरदी जरा हैरानी मे पड जाते हे। लेकिन जैसा आप कह रहे है, घनिष्ठतर परिचय से पश्चिम मे भी पूरब के सगीत का रस ग्रहण सभव हो सकेगा।

वेल्स–शिल्प का रस-ग्रहण शायद भविष्य मे आज से बिल्कुल और ही तरह का हो । शिल्प का माध्यम तब तक ही होगा और वह सबके निकट बोधगम्य होगा। रडियो का उदाहरण ही ले लीजिए जो आज सारी दुनिया को ध्वनि क सूत्र से जोडे हुए है। आविष्कारो का अ त यही तो हो नही गया। भविष्य मे जब वाटका स्टिग के मैत्र मे बोलियो और जातीय-भाषाओ का कोलाहल शान्त हो जाएगा, और विज्ञान ने और भी नयी खोजे प्राप्त कर ली होगी, तब हम एक दूसरे के साथ किसी ऐसे माध्यम के जरिए बातचीत करेगे जो अभी हमारी कल्पना के भी परे है।

रवीन्द्र–हमे इस युग के अनुरूप नये मानस-तत्व की सृष्टि करनी होगी। सभ्यता की नई आवश्यकताओ और परिस्थितियो क साथ हमे साम जस्य बिठाना होगा।

वेल्स–साम जस्य ? बेहद साम जस्य की जरूरत होगी।

रवीन्द्र–क्या आपका ख्याल है कि इस रास्ते मे कुछ बुनियादी जातिविषयक अडचने है।

वेल्स–जी नही। नित नई जातिया जन्म ले रही है–अनवरत बदलती जा रही है। बहुत प्राचीन ऐतिहासिक युग मे ही जातियो मे पारस्परिक समिश्रण चला आया है। भारतवर्ष तो जीवन्त उदाहरण है। मसलन बगाल मे ही जाति और वर्ण की दुर्लघ्य बाधाए होते हुए भी जातियो मे आश्चर्यजनक समिश्रण होता रहा है।

रवीन्द्र–जातिगत अभिमान की समस्या जरूर सामने आएगी। क्या पश्चिम पूर्व को सपूर्णतया स्वीकार कर सकता हे ? अगर यह पारस्परिक स्वागत सभव न हुआ तो मुझे उस देश के दुर्भाग्य पर तरस आएगा जो दूसरे की सस्कृति को ठुकरा देता है। एक दूसरे के अध्ययन से कोई हानि नही हो सकती, यद्यपि डाक्टर हाज और हैमरी मैटिम जैसे लेखको का ख्याल है कि पूर्व की मनीसा को पूर्व मे ही कैद रहना चाहिए तो सब दुरुस्त रहा आयगा।

वेल्स–आप तो इसे नही मानते–और मै भी नही मानता।

रवीन्द्र–बडे खेद की बात है कि कोई जाति या राष्ट्र यह दावा करे कि इस पर भगवान् की विशष कृपा है या ऐसी किसी आतरिक श्रेष्ठता की छाप है जिससे सृष्टि मे और सब देश वचित है।

वेल्स–पश्चिम के आधिपत्य की कहानी पिछले सौ बरसो से अधिक पुरानी नही है। लेमाण्टो की लडाई के पहले पश्चिम मे तुर्को का ही बोलबाला था। कोलम्बस की इतनी लम्बी यात्रा सिर्फ तुर्को से बचने के लिए ही हुई थी। एलिजाबेथ के जमाने के लेखक और उनके परवर्ती लेखक पूर्व का ऐश्वर्य तथा-भौतिक सभ्यता का ऊ चा आदर्श देखकर चकित थे। पश्चिम की शान अभी कल की चीज है।

रवीन्द्र–उ नीसवी सदी के भौतिक-विज्ञान ने ही कदाचित् पश्चिम मे जातिगत श्रेष्ठता की यह भावना जगाई थी। जब पूरब क देश भी विज्ञान की इस उन्नति को हजम कर लेगे तो बाजी लौटेगी और सतुलन ठीक हो जायेगा।

वेल्स–आधुनिक विज्ञान वस्तुत यूरोपियन नही है। कुछ आकस्मिक सयोगो ने तथा विशेष परिस्थितिया ने पूर्व के देशो को उन नई खोजो का प्रयोग करने स व चित रखा, जिन्हे हर देश क मानवता प्रेमियो ने प्राप्त किया था। एक जमाना था जब इन पूर्वी देशो ने भी अनक ज्ञान विज्ञानो की उद्भावना की थी–उन्हे परिणति दी थी, पीछे पश्चिम ने उ ही को लेकर अधिक पूर्णता प्राप्त की और नाम किया। आज जापानी, चीनी तथा भारतवासी वैज्ञानिको के नाम वैज्ञानिक क्षेत्र मे क्रमश अधिकाधिक स्वागत-लाभ कर रहे है।

रवीन्द्र–भारतवष बडी प्रतिकूल परिस्थिति मे रहा है।

वेल्स–जब मैकाले ने भारतवर्ष पर घटिया साहित्य और शिक्षा पद्धति का जजाल लादा तो भारतवासियो ने स्वभावतया उसका विरोध किया। कोई इ सान स्काट के काव्य पर ही जि दा नही रह सकता। आशा करता हू कि यह हालत अब बदल रही है। लेकिन इतना विश्वास आपको दिला दू कि हम अ ग्रेज लोग भी कुछ खास बेहतर अवस्था मे नही थे। औसत हिन्दुस्तानी से हमारी शिक्षा कम खराब नही थी–शायद और भी खराब थी।

रवीन्द्र–हमारी कठिनाई यह है कि पश्चिम की सभ्यता के साथ हमारा सम्बन्ध सहज स्वाभाविक नही है। जापान ने पश्चिमी-सस्कृति की आत्मा को कही अधिक आत्मसात् किया क्योकि उसे अपने प्रयोजन के अनुसार ग्रहण करने की स्वाधीनता थी।

वेल्स–बडे अफसोस की बात होगी अगर पारस्परिक परिचय के इतने सुन्दर सुयोग इसी तरह व्यर्थ चले जाए गे। ●●

ज्ञान की परम्परा

गुरुदेव ने समस्त देश के मानस पर जो एक बडा पाठ अ कित किया वह प्राचीनतम ऋषियो की वेद और उपनिषदो की ज्ञान विषयक परम्परा थी। उसका मूलमत्र था—

एको देव सर्वभूतेषु गूढ, सर्वभूताध्यक्ष सर्व भूतान्तरात्मा।

इस विराट विश्व की विचित्र रचना जिस महती शक्ति की अभिव्यक्ति है, जिस एक स्रोत से इस सबका आविर्भाव हो रहा है। ससार के नानात्व का जो कारण है, वह महतो महीयान तत्व एक है, वह देवात्मक अर्थात् चैतन्यमय है, वही सब प्राणियो मे अ त प्रविष्ट है और चराचर भूतो का नियामक है। विश्व के विज्ञान का यह मूल सूत्र है। आज भी मानव के विज्ञान कोश मे इससे ऊ चा मत्र नही है। —वासुदेव शरण अग्रवाल (डा०)

धर्मविरोध और खंडित मानवता

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

●

जिस समय वातायन पर बैठकर मैंने गीत शुरू किया—

"आज नवीन मेघेर सुर लेगेछे आमार मने, आमार भावना यत उतल होलो अकारणे।"

(आज मेरे मन को नवीन मेघ का सुर छू गया है,मेरी भावना अकारण चंचल हो उठी है)

ठीक उसी समय सागर पार से प्रश्न आया—भारतवर्ष की हिंदू-मुस्लिम समस्या का समाधान क्या है? सहसा स्मरण हुआ कि मानव संसार मे मेरा भी कुछ काम है—केवल मेघमल्लार के सुर मे मेघ के आह्वान का प्रत्युत्तर देने से काम नही चलेगा, मानव इतिहास मे जो मेघमंद्र प्रश्नावली संचित है, उसका भी जवाब सोचना होगा। अस्तु मेघो की मजलिस छोडकर मुझे बाहर निकल आना पडा।

संसार मे दो ऐसे धर्म सम्प्रदाय हैं, जिनकी अन्य धर्ममतो के साथ विरुद्धता अत्यंत उग्र है। ईसाई धर्म और इस्लाम। वे लोग केवल अपने धर्म का पालन करके ही सन्तुष्ट नही है, वे अन्य धर्मो को प्रतिहत करने के लिए भी उद्यत हैं। इसीलिए उनके कर्म को ग्रहण करने के सिवा उनसे एक होने का और कोई तरीका नही। ईसाई धर्मावलंबियो के बारे मे एक बात खास सुभीते की यह है कि वे लोग आधुनिक युग के वाहन है, उनका मन मध्ययुग की सीमाओ मे नही अटका। धर्ममत ने एकांत रूप में उनके समग्र जीवन को नहीं घेर रखा, इसलिए अन्य धर्मावलंबियो को वे लोग धार्मिक व्यवधान द्वारा संपूर्णतया अलग नही किए रहते। यूरोपीय और 'ईसाई' ये दोनो शब्द समानार्थी नही है। 'यूरोपीय बौद्ध' और 'यूरोपीय मुसलमान' शब्दो मे स्वतोविरुद्धता नही है। किंतु धर्म के नाम पर ही जिस जाति का नामकरण होता है, धर्म मत के द्वारा ही उनका प्रधान परिचय भी मिलता है। 'मुसलमान बौद्ध' या 'मुसलमान ईसाई' शब्द अपने आप मे ही असंभव है।

दूसरी ओर हिंदू जाति भी एक प्रकार से मुसलमानो की ही तरह है। अर्थात् हिंदू भी धर्म के प्राकार मे संपूर्णतया परिवेष्टित है। बाह्य प्रभेद केवल इतना ही है कि अन्य धर्मो की विरुद्धता उनमे सक्रिय नही है, अन्य समस्त अहिंदू धर्मो के साथ उनका नाता 'नान वायालेंट नान-कोआपरेशन' है। हिंदुओ का धर्म मुख्यतः जन्मगत और आचारमूलक होने के कारण उसका व्यवधान और भी कठिन है। इस्लाम धर्म अंगीकार करके मुसलमानो के साथ बराबरी से मिला जुला जा सकता है, मगर हिंदूधर्म का यह रास्ता भी अतिशय संकीर्ण है। आहार व्यवहार इत्यादि मे इस्लाम निषेध द्वारा अन्य संप्रदायो का प्रत्याख्यान नही करता, किन्तु हिंदू वहा भी सतर्क है।

आचार को मनुष्य मनुष्य के बीच सेतु का काम देना चाहिए, किंतु उसी जगह हिन्दू ने पग-पग पर बाधाएं खडी कर रखी है। जिन दिनो मे पहले पहल अपनी जमीदारी के काम मे लगा था, उन दिनो मैंने देखा था कि अपनी कचहरी मे मुसलमान रिआया को बिठाते समय जाजिम का एक हिस्सा उठाकर उसी जगह उन्हें स्थान देना पडता था। मनुष्य के मिलन क्षेत्र मे अन्य आचार-अवलंबियो को

अपवित्र समझने मे बढकर भ रकर बाधा दूसरी नही हो सकती। भारतवर्ष का दुर्भाग्य ही कुछ ऐसा है कि यहा हिन्दू और मुसलमान दोनो एकत्र ता हुए है कि तु जहा धर्म की ओर से हि दू की बाधा प्रबल नही है–है आचार की ओर से, वहा आचार की तरफ से मुसलमान की बाधा प्रबल न होकर—प्रबल है धर्म की तरफ से। एक पक्ष का द्वार जहा खुला है, वही दूसरे पक्ष का द्वार बिल्कुल ब द है। फिर ये लोग मिलें भी तो क्योकर।

एक समय भारतवर्ष मे ग्रीक पारसीक, शक इत्यादि नाना जातियो का अबाध समागम और सम्मिलन हुआ था। कि तु यह बात हि दू युग मे पहले की है। जिसे हम 'हि दू युग' कहते है, वह है प्रतिक्रिया का युग। इस युग मे बडी सचेष्टता के साथ ब्राह्मणधर्म की इमारत दृढतापूर्वक चुनी गई थी। दुर्लंघ्य आचार की चाहरदीवारी खडी करके उसे दुष्प्रवेश्य बना डाला गया था। यह बात उस समय भुला दी गई थी कि किसी प्राणवान् वस्तु के अ ग-प्रत्यग को कसकर जकड देना उसकी हिफाजत करना नही–वह है उसे मार डालना। खैर, मुद्दे की बात यह है कि किसी विशेष समय मे, बुद्धपरवर्ती युग मे, राजपूत इत्यादि विदेशी जातियो को अपन दल मे खीचकर, विशेष अध्यवसाय के द्वारा अपने को परकीय ससर्ग और प्रभाव से सपूर्णतया सुरक्षित बनाए रखने के लिए ही भारतवासियो ने हि दूधर्म को एक प्रकार के विशाल परिवेष्टन का रूप दे डाला था, उसकी प्रकृति मे ही निषेध और प्रत्याख्यान प्रधान है। मिलन क हर क्षेत्र मे इस तरह सुनिपुण चतुराई द्वारा रची हुई बाधा का उदाहरण जगत् मे शायद ही और कही मिल सके। यह बाधा सिर्फ हिन्दू-मुसलमानो के बीच ही हो, सो नही। हमारी तुम्हारी तरह आचार की स्वाधीनता के रक्षक और हामी व्यक्ति भी, सच पूछो, तो पृथक है–बाधाग्रस्त है। यह तो हुई समस्या, मगर इसका समाधान कहा से आएगा ? मन के परिवर्तन से–युग के परिवर्तन से।

जिस तरह यूराप सत्य की साधना और ज्ञान की व्याप्ति के द्वारा मध्ययुग के भीतर से गुजर कर आधुनिक युग तक आ पहुँचा है, उसी तरह हि दुओ-मुसलमानो को भी अपने-अपने सकीर्ण दायरो मे निकल कर बाहर की ओर यात्रा करनी होगी। धर्म को कब्र की तरह चुनकर, समूची जाति को हमेशा के लिए भूतकाल के भीतर दफना देने मे उन्नति के पथ पर चलना असभव हो जाएगा, उस रास्ते कभी कोई किसी के साथ मिल नही सकेगा। हमारी मानसिक प्रकृति के भीतर जो अवरोध क्रमश बढ गया है, उसे सपूर्णतया बिना मिटाए, हम किसी प्रकार की कोई स्वाधीनता उपलब्ध न कर सकेंगे। शिक्षा के द्वारा, साधना के द्वारा हमे यही बुनियादी परिवर्तन घटित करना होगा, 'पखो की अपेक्षा पिजरा बडा है'–इस सस्कार को हमे उलट ही देना होगा। तभी हमारा कल्याण सभव है। हि दू-मुस्लिम-मिलन युगपरिवर्तन की राह देख रहा है। मगर इस बात को सुनकर डरने की कोई जरूरत नही, क्योकि अन्य देशो मे मनुष्य ने साधना के द्वारा युगपरिवर्तन बखूबी घटित किया है। अ डे इल्ली की अवस्था से पख पसारकर उडने की अवस्था को चरितार्थ किया है। हम लोग भी अपने मानसिक अवरोध को काट कर बाहर निकल आए गे। अगर नही आए तो 'ना य पन्था'। ●●

मानवता का मूल्यांकन

• सर्वपल्ली राधाकृष्णन (डा०)

कवि होने के नाते रवीन्द्रनाथ ने दृश्य विश्व का प्रयोग अदृश्य विश्व की झलक सामने लाने के लिये किया है। सनातन के प्रकाश मे ऐहिक विश्व का संस्पर्श किया है। रवीन्द्र के लिए यह भौतिक जगत उनकी आत्मा के इसमे से गुजरने के समय पारदर्शी सिद्ध हुआ है।

विश्व न तो कोई पाश है और न इसका सुख मायाजाल। स्वत्व के विकास के लिये ये वस्तुएं एक अवसर का कार्य करती है। उपनिषद् के द्रष्टा तो और गीता के रचयिता से लेकर यह महान् परम्परा चली आ रही है। ये जीवन मे प्रकाश डालती है। प्रारम्भ ही मे ईश्वर ने रचना का भार स्वयं पर लिया है, फिर इस विश्व का भार हम अपने पर क्यो न ले? यदि हमे यह शरीर मिला है तो ऐसी शिकायत हमे नही करनी चाहिए। आध्यात्मिक जीवन मे मानव सम्बन्ध एक निर्झर की भांति है। ईश्वर आकाश मे रहने वाला कोई सुल्तान नही है, बल्कि वह सभी मे है, सभी के द्वार है और सभी के ऊपर है। हम अपनी आराधना की प्रत्येक वस्तु मे उसकी उपासना करते है। जहां हमारा प्रेम सच्चा होता है हम उसी को प्रेम करते है। नारी मे, जो आत्मीयता है, हम 'उसका' आभास पाते है। मानव जो कि सच्चा है, हम 'उसे' पहिचानते है। 'रिलीजन आफ मेन' पर रवीन्द्र के भाषण (१९३१) मे हम सभी के हृदय मे 'सर्वोच्च' को स्वीकार करने के लिये हम से कहा गया है।

जब बुद्ध ने 'मैत्री' और गीता ने 'स्नेह' का उपदेश सभी के लिये दिया, इसमे उनका आशय था कि हम दूसरो को केवल प्रेम के माध्यम से ही साझे। जीवन के एक अभिशाप और संसार को मायाजाल मानना पूर्णत अकृतज्ञ होना है। अपनी कृति 'संन्यासी या तपस्वी' मे रवीन्द्र ने इंगित किया है कि किस प्रकार प्रकृति ने उस संन्यासी से प्रतिरोध किया है जिसने मानवीय भावनाओ और प्रेम के बंधन तोडकर प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का प्रयास किया। संन्यासी ने प्रकृति से अलग रहकर सही ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया। एक छोटी सी लडकी संन्यासी को इस विरक्ति मे वापस जीवन क्षेत्र मे लाती है। जीवित सौंदर्य को भोगने की भूख को कोई संन्यास पूरा नही कर सकता। सौंदर्य के साथ हुई कलह के समक्ष सन्यासी का सम्पूर्ण बचाव असफल रहा। और जीवन ने पुन उसे दरवाजा खटखटाने को बाध्य कर दिया। फलत संन्यासी को यह अनुभूति हुई कि 'अकिंचन मे महान् और प्रेम मे आत्मा की स्वाधीनता निहित है।' हमे स्वर्ग इस वसुन्धरा पर लाना होगा, प्रत्येक क्षण मे ऐहिकता देखनी होगी और इसी विश्व मे ईश्वर की अनुभूति करनी होगी। संन्यासियो की स्थिति धातुपात्रो मे कटे हुए फूलो की सी होती है। वे एक क्षण के लिये चितन करने मे सुन्दर अवश्य लगते है, लेकिन शीघ्र ही वे नष्ट (अदृश्य) भी हो जाते है। कारण कि ऐसे फूलो को भूमि से खाद्य नही मिलता। व्यक्ति के विकास के लिये संन्यास कितना भी आवश्यक क्यो न

हो , इसे उस खाद्य के न लेने मे नही मिलाया जा सकता जिसके सहारे विकास होता है । सत धनी व्यक्तियो की मेज पर बैठना अस्वीकार नही करते और न वे गध वाली अभ्भाजन की मूल्यवान वस्तुओ को स्वीकार करने से ही इ कार करते है ।

यह सोचना मूर्खता है कि ईश्वर हमारे दुखो और यातनाओ, पीडा और उपवासो का आन द लेता है और उन लोगो को प्रेम करता है जो स्वय का अधिकाधिक पीडा पहुचाते है । जीवन एक अमूल्य देन है । जो यह प्रेम नही करते वे इसके योग्य नही है । जो अपनी आत्मा को नष्ट करता है और ऐसे कार्य को शाति कहता है, रवीन्द्र उसके ऐसे कार्य का समर्थन नही करते ।

जीवन का अस्वीकार करने के लिये किसी को न मठ मे जाने की आवश्यकता है और न स यासी होने की । अनेक व्यक्ति अनेक प्रतिब ध और प्रतिरोध लगाकर जीवन को अस्वीकार करते है। हिन्दू विचारधारा का आधार मानकर रवी द्र जीवन के प्रति भक्ति को स्वीकार करते है । हमे जीवन का साहस के साथ मुकाबला करना चाहिये और उसकी प्रत्येक स भावना पूर्ण रूप मे क्रियान्वित करनी चाहिये ।

धर्म हमे अनेक भाषाओ मे उपदेश देता है । इसमे प्रतिकूल विवाद भी है, लेकिन फिर भी इसकी एक सत्यवाणी है । यह वाणी मानव पर दया और सहिष्णुता, अनुकम्पा प्रेम की है । इस वाणी के लिये हमे जो कुछ कहा जाय, करना चाहिये । यह स्वाभाविक है कि समाज व्यवस्था का जब एक युग समाप्त होता है और दूसरा प्रारम्भ होता है तो चेतनात्मा को क्रोध होता है। हम यह कहते है कि रूस मे या स्पेन मे क्राति हो रही है । लेकिन एक क्राति हमारे देश मे भी हो रही है । हमारे लिये भी फासी के फदे है, हमारे भी शिकार है । हम चलते और बोलते प्रेत बनकर रह गए है । हमारे पीले चेहरे और गम्भीरता के अभाव मे रगो और हाव-भाव से आवृत हमारा जीवन चौरगी की दूकानो के बाहर अच्छे अच्छे वस्त्र पहिने हुए बुतो की याद दिलाते है ।

हमारे गभीर भाव समाज द्वारा लगाई गई परिस्थितियो से आधारविहीन हो जाते है । इसमे अनेक अनेक लोगो की गरीबी और अनभिज्ञता और जुड जाती है । यदि ऐसे लोग कुछ विचारवान होते है तो उनकी अशात राते और सघर्ष के मनहूस दिन यातनाओ और कटु-स्मृतियो मे व्यतीत होते है । जब उनके उलझे हुए मस्तिष्क मे आत्महत्या का विचार आता है, वे छत पर चले जाते है और सिगरेट पीने लगते है । रवीन्द्रनाथ वर्तमान के इस विचार से सहमत नही रहे है कि सिगरेट या धूम्रपान के निषेध के लिये या परिवार नियोजन के लिये किसी सस्था मे शामिल होकर समाज सेवा की जाय ।

कवि होने के नाते रवी द्र सगठन के बजाय प्रत्येक मनुष्य मे, जो अपनी तरह मे अपना जीवन यापन करता है, विश्वास रखते है । रवीन्द्र दुखियो और पीडितो के कवि है । मानव के सघर्ष की करुणाजनक स्थिति, कटुता के साथ अतीत की छाया मे विलीन हुए जीवन की कडुवाहट, नारी के जीवन की व्यर्थता और एकाकीपन को वे असहनीय मानते है ।

मानवो के बीच सर्वाधिक पुनीत सम्ब ध प्रेम का है। हमारे ग्र थो मे कुछ भी कहा गया हो हमारा व्यवहार अनैतिक है। कारण कि वह केवल एक ही पक्ष से ही आ म नियत्रण की माग करते ह। जब तक हमारी नारिया अनुशासन विहीन पुरुष की दासी और खिलोना मात्र मानी जाती रहगी, समाज व्यवस्था भ्रष्ट बनती रहेगी। यह परपरा कि नारी का शील उसके पतिव्रता और पुरुष की दासी बनन म ही है, पुरुष की तानाशाही के लिये एक भडा बहाना है। यह दुभाग्य की बात है कि इसमे भी अनेक ऐसे ह जा दूसरो की आजादी के विषय मे ठडे खून वाले हे और जो नारी को केवल काम वासना का यत्र मानते हे। ऐसे पुरुष मानव पशु ह और विचारो क गुलाम ह।

तन आत्मा का मदिर और आध्यात्मिक विकास का यत्र होता है। शरीर का या उसके किसी अ ग को बुरा मानना पाप है। शरीर को गदा और भद्दा मानना भी अपवित्र है। प्रेम के बिना शारीरिक मिलन वेश्यावृत्ति का सार है। यह शादी के पहिले और शादी के बाद मे भी उतना ही सत्य है। यदि एक महिला किसी पुरुष को केवल इसलिये अपना समपरण कर देती है कि वह उसकी पत्नी है, लेकिन जिसके प्रति उसके हृदय मे प्रेम नही है, वह उतनी ही निर्दयता से स्वय का कास रही है, जिस प्रकार कि पति, जो अपने अधिकारो पर बल देता है। आत्म प्रेम आध्यात्मिक है जिसका सम्बन्ध चेतना से और उत्कृष्ट रुचि मे है, कानून से इसका कोई सम्बन्ध नही। प्रेम के बिना विवाहित जीवन भी गुलाम की बेगार क समान है।

रवीन्द्र की कृति 'सती' मे उमा उस व्यक्ति को स्वीकार नही करती, जिसने उसका प्यार नही जीता, यद्यपि वह उसका ही पसद किया हुआ पति है। जब वह शिवजी का विरोध करती है, जिनके साथ उसका पवित्र गठबन्धन हो चुका था और जो एक दूसरे का स्वीकार कर चुके थे, वह कहती है—मेरे शरीर ने प्रेम प्राप्त करने क बाद ही समर्पण किया। जब उसकी मा कहती है—मुझे इन अपवित्र हाथो से स्पर्श मत कर वह उत्तर मे कहती है—मै उतनी ही पवित्र ह, जितनी कि तुम। उसकी यह स्पष्टवादिता उसके पिता क मुख म शीघ्र ही यह कहलाती है—मेरी लाडली बेटी, मेरे पास आओ। ये मानव निर्मित कानून व्यर्थ ह, जो प्रकृति के आदेश की चट्टानो पर भद्दा छिडकाव करते रहत हे। हमारे विधान निमाता और रक्षक यह नही मानते कि हमारी नारी के आत्मा भी है, जा ज्ञान के लिये, किसी के साथ स्वप्नो मे साझा बटाने के लिये लालायित है। जब एक पुरुष और नारी एक दूसरे को समर्पण करते हे ता उनका पद या भाग्य नही, बल्कि वे एक ऐसे क्षेत्र मे प्रवेश कर जात ह जो मानव क श्रम स नही बनाया गया है, बल्कि उनके दिलो के प्रेम ने उसे निर्मित किया है।

कुल मिलाकर रवीन्द्रनाथ की कृतियो मे तीन मुख्य बाते है —(१) आतरिक जीवन और ईमानदारी द्वारा अ ततोगत्वा आ यात्मिक गुणो की प्राप्ति (२) केवल स यास जीवन के पूर्ण और पुनीत विकास के लिये निरर्थक है (३) सभी के लिये सहानुभूति का दृष्टिकोण, चाहे वे अकिंचन और अकेले ही क्यो न हो। ऐसे समय मे जब कि अनेक प्राचीन बाते समाप्त हो रही है और हजारो नई प्रारभ हो रही है, यह सतोष की बात है कि भारतीय नेता ने जीवन के वास्तविक मूल्यो पर बल दिया है। ● ●

हुमायूँ कबीर

विश्व कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर को इतिहास में एक महान् साहित्यिक विभूति के रूप में सम्मान प्राप्त है। रवीन्द्र की कृतियाँ में एक हजार से अधिक कविताएं और दो हजार गीत हैं। इनके अतिरिक्त लघुकथाएं, उपन्यास, नाटक और विभिन्न विषयों पर आधारित निबन्ध भी इन रचनाओं में सम्मिलित हैं। गीतों में रवीन्द्र की समानता कठिनता से ही कोई कर पाया है और संभवतः इस क्षेत्र में रवीन्द्र से आगे कोई नहीं जा सका है। लघुकथा लेखकों में रवीन्द्र इस कला के प्रथम कोटि के तीन या चार उत्कृष्ट लेखकों में आते हैं। उपन्यास और नाट्य लेखन में विश्व साहित्य में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में आपकी कृतियाँ इस तथ्य की साक्षी हैं कि रवीन्द्र ने उन साहित्यिकों की कृतियों को अत्यन्त सूक्ष्म और सहानुभूति से देखा है, जो उनसे परम्परा और प्रकृति में भिन्न हैं। इस प्रकार की सूक्ष्म दृष्टि बहुत कम देखने को मिलती है।

वे उच्च कोटि के संगीतज्ञ भी थे। उन्होंने न केवल गीतों की रचना की, बल्कि उन्हें संगीत भी दिया। रवीन्द्र ने चित्रकला का कार्य उस समय प्रारम्भ किया, जब उनकी आयु ७० वर्ष के लगभग थी, फिर भी उन्होंने १० वर्षों में लगभग ३ हजार चित्र बनाये। इन चित्रों में तत्कालीन भारतीय पद्धतियों को जो चित्रों के निर्माण में प्रचलित थी, धक्का लगा और कलाकारों के सुप्त और अर्ध जागृत मानस स्तर को झकझोर दिया। कुछ विद्वान् रवीन्द्र की इन कृतियों को भारतीय परम्परा के पूर्णतः विपरीत मानते हैं, फिर भी अनेक प्रख्यात आलोचकों ने रवीन्द्र को आधुनिक भारत का प्रथम रचनात्मक चित्रकार माना है।

विस्तृत रूप में अपने जीवन में एक कलाकार होने के अतिरिक्त उनका धार्मिक और शिक्षा सम्बन्धी विचारधारा में भी महत्वपूर्ण योग रहा है। इसके साथ साथ आपने राजनीति, सामाजिक सुधार, नैतिक पुनरुत्थान और भारत तथा विश्व के आर्थिक निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान किया है। आपने इन विषयों पर न केवल गंभीरता पूर्वक और रचनात्मक दृष्टि से विचार किया, बल्कि आपने जो कुछ कहा उसे क्रियान्वित भी किया। शांतिनिकेतन में शिक्षा सम्बन्धी जो विचारधारा आपकी रही, उसने भारत में शिक्षा सम्बन्धी सारी आधुनिक विचारधाराओं को प्रभावित किया है। आपके गांवों सम्बन्धी आर्थिक सामाजिक और राजनैतिक कार्यक्रमों ने जिनमें आपने सहयोग और ग्रामीणों की परस्पर सहायता पर बल दिया तत्कालीन भारत के राष्ट्रीय जीवन में निर्माण के सभी प्रकार के आदर्श प्रस्तुत किये। मानव की एकता के विषय में आपके गंभीर विचारों के कारण आपने यह महसूस किया कि यदि विश्व को आधुनिक विज्ञान और प्रविधि की चुनौती स्वीकार करके जीवित रहना है तो मनुष्यों और देशों की स्वाधीनता को उनकी खुद की स्वाधीनता से प्रमुखता देनी होगी। वर्तमान और भावी प्रगति के लिये जीवन में यही सिद्धांत आवश्यक है। दीर्घकालीन पूर्वी परम्पराओं में विश्वास रखने के साथ-साथ आप एक आधुनिकवादी भी थे, जिसने पश्चिमी देशों के गुणों की भी प्रशंसा की।

रवीन्द्र ने सभी मनुष्यों को आदर्श बनाने के लिये कार्य किया और इसी के लिये जिये। ●●

देशभक्ति के गायक

•

मुल्कराज आनन्द (डॉ०)

आधुनिक विश्व की कतिपय परम्पराओ के अनुसार बुद्धजीवी की परख जीवन म उसकी भूमिका के आधार पर की जाती है। परख की कसौटी यह है कि क्या वह मूल्य तथा अनुभव सम्बन्धी विभिन्न समस्याओ के निवारण मे सहायक हे अथवा वास्तविकताओ का सामना करने और उनके परिणामो से बचना चाहता है। आजकल इस स्थिति को यो व्यक्त किया जाता है कि वह 'रत' है अथवा 'विरत'।

यह वर्गीकरण काफी महत्वपूर्ण है क्योकि कुछ लेखको का विश्वास है कि उनका लेखन चेतना जाग्रत करने मे सहायक होकर बाह्य जगत मे कुछ परिवतन ला सकता है—चाहे यह परिवर्तन कितना ही साधारण क्यो न हो और इस प्रकार मनुष्य जाति को अज्ञान तथा पूर्वाग्रहो मे मुक्त कर सकता है। दूसर प्रकार के लखक अपनी ही समस्याओ मे उलझे रहते हे जिसे वे कलाकार की व्यक्तिवादी स्वतत्रता की सज्ञा देते हे।

सम्भवत बुद्धिजीवियो मे ये दोनो मुख्य प्रवृत्तिया व्यक्तिगत स्वभाव के प्रभाव से उत्पन्न होती है। कि तु देश काल सम्ब धी विभि नताओ मे भी वास्तविक परिस्थितियो से उत्पन्न अनिवार्यता लखक के विकास की दिशा का ढालने मे योग देती है।

वस्तुत भारतीय लेखक गत सो वर्षो से आतरिक तथा बाह्य, दोनो कारणो से घटनाओ मे सलिप्त रहते आ रहे है अर्थात् वे 'रत' रहे हे। भारत मे जीवन और राजनीति एक दूसरे के पर्याय रहे है। इसका कारण दीर्घकालीन विदेशी प्रभुत्व हे। खास तौर से, पश्चिम के प्रभाव मे हमारा समूचा जीवन ओर उसकी बहमुखी अभिव्यक्तिया विदेशी मूल्यो से इतनी आक्रान्त रही है कि किसी भी गम्भीर अथवा जिम्मेदार बुद्धिजीवी द्वारा इसक परिणामो की अवहेलना की सम्भावना ही नही रही। लेखको के समक्ष राजनीतिक, सामाजिक ओर बौद्धिक स्वतत्रता के आदर्श ही सर्वोपरि रहे है।

ओर इन असख्य भारतीय बुद्धिजीवियो मे रवीन्द्र का स्थान सबमे ऊ चा है। वह भारतीय स्वतत्रता की जाज्वल्यमान भावना क प्रतीक रहे हे। यह स्वतन्त्रता केवल राजनीतिक ही नही, स्वारोपित सामाजिक दासता म मुक्ति ओर मानव आत्मा की गम्भीरतम आकाक्षाओ से भी सम्बन्धित और समन्वित भी रही हे।

रवीन्द्र की प्रतिभा का पोषण एक ऐस वातावरण मे हुआ था, जहा स्वतत्रता और दासता की समस्याओ का सामना किया जा रहा था। उनके सम्पन्न परिवार के लिए यह समस्या आत्मसम्मान की

समस्या थी । प्रश्न यह था कि क्या वे अपनी ही परम्परा से प्राप्त सामाजिक व धार्मिक प्रवृत्तियो को ग्रहण करे और पश्चिम की अच्छाइयो को भी त्याज्य समझे अथवा भारत व योरुप, दोनो के ही अच्छे मूल्यो को ग्रहण करके उनका समन्वय करे ।

रवीन्द्र-परिवार का रवैया दोनो प्रकार के वर्गो से अलग था । वे उन समझौतावादियो से जो विदेशी शासन के वरदानो को ग्रहण करने के पक्ष मे थे, और उन विवेकहीनो से भी जो पश्चिम की हर अच्छाई बुराई को ठुकराने के समर्थक थे—हर प्रकार से अलग सोचते थे । समन्वित एवं सुसंतुलित जीवन के प्रति परिवार की आस्था पर ही गुरुदेव की गुरुतर देशभक्ति आधारित थी ।

प्रश्न है, इस नये प्रकार की देशभक्ति की विशिष्टता क्या थी ?

जैसा कि आज आमतौर पर सभी जानते है, गुरुदेव के पितामह कवि द्वारकानाथ टैगोर महान बुद्धिवादी सुधारक राजा राममोहनराय के सहयोगी थे । दोनो ने मिलकर ब्रह्मसमाज की नींव डाली थी । ब्रह्मसमाज हिन्दू धर्म के भव्यतम सत्य और ईसाइयत की उदारता पर आधारित समाज सुधार आन्दोलन था जो जातिवाद, बाल विवाह और विधवा विवाह के विरुद्ध था । इसमे यीशु मसीह को भी मानवजाति का एक महान उद्धारक माना जाता था ।

राजा राममोहनराय द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो को रवीन्द्र ने अपने काव्यमय दृष्टिकोण से नया स्वरूप प्रदान किया । १६ वर्ष की आयु मे ही, उन्होने एक लेख लिखा था जिसमे पूर्व और पश्चिम के समन्वय से बंगाल की भौतिक समृद्धि का मार्ग सुझाया गया था और पूर्व की परम्परा अथवा योरुप के अन्धानुकरण का विरोध किया गया था । २२ वर्ष की आयु मे उन्होने 'श्वेत महाप्रभुओ से याचना करने' की नीति के विरुद्ध लेख लिखा जिसमे बलपूर्वक कहा गया कि इस प्रकार की प्रवृति से बचपना, कमजोरी तथा परावलम्बन आदि दुर्गुण पनपते है । बाद मे, उन्होने घोषणा की—"जो मंत्र आध्यात्मिक दृष्टि को हर वस्तु की आत्मा मे प्रविष्ट होने मे समर्थ बनाता है—वही भारत का मंत्र है, वही शातम्, शिवम् और अद्वैतम् (शांति, कल्याण और एकता) का मंत्र है । पश्चिम का भ्रमित मस्तिष्क इसी मंत्र के लिए भारत के द्वार पर दस्तक दे रहा है ।"

प्रश्न है कि इस समन्वय को सम्पन्न करने के साधन, जिनसे वह नयी सभ्यता का निर्माण करना चाहते थे, आखिर कौन से थे ।

मानवीय आवश्यकताओ के बहुमुखी ज्ञान के अलावा रवीन्द्र की मान्यता थी कि नये जीवन का मूल आत्म-बोध, आत्म-सम्मान और आत्म नियंत्रण मे है इसी से राष्ट्रीय पुनर्निर्माण सम्भव है । ये गुण भी कोई कल्पना लोक के नही, बल्कि यथार्थ तत्व थे जो मानव-व्यक्तित्व के संगठन के लिये अपेक्षित थे किन्तु उनकी उपलब्धि कार्य निष्ठा और निर्बंध चिंतन द्वारा ही सम्भव थी । इसीलिए गुरुदेव रचित गीत किसी देवदूत के प्रभावशाली शब्दो के समान भारतीय जनता की मानसिक दुर्बलता, हीनता और पाखण्ड दूर करके भारत राष्ट्र को प्रेम से प्रदीप्त करने मे समर्थ थे । उन्होने समर्पण भावना को विशेष

हत्व दिया क्योकि उनकी धारणा थी कि जीवन समर्पण भावना से ही सार्थक हो सकता है। १८६८ ई० एक मार्मिक कविता लिखकर गुरुदेव ने स्वय को भी मातृभूमि के चरणो मे अर्पित किया —

'जब मै स्वर्ग क वितान के नीचे आ खडा हुआ ता लज्जा और भय स मुक्त हो गया,
मुझे अनुभव हुआ कि विश्व मे मेरे लिए भी कुछ काम है
इसीलिए एक दिन प्रात काल, मै खडा हुआ अपने देश की धरती पर।
और करबद्ध प्रार्थना करने लगा—
हे मा, स्वीकारो यह मेरा जीवन, जो मै तुम्हे समर्पित करना हू ।

कर्म और विचार की एकता जिसका पूर्वाभास उनकी रचनाओ मे २० वी शताब्दी क समारम्भ मे पूर्व ही हो गया था, सन् १६०५ मे बग विभाजन के दौरान स्पष्ट हुई जबकि उन्होने इस अन्याय का विरोध करने वाले बग वासियो म भ्रातृत्व की वास्तविक भावना उत्पन्न करन के लिए 'राखी बधन' प्रयोग का सुझाव दिया। प्रस्तावित 'राखी-बन्धन' समारोह सर्वत्र फैल गया और धनी व निर्धन सभी लोग अन्याय क विरुद्ध एक जुट हो गए। उन्होने सारा व्यापार ठप्प कर दिया।

विपिनचन्द्र पाल क शब्दो मे इन दिनो सरकारी गतिविधियो से स्वेच्छया सम्बन्ध विच्छेद करके भारत के आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक जीवन के सगठन मे जुट जाने की प्रेरणा देने का श्रेय रवीन्द्र का ही है। इस रूप मे उन्होने ब्रिटिश प्रशासन के बहिष्कार का पूर्वाभास दिया जो बाद मे हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रमुख अस्त्र बन गया।

इसी ढग मे रवीन्द्र अपने स्वदेशी समाज का निर्माण करना चाहते थे। तीन वर्ष बाद ही, उन्होने अपनी इस नयी समाज व्यवस्था की कल्पना को साकार करने क लिए कार्यक्रम तैयार किया जिसमे ग्राम पुनर्निर्माण को बुनियाद बनाया गया। वह प्रारम्भ मे ही ग्रामीण जनता की दुर्दशा मे दुखी थे और इसीलिए उन्होने ग्राम पुनर्निर्माण को बुनियाद बनाया, जिस बाद मे हमारे राष्टीय आन्दोलन मे भी स्थान मिला। सामाजिक स्थिति की जो व्याख्या रवीन्द्र ने की थी वह आज भी उतनी ही सही है क्योकि समस्या आज भी मूलरूप से वही है —

'बन्धुओ! पद-दलितो और सामाजिक घृणा के पात्र, व्यक्ति आज भी मानव अधिकारो तक से वचित है, समस्याओ क प्रति 'वे सबल और आत्मरक्षा मे समर्थ बने, यही एकमेव मार्ग है। ग्रामो का दायित्व लो और उनका सगठित करो। ग्रामीणो को शिक्षित करो और उन्हे सगठित-शक्ति से काम करना सिखलाओ। इस कार्य मे प्रसिद्धि या प्रशसा की आशा नही करो। जिन्हे तुम अपना जीवन अर्पित करते हो, उनमे कृतज्ञता की भी आशा न रक्खो, बल्कि उनके विरोध को सहन करने के लिए तैयार रहो।' और चूकि रवीन्द्र जनता म कबीर की ही भाति, जिनसे उन्होने अपने गीत गाने का ढग सीखा था, अत्यधिक प्यार करते थे, इसलिए वह उनको अपने स्नेह के अधिकार से पावन भी बना सकते थे।

गुरुदेव के अनुसार, 'बधन निकृष्टतम होता है ।' इसमे मनुष्य आत्म-अविश्वास मे जकड जाता है और इस आत्म अविश्वास मे दुर्बलता (निर्ममता के उद्गम, का जन्म होता है । वह जाति प्रथा को एक ऐसी स्थिति मानते थे जिसमे मनुष्य मानव-अधिकारो मे वचित रहता है । लगभग ५० वर्ष पूर्व उन्होने लिखा था —

ओ मेरे देश जिनका तून अपमानित किया है उनसे तुझे भी समानत अपमानित होना पडेगा,
जिनका तूने मानव अधिकारो से वञ्चित कर दिया है,
अपने सामने खडा रखा है, अपनी गोद मे नही लिया है,
उन सब से तुझे इसी भाति अपमानित होना पडेगा ।'

रवीन्द्र मानव अधिकारो की प्रतिष्ठा के लिए उन्ही लोगो की अकर्मण्यता और आलस्य के विरुद्ध पश्चिम के कर्मप्रधान आदर्शो का पक्षपोषण करते थे जिन्होने देश को अपमान और दासता के बधनो मे जकड जाने दिया था । वह 'सम्पूर्ण मानव' के विकास के लिए ही पश्चिमी-सभ्यता के कतिपय स्थायी तत्वो को ग्रहण करना चाहते थे ।

किन्तु उन्होने अपने देशवासियो को उन बुराइयो के विरुद्ध भी चेतावनी दी जो पश्चिमी जगत अपने महान ज्ञान के माध्यम से लाया था । ये बुराइया थी—अन्तरिक्ष-विजय, मानवीय नैतिकता के सतुलन मे प्रतिकूल हस्तक्षेप, व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए मानव के जीवन-रक्त का शोषण, जड कल यन्त्रो द्वारा मानवीयता का दमन आदि ।

उनकी धारणा थी कि जनता के आर्थिक शोषण और व्यापारीकरण से निश्चय ही हिसा को प्रोत्साहन मिलेगा । इसीलिए उन्होने ससार के सभी साम्राज्यवादी देशो को चेतावनी दी कि वह शक्ति सघर्ष की होड मे नष्ट हो जाएगे । जब प्रथम विश्व युद्ध मे 'शक्तिशालिता के सघर्ष के फलस्वरूप भारी विध्वस हुआ तो उन्होने हमको चेताया, "तुमको अपना पूर्वी विवेक अपनी आध्यात्मिक शक्ति, अपना सहज प्रेम काम मे लेना चाहिए, सामाजिक दायित्वो को वहन करना चाहिये ताकि कोई सही रास्ता निकल सके ।" इस प्रकार उन्होने आधुनिक सभ्यता के सभी तत्वो के समन्वय की अकल्पनीय प्रेरणा दी ।

प्रश्न यह है कि यह अकल्पनीय समन्वय किस प्रकार पूर्ण हो सकता है ?

इस प्रश्न के उत्तर के लिए उन्होने ११ बार विश्व-भ्रमण किया और ऐसे तत्वो की खोज का प्रयत्न किया जो मानव समाज मे सभी जगह समान्यत पाये जाते हो । वह पहले ही भाप चुके थे कि सभी मनुष्यो के बीच एकता कायम होना उसके लिए अनिवार्य शर्त है । वह जानते थे कि सभी मनुष्य भय, सदेह, घृणा से पीडित है जिनके बीज कतिपय स्वार्थियो ने इसलिए बोए है कि मनुष्य सगठित न हो सके । रवीन्द्र ने इतिहास को विकृत करने वाले ऐसे लोगो के विरुद्ध साहसपूर्वक आवाज उठाई । उनकी बुलद आवाज ने ससार के अन्य बुद्धिजीवियो के मर्म को बेध दिया । वे लोग भी ससार

को द्वितीय विश्वयुद्ध क खतरो के विरुद्ध चेता रहे थे। लेकिन शक्ति लोलुपो ने इस ओर कोई ध्यान न दिया। वह फिर भी निराश न हुये, उनकी भविष्यदर्शिता अब काफी तीव्र और धारदार हो गई थी। उ होने कहा—

'मानवीय प्रतिष्ठा तथा अपनी सभ्यता की रक्षा की दिशा मे पश्चिम जगत की असफलता मेरे मस्तिष्क पर बुरी तरह हाती है।

'मुझे यह खास तोर पर मालूम होता है कि इस असफलता के दा प्रमुख कारण है। प्रथम, मनुष्य द्वारा नैतिक मूल्यो का खण्डन और द्वितीय उनक ये विश्वास कि घटनाओ की भौतिक श्रृ खला पर ही सब कुछ निर्भर है। जो लाग नैतिक कट्टरता को अपनी शक्ति का आधार बनाते है, वे ही इसके शिकार हो रहे है।

यद्यपि विवेकहीनो की सगठित गुण्डागर्दी बद नही हुई फिर भी कम से कम रवीन्द्र ने अपने देशवासियो का यह महसूस करा दिया कि नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा बहुत जरूरी है। सर्वाधिक निर्भीक समसामयिक महापुरुष महात्मा गाधी तक ने रवीन्द्र से यह प्रेरणा ग्रहण की और इसके लिए आभार प्रकट किया।

श्री जवाहरलाल नेहरू ने भी स्वीकार किया है कि यद्यपि वह स्वय को राजनीतिक रूप से सदव गाधीजी को शिष्य मानते रहे हे पर आध्यात्मिक रूप मे वह रवीन्द्र के उत्तराधिकारी हैं। जो लोग पचशील की गहराई से परिचित हे वे इस बात की पुष्टि करगे, क्याकि रवीन्द्र जो एक राष्ट्र के सदस्य के रूप मे नही, बल्कि समग्र विश्व के नागरिक की हैसियत से देशभक्ति का गर्व करते रह है—इस शताब्दि के प्रारम्भ मे ही कह दिया था—

'राष्ट्रो क आत्म-स्नेह का नग्न आवश लोभ की वारुणी मे उन्मत्त होकर प्रतिहिसा क शोरभरे गान पर तलवारो की झकार म नृत्य कर रहा है।'

'प्रभात, पूर्व के घोर अधकार के पीछे मौनखडा प्रतीक्षारत है।
हे भारत! सजगरहा—इस सूर्यादय के पूजन के लिए भेट लाओ,
उसके स्वागत-गान का प्रथम चरण तुम्हारे स्वर और वाणी म मुखर हो
आओ, आओ, आ दैवी व्यथा की पुत्री शाति, आओ।
ओ बधु! गर्वीले ओर सबल के समक्ष खडे हाने मे सकोच न करा
तुम सादगी क श्वेत परिधान पहनो,
नम्रता का मुकुट बाधो, तुम्हारी स्वतन्त्रता आत्मा की स्वतन्त्रता हो—
क्याकि वह महान नही है जा विशाल है, ओर गर्व भी चिरस्थायी नही है।'

•

नवोन्मेषिनी दृष्टि

हीरेन मुकर्जी

रवीन्द्रनाथ धर्म अथवा राजनीति से असम्बद्ध होते हुए भी भारतीय जनता का प्रेम और श्रद्धा अर्जित कर सके जो निश्चय ही एक ऐसी चमत्कारिक प्रक्रिया है जिसकी व्याख्या केवल उनकी कलात्मक प्रतिभा की परिधि मात्र मे नही की जा सकती बल्कि इसके लिए देश तथा देशवासियो के प्रति उनकी भावात्मक अनुभूति और सेवाओ को दृष्टि मे रखना आवश्यक है। वस्तुत उनका स्थान ससार के महान् अन्तराष्ट्रीयतावादियो मे है, वरन् फिर भी भारत के प्रति उनमे एक विशिष्ट भावना थी।

अपने ८० वर्ष के लम्बे दीघ जीवन मे उन्होने जो कुछ कलात्मक सृजन किया, वह आश्चर्यजनक रूप से विशाल एव बहुमुखी है। गुरुदेव कवि के रूप मे ही अधिक प्रसिद्ध रहे है, पर उन्होने निबन्ध, गल्प, उपन्यास, पत्र साहित्य आदि विविध विधाओ मे भी विपुल सृजन किया है।

उनके सपूर्ण कलात्मक कृतित्व का मूल्याकन बहुधा अतिसीमित परिधि मे ही किया जाता रहा है। उनकी अधिकाश रचनाओ का अनुवाद हुआ ही नही है और जिनका हुआ भी है तो वह भी सतोषप्रद नही है क्योकि हमारी कविता विदेशी परिवेश मे पूर्णत व्यक्त नही हो पाती। 'गीताजलि', जिस पर गत १९१२-१३ मे गुरुदेव को नोबुल पुरस्कार मिला और जिसने डब्ल्यू० बी० यीटस तथा इजरा पाउण्ड तक को मदहोश कर दिया—उनके सम्पूर्ण कृतित्व का एक अति सक्षिप्त अ श है।

कुछ वर्षो बाद, अ भा काग्रेस के कलकत्ता सम्मेलन मे गुरुदेव ने बकिमचद्र चटर्जी द्वारा रचित प्रसिद्ध 'बदे मातरम्' गीत की धुन बाधी और स्वय उसको गाया भी। सयोगवश, उनकी स्वर लहरी ने जो काफी मोहक और स्पन्दनपूर्ण थी, श्रोताओ को इतना प्रभावित किया कि आज तक वे इस अवसर को भूले नही है। उनकी ख्याति इतनी बढी कि जब बग प्रातीय सम्मेलन हुआ तो उनको सभापति बनाया।

असाधारण सम्पन्न परिवार मे जन्मे और पलने के कारण गुरुदेव चाहते तो अपनी कलात्मक-प्रतिभा मे सज्जित होकर जनमानस से अलग, सीमित व्यक्तिवादी घेरे मे रह सकते थे, पर वह शुरू से ही आस-पास के वायुमण्डल से पूर्णत परिचित थे और भारतीय स्वातत्र्य सग्राम मे उनको स्वाभाविक मोह था।

बगाल मे 'स्वदेशी' आन्दोलन के आविर्भाव और सचालन मे भी गुरुदेव का भारी योग है। बाद में कुछ मतभेदो के कारण, जो राजनीति मे स्वाभाविक ही है, वह इससे अलग हो गए।

जब १९१७ ई० मे कलकत्ता काग्रेस के वसर पर कुछ 'उदार पथियो' ने श्रीमती एनी बीसेन्ट के अध्यक्ष चुने जाने का इसलिए विरोध किया कि वह 'क्रातिकारी, मानी जाती थी तब रवीन्द्र ने ही खुले रूप से श्रीमती एनीबीसेण्ट का समर्थन किया।

उक्त तथ्य कुछ ही लोग जानते है, लेकिन यह बात तो सभी जानते है कि जलियावाला बाग के नरमेध के विरोध मे गुरुदेव ने ब्रिटिश शासन द्वारा प्रदत्त 'नाइट' की उपाधि को ठुकरा दिया था।

यद्यपि ज मभूमि बगाल क दृश्य ही उनके हृदय के सबसे निकट थे किन्तु उनका लालन पालन 'वृहत्तर भारत' के वातावरण मे हुआ था। इसीलिए वह अपनी ज मभूमि के प्रति भक्ति-भाव रखने हुए भी विश्व नागरिक थे। स्वतत्र भारत की राष्ट्र वदना तथा इसी प्रकार सैकडो अ य गीत लिखने मे वह इसी कारण समर्थ सिद्ध हुए।

भारत पर विदेशी शासन द्वारा लादी गई दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति से दुखी होकर उ होने शातिनिकेतन की स्थापना की जहा लडके और लडकिया अपनी मातृभाषा मे, मुक्त प्राकृतिक वातावरण क अ तर्गत शिक्षा प्राप्त करते है। उनका समस्त धन इसी शिक्षा सस्था मे व्यय हो गया। इसी विद्यालय मे गाधीजी तथा प्रधान मत्री श्री नेहरू की स तानो ने शिक्षा प्राप्त की। गुरुदेव की प्रेरणा से शातिनिकेतन ने विकसित होकर 'विश्वभारती' विश्वविद्यालय का स्वरूप ले लिया। 'विश्वभारती' की स्थापना उस समय हुई जिस समय गाधीजी ने असहयोग आ दोलन प्रारम्भ किया और कुछ समय तक इन दोनो युग पुरुषो मे सैद्धा तिक मतभेद कायम रहा। मूलत दोनो मे कोई मतभेद नही था, पर असहयोग आ दोलन के निषेधात्मक पक्ष से गुरुदेव काफी व्यथित थे।

गाधीजी के कुछ तौर तरीको से भी गुरुदेव काफी रुष्ट रहते थे। उदाहरण के तोर पर, गुरुदेव सन् १९२१ ई० मे गाधीजी की इस घोषणा तथा मा यता से असहमत रहे कि यदि प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन आधा घण्टा सूत काते तो स्वराज्य कुछ ही महीनो मे प्राप्त हो जाएगा। यह बात विश्व-कवि को अवैज्ञानिक तथा नैतिक दृष्टि से अस्वीकार्य लगती थी। स्वराज्य कोई ऐसा लक्ष्य नही था जो आसानी से प्राप्त किया जा सकता हो। इसीलिए गुरुदेव ने खुलासा कह दिया कि जिस प्रकार वह मोक्ष प्राप्ति की आशा से किसी पण्डे के चरण स्पर्श नही कर सकते, उसी प्रकार जाच-परख के बगैर, वह गाधीजी की इस बात को नही मान सकते और स्वराज्य प्राप्ति के विश्वास मे चरखा नही चला सकते। उस समय जब कि समूचा देश गाधीजी के वश मे था, तब वस्तुत यह आश्चर्य की बात थी कि गुरुदेव की युक्ति-युक्त आवाज गाधीजी के विरोध मे होते हुए भी गौर से सुनी गयी।

गत सितम्बर-अक्टूबर १९२१ मे विदेशी वस्त्रो की होली के बारे मे गाधीजी और गुरुदेव के बीच छिडा जोरदार विवाद विशेषतया उल्लेखनीय है। इसी समय गाधीजी ने उनको 'महान प्रहरी' की सज्ञा दी थी। दोनो ने अपने विवाद के बारे मे रोम्या रोला को पत्र लिखे थे और रोला ने गुरुदेव के पत्रो को 'दिव्यप्रकाश की कविता' कहकर पुकारा था।

मतभेदो के बावजूद मित्रता का यह उदाहरण कितना अविस्मरणीय है कि गाधीजी की रुग्णावस्था मे गुरुदेव उनकी शैया पर उ हे भजन गा गाकर सुनाया करते थे और भूखहडताल की समाप्ति पर सतरे का रस अपने हाथो से पिलाया करते थे। लेकिन वह कभी भी गाधीजी की गलती महसूस करने पर उनसे खुलासा कहने से नही चूके। १९३४ ई० मे जब बिहार के भूकम्प को गाधीजी

ने ग्हार वासियो क पापा का फल कहकर पुकारा ता गुरुदेव उनकी इस धारणा को गलत और अविवेकपूर्ण कहने स बाज नही आए ।

गुरुदेव का अथक विश्व पयटन काफी भव्य और अर्थपूर्ण था । हालाकि पश्चिम जगत मे कही कही उनका स्वागत वैर विराव तथा 'स्वामी भावना' स किया गया किन्तु उनके मिशन की विश्वपरकता मे सभी अवगत थे ।

माच १९२९ मे एक कुओमिताग पत्र ने प्रलाप किया कि 'डा० रवीद्र के सिद्धात काल मार्क्स के सिद्धातो की ही भाति खतरनाक हैं ।' अमरीका पहुँचने पर एक अमरीकी तटकर अधिकारी ने उनसे पूछा कि क्या वह 'कुछ भी लिखे पढे ह !' इस अपमान से रुष्ट होकर गुरुदेव ने अमरीकी विश्वविद्यालयो के निरीक्षण का अपना निधारित कार्यक्रम रद्द कर दिया । कनाडा से अवश्य उन्होने अपने मित्र एन्ड्रूज को लिखा कि 'समाचार पत्र रहस्यवादी पोवात्य जगत क इस व्यक्ति स अत्यधिक प्रभावित हुए ह ।'

एक बार छल-प्रपच से तानाशाह मुसोलिनी ने गुरुदेव से अपनी प्रशसा के कुछ शब्द कहलवा लिए लेकिन बाद मे होश आन पर और राम्या रोला क परामर्श पर उन्होने अपने कहे हुए प्रशसापूर्ण शब्द वापस ले लिए । इस पर कुढकर इटली के फासिस्ट समाचारपत्रो ने उन्ह पानी पी पीकर कोसा ।

इतिहास साक्षी है कि विश्व के विभिन्न भागो मे अन्य किसी भी कवि को इतनी मान्यता नही मिली जितनी रवीद्र का, पर उनके कृतित्व मे कुछ ऐसे अश भी हे जिनका दुरुपयोग प्रतिक्रिया वादियो ने जी खोलकर किया है । उन्होने अपने रूस पर्यटन के समय भारत को कुछ पत्र लिखे थे जिनका सकलन बगला मे 'रशियेर चीठी' शीषक मे प्रकाशित हुआ । उन्होने इन पत्रो मे रूसी प्रगति से मुग्ध होकर रूस की काफी सराहना की है । इस ग्रथ के अग्रेजी अनुवाद पर ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबध लगा दिया था ।

१९३० ई० के बाद रवीद्र की आत्मा मे एक नयी प्रभा उतर आई । वह जीवन-भर सबल के विरुद्ध निर्बल का पक्ष लेते रहे । हालाकि इस अवस्था मे उनकी दृष्टि काफी शिथिल पड गयी थी पर फिर भी आवाज मे और सर्जना मे नया जोर आ गया था । उन्होने फासीवाद और उपनिवेशवाद का प्रबलतम विरोध किया । चीन, अबीसीनिया, स्पेन और चेकास्लोवाकिया मे फासिस्टी अत्याचारो पर उनकी प्रतिक्रिया काफो रोषपूर्ण थी । उनके जीवन के अतिम पाच वर्षो की सर्वश्रेष्ठ रचना 'अफ्रीका' है जा आज भी उतनी ही जीवत और प्रभावशाली है –

"तुम रोए और तुम्हारे क्रदन स्वर को कुचल दिया गया,
तुम्हारे वन पथ अश्रु और रक्त मे पकिल हो गए
और उन पर, लुटेरो के नालदार जूतो के चिह्न अकित है

भीत बच्चे अपनी माताओ की बाहो मे चिपटकर सो गए ।"

जब उनक एक जापानी कवि मित्र नागुची ने उन्हे जापानी फासिज्म पर पुनर्विचार करने के लिए लिखने का दुस्साहस किया तो गुरुदेव ने व्यग्यपूर्ण शब्दो मे उत्तर दिया—"तुम्हारे पत्र ने मुझे आघात पहुँचाया है। नरमुण्डो की मीनार पर एशिया की प्रतिष्ठा ।"

१९३१ ई० मे भारत की औपनिवेशिक हीनता से दुखी होकर उन्होने अपनी आस्था के ईश्वर से 'प्रश्न' किया—"क्या तू उन्हे भूल गया, जिन्होने तेरे वायुमण्डल को दूषित किया और प्रकाश सोख लिया? क्या तू उन्हे अपना प्यार दे सकता है?" रवीन्द्र ने अपनी सर्वोत्कृष्ट कृति 'गीताञ्जलि' मे (जनवरी, १९५१ ई० मे) लिखा—"मै विश्व कवि हू। मै चारो ओर देखता हू तो रोटी के लिए चीखते पुकारते भुखमरे अर्द्धमृत हजूम दिखाई देते है। मैने गावो मे स्त्रियो को कुछ बूद पानी के लिए जमीन खोदते देखा है क्योकि भारतीय गावो मे विद्यालयो की अपेक्षा कुए दुर्लभ है।"

वस्तुत साम्राज्यवाद से उन्हे बडी घृणा थी। मृत्यु शैया पर भी श्री पी० सी० महलानोबिस के प्रश्न के उत्तर मे सोवियत-जर्मनी युद्ध पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होने विश्वास प्रकट किया था कि चाहे जो हो, सोवियत रूस नही हार सकता।

गुरुदेव की महत्ता इसमे भी स्पष्ट है कि वह लोक के प्रति स्नेह तथा लगाव रखते हुए भी अपने अतिम क्षणो मे स्वय को एकाकी महसूस करते थे और इसके लिए आत्म प्रताडना करते थे—"

मै स्वीकारता हू अपनी निदा और अपने निर्माण की दरार को,
मेरे गीत, मै जानता हू विभिन्न रास्तो से गुजरे है, पर सभी जगह नही पहुचे,
और मै कान लगाए हू उस कवि के स्वर के लिए जो कृषक सा जीवन बिताता है और
उन कृषको का घनिष्ठ है जिन्होने धरा का स्पर्श कर लिया ।" (२१ जनवरी, १९४१ ई०)
वह काफी बेचैन थे। १३ फरवरी १९४१ ई० को उन्होने पुन लिखा —
'ये गाडी खीचते है और हल चलाते है
साम्राज्य ध्वस्त होते है और उनके अवशेषो पर जनता निर्माण करती है

अगस्त १९४१ मे भारत की यह महान आत्मा अधकार मे विलीन हो गयी। वह अपनी मातृभूमि को स्वतत्र नही देख सके पर उन्होने अपनी आत्मा को अवश्य स्वतत्र कर लिया। वह एक ऐसा प्रकाश दे गए जो कोने कोने को ज्योतित कर रहा है।

●●

एक बार मेरे यहा हस्तलिपि शास्त्र के आविष्कारक क्रीप्यूजामी मिलने आए और पूछा—"कुछ महान व्यक्तियो के हस्तलेख हो तो दिखाइये।" मैंने अनेक हस्तलेख दिखाए लेकिन उन्हे कोई पसन्द नही आया, पर जब टैगोर का जब हस्तलेख दिखाया तो क्रीप्यूजामी के नेत्र विस्मय से विह्वल हो गये और बोल उठे—"कितना सुन्दर और श्रेष्ठ। ऐसा हस्तलेख योरप के पुनर्जागरण काल के बाद आज तक देखने मे नही आया।"

—हरमन केजरलिग

युग-समस्या के प्रति रवीन्द्र का अवदान

राधाकमल मुकर्जी (डॉ०)

रवीन्द्र साहित्य के आधुनिक विश्वव्यापी समादर का प्रधान कारण विश्वकवि द्वारा प्राच्य व प्रतीच्य भावधाराओ का अद्भुत समन्वय किया जाना है। उनकी रचनावली मे जैसे योरोप के अति भाव प्रधान साहित्य एवम् चिंतन-धारा ने अनुप्रवेश किया, उसी प्रकार उसमे शाश्वत् भारतीय-दर्शन की सुस्पष्ट गम्भीर छाप भी प्रकट हुई। ऐसी ये सार्वभौमिक अभिज्ञता का विनिमय विश्व साहित्य मे अन्यत्र दृष्टिगोचर नही होता।

रवीन्द्रनाथ के जीवन-दर्शन से हम लोग अनेक राष्ट्रीय संकटो से मुक्ति लाभ कर सकते है। भारत आज विभिन्न दुर्निवार शक्तियो से विभक्त विखण्डित हो रहा है। कवि का यह ऐतिहासिक समग्र दृष्टिपात जिसके द्वारा यह निर्देश हुआ, विश्व के समग्र जनो आर्य, द्रविड, शक, हूण, पठान, मंगोल, योरोपीय आदि की भारत-भूमि मे एक भावी महत्वपूर्ण उत्कृष्ट समीकरण उपस्थित करेगा। यह भारतीय इतिहास का जगत् संस्कृति को अभिनव अवदान होगा। उस निर्देश की वर्तमान भारतीय समाज ने अवहेलना की है। भारतीय संस्कृति एवम् राष्ट्र की दृढता तथा धारावाहिकता-प्राप्ति विश्वकवि प्रदत्त उक्त दृष्टिकोण के अवलम्बन बिना असम्भव है।

भारतीय समाज आज विविध वर्ग संघर्ष तथा राजनैतिक दल द्वन्द्व से विमूढ तथा उद्भ्रान्त है। राष्ट्र का प्रगति-पथ नितान्त अनिश्चित् एवम् विपद् संकुल है। रवीन्द्रनाथ की समवाय मूलक सृजनात्मक "स्वदेशी समाज" की कल्पना मे स्वावलम्बी अर्थनीति के साथ लोक शिल्पकला व संस्कृति के विकेन्द्रित आधार पर परिपुष्ट एवम् सम्यक विकास लक्षित हुआ है। इसका अवलम्बन करके लक्ष लक्ष ग्रामो का वैज्ञानिक, अर्थनैतिक तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान सुकर होगा। वर्तमान सामुदायिक विकास योजना कवि रवीन्द्र की पूर्णावयव स्वदेशी समाज कल्पना का एक अंग मात्र है।

राजनैतिक दृष्टिकोण से आधुनिक यन्त्रचालित, अवैयक्तिक राजकर्मचारीय नियन्त्रण तथा समाजवाद सुलभ सर्वग्रासी विधि-नियमो द्वारा वास्तविक प्रजातन्त्र तथा पंचायत-राज्य लुप्त प्राय है। यह पथभ्रान्त प्रजातन्त्र का मर्मान्तक उदाहरण है।

इसी भांति ग्रामो का वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान पाश्चात्य अनुकरणमूलक विवेकहीन औद्योगीकरण से सम्भव नही होगा। वर्तमान अनिश्चित परिस्थिति मे राजनैतिक तथा अर्थनीतिक दिशा निर्देशनार्थ रवीन्द्र की कल्पना का सक्रिय सहकारितामूलक ग्राम-समुदाय ज्योतिस्तम्भ रूप है।

क्या प्राच्य, क्या प्रतीच्य, दोनो मे वर्तमान नैतिक एवम् आध्यात्मिक समस्या अति प्रबल स्फीतकाय समूह की प्रचण्ड दुर्निकार शक्ति है, यह सामूहिक शक्ति विस्तार व्यक्ति के अपरिहार्य स्वधर्म तथा स्वात त्र्य के ऊपर कुठाराघात कर रही है। सदा भास्वर लोकोत्तर मानव व्यक्तित्व की निरन्तर अवमानना हो रही है। कवि रवी द्र की ध्यान दृष्टि मे समूह शक्ति उतनी सत्य नही है, सगठन उतना सत्य नही है जितना सत्य व्यक्ति सत्ता है।

"सबार ऊपरे मानुष सत्य तहार ऊपरे नाइ"

अर्थात् सर्वोच्च सत्य मनुष्य है, उससे उच्च कोई नही है। यह भारतीय सस्कृति की चिरन्तन निगूढ चेतना है।

इस चेतना बिना समाज, राष्ट्र या विश्व मे सामाजिक याय, साम्य, एकता तथा शान्ति प्रतिष्ठा असभव है।

आज सारा जगत् शक्ति-मत्मत्त है। आणविक शक्ति, सगठन शक्ति, वर्ग क्ति, सम्पदा शक्ति राष्ट्र को राष्ट्र मे, समूह को समूह से, वर्ग को वर्ग से, व्यक्ति को व्यक्ति से विच्छि न कर रही है। यह सार्वजनिक अन्तिम विनाश का परिदर्शन है। कवि रवी द्र की आध्यात्मिक अनुभूति सृजित सामा य मानव मे प्रत्यक्ष भगवत् बोध तथा भगवान का मानवीकरण एवम् जीव बोध विश्व का एक मात्र आशा के द्र है।

यह अनुभूति कवि की व्यक्तिगत तथा गोपनीय रहस्यमय उपलब्धि नही थी। यथार्थ मे यह एक महत् विराट अवैयक्तिक भगवत् उपलब्धि का निगूढ प्रतीक है जिसमे भगवान् मानव जीवन एवम् इतिहास के उत्थान-पतन का एक ही साथ उदासीन साक्षी तथा भोक्ता है। ईश्वर का आत्म प्रकाश मनुष्य के कठोर परिश्रम, अपरिसीम क्लेश, अनुभावनीय दुर्गति मे परिलक्षित हाता है। मनुष्य जब तक अज्ञान, असहायता तथा अवमानना से मुक्त नही होता, तब तक भगवान् को भी मुक्ति नही मिलेगी।

इस क्लेशमय, दुर्गतिमय जगत् मे महाकवि की वाणी समग्र मानव परिस्थितियो मे सवदनामय, सृजनमय एवम् आशामय है। मानव-जाति के सुख दुख, आशा-निराशा, दुर्गति प्रगति के साथ अति निविड भाव से सयुक्त होने के कारण महामानव रवी द्र चिरकाल तक अमर रहगे। ••

सीमाओ की अतिक्रान्ति

हमारे युग का मन आज दिव्य और पार्थिव की जिस सधि-रेखा और सयोजन बिदु को खोज रहा है, उसका सब से अधिक आविष्कार, समकालीन सर्जको मे रवीन्द्रनाथ ने किया है। उनकी कृतिया सीमाओ की अतिक्राति का एक सतत सगीत है, वह एक ऐसा गीत गु जित प्रदेश है, जिसमे आत्म चैत य के सत्य की सूक्ष्म ध्वनियो और आलोचको ने, जीवन की सूक्ष्म विशदताओ का नया अर्थ प्रदान किया है। —अरविन्द

अंग्रेजी-सभ्यता और रवीन्द्र

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

रामविलास शर्मा (डॉ०)

बहुत से लागो का विचार है कि इस देश की सस्कृति मे जा नया उभार आया, उसका कारण भारत मे अ ग्रेजी राज था। ऐसे लोगो का कहना है सन् सत्तावन मे अगर अ ग्रेज हार जाते तो यह देश पिछडा ही बना रहता।

अ ग्रेजी सभ्यता के सम्पर्क मे आने से पुरानी भारतीय सस्कृति मे नई लहर दौडी। विदशी सभ्यता से पहले पहल साबका पडा बगाल को। इसलिए बगाल मे ही सबसे पहले नवजागरण शुरू हुआ। और इस नवजागरण की सबसे बडी उपज थे रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर बगाल के वैष्णव कवियो का बहुत असर पडा। उन्होने उन पर कविताए लिखी और उनका अनुसरण करते हुए भानुसिंहेर पदावली की रचना की। बगाल के हिन्दी के सत कवियो का प्रभाव भी उन्होने ग्रहण किया। पुरान रूढिवादी समाज की जात पात, छुआछूत, हिन्दू-मुस्लिम सिक्ख ईसाई के भेदभाव के विरुद्ध उन्होने जिस मानवता की प्रतिष्ठा की, उसका गहरा सम्बन्ध वैष्णव भक्तो और सतो की भाव-धारा मे है।

सभ्य अ ग्रेजी शासको ने यहा पर रूढिवाद के मुख्य आधार राजाओ और जमीदारो को अपना दोस्त बनाया। उन्होने हिन्दू मुस्लिम भेदभाव को खूब बढावा दिया और यहा से विदा होते समय एक राष्ट्र के बदले दो राष्ट्र बना गये। इस तरह भारत मे अ ग्रेजो की नीति और रवीन्द्रनाथ की विचार धारा एक दूसरे की विरोधी दिखाई देती है।

अ ग्रेजो ने रवीन्द्रनाथ का सम्मान किया। उन्हे 'सर' की उपाधि दी। उधर जलियानवाला बाग मे गोलिया भी चलाई। रवीन्द्रनाथ ने अ ग्रेजो के दमन का तीव्र विरोध किया और 'सर' की उपाधि उन्हे वापस कर दी।

अ ग्रेजो ने इससे पहले बगाल का विभाजन किया था। रवीन्द्रनाथ ने बगाल की एकता के लिए आदोलन किया। अ ग्रेज यहा के उद्योग धन्धो के विकास को रोकते थे। रवीन्द्रनाथ ने स्वदेशी आदोलन को बढावा दिया। अ ग्रेजो मे काले गोरे का भेद-भाव बहुत ज्यादा था। रवीन्द्रनाथ ने इस वर्ण-भेद की तीव्र आलोचना की। अ ग्रेज अपनी सभ्यता के प्रसार के बहाने एशिया और अफ्रीका के बहुत से देशो को गुलाम बनाये हुए थे। रवीन्द्रनाथ इन देशो की स्वाधीनता के प्रबल समर्थक थे। अ ग्रेजो ने रूसी क्रांति के बाद रूस और साम्यवाद को बदनाम करने मे कुछ उठा नही रखा। रवीन्द्रनाथ ने रूस की यात्रा की, वहा की जनता मे आत्मसम्मान की भावना को देखकर उसका जोरदार समर्थन किया, और भारत मे अ ग्रेजी राज से उसकी तुलना करते हुए देश की पराधीनता पर क्षोभ प्रकट किया।

अ ग्रेज साम्राज्यवादी युद्ध और हिंसा के प्रबल प्रचारक थे। रवीन्द्रनाथ विश्वशांति और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के उतने ही बडे समर्थक थे। अ ग्रेजो ने यहा की विभिन्न भाषाए बोलने वाली

जातियो मे आपसी फूट को बढावा दिया। उनके लिए पजाब फौजी भर्ती का केंद्र था, तो बगाल क्लर्कों को पैदा करने वाला सबसे उपजाऊ प्रदेश था। रवीन्द्रनाथ ने पजाब, सिंधु, गुजरात मराठा, द्रविड, उत्कल, बगाल की एकता के गीत गाये। अंग्रेजो ने यहा की भाषाओ को दबाकर हर जगह अंग्रेजी चलाने की कोशिश की। रवीन्द्रनाथ ने बगला लिखने के लिए पढे लिखे लोगो मे जबर्दस्त आंदोलन किया। उन्होने अपनी साहित्य-रचना द्वारा यह साबित कर दिया कि भारतीय भाषाए अंग्रेजी या यूरोप की भाषाओ की तुलना मे किसी तरह घटकर नही है। बगला भाषा मे उन्होने अपनी प्रतिभा का जो चमत्कार दिखाया, उसका असर हिंदी तथा भारत की अन्य भाषाओ के साहित्यकारो पर पडा और कुल मिलाकर अंग्रेजी का रोब दाब कम हुआ और यहा की भाषाए नये सास्कृतिक जागरण का माध्यम बनी।

यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी राज और अंग्रेजी सभ्यता दो चीजे है। रवीन्द्रनाथ ने अंग्रेजी सभ्यता मे ही राष्ट्रीयता और जनतत्र का पाठ पढा होगा। आखिर रवीन्द्रनाथ को लोग बगाल का शैली कहते ही थे।

इस सम्बन्ध मे निवेदन है कि जहा अंग्रेजी राज कायम नही हुआ, वहा भी राष्ट्रीयता और जनतत्र की भावनाए पैदा हुई। जो लोग अंग्रेजी जनतत्र से प्रेरणा ग्रहण करते थे, उन्होने स्वाधीनता आन्दोलन को प्रार्थना-पत्र पेश करने तक सीमित रखा। इस पुराने नेतृत्व को बहुत जल्दी अपनी जगह छोडनी पडी।

भारत के देशभक्तो ने फ्रासीसी राज्यक्राति, आयरलैण्ड आदि देशो के स्वाधीनता सग्राम और सबसे अधिक रूसी क्राति से बहुत बडी प्रेरणा पाई। शैली, मिल्टन या मिल से जो भाव और विचार उन्होने पाये, वे ऊपर बतायी हुई प्रेरणा के मुकाबले मे बहुत हल्के थे। यह न भूलना चाहिए कि राष्ट्रीयता और जनतत्र के विचार मुख्यत यही के सामाजिक जीवन से पैदा हुए और यहा के राष्ट्रीय आंदोलन का असर दूसरे देशो पर भी पडा।

रवीन्द्रनाथ अंग्रेजी कविता के प्रेमी थे। उसका असर उनकी कविता के रूप पर ज्यादा पडा है, विषय वस्तु पर कम। शैली के सिलसिले मे यह बात ध्यान देने की है कि उस पर जिस तरह प्लैटो का असर पडा था, उससे भी ज्यादा गहराई से रवीन्द्रनाथ पर उपनिषदो का प्रभाव था। शैली अपने देश के निरकुश शासन के खिलाफ प्रजातत्रवाद का समर्थक था। रवीन्द्रनाथ एक पराधीन उपनिवेश की स्वाधीनता के समर्थक थे। दोनो की राजनीतिक परिस्थितिया अलग अलग थी। और इसीलिए उनके राजनीतिक विचारो मे भी अंतर है। शैली ने इगलैण्ड और इटली के प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण किया।

रवीन्द्रनाथ ने भारत के और विशेषकर बगाल के प्राकृतिक सौन्दर्य पर बहुत कुछ लिखा। रवीन्द्रनाथ पर शैली से कही ज्यादा कालिदास का असर है। उनका सौन्दर्य बोध किसी भी अंग्रेज कवि की तुलना मे कालिदास के अधिक निकट है। ●●

रवीन्द्रनाथ और भारत का सांस्कृतिक नवोत्थान

रामधारीसिंह दिनकर



रवि बाबू का विचार था कि महाकाव्य की रचना का समय तब होता है, जब संस्कृति की अनेक धाराएं किसी एक स्थान पर मिलना चाह रही हों। यह बात उन्होंने रामायण और महाभारत को ध्यान में रखकर कही होगी। किन्तु, साहित्य के साधारण इतिहास से भी यह शिक्षा आसानी से निकाली जा सकती है कि जातियों के सांस्कृतिक जीवन में जब भी कोई बड़ा परिवर्तन आता है, समाज का मानस जब भी नये विचारों में आंदोलित होता है, तब उसके साहित्य का आकाश बदलने लगता है और लोगों के अन्तर्मन में जो विचार और भाव अस्पष्टता से गुंजार करते होते हैं, उन्हें सबल और सुस्पष्ट बनाने को महाकवि और महाचिंतक अवतार लेते हैं। काल का कारण कवि होता है अथवा कवि का कारण काल, यह बड़ा ही पेचीदा सवाल है। अधिकांश में होता यह है कि परिवर्तनशील समय अपनी नवीन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए नये कवियों, नये चिंतकों को जन्म देता है और ये नवीन चिंतक युग परिवर्तन की प्रक्रिया को और भी तेज बना देते हैं।

जब रवीन्द्रनाथ का आविर्भाव हुआ, उसके पहले ही भारत यूरोप के संपर्क में जा चुका था और आरंभिक कुश्ती के बाद उसने यूरोप के बुद्धिवाद, उसकी वैज्ञानिक दृष्टि, उसके स्वातंत्र्य-प्रेम, उसकी राष्ट्रीयता और औदार्य-भाव से एक प्रकार की मैत्री की प्रक्रिया आरंभ कर दी थी। रवीन्द्रनाथ प्राचीन भारत और नवीन यूरोप के बीच उत्पन्न इसी मैत्री के कवि हुए और इसमें कोई संदेह नहीं कि इस मैत्री का जितना विकास उनके साहित्य में हुआ उतना किसी और के साहित्य में नहीं। इसीलिए, वे नवीन भारत के सबसे बड़े राष्ट्रीय कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए, इसीलिए, रवीन्द्र साहित्य उस सेतु के समान है जिस पर चढ़कर भारत का अतीत उसके भविष्य की ओर गमन करता है।

रवीन्द्र जिस धारा के कवि हैं, वह भारत और यूरोप के सम्मिलन से उत्पन्न हुई थी और आज भी वह समाप्त नहीं हो पायी है। हम सब लोग आज भी उसके प्रवाह में हैं। इस धारा ने भारत में राममोहन राय से लेकर राधाकृष्णन् तक जितने भी चिंतक उत्पन्न किये उन सबकी मुख्य कल्पना यह रही है कि नये भारत के एक हाथ में धर्म की ज्योति और दूसरे में विज्ञान की मशाल होनी चाहिए। हम उन सत्यों को नहीं छोड़ सकते जो हमारे प्राचीन और अमर सत्य हैं अथवा जिन सत्यों ने सांस्कृतिक

जागरण के क्रम मे दुबारा जन्म ग्रहण किया है। साथ ही हमे उन सत्यो को भी अगीकार करना है जो विज्ञान से उत्पन्न होते है अथवा जिन्हे यूरोप ने सामाजिक प्रयोगो द्वारा प्राप्त किया है। पिछले डेढ सौ वर्षो से भारत एक विलक्षण प्रयोग मे सलग्न रहा है। इस अवधि मे उसका अधिकाश चिन्तन इस प्रश्न को लेकर चला है कि धर्म और विज्ञान, प्राचीन और नवीन तथा देह और आत्मा एव भौतिकता और अध्यात्म के परस्पर एकाकार होने की कोई राह है या नही। विरोधी तत्वो के बीच समन्वय के सधान मे लगे हुए भारत के वर्तमान मन को रवीन्द्र साहित्य से बहुत अधिक सहायता पहुँची है।

वेदो और उपनिषदो, विशेषत, उपनिषदो पर रवीन्द्रनाथ की श्रद्धा अशेष थी, किन्तु, उपनिषदो से आयी हुई प्रेरणा को उन्होने यूरोप से आये हुए सस्कारो के प्रसग मे लिखा। इसीलिए, रवि बाबू यह तो मानते है कि सारी सृष्टि एक ही ब्रह्म का परिवर्तित रूप है, किन्तु, वे शकर के मायावाद को नही मानते।

हा रे निरानन्द देश, पडि जीर्ण जरा, वहि विज्ञतार बोझा, भावि ते छे मने
ईश्वरेर प्रवचना पडि या छे धरा, सुचतुर सूक्ष्मदृष्टि तामार नयने।
लक्ष कोटि जीव लये ए विश्वेर मेला, तुमि जानितेछ मने सब छेलेखेला।

—हाय मेरे निरानन्द देश, जीर्णता का वसन पहने, सिर पर ज्ञान का बोझ उठाये तू यह समझता है कि तूने ईश्वर की प्रवचना को पकड लिया। लाखो, करोडो जीव जिस विश्व मे मेला लगा रहे है, तू उसे बच्चो का खेल समझता है।

कर्म दर्शन से उत्पन्न होता है। हम जैसे विचारो मे विश्वास करते है, हमारे आचरण भी वैसे ही हो जाते है। भारतवासी जिन दिनो यह विश्वास करते थे कि ससार झूठा है, सृष्टि कुछ नही है मिथ्याभास है, उन दिनो हमारा सबसे श्रेष्ठ कर्म सन्यास था। किन्तु, पिछली शताब्दी के सास्कृतिक जागरण ने इस निवृत्तिवादी विचार की नीव हिला दी और हमारे विशाल साहित्य मे प्रवृत्ति की बिखरी कडिया जहा भी टूटी पडी थी, उन्हे चुनकर हमने कर्मठता का दर्शन-क्षेत्र फिर से तैयार कर लिया। इस दर्शन का तेज स्वामी विवेकानन्द और स्वामी दयानन्द मे प्रकट हुआ और उसका सागोपाग आख्यान लोकमान्य तिलक के गीतारहस्य मे विद्यमान है। किन्तु, इस प्रवृत्तिमार्गी विचार की जैसी अद्भुत कविता रविबाबू ने लिखी, वैसी उनसे पूर्व किसी और ने नही लिखी थी। चू कि ससार सत्य है और वह परब्रह्म मे परिव्याप्त है, इसलिए, रवीन्द्रनाथ ससार त्याग को विहित कर्म नही मानते, न देह दडन द्वारा मुक्ति की प्राप्ति को वे कोई बडा लक्ष्य समझते है।

वैराग्य साधन मुक्ति, से आमार नय। इन्द्रियेर द्वार रुद्ध करि योगासन, से नह आमार।
ये किछु आनन्द आछे दृश्ये, गन्धे, गाने तोमार आनन्द रबे तार माझखाने।

—वैराग्य साधन से जो मुक्ति मिलती है, वह मेरे लिए नही है। इन्द्रियो का द्वार बन्द करके योगासन मे बैठना, यह मै नही करूगा। इसके विपरीत दृश्य, गन्ध और शब्द मे जो आनन्द है, उसके भीतर मै तुम्हारा आनन्द प्राप्त करूगा।

एक अन्य कविता मे भी उन्होंने कहा है, इस सुन्दर ससार मे, मै मरना नही चाहता। मनुष्यो के बीच मे जीवित रहना चाहता हू। सूर्य के इस प्रकाश मे, फूलो के इस कानन मे और जीवन की गति मे थरथराते हुए हृदय मे यदि मुझे स्थान मिले तो इस ससार मे मै जीना चाहता हू।

प्रवृत्तिमार्गी दर्शन की यह तरग पिछली सदी मे यूरोप की टकराहट से उत्पन्न हुई थी, किन्तु ऐसा नही है कि भारत मे वह पहले थी ही नही। वेदो का दृष्टिकोण प्रवृत्तिमार्गी दृष्टिकोण था और आनन्दवाद की शीतल किरणे उपनिषदो मे भी मिलती है। यह सत्य है कि जैन और बौद्ध साधनाओ ने निवृत्ति को अत्यधिक प्रमुखता दे डाली थी किन्तु, मध्ययुग मे आकर निवृत्ति के वक्षस्थल मे भी प्रवृत्ति के जाग्रत स्वर गुजार करने लगे थे। वैष्णवो मे ऐसे अनेक कवि हुए जिन्होने जीवित रहकर परम सौन्दर्य के निदिध्यासन मे निमग्न रहने को श्रेष्ठ एव जन्म मरण से छुटकारा पाने को तिरस्कार्य ध्येय समझा था। 'देवा तेरी भक्ति न छाडो, मुक्ति न मागा, तब यश सुनो सुनाओ,' इस कडी मे मुक्ति की लघुता का जो भाव है वह अनेक वैष्णव कवियो मे मुखरित मिलता है। रवीन्द्रनाथ के भीतर भारतीय साधना का यही आनन्दवादी ध्येय नये चमत्कारो के साथ उद्भासित हो उठा।

सामाजिक धरातल पर भारत ने पहले भी यह अनुभव किया था कि जन्मना सभी मनुष्य समान है तथा छूत अछूत का भेद धर्म से सिद्ध नही होता। किन्तु, रूढियो ने इस अनुभूति को दबा रखा था। इन रूढियो पर भी अत्यत निर्मम प्रहार पिछली सदी के सास्कृतिक जागरण ने आरभ किया जिसकी प्रतिध्वनि रवीन्द्र साहित्य मे बडी ही सुस्पष्टता से सुनायी देती है।

हे मोर दुर्भागा देश यादेर करेछ अपमान, अपमाने हते हबे ताहादेर सबार समान।

—हे मेरे अभागे देश, जिनका तूने अपमान किया है, एक दिन अपमान के धरातल पर तुम उन्ही के समान हो जाओगे।

ब्राह्मण सस्कार का रवीन्द्रनाथ आदर करते थे, किन्तु ब्राह्मणत्व की परिभाषा उनकी और थी। सत्यकाम की माता यह नही जानती थी कि उसके पुत्र का वास्तविक पिता कौन है, किन्तु, गौतम ने तब भी सत्यकाम को ब्राह्मण कहकर गले से लगा लिया क्योकि सत्यकाम और उसकी माता ने सत्य को छिपाने का प्रयास नही किया था। ब्राह्मणत्व एक गुणोत्कर्ष है, एक शक्ति और तेज है जो प्राप्त किया जा सकता है, रवीन्द्रनाथ ने अपने इस विश्वास को गोरा उपन्यास के नायक मे मूर्त किया है। गोरा किसी अगरेज दपति की सन्तान था, किन्तु ब्राह्मण सस्कार मे पालित होने के कारण वह बढकर इतना तेजस्वी हो उठा कि उसके भीतर से भारत की सनातन आत्मा बोलने लगी।

वर्तमान सास्कृतिक जागरण का एक लक्षण यह भी है कि वह धर्म के बाह्याचारो को महत्व नही देता। रवीन्द्रनाथ भी धर्म के बाह्याचारो के विरुद्ध थे। धर्म को वे सीधा और सरल रखना चाहते थे। उन्होने बार बार चेतावनी दी है कि धर्म को पकडे रहो, धर्मो को छोड दो। आशय यह कि मूलत सभी धर्म एक है, भिन्नता उनमे बाह्याचारो से उत्पन्न होती है। यदि बाह्याचार टूट जाय तो एक धर्म का पुजारी सभी धर्मो का पुजारी बन सकता है।

वैचारिक धरातल पर विश्व की एकता का जो स्वप्न अत्यंत धीमी गति से चल रहा है, उसे रवीन्द्रनाथ ने सुस्पष्ट देखा था और अपनी सबसे बडी भक्ति उन्होने इसी स्वप्न को अर्पित की थी। भारत की एकता के भी वे अद्भुत पुजारी थे। धर्मो, जातियो और भाषाओ की कृत्रिम दीवारा से विभक्त होने पर भी भारत का भविष्य उन्हें उज्ज्वल दिखायी पडा था। उनका विचार था कि बडे पमाने पर समग्र भूमडल को एक बनाने का कार्य जितना आवश्यक और महत्वपूर्ण है, छोटे पैमाने पर भारत की एकता का कार्य भी उतना ही आवश्यक है। भारतीय सभ्यता का इतिहास मनुष्य-जाति का वह इतिहास है जिसमे अनेक धर्मो, सप्रदायो और जातियो के लोग भिन्नताओ को भूलकर परस्पर एक होकर जीने का मार्ग खोज रहे हे।

"हेथाय आर्य, हेथा अनार्य, हेथाय द्राविड चीन, शक हूण दल, पाठान, मोगल एक देहे हो लो लीन।
तारा मोर माझे, सबाई विराजे केह नहे नहे दूर, आमार शोणिते रयेछे ध्वनित तारि विचित्र सूर।"

यह भारतीय एकता की अनुभूति की कविता है। यह भारत मे बसने वाली सभी जातियो के एकात्म होकर जीने की भावना का महागान है। भारत के द्रष्टा महाकवि का यह स्वप्न चरितार्थ होगा। प्रेम शका को पराजित करगा और अनेकता के कोट पर एकता की विजय लक्ष्मी अपनी पताका फहरायेगी। सकटो स हार मानने की बात भारत के लिए नही है। ●●●

जन-जन के स्वर

●

मैं तब बहुत छोटी थी और हैदराबाद मे रहती थी। मा मधुर स्वरो मे गुनगुनाती और गाती रहती। यद्यपि इन गीतो के बोल मेरी समझ से बाहर थे फिर भी गीतो की गगा मे डूबकर मे आत्मविभोर हो जाती। मन गद्गद हो जाता। रोम राम पुलकित हा जाता और मैं इन स्वर लहरियो मे सुधबुध खोये बह जाती। मा से पूछने पर वह कहती कि ये रवीन्द्र बाबू के गीत है, बगाल क जन जन के कठहार। बगाल के नर नारियो के कठो मे ये गीत ऐसे रम गये है कि नाव खेते हुये नाविक, खेतो मे खून पसीना बहाने वाले किसान, स्कूलो मे पढने वाले भोले-भाले बच्चे, घरगृहस्थी के चक्कर मे उलझी हुई गृहणिया, कल-कारखानो मे काम करने वाले मजदूर सभी अपनी धुन मे इन्हे गुनगुनाते रहते है, खेतो खलियानो, कस्बो गावा सभी जगह ये स्वर गूजते रहते है। दुख मे, सुख मे, मस्तियो मे, परेशानियो मे, वे स्वर लहरिया उनक साथी है। वास्तव मे ये स्वर जन जन के स्वर बन गये है।

— सरोजिनी नायडू

युग-द्रष्टा रवीन्द्र

•

सत्येन्द्र (डॉ०)

रवीन्द्र जिस युग की सन्तान थे, वह युग उनके अपने पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ, ब्राह्मधर्म प्रवर्तक राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द विद्यासागर, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, केशवचन्द्र सेन, माइकेल मधुसूदन दत्त, गिरीशचन्द्र घोष, रमेशचन्द्र दत्त का युग था। यह युग एक साथ भारतीय सामाजिक विधान के प्रति श्रद्धा का और भारतीय सामाजिक विधान के प्रति अश्रद्धा प्रेरित विद्रोह का था। अंग्रेजी शासन के प्रति घोर विद्रोह या गदर का तथा साथ ही अंग्रेजी शासन के प्रति अटल भक्ति का भी युग था। भारतीय साहित्य परम्परा के प्रति गौरव भावना का साथ ही उसी परम्परा के प्रति हीन भावना का युग था। पाश्चात्य साहित्य के प्रति वितृष्णा का और उसी के प्रति श्लाघा का युग था। युद्ध के उभार का ही युग नहीं था, अहिंसा और करुणा के प्रहार का भी युग था। प्राचीन लोक परम्पराओं में आस्था और अनास्था दोनों साथ-साथ इस युग में थी। यह जयदेव और कबीर को साथ ले चलने वाला युग था। यह शंकराचार्य और वात्स्यायन का हाथ में हाथ देकर ले चलना चाहता था। ऐसे असम्भव युग से सम्भव हुए रवीन्द्रनाथ। पूर्व और पश्चिम को स्थूल भूमि पर मिलाने का प्रयत्न इस युग का प्रधान धर्म था। दोनों के कथा तत्वों को जोड़ना, मानवीय और मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करना विवेकशील *(Rational)* प्रवृत्ति को प्रश्रय देना—ये सब इस युग में प्रतिफलित हो रहे थे।

रवीन्द्रनाथ ने पूर्व और पश्चिम को मिलाने की चेष्टा नहीं की, पूर्व में ही पश्चिम को पाने का प्रयत्न किया और आध्यात्मिक-भूमि पर पश्चिम को नीचे उतारकर पूर्व की गरिमा का सन्देश दिया। यह विश्व साहित्य के लिए अनुपम देन थी। नोबुल-पुरस्कार के रूप में विश्व ने इसे स्वीकार भी किया और श्रद्धा के जो पुष्प रवीन्द्रनाथ के विश्वकवि हो जाने के उपरान्त की गयी विश्व यात्राओं में चढ़ाये गये, वे इस स्वीकृति के स्पष्ट प्रमाण हैं।

रवीन्द्र में प्राचीन कवियों जैसी मुमुक्षता थी, ज्ञान से अज्ञान सत्ता को जानने की प्रबल इच्छा। 'डाकघर' नाम के नाटक में बालक की जिस बालोचित प्रबल उत्कंठा का निरूपण किया गया है, वह कवि के अपने बालपन की ही उत्कण्ठा हो सकती है, पर वह उत्कंठा उनमें निरंतर रही। उसने घर में बन्द खिड़की से बाहर के विस्तीर्ण विराट को देखकर, अपनी उत्कंठा को दूर दीखने वाले डाकघर पर केन्द्रित किया, उसने समझा कि उस डाकघर के द्वारा उसके राजा का पत्र उसके पास आयेगा और वह राजा का डाकिया बनकर राजा की चिट्ठियां लाने ले जाने का काम करेगा। यह प्रतीकात्मक नाटक

'बालक डाकघर राजा' की त्रयी स जीव गुरु ब्रह्म की कल्पना प्रस्तुत करता है। कि तु इसमे प्रमुख उपलब्धि बालक मे जाग्रत उत्कठा सम्ब धी है। इस उत्कठा का आधार है आस्तिकता, आस्था—राजा है उसके पास जाना चाहता है। उत्कठा की परिणति कामना मे होती है, यह कामना इस अटल विश्वास के कारण कि एक दिन राजा का स देश या पत्र उसके पास आयेगा, अवश्य आयेगा—इसके कारण वह कामना धार्मिक श्रद्धा का रूप ग्रहण कर लेती है।

पर कवि मे ऋषियो जसी उत्कण्ठा या जिज्ञासा या मुमुक्षता ही नही उसमे ऋषियो जैसी दार्शनिक अनुभूति, यथार्थ-दर्शन अथवा साक्षात् अनुभव से हुई अनुभूति भी है। प्रकृति प्रतिशोध के सयासी मे वह अपने आध्यात्म क विकास की इस उपलब्धि को प्रकट करता है– वैराग्य मे प्रवृत्त सयासी मे सु दरी ग्राम बाला क सौन्दर्य मे यह सत्य उद्घाटित होता है कि वह अनन्त (*Infinite*) सान्त (*Finite*) मे ही मिलता है और तब उनक समस्त काव्य और कृतित्व मे इस उपलब्धि से प्रप्रेपित वह हर्ष उल्लास आन द व्याप्त मिलता है जिसम विश्व का कण कण कवि को आनन्दित प्रतीत होता है। पीडा भी जहा आन द का ही रूप है।

विश्व के सा त कण-कण मे अन त की उपलब्धि के आनन्दोल्लास के दर्शन से समस्त काव्य ओत प्रोत है, इसी भावना की विविध रूपा तर और विविध व्याख्याए कवि की वाणी मे काव्य बनकर फूटी है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है रवी द्र की वाणी त्रिविक्रम की भाति भू, अ तरिक्ष से आकाश क रहस्य मे विसर्जित होती है यह रहस्यमयता अथवा अस्पष्टता काव्य मे क्या आती है। इसके सम्ब ध मे विश्व कवि ने काव्य भारती ओ बालक चैत्र, १२९३ मे बताया है —

'काव्ये अनेक समये देखा जाय भाषा भाव के व्यक्त करिते पारेना केवल लक्ष्य करिया निर्देश करिया दिवार चेष्टा करे से स्थले सेई अनति व्यक्त भाषा एकमात्र भाषय एइ प्रकार भाष के कैह बलोन 'धूया' कह बलैन छाया, कैह बलैन भागा भागा, ए किछु दिन हइल नवजीवनेर श्रद्धास्पद सपादक महाशय किंचित हास्यरसावतारणार चेष्टा करिते गया ताहाकै 'काव्यि' नाम दियाछेन।'

इसमे कवि न बताया है कि भाषा की प्रकृत असमर्थता के कारण भी अस्पष्टता आती है। वह आगे कहते है —

'प्राकृर नियम अनुसरे कविता कौथाओ स्पष्ट कौथाओ अस्पष्ट, सपादक एव समालोचकेरा ताहार विरुद्धै दरखास्त एव आ दोलन कारलेओ ताहार व्यतिक्रम हइवार जौनाइ। चित्रैओ जैमन काव्येओ तै मानै, दूर अस्पष्ट निकट स्पष्ट, वेग अस्पष्ट अचलता स्पष्ट मिश्रण अस्पष्ट स्वातन्त्र्य स्पष्ट। आगा गाढा समस्तइ स्पष्टसमस्तइ परिष्क्रम से केवल व्याकरेण नियमेर मध्ये थाकिते पारे किन्तु प्रकृतिते आ नाय, काव्ये आ नाइ

"प्रकृति मे जैसे स्पष्ट तथा अस्पष्ट साथ है वैसे ही काव्य मे भी है। यह प्रकृति के कारण अस्पष्टता दूसरा तर्क है। वह और आगे कहते है कि —

"जाहारा मनोवृत्तिरे सम्यक अनुशीलन करियाछेन ताहाराइ जाने जेमन जगते आछे तेमनि अतिजेगत आछे। सेइ अतिजगत जाना एव ना जानार मध्ये, आलोक एव अन्धकारेर साझारवन विराज करित छे। मानव जगत एव जगदातीत राज्ये वास करे। ताइ ताहार सकल कथा जगते सगे मेलेना। एइ ज य मानवेर मुख हइते एमन अनेक कथा बोहिर हय जाहा आलोक अन्धकारे मिश्रत जाहा बूझा जाय ना अथवा न बूझा जाय। जाहा के छायार अनुभवी कारे अथवा प्रत्यक्षेर धिक सत्य बलिया विश्वास करि सेइ सर्वत्र व्यापी असीम अति जगते रहस्य काव्य जखन कौन कवि प्रकाश करिते चेष्टा करेन, ताहार भाष सहजे रहस्यमय हइया उठे।"

यह तर्क मनोभूमि विषयक अनुभूति मे सम्बन्धित है। इस विवेचन से स्पष्ट हे कि भाषा, प्रकृति और मन अनुभूति तीनो ही रहस्य काव्य की दृष्टि मे सहायक होते हे।

कि तु विश्वकवि रवीन्द्र ने देश प्रेम की कविताए भी लिखी हे इ ही मे से जन गण मन' वाली कविता आज राष्ट्रगीत के स्थान पर प्रतिष्ठित है। यही नही उन्होने वैष्णव-भक्तो की परिपाटी मे ब्रजभूमि मे काव्य रचना भी की। इसका नाम रखा था 'भानुसिहेर पदावली'। इन पदो मे रवीन्द्र ने अपना नाम भानुसिह रखा था।

देश-प्रेम अथवा राष्ट्रीय भावनाओ से युक्त कविताओ के अतिरिक्त इनके सामाजिक व्यग्य भी कम प्रसिद्ध नहो ह। इनमे इन्होने दीन दुखियो के प्रति सहानुभूति तथा अत्याचारियो के प्रति भर्त्सना का भाव प्रकट किया है। इन सामाजिक व्यग्य-काव्यो मे 'दुरत आशा' 'नवबग वीर' 'हिटिगछट', 'जूतार-आविष्कार' विशेष उल्लेखनीय ह।

महाकवि रवीन्द्र की प्रत्येक कविता सामाजिक हो, चाहे राष्ट्रीय चाहे दार्शनिक, चाहे रोमान्टिक रहस्यवादी, सभी मे दृष्टिकोण अत्यन्त उदार और व्यापक है। ऋषि युगीन महान् कल्पना से इस विशद दृष्टिकोण का प्रेरणा मिली है। आपकी अन्तर्राष्ट्रीयता राष्ट्रीयता के बन्धनो के ऊपर से विस्तृत हुई है। कृण्वन्तो विश्वमार्यम, से नही 'ईशावास्यमिद सर्वं यत्किञ्चित् जगत्या जगत् तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा ' के आदर्श मे उनके काव्य की प्रत्येक पक्ति अनुप्राणित हे। पाश्चात्य प्रभाव ने उनके काव्य को केवल प्रभविष्णुता अथवा एक व्यक्तित्व-वैशिष्ट्य ही प्रदान किया है। इसके रहस्य का रहस्य वह गायत्री रही है जिसमे प्रार्थना है कि 'ओम्भूर्भुव स्व तत्सवितुर्वरेण्य भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योन प्रचोदयात्' विश्वराष्ट्र या अन्तराष्ट्रीयता की भावना का मूल मन्त्र था वह भारतीय मन्त्र जो यह कहता था, 'वसुधैवकुटुम्बकम्'।

फलत रवीन्द्र का काव्य उपनिषद् और सतो की परम्परा मे उतरा है। पर उसमे पाश्चात्य से प्रसारित नव्य मानसिकता के लिये नयी व्याख्या के साथ उसी की प्रभविष्णुता और व्यक्तित्व वैशिष्ट्य से परिपूर्णता आ गयी है। उनके काव्य मे बगाली देश की क्षेत्रीयता की उपेक्षा भी नही। रवीन्द्रनाथ भारतीय प्राचीन शास्त्रीय सगीत पद्धति के भी ज्ञाता थे। उसी ज्ञान से नव सर्जना, नव भावना के लिये उन्होने नये सगीत को भी जन्म दिया।

●●●

हमारी शिक्षा प्रणाली

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

हम पाठशालाओं की शिक्षा देने को एक प्रकार की कल या कारखाना समझते है। अध्यापक लोग इस कारखाने क एक प्रकार के पुर्जे है। साढे दस बजे या दस बजे घटा बजाकर कारखाने खुलते है। पुर्जो का चलना आरम्भ हो जाता है और अध्यापको की जबान भी चलने लगती है। चार बजे कारखाने बन्द हो जाते है। पुर्जे अर्थात् अध्यापक भी अपनी जबान बद कर लेते है। उस समय विद्यार्थी भी इन पुर्जो की कटी छटी दो चार पृष्ठ की शिक्षा लेकर अपने अपने घरो को वापस चले जाते है। इसके पश्चात् परीक्षा के समय विद्यार्थी की बुद्धि का अनुमान लगाया जाता है। इस पर 'मार्का' अथवा नम्बर लगा दिये जाते है।

कारखानो या मशीनो मे एक बडी विशेषता यह हुआ करती है कि जिस नाप या वजन की अथवा जिस प्रकार की वस्तु की आज्ञा दी जाती है, ठीक उसी प्रकार की वस्तु तैयार हो जाती है। एक कारखाने मे बने हुए सामान मे और दूसरे कारखाने मे बने हुए सामान मे विशेष अन्तर नही होता और इससे नम्बर लगाने मे बडी सुगमता रहती है।

परन्तु एक मनुष्य की दूसरे मनुष्य से तुलना नही की जा सकती। प्रत्येक दो मनुष्यो मे बडा अन्तर होता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य जो कुछ दूसरे मनुष्य से पा सकता है, वह स्वय प्राप्त नही कर सकता। कारखाना किसी वस्तु को सामने तो रख देता है, परन्तु उठाकर दे नही सकता। वह तेल तो दे सकता है परन्तु दिये का जला देना उसके बस की बात नही।

योरुप की स्थिति हमारे देश से बिल्कुल भिन्न है। वहा मनुष्य सभा सोसाइटियो मे रहकर मनुष्य बन सकता है। विद्यालय तथा महाविद्यालय उसे केवल थोडी सी सहायता देते है। वहा के रहने वाले जो शिक्षा प्राप्त करते है, वह उनकी सामाजिक स्थिति से भिन्न नही होती। वह सामाजिक जीवन का अग है और उसी मे फूलती फलती है।

यही कारण है कि वहा की पाठशालाए उनके राष्ट्रीय जीवन से सबधित है। परन्तु जहा पाठशालाए चारो ओर से राष्ट्र व जाति के साथ इस प्रकार एक होकर नही मिल सकती और जाति के साथ केवल बाहरी रूप से चिपकी रहती है, वहा वह सदा रूखी और जीवन रहित बनी रहती है।

हमारे देश की स्थिति ठीक इसी प्रकार है। उनमे हम जो कुछ प्राप्त करते है वह हम बडी कठिनता तथा परिश्रम से पाते है और वहा प्राप्त की हुई शिक्षा ऐसी होती है कि प्रयोग के समय उसका कुछ भी लाभ नही होता। दस बजे से लेकर चार बजे तक जो कुछ हम कठस्थ करते है, जो कुछ पढते है, उसका जीवन के साथ, और मनुष्य के साथ तथा घर के साथ कुछ भी सम्बन्ध दिखाई नही देता। घरो मे माता पिता, सम्बन्धी-मित्र आदि जो कुछ बातचीत करते है और जिन विषयो पर वार्ता होती है, हमारी पाठशालाओ की शिक्षा के साथ उनका कोई मेल नही होता। बल्कि कई बार उनमे बहुत भेद पाया जाता है। ऐसी स्थिति मे हमारी पाठशाला एक प्रकार के इंजन है। वह भिन्न वस्तुओ को आपस मे जोड अवश्य सकते है, परन्तु उनमे जीवन नही डाल सकते।

इसलिए कहते है कि योरुप के विद्यालयो की ज्यो की त्यो ऊपर ऊपर की नकल कर लेने से ही यह न समझ लेना चाहिए कि हमने वैसे ही विद्यालय बना लिये है जैसे कि योरुप मे है।

पिछले समय मे हम गुरुजनो से शिक्षा ग्रहण करते थे तो अध्यापको अर्थात् मनुष्यो से शिक्षा प्राप्त करते थे न कि कलो से, उस समय न तो हमारी शिक्षा के विषय इतने लम्बे-चौडे होते थे और न उस समय की हमारी जाति मे प्रचलित रीति रिवाज हमारी पाठ्य शिक्षा से भिन्न होते थे। परन्तु यदि हम बिलकुल वही समय आज फिर यहा लाना चाहे और इसके लिए चेष्टा करे तो यह भी एक प्रकार की नकल होगी।

इसलिए यदि हम अपनी वर्तमान आवश्यकताओ को भली प्रकार समझते हो तो हमे ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि हमारी पाठशालाए घर का काम दे सके। पढाई के विभिन्न विषयो के बारे मे जानकारी के साथ-साथ शिक्षा की रीतियो का भी आनन्द प्राप्त हो सके। शिक्षको को चाहिए कि पाठ्य शिक्षा देने तथा शिक्षार्थियो के दिलो को सुधारने के दोनो भार अपने ऊपर ले ले। हमे देखना होगा कि हमारे देश मे पाठशालाओ मे और चारो ओर के वातावरण मे जो भिन्नता है, उसे देखकर विद्यार्थी के मन पर कोई बुरा प्रभाव न पडे। और इस प्रकार की शिक्षा केवल दिन मे कुछ घण्टो के लिये बिलकुल स्वतन्त्र होकर, वास्तविकता से दूर रह जाने के कारण एक अधिक कठिनाई से पचनेवाली वस्तु न बन जाये।

विदेशो मे पाठशालाओ तथा महाविद्यालयो के साथ ही घर या छात्रावास भी हुआ करते है। भारत मे भी अब उनकी नकल होने लगी है, परन्तु इस प्रकार की पाठशालाओ को एक प्रकार की बारके, पागलखाने, अस्पताल या बन्दीगृह ही समझना चाहिए।

विदेशो की नकल करने से हमे विशेष लाभ नही होगा। उन्हे छोड देना पडेगा। कारण, हममे और उनमे बडा अन्तर है। हमे सबसे पहले इन बातो पर विचार करना होगा कि किस प्रकार की शिक्षा प्रणाली युगो से भारत के लोगो के दिलो को जीतती रही है उनमे जीवन का रक्त कैसे फैल सकेगा।

हमारे लिए सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि हम अंग्रेजी शिक्षा और पाठशालाओ के साथ साथ अंग्रेजी समाज का अर्थात् वहा की शिक्षा और पाठशालाओ को अपने अपने उचित स्थान पर नही देख सकते। हम उसे जीवित दुनिया के साथ मिलाना नही जानते। और इसीलिए हमे यह भी पता नही कि विदेशी स्कूलो की नकल जो हमारी पाठशालाओ मे विद्यमान है, उसे अपने जीवन के साथ कैसे मिलाना चाहिए।

हमारे जीवन मे आज बचपन से पढने लिखने की चक्की पीसना आरम्भ कर दिया जाता है। इस शिक्षा प्राप्ति के साथ मन का मिलाप अथवा सम्बन्ध बहुत ही कम होता है। और यदि सच पूछा जाए तो यह शिक्षा आनन्द के लिए प्राप्त ही नही की जाती। इसके प्राप्त करने का वास्तविक अभिप्राय तो पेट भरने तथा अन्य आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए रुपया है। और इससे नीचे उतरकर दूसरा उद्देश्य यह होता है कि सम्मान तथा नाम पैदा किया जाए। ऐसी स्थिति मे साहस तथा प्राकृतिक शान्ति और प्रसन्नता की बाते किस प्रकार और कहा से आ सकती है?

शिक्षा के विषय मे जो हमारा मत है, उसका साराश यह है कि बच्चो के मन मे इस प्रकार का अन्ध संस्कार कदापि नही जमने देना चाहिए कि पुस्तक पढना ही सीखना कहलाता है। यह बात उन्हे पग पग पर बतलाने की आवश्यकता है कि पुस्तको मे जो विद्या का एकत्र कोष विद्यमान है, वह प्रकृति के कभी समाप्त न होनेवाले कोष मे से ही लिया गया है अर्थात् मनुष्य को प्रकृति के साथ मिलने से जो कुछ प्राप्त होता है, वही पुस्तको मे लिख दिया जाता है। आजकल पुस्तक पढने का रोग बहुत बढता जा रहा है। इसलिए बच्चो को इसके दोष भली प्रकार समझा देने चाहिए। प्राचीन काल मे यद्यपि लिखने का रिवाज हो गया था, परन्तु गुरुकुलो तथा तपोवनो मे पुस्तको का प्रयोग नही किया जाता था। उस समय गुरु मौखिक शिक्षा दिया करते थे। और शिष्य उस शिक्षा को कापी मे नही लिखते थे। बल्कि मन की पुस्तक मे लिख लिया करते थे। इस प्रकार एक दीप मे दूसरे तथा दूसरे से तीसरे दीप के जलने का सदा बढने वाला क्रम चलता रहता था। इस समय यद्यपि यह सम्भव नही है कि पूर्णतः वही प्राचीन रिवाज वापस लाई जा सके, परन्तु फिर भी यह आवश्यक है कि जहा तक हो सके विद्यार्थियो को दूसरो की कृतियां तथा लेख अध्ययन के लिए न दिए जाए। गुरु से जो कुछ सीखे, उसी को स्वय बनाए। अर्थात् जिन बातो को उन्होने भली प्रकार समझ लिया हो, उन्हे वह अपनी भाषा मे लिखे। केवल ऐसी ही पुस्तके उन्हे पढने को देनी चाहिए। यदि इस ढग का प्रयोग किया जाए, तो यह बात कभी उनके स्वप्न अथवा विचार मे भी न आएगी कि पुस्तके ईश्वर के मुख से निकले हुए वेदो के वचन है। वह समझ लेगे कि जिस प्रकार हमने अपने विचारो को प्रकट किया है, उसी प्रकार बीते हुए युग के विद्वानो ने अपने विचारो को प्रकट करने के लिए पुस्तके लिखी थी। उनको पता लग जायगा कि ग्रन्थ ईश्वर के बनाए हुए नही है। 'भारत के वास्तविक वासी आर्य लोग नही थे। यह लोग यहा मध्यएशिया से आए है' 'वेद ईसा से दो हजार वर्ष पहले लिखे गए थे।' यह सब बाते हमने पुस्तको मे ही सीखी है। बचपन मे पुस्तके हम पर एक प्रकार का मोहिनी मत्र का

प्रभाव डाल देती हे। और यही कारण हे कि ऊपर लिखी तथा अ य ऐसी ही और बाते हमारे विचार मे बिल्कुल विश्वसनीय हो जाती हे। बच्चो को पहले से ही यह समझा देना चाहिए कि यह सब अनुमान हे।

और कुछ युक्तियो पर यह सब निर्भर हे। यदि सभव हो तो उन युक्तियो की जड मे जो बात हो, उन्हे विद्यार्थियो के सम्मुख रख देना चाहिए। ताकि बच्चो को अनुमान लगाने तथा परिणाम निकालने की शक्ति को साहस मिले। अर्थात् उ हे इस योग्य बना देना चाहिए कि वह स्वय भी नये नये परिणाम निकाल सकें और अनुमान लगा सके। यदि वह बचपन से ही धीरे-धीरे इस बात को अनुभव करने लग जाए गे कि पुस्तके किस प्रकार और कैसे-कैसे अनुमानो तथा प्रभावो से तैयार की जाती हे, तो उन्हे निश्चय ही पुस्तको का वास्तविक लाभ प्राप्त हो जाएगा। और वह पुस्तको के अध प्रशासन के प्रभाव मे भी न आयेगे। स्वय को उसने स्वतन्त्र रख सकेगे। इसके अतिरिक्त एक और लाभ भी होगा। अपने व्यक्तिगत प्रयास से जो उनकी विद्या ग्रहण करने की प्राकृतिक मस्तिक की शक्ति है, उसे वह शिक्षा जो हमारे सिर पर लदे हुए बोझ की भाति है, बिगाड अथवा नष्ट न कर सकेगी। पुस्तको पर उनके मन को पूर्ण योग्यता प्राप्त होगी। बाल बच्चे जो कुछ थोडा बहुत सीख सकते ह, यदि सीखने समय उसका प्रयोग करना भी सीख ले, तो शिक्षा उनके लिए बोझ न रह जाएगी, वह स्वय शिक्षा को वश मे कर लेगे। इसमे सन्देह नही कि लाग हमारी इस बात का अनुमोदन करने मे तनिक भी असमर्थता प्रकट न करेगे। परन्तु जब इस युक्ति के अनुसार कार्य करने का अवसर आएगा, ता उनका साहस कम हो जाएगा। वह सोचेगे कि बच्चो को इस प्रकार शिक्षा नही दी जा सकती। यह अत्यन्त असभव बात है। और यह बात है भी सत्य। यह लाग जिसे शिक्षा कहते हे, वह वास्तव म इस प्रकार नही दी जाती। बच्चो के लिए कुछ पुस्तक तथा विषय निर्धारित कर देना और निश्चित समय के अन्दर एक निश्चित रीति मे परीक्षा ले लेना इसी का यह लोग विद्या सिखाना समझते हे और जहा इस प्रकार मे शिक्षा की जाती है, उस स्थान को विद्यालय कहते है। उनकी बुद्धि के अनुसार जैसे शिक्षा कोई पृथक वस्तु है। यदि उसे देखना हो तो उनके विचार मे बच्चे के मन से पृथक, कुछ अन्तर पर देखना चाहिए। अर्थात् पुस्तको के पृष्ठो तथा उनके शब्दो की सख्या की गणना करके उसकी शिक्षा का अनुमान लगाना चाहिए। चाहे इस शिक्षा से विद्यार्थियो का मन पिस जाए चाहे वह पुस्तको के दास बन जाए, चाहे उसकी व्यक्तिगत बुद्धि पर पर्दा पड जाए, चाहे वह अपनी प्राकृतिक शक्तियो द्वारा ज्ञान प्राप्त करन की योग्यता का अपने अभ्यास, तथा पुस्तको के कष्टदायक शासन की कृपा मे सदा के लिए छोड बैठे। परन्तु आश्चर्य यह है कि फिर भी इसे शिक्षा ही कहेगे।

बच्चो का मन जितनी विद्या को ग्रहण कर सके, उतनी ही शिक्षा सच्ची शिक्षा है चाहे वह कितनी ही थाडी क्यो न हो।

●●●

रवीन्द्र का शिक्षा-दर्शन

• मार्जरी साइक्स

गुरुदेव एक महान् शिक्षक थे, वर्तमान शताब्दि मे ससार के महान् शिक्षको मे से एक थे—परतु क्या शिक्षा के बारे मे उनका कोई दर्शन था ? 'दर्शन' यानी विचारो और सिद्धान्तो की एक तर्कयुक्त सामजस्यपूर्ण योजना, जिसके लिये काफी विचार, मनन और विश्लेषण किया गया हो। क्या गुरुदेव के पास शिक्षा के बारे मे ऐसी कोई योजना थी ?

यह कहना ज्यादा सही है कि उनके लिए शिक्षा, जीवन के समान ही एक कला थी न कि विज्ञान, उनके लिये शिक्षा एक कविता थी न कि एक सिद्धात। जब उन्होने स्वय शातिनिकेतन के बारे मे लिखा, तो उसे उन्होने 'एक कवि की पाठशाला' बताया। उन्होने लिखा—"जब मैने शाल वृक्ष की छाह मे कुछ बालको को जमा किया, तो मैने मानो एक कविता लिखनी आरम्भ की।" कवि एक कलाकार होता है— एक शिल्पकार, वह जीवन की सामान्य वस्तुओ को लेता है और उनमे सुन्दरता की नई नई आकृतिया तैयार करता है। वह अनुभवो का विश्लेषण नही करता, वह उन्हे गहरा और समृद्ध बनाता है।

जब तक हम शिक्षा के क्षेत्र मे किये गये गुरुदेव के प्रयोग का एक कवि की कृति के रूप मे नही देखेगे, हम उसे समझ नही सकेगे। उनकी यह कविता शब्दो मे नही बल्कि तरुण, विकासमान मनुष्यो के जीवन मे लिखी गई है। कवि के रूप मे उनका काम था, इन विकासमान जीवनो को लेकर इससे सामाजिकता और व्यक्तिगत अनुभवो का एक पूर्णतर और अधिक समृद्ध ससार उत्पन्न करना।

शिक्षा के प्रति एक शिल्पकार या कवि का यह दृष्टिकोण हमे अत्यत महत्वपूर्ण सिद्धातो को समझने मे सहायता देता है। खासकर गुरुदेव के काम से हम आत्म-प्रकटन की स्वतत्रता और विकास का सबध समझ सकते हे और व्यवस्था व अनुशासन के सिद्धान्त को भी। जीवन के ये दो पहलू प्राय परस्पर-विरोधी अर्थ मे रखे जाते हे। स्वतत्रता का अर्थ मनमानी स्वच्छदता और अनुशासन का अर्थ बाध्यता माना जाता है। गुरुदेव का जीवन और कृति हमे बताते है कि किस प्रकार स्वतत्रता और अनुशासन एक साथ रह सकते हे—एक दूसरे के पूरक बनकर।

यह स्पष्ट है कि कोई भी कलाकार या शिल्पकार अपनी कला मे आत्म प्रकटन की स्वतत्रता तभी पा सकता है, जब कि वह अपनी सामग्री की प्रकृति और भीतरी तत्वो को समझकर उसके अनुसार काम करे। लकडी पर काम करने वाला तभी उपयोगी और सुन्दर वस्तुए बना सकता है, जब वह लकडी के स्वाभाविक गुणो और मर्यादाओ को समझे और उनके अनुसार काम करे। उसे सामान्यत सब प्रकार की लकडिया का अध्ययन करना चाहिये और जो जो टुकडे वह लेता है, उस-उस टुकडे का भी अध्ययन करना चाहिये। यह ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे काफी समय तक अनुशासन पूर्वक प्रत्यक्ष काम करना होगा। सब से अच्छा तो यह होगा कि वह किसी निपुण कलाकार के हाथ के नीचे अपने

को रखे और उसके व्यवस्थित अनुभव मे मार्गदर्शन प्राप्त करे। इस प्रकार अनुशासन बद्ध धैर्य और आज्ञा पालन के बिना निपुणता प्राप्त न होगी और उसके बिना सृजन की स्वतत्रता भी नही मिलेगी। लकडी पर कलाकृति करने वाले के समान दूसरे सभी शिल्प और हस्तकलाओ पर यह बात लागू होती है। कविता हो, साहित्य हो, या जीने की कला हो या विकासमान जीवन का पोषण करने की वह कला हो, जिसे हम शिक्षा देना कहते हे। धैर्य और प्रेमपूर्वक सवसामान्य बालको का और उसको सौपे गये हर एक बालक का अध्ययन किये बिना कोई भी व्यक्ति शिक्षक नही बन सकता।

अधिकाश लोग जानते ह कि रवीन्द्रनाथ ने अपने बचपन के शहरी स्कूलो मे प्रचलित जेल के समान परिस्थितियो के खिलाफ विप्लव किया था और ऐसी शाला की स्थापना की थी, जहा विद्यार्थी प्रकृति के साथ घनिष्ट सम्बध बनाने मे स्वतत्र हो। लगभग बारह वर्ष की उम्र मे जब वे अपने पिता के साथ शातिनिकेतन आये, तब गाव के बाहर स्वतत्रतापूर्वक अकेले घूमने मे उन्हे महान् आनद प्राप्त हुआ व इस उमर मे प्रकृति के साथ रहने मे जो आनद अनुभव हुआ, उसके निम्नलिखित तीन तत्व थे।

(अ) एक महान पिता और गुरु के सानिध्य मे रहने से सुरक्षा का आभास होता था, (आ) इसमे यह गौरव मालूम पडता था कि हमारी भी कुछ जिम्मेदारी है और हम पर विश्वास किया जा रहा है और (इ) इसकी पृष्ठभूमि मे जीवन का एक सुव्यवस्थित ढाचा था।

व्यक्तिगत सम्बन्ध के बिना, जिम्मेदारी के बिना या स्थायी व्यवस्था रहित 'स्वतत्रता' मे कोई आनद नही होता, उल्टे उसमे एक प्रकार का थोथापन और भय रहता है। ऐसी 'स्वतत्रता' उस लावारिस बच्चे की स्वतत्रता है, जिसका कोई घर नही, कोई सहारा नही और जिसे भूखे मरने की स्वतत्रता हो। शातिनिकेतन स्कूल के जीवन की स्वतत्रता एक आनददायी सृजनात्मक स्वतत्रता थी क्योकि यह शिक्षक और विद्यार्थियो के एक परिवार के प्रेम सम्बध पर आधारित थी। शिक्षक ने वहा एक ऐसे व्यवस्थित घरेलू जीवन का ढाचा स्थापित किया था कि जिसमे सबने जिम्मेवारी को बाट लिया था और जिसमे स्वतत्रता भी प्राप्त थी।

अपने सस्मरणो मे गुरुदेव ने लिखा है कि अपनी कुमारावस्था मे प्रतिदिन उषाकाल मे अपने पिता को ध्यान मग्न बैठे देखकर मेरे मन पर गहरा प्रभाव पडा था। जब उन्होने अपना स्कूल चालू किया तब उषाकाल मे और सूर्यास्त के समय नियमित रूप से शातिपूर्वक मनन करना उस स्कूल के जीवन सगीत की एक लय बन गयी। इसे मै 'लय' कहती हू, दैनिक क्रम नही, लय की पुनरावृत्ति की स्वय प्रेरित, स्वाभाविक आवश्यकता होती है—दैनिक क्रम तो यत्रवत और ऊपर से लादा हुआ भी हो सकता है। बच्चो के जीवन मे कुछ बातो की पुनरावृत्ति की और सुरक्षा की स्वाभाविक आवश्यकता होती है। इसके लिये उनके पारिवारिक और स्कूली जीवन मे एक बुनियादी लय होनी चाहिये। गुरुदेव ने इसे समझ कर परिवार के एक बडे व्यक्ति के प्रेम के रूप मे बालको को सुरक्षा और व्यवस्था प्रदान की।

●●

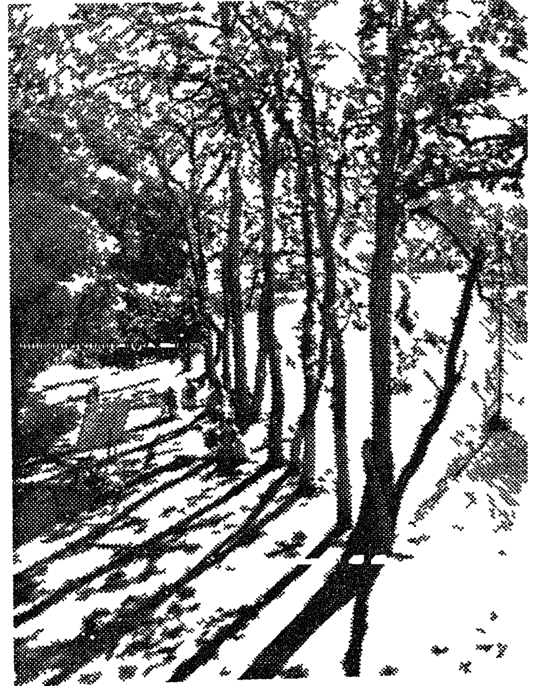
शालवृक्षों की छाया मे

रांगेय राघव (डॉ०)

•

दिनो की लच्छी खुल गई है, उसे उघारकर देखना हू तो मुझे धूप और छाया के स्तरो के नीचे से, वह डूबती साझ उभरती मिलती है, जब छायाए लबी हो गई थी और वृक्षो पर से अनवरत मिठास के निर्झर बहाते, विहगो के कोमल स्वर, दिशाओ को जैसे पिघलाते चले जाते थे । शालवृक्षो की छाया मे अधकार स्तर पर स्तर जमता चला था। धीरे धीरे रात हो गई थी। पोखर के काले काच से जल पर अनेक जुगनुओ ने अगडाइया ली थी और मुझे लगा था जैसे मै किसी एक सृष्टि मे सूर्यहीन बेला मे असख्य नक्षत्रो का दर्शन कर रहा था। दूर से आ रही थी एक मदिम ध्वनि । हवा पर वृक्षो की मादक गध कापती थी, और फिर सुनाई दिया "मा भै मा भै" मेरे मन ने सुना "भय मत करो, भय मत करो"। वह किसका स्वर था ?

शातिनिकेतन के वे दिन मेरे लिये सस्कृति के एक सगम, एक मोड की तरह आये थे । किशोर था मे जब, तब पिता ने अपने प्रकाड पाडित्य से मेरे सामने उपनिषदो का वैभव बिखेर दिया था । दक्षिण के आलवारो के वे युगातरकारी स्वर मेरे सामने प्रतिध्वनित हो चुके थे । और युग सघर्ष ने मुझ मे पाश्चात्य भौतिकवाद का अमर्श भरा था। अपने कक्ष मे मै सोचता। भारत के अतीत की एक नही, अनेक धाराए मुझे भिगोती और कर्मठ जीवन के उद्यम का घर्षण मुझे पश्चिम के वस्तुवाद की सीमा मे बाधने की चेष्टा करता । ऐसी थी मेरी पृष्ठभूमि जब मै शातिनिकेतन मे बैठकर हठयोगी गोरखनाथ के बारे मे अध्ययन कर रहा था । एक ओर गोरखनाथ के विद्रोही स्वर, दूसरी ओर चक्रो का रहस्य और मानस-मथन की पृष्ठभूमि मे वृक्षो की मर्मर का वह देश, गुरुदेव के गभीर स्वरो की



शातिनिकेतन मे खुले आकाश के नीचे शाल-वीथी की एक कक्षा

प्रतिध्वनि मे आक्रांत, भोर निर्मल होती, मध्याह्न प्रखर, पर दुपहर ढलते मेघ छा जाते और सांझ म काल वैशाखी का अमर निनाद सुनाई देता, झील के ऊपर कही किसी घर मे बहुत ही मीठे स्वर मे किसी स्त्री का गीत उमडते मेघा म टकराता ? आधार अम्बर

और फिर मैं सजग भी न हो पाता कि दानव के हाथ की थपथपाहट की कल्पना सुनकर मे विभोर हो जाता हूं। सच, उन पथो पर कवि चले थे, उस रागामाटी मे कवि के हृदय ने ससार क अपमानो को झेला था, उस ऊसर धरती पर कवि ने वृक्षपंक्तियो मे अपने भाव-विहगो के लिये नीड बनाये थे क्या वे अब स्वतंत्र हो गये थे ?

वहा कितने स्वप्नो का न सजाया गया था ? सी० एफ० एन्ड्रयूज, पियर्सन आदि न जाने कितने विदेशियो ने वहा भारत की आत्मा को खोजने की चेष्टा की थी ? अवनीन्द्रनाथ क चित्रो की धूमिल रेखाओ मे भारतीय चित्रकला ने अपने आयामो को प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। कितनी कितनी साधना न थी उस हवा मे ? कितना विशाल हो गया था वह वृक्ष। अब आकाश की नील पटी पर शातिनिकेतन मुझे, उस विशाल बोधिवृक्ष जैसा लगता, जिसके नीचे अब प्यास नही पनप पाती थी, पर जिसके पत्रो की मर्मर मे अनवरत एक ही स्वर उठता था

> वह आ रहा है, आ रहा है। उसकी चरण ध्वनि तुमने नही सुनी ?
> युग-युग पल पल, प्रतिदिन, प्रतिरात वह आ रहा है, आ रहा है, आ रहा है

शातिनिकेतन चीनाभवन मे स मद्धिमस्वर सुनाई देते। पुस्तकालय मे शाति रहती, कही शिशु खेलते, बच्चे आमो का पकते देखकर जपा के फूल हिलते, कही शिरीष स्पदित कर देते वायु को साधना मे युवक और युवतिया बतराते घूमते, कोई कोई कही एकान्त मे बैठकर सोचता, पुराने कुटीरो के बाहर दीवारो मे उत्कीर्ण चित्र दिखते और मैं हिन्दी-भवन स निकल कर घूमता हुआ, कभी उत्तरायण के पास से निकलता, कभी प्रार्थना भवन के नीरस वातावरण म विश्व-शाति के भारत के व्याकुल मानस की तपोवनीय तृष्णा की गभीरता को मापने के लिए विस्फारित नयनो से देखा करता। और सुनता—

> प्रभु। तेरा अनन्त मौन भी मुझे स्वीकार है, तेरी नीरवता का मै मे हृदय मे भर लूंगा।
> तेरी प्रतीक्षा मे झुकी हुई यह नीरव रात्रि—तारो का दीपक जलाकर
> अनिमेष नेत्रो से तेरी राह देखा करती है—
> मै भी यह स्तब्ध प्रतीक्षा अपने हृदय मे भर लूंगा

साधनाए अपने जीवन के सघर्षो मे जिन क्षणो को अमरत्व प्रदान करती है, वे कभी उनके जीवन मे सत्य नही बनती, जो विकसित हुए आलोक के लिये प्रहरी बनकर रहने की चेष्टा करते है। आलोक की सीमा अधकार है। आलोक की प्रखरता उसके काले शरीर पर ही दिखाई देती है। प्रत्येक महापुरुष अपने जीवन भर सत्य के लिये युद्ध करता है, किन्तु उसके अनुयायी बाद मे उसके सत्य को आगे नही बढाते, उसे अशुद्ध कर देते है।

कवि की वाणी मुझसे कहती थी—आओ अपनी पराजय की मालाओ और स्मृति चिन्हो से तुम्हे अलकृत करूगा।

अपराजित होकर बच निकलना मेरी सामर्थ्य से बाहर है।
मेरा गर्व चूर हो जायेगा, अतिशय वेदना से मेरे जीवन का अवरुद्ध कोष फूट पडेगा,
मेरा रिक्त हृदय गीतो के बिखरे स्वरो मे डूबने लगेगा,
ओर पत्थर भी आसुओ मे पिघल उठेगा, यह मै जानता हू।
यह भी जानता हू कि कमल की सहस्रो पखुडिया सदा बद नही रहेगी
और इसका मधुकोष सदा भरा ही नही रहेगा।

आतक के परे मैने महाकवि को एक मनुष्य के रूप मे ही देखा है, और उस दिन भी शायद औरो से मेरा इसीलिये मतभेद था क्योकि मैने उन्हे कभी दुर्गम पर्वत नही समझा, असीम आकाश के नीचे उत्तु ग हिमालय का उभार मेरे लिये रजकण की पराजय नही, असीम के नीचे व्यक्ति के साहस की दुर्दमनीय कहानी है। उसे मैने भय से देखना कभी नही सीखा। इसीलिए मैने रवीन्द्र के शब्दो को यही समझकर ग्रहण किया है कि सितार के पुराने तारो को एक एक करके उतार दो, उस पर नये तार चढा दो। मुझे, शातिनिकेतन मे अतीत वर्तमान और भविष्य मे से बात करता हुआ एक ही मनुष्य मिला और वह थे रवीन्द्रनाथ। वहा मुझे पूर्व और पश्चिम के वैचारिक सघर्षो मे व्याकुल एक व्यक्ति दिखाई दिया जो कहता था—

विद्वेष जहा द्वार से किसी को अपमानित कर खदेड देता—तुम भी साथ चले जाते,
अहकार जहा घृणा से क्षुद्र के लिये द्वार बन्द कर देता, तुम भी वहा से लौट आते,
महाराज! जहा तुम हो, वहा निखिल विश्व का आसन है।

कवि की वाणी का साहचर्य मेरे लिये अनमोल था। व्याख्यानो के स्वर मुझे उनसे दूर करते थे, परन्तु मै तो सुदरता का वह अखड स्वप्न पा चुका था। उसी ने तो कहा था—

आत्म धरती मूढ उन्मुक्तता, उसके सारे अगो पर विकृत का कदर्म विद्रूप
एक ओर स्पदित क्रूरता, महत्ता की निर्लज्ज हुकार
दूसरी ओर भीरुता का द्विधाग्रस्त चरण निक्षेप

रवीन्द्र ने जीवन की सादगी को महत्व दिया था। कृत्रिमता का विरोध किया था। आज भी याद आते है वे दिन, वे दिन जैसे किसी रगशाला मे व्यतीत हुए थे। वहा मैने देश विदेश के अतीत और वर्तमान के महाप्राणो के श्वासो को सुना था।

सोचता हू जीवन एक क्रम है। अपने समय मे प्रत्येक क्षण एक अतृप्ति से भरा रहता है। उन्ही अतृप्तियो मे गति है। वह गति जीवन देती है। उस गति मे रवीन्द्र को उन्मुक्त रखना है। क्या महाकवि का काव्य-सर्जन अब बन्द हो गया है? नही। सस्कृति के जिस फूल की पखुरियो ने काव्य की शोभा का निर्माण किया, उसमे मे जो गध फैल रही है, क्या वह किसी एक देश या समाज की है। ●●

हमारा शांतिनिकेतन

शान्ता गुप्ता

बालपन मे रवि ठाकुर जिस स्कूल मे पढते थे वहा न कोई बाग था न बागीचा। पुराने के बने स्कूल की ऊ ची ऊ ची दीवारे उनको ऐसी जान पडती थी मानो उनको कैद कर रही रही उन जैसे प्रकृति-प्रेमी बालक के लिए यह एक असह्य यत्रणा थी। ऐसा लगता कि मन और आत्मा गई हो। मास्टर ताडना और यत्रणा के साक्षात् देवता मालूम होते। बडे होने पर उन्होने अपने अनुभव से यह निर्णय प्राप्त किया कि प्राणो को पीडा पहु चा कर प्राप्त की हुई शिक्षा जीवनोप सिद्ध नही हो सकती। अपने इस मनोभाव को औरो पर भी व्यक्त किया पर देखा कि लोग इस को मानकर भी इस दिशा मे कुछ कर नही पाते। तभी उन्होने निश्चय किया कि वे स्वय एक सस्था बनाए गे जो प्रकृति के निकट हो और जहा स्वच्छन्द वातावरण मे बच्चे पढ सके। यही निश्चय शातिनिकेतन की स्थापना मे साकार हुआ। जिस समय उन्होने अपने इस स्वप्न को स किया, उस समय रवि ठाकुर की आर्थिक-स्थिति कुछ ठीक नहीं थी। उनको बहुत कुछ धन देना आय बिल्कुल नही थी। पर फिर भी अपने इस विचार का क्रियान्वित करने से वे न रुके। १९० वह विद्यार्थियो के लिए एक स्कूल खोलने मे सफल हुए। उस स्कूल का नाम रक्खा ब्रह्मचर्य आश्र बोलपुर मे सथाली गावो के बीच अपनी पैतृक-सम्पत्ति शान्तिनिकेतन आश्रम म उन्होन यह बनाया। पाच छ बच्चो को लेकर एक अमरूद के वृक्ष-तले बैठकर पढाने का कार्य आरम्भ कर दि कवि पूरी लग्न और निष्ठा के साथ यह काम करने लगे। बालको को जब वह पढाते थे तो उनमे खो जाते थे। बालक भी कवि के साथ आत्मविभोर हो उठते। पढाई का क्रम चलने ल एक दिन हठात् रवि ठाकुर के मन मे आया कि स्कूल के लिए एक हैड मास्टर की भी अवश्यकता इसका प्रबन्ध भी कर लिया गया। पर इन नए हैडमास्टर को रवि बाबू की यह नई शिक्षा प्रण पसद नही आई। बालको का पेडो पर चढना, निशक घूमना आदि-आदि उत्पात उनको नही आए। हैडमास्टर ने अपनी पुरानी किन्डर-गार्डन की प्रणाली मे ही पढाना शुरू कि रवि ठाकुर को यह सब नही जचा और मास्टरजी को विदा होना पडा।

गुरुदेव ने बालको की अवस्था मे कोई अन्तर नही आने दिया। वह मन माने पेडो पर मुक्त और स्वच्छन्द प्रकृति से घुलेमिले विचरण करते, स्वेच्छा से शिक्षा ग्रहण करते रहे।

गुरुदेव स्वावलम्बन मे विश्वास करते थे। सहयोग और आपसी मेल जाल को आवश्यक मानते थे। अत बालको स कहा—'तुम आश्रम मे एक सभा करो और अपना भार स्वय उठाओ।'

उनका विचार था कि बच्चो को शुरू से ही जीवन का महत्व और उसके लक्ष्य को समझा देना चाहिए। उन्हे यह बता देना चाहिए कि उसकी प्राप्ति मे ही सुख है।

गुरुदेव का स्कूल आगे बढा। जीवन के लक्ष्य के बारे मे उनके विचार भी समय के साथ बदलते गए। एक समय आया जब कि शान्तिनिकेतन को उन्होने अन्तराष्ट्रीय बन्धुत्व का प्रतीक माना।

उन्होने कहा—'भारत की अन्तरात्मा एक महान् केन्द्र की स्थापना क लिए पुकार रही है। जहा उसकी सभी बौद्धिक शक्तिया सृजन के निमित्त एकत्रित होगी और उनके ज्ञान और विचार की सारी निधिया प्राच्य और पाश्चात्य के पूर्ण सामजस्य मे एक होगी।

प्रथम महायुद्ध के शोक और अन्धकार के कारण रवीन्द्र ठाकुर क्रमश इस निश्चय पर पहुचे कि शान्तिनिकेतन आश्रम मे शान्ति और भाई चारे का वातावरण बनाया जाए जहा प्राच्य और पाश्चात्य, अध्ययन एव कर्म मे समान लक्ष्य के लिये बन्धुत्व मे बध सके।

प्रारम्भ मे उनका विचार अपने आश्रम से एशिया की जहा तहा बिखरी धार्मिक सस्कृतियो को एकत्रित करना था। उन्होने इसके लिए सारे भारत का भ्रमण किया। यह यात्रा इस खोज मे थी कि मानव-प्रगति सम्बन्धी उनके विचारो को जड जमाने और बाद मे फलने फूलने का उपयुक्त भूमि मिल सके। उन्होने उस सस्था को विश्वभारती नाम दिया। उनका लक्ष्य विश्वभारती को हर जन-समुदाय और हर धर्म के लिए ज्ञानोपार्जन का आश्रम बनाने का था।

कवि ने इन सारे विचारो को उपनिषदो के मूल विचार—'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योमाअमृत गमय' से लिया था।

एक व्याख्यान के उपसहार मे रविठाकुर ने कहा—हमारे पूर्वजो ने केवल साफ सुथरी दरी फैलाई जिस पर सहृदयता और प्रेम के साथ बैठने के लिए सारे ससार को हार्दिक निमत्रण दिया। वहा कोई उपद्रव हो ही नही सकता था क्योकि जिसके नाम ये शाश्वत निमन्त्रण दिया गया था—'वह शान्तम् शिवम् अद्वैतम्' था।

सन् १९२० की अपनी अमरीकी-यात्रा के दौरान मे दीनबन्धु एन्डयूज के नाम एक पत्र मे शान्तिनिकेतन क उद्देश्य बताते हुए उन्होने लिखा—'तुमको विदित होना चाहिए कि हमारा शान्तिनिकेतन उस विश्व की सम्पत्ति है जहा हम अभी तक पहुचे नही है। हमारी निष्ठा किसी सीमित भूप्रदेश तक मे नही बल्कि उस सहविचार की राष्ट्रीयता मे होनी चाहिए जिसमे भिन्न राष्ट्रो के व्यक्ति जन्म लेते है और जो अपने उपहार को मानवता के महत् मदिर की ओर ले जाते ह।

अपने एक और पत्र मे उन्होने लिखा—"शान्तिनिकेतन को राजनैतिक हलचल से दूर रखना। वह ससार के सभी भागो के कार्यकर्ताओ के लिए स्थान बनाएगा।"

सन् १६३० मे अपनी रूस यात्रा के दौरान मे कवि ने रूसी छात्रो को शान्तिनिकेतन के विषय मे बताते हुए कहा—"मेरे विचार मे शिक्षा वही ठीक है जो जीवन मे तादात्म्य स्थापित कर सके। वास्तविकता मे दूर मात्र सिद्धा तवादी नही होनी चाहिए। इसीलिए मैने पढने वाले बच्चो को हर एक काम मे पूरी स्वतत्रता दी ताकि वह जीवन म ठीक तौर पर रहना सीख सक । मेरी हमेशा यही कोशिश रही कि मै उनके सामने कुछ ऐसी बाते रख सकू जिसमे वह रुचि ले सके या वह उनकी रुचि के अनुकूल हो।"

उनका सदा यही प्रयत्न रहा कि वह बच्चो के हृदय मे साहित्य के प्रति, अपने चारो तरफ फैले हुए वातावरण के प्रति एक उत्सुकता और रुचि पैदा कर सक । इसीलिए उन्होने नाटक आदि लिखे उनका सृजन किया। इस माध्यम से ही उ होने सस्कृति और साहित्य की शिक्षा दी। सगीत मे उन्होने एक नई पद्धति का निर्माण किया ताकि प्राकृतिक रूप से सगीत के स्वर सुनने वालो का अन्तर छू सके। उनकी मान्यता थी कि बालको का अचेतन मन, चेतन से कही अधिक जागरूक होता है। इसीलिए यह आवश्यक है कि विद्यालयो मे इस प्रकार के कार्यक्रम होने चाहिए जिससे बालको का मानसिक विकास हो सके। और उनमे 'क्यो' ? और 'कैसे' ? की भावना उत्प न हो सके।

आरम्भ मे गुरुदेव ने अपने आश्रम मे नि शुल्क शिक्षा देने का निश्चय किया था। विद्यार्थियो को खाना कपडा भी अपने ही पास से देने का ध्येय था। पर जैसे-जैसे छात्रो की सख्या बढने लगी व्यय भी बढने लगा। नए नए शिक्षको की आवश्यकता हुई। परिणाम यह हुआ कि वे जो आदर्श लेकर चले थे, उस पर स्थिर न रह सके। फिर भी कुछ विशेष बातो का ध्यान उन्होन अवश्य रक्खा। जैसे कि शिक्षक और शिक्षार्थियो मे पारस्परिक बन्धुत्व की भावना का होना। इसीलिए वहा पर त्यौहारो, उत्सवो खेल के मैदानो आदि मे शिक्षक विद्यार्थियो के साथ बराबर भाग लेते थे। कवि का कथन था— 'यह पिजर की तरह नही है जहा पक्षी को बाहर से खाना खिलाया जाता है, बल्कि उस घोसले की तरह है, जहा छात्र स्वय काम हो या खेल, सदा प्रेम से एक दूसरे के सहयोग मे जीवन का निर्माण करते है।

कवि का शान्तिनिकेतन कितना प्यारा था वह उनके एक पत्र जो उ होने १६२० मे श्री सी० एफ० एण्डरूज का अमेरीका मे लिखा था, पता चलता है। वह एक जगह लिखते हे—"मुझे तुम्हारा पत्र मिला, कुछ समय के लिए मैने अपने आपको आश्रय के वक्ष से आलिगित अनुभव किया। मै तुम्हे नही बता सकता कि मेरे सामने उसका जो दीर्घकालीन विछोह है, वह मुझे कैसा लगता है। पर साथ ही जब तक मानवता के विस्तृत जग से मेरा सम्बन्ध प्रेम और सत्ता मे नही बढता, मेरा आश्रम से सम्ब ध पूरा नही होगा।" उन्हे क्या, शान्तिनिकेतन सबको प्यारा था—गुरुदेव का लिखा यह गीत आज भी किसके प्राणो मे नही बसा है, जिसे छात्र और शिक्षक साथ मिलकर गाते थे —

'हमारा शान्तिनिकेतन हमको प्राणो से भी प्यारा है

●●●



अपने अध्यापको के लिए अधिकाश शिष्यो मे दुर्बलता होती है और सराहना की भावना निहित रहती है। पर, मुझे आश्चर्य होगा यदि उन छात्रो को गुरुदेव जैसा अध्यापक मिला हो। मैं छ वर्ष शातिनिकतन रही हू और उन दिनो की स्मृतिया आज भी मेरे साथ हे। जब भी हम वहा गुरुदेव को देखते तो प्रतीत होता कि पूर्ण मैत्री और समानता का सन्देश लिए कोई देवता मनुष्यो के मध्य आ गया है। वे हमारे मार्गदर्शक व दार्शनिक थे और श्रेष्ठ गीतो के गायक व महान् कार्यो के प्रेरक भी थे।

वे बच्चो के मध्य एक बच्चे और बडो मे बडे थे। वे हमारे साथ खेलते व हमारे लिए नये-नये खेलो का आविष्कार करते थे। अपने नव आविष्कृत खेलो के साथ आनन्द मग्न हो जाते व उनमे भाग लेते। जब भी कोई बीमार होता, वे बडे प्यार से उसकी देखरेख करते व उस पर बडा ध्यान देते। बीमारी के मध्य हमे यह कभी महसूस नही होता कि हम घर के बाहर है। ऐसे अवसरो पर हमे अपने सरक्षका का अभाव प्रतीत न होता क्योकि गुरुदेव हमारे पथ प्रदर्शक होते थे।

मुझे स्मरण है कि गुरुदेव को सगीत मे कितनी रुचि थी। वे हमारे साथ गाते और उनके गीतो को सीखकर हम भी गाते। वे प्राय सदैव ही हमारे वार्षिक नाटको मे भाग लेते व शान्तिनिकेतन के उस आयोजन का सफल एव उल्लेखनीय बना देते थे। इससे हम अत्यन्त प्रोत्साहन मिलता और हम भी उनके मध्य सिद्ध होने का यत्न करते।

मेरे महान अध्यापक

आशा मुकुल दास (डॉ०)

पिथापुरम महाराजा के दरबारी सगीतज्ञ शातिनिकेतन आया करते थे और वीणा पर राग रागनिया गाते। महाराजा इन प्रसिद्ध सगीतज्ञ को गुरुदेव के निकट भेजते थे और कवि भी उन्हे बहुत

पस द करते थे। प्राय हममे से कुछ उनके कमरे मे आ जाते और वहा बैठकर उस सुमधुर सगीत क ध्यान-मग्न होकर सुनते। वे कभी हमे कमरे मे आने के लिए निरुत्साहित नही करते थे। दोनो सगीत पर वार्तालाप करते।

गुरुदेव बच्चो के साथ आन द-मग्न हो जाते थे। भारी वर्षा से बच्चे जब मेह मे नहाने को अपने कमरो से बाहर निकल आते, गुरुदेव भी बाहर आ जाते और स्वय भी उन बच्चो के साथ घुलमिल जाते व हमे आनन्दित करते। जब छात्र अपना अध्ययन समाप्त करके शान्तिनिकेतन छोडते, वे उनसे कहते—"क्या तुम्हारा विचार है कि तुम्हारे और शान्तिनिकेतन के मध्य अब बधन टूट गये है, ऐसा मन सोचे, वे कभी नही टूट सकते। जब कभी भी तुम्हारे मस्तिष्क मे सदेह या परेशानी हो यहा आकर परिवर्तन पा सकते हो। यह स्थान सदा तुम्हारा ही रहेगा। जैसे बच्चा मा के पास जाता है, वैसे ही तुम हमारे पास आ सकते हो।" वास्तव मे शान्तिनिकेतन हमार लिए वैसा ही था।

कुछ साहित्य सभा, गोष्ठियो के मध्य वे हमे खेतो मे ले जाते व अचानक हममे से किसी से कहते कि यहा कहानी बनाकर सुनाओ। कोई छात्र प्रारम्भ करता, पर कुछ मिनट बाद ही वे दूसरे छात्र से उसके बाद की कहानी आगे बढाने को कहते। यह क्रिया चलती रहती थी। इसमे बडा आनन्द आता था फिर भी यह एक कठिन कार्य था और हममे से कुछ अधीर हो उठते। वे एक छात्र द्वारा प्रारम्भ की हुई कहानी को दूसरे से अ त करने के लिए कहते, फिर प्रारम्भ करने वाले से पूछते कि वह बताये कि वह इस कहानी का अन्त कैसे करना चाहता था।

गुरुदेव मे हास्य का भी अ श था। एक बार उ होने हमे बताया कि हमे अपनी कही बात हर स्थिति मे पूरी करनी चाहिए। उ होने एक घटना सुनाई कि एक व्यक्ति ने उनसे रुपये उधार लिए। रुपये देने पर वह बोला—"बाबू मोशाय, मे नही जानता कि आपको कैसे ध यवाद दू। भगवान आपको आशीर्वाद दे, मै इस जीवन मे कभी आपकी इस कृपा का प्रतिदान न कर सकू गा।"

गुरुदेव कुछ क्षण रुके और कहने लगे—"तुमने जाना कि उसने कैसे अपनी बात रखी और कभी धन न लौटाया।" छात्रो ने हसी का ठहाका लगाया और गुरुदेव की सुन्दर आखें मनोविनोद से चमक उठी।

एक दिन गुरुदेव प्रार्थना के बाद एक युवा शिल्पकार नारायण काशीनाथ देवल की झोंपडी मे गये। गुरुदेव ने सभ्यता पूर्वक द्वार खोला व झाका और तत्काल बाहर निकल आए। कमरा सिगरेट के धुएं से भरा हुआ था। गुरुदेव बोले—'वह यहा नही है। हम यहा एक साइनबोर्ड लगा चले-'शान्तिनिकोटिन।'

वे मानवता के महान् प्रेमी थे और उनकी उपस्थिति प्रत्येक व्यक्ति मे उच्चता को जाग्रत करती थी।

ग्रा | मो | द्धा | र | क

पद्मसिह शर्मा कमलेश (डॉ०)

•

भारत के ग्रामो का पुनर्निर्माण करने की गुरुदेव की उत्कट अभिलाषा थी। गाधी जी की तरह वे ग्रामो को स्वराज्य की आधारशिला मानते थे। उनका विचार था कि यदि ग्राम विकसित नही होते तो समस्त औद्योगीकरण व्यर्थ सिद्ध होगा और पुनर्निमाण का आयोजन ताश के पत्तो के जादू सा क्षणिक प्रभावकारी होगा। परिणामस्वरूप उन्होने सन् १९०१ मे शान्तिनिकेतन के अन्तर्गत श्रीनिकेतन की स्थापना थी।

श्रीनिकेतन-आश्रम मे ग्रामोत्थान कार्य की विविध योजनाओ और रचनात्मक कार्य को गति देने का कार्य रखा गया था। कृषि, ग्राम्यस्वास्थ्य, ग्रामीण-उद्योग-धन्धे, गाव के किसानो के लिए आवश्यक मूलधन की व्यवस्था आदि कार्य इसकी परिधि के अन्तर्गत आते थे। उनका स्वप्न था कि कृषि, शिल्प, स्वास्थ्य एव शिक्षा के द्वारा वे ग्रामो को आत्मनिर्भर बना सकेंगे।

वे कहते हे—"किसी समय बहुत दिनो तक बगाल के गावो से मेरा सम्बन्ध रहा है। गर्मियों के दिनो मे रोज यह कष्टप्रद दृश्य मै देखता था। नदी का पानी करीब करीब सूख गया था। ताल-तलैयो की तलहटी की गदी कीचड दिखाई देने लगी थी। चारो ओर तडकती हुई बालू धाय-धाय करती थी। स्त्रिया नगे पैर मीलो चलकर नदी का गदा पानी लाती थी। उस पानी को यदि हम अश्रुजल मिश्रित न कहे तो और क्या कहे?"

"एक अन्य दृश्य से मेरे हृदय को और भी चोट लगी। शाम को सारे दिन खेत-खलिहान का काम करके किसान घर लौटते थे। एक ओर विस्तृत मैदान निस्तब्ध अन्धकार से छाया होता और दूसरी ओर बासो की झाडी मे एक एक गाव अन्धेरे टापू की तरह रात की बाढ के ठीक बीचो बीच पडा होता। उस तरफ से ढोलक बजने की आवाज सुनाई देती और बहुत से लोग एक स्वर मे भजन गाने लगते। सुनकर ऐसा लगता कि लोगो के दिल मे तालाबो का पानी भी तलहटी तक पहुच गया है। दिल की आग बढ गई है और उसे ठडा करने का साधन कितना थोडा है।"

रवि बाबू के ये विचार सैद्धान्तिक पक्ष तक ही सीमित नही थे, उन्होने हृदय की आखो से स्वय ग्रामो की जर्जरित मानव-काया मे चिन्ता और अभाव का ताण्डव भी देखा था। जब उन्होने तीस वर्ष की अवस्था मे स्वेच्छा से जमीदारी का प्रबन्ध अपने हाथ मे लिया तब तो वे गरीबी और दुख दर्द के और भी सम्पर्क मे आए। वे देशवासियो की हीनावस्था से विचलित हुए बिना न रह सके।

पसन्द करते थे । प्राय हममे से कुछ उनके कमरे मे आ जाते और वहा बैठकर उस सुमधुर सगीत व ध्यान-मग्न होकर सुनते । वे कभी हमे कमरे मे आने के लिए निरुत्साहित नही करते थे । दोनो सगी पर वार्तालाप करते ।

गुरुदेव बच्चो के साथ आनन्द-मग्न हो जाते थे । भारी वर्षा से बच्चे जब मेह मे नहाने क अपने कमरो से बाहर निकल आते, गुरुदेव भी बाहर आ जाते और स्वय भी उन बच्चो के साथ घुलमि जाते व हमे आनन्दित करते । जब छात्र अपना अध्ययन समाप्त करके शान्तिनिकेतन छोडते, उनसे कहते—"क्या तुम्हारा विचार है कि तुम्हारे और शान्तिनिकेतन के मध्य अब बधन टूट गये है ऐसा मन सोचे, वे कभी नही टूट सकते । जब कभी भी तुम्हारे मस्तिष्क मे सदेह या परेशानी हो यहा आकर परिवर्तन पा सकते हो । यह स्थान सदा तुम्हारा ही रहेगा । जैसे बच्चा मा के पा जाता है, वैसे ही तुम हमारे पास आ सकते हो ।" वास्तव मे शान्तिनिकेतन हमारे लिए वैसा ही था ।

कुछ साहित्य सभा, गोष्ठियो के मध्य वे हमे खेतो मे ले जाते व अचानक हममे से किसी से कह कि यहा कहानी बनाकर सुनाओ । कोई छात्र प्रारम्भ करता, पर कुछ मिनट बाद ही वे दूसरे छात्र र उसके बाद की कहानी आगे बढाने को कहते । यह क्रिया चलती रहती थी । इसमे बडा आन आता था फिर भी यह एक कठिन कार्य था और हममे से कुछ अधीर हो उठते । वे एक छात्र द्वार प्रारम्भ की हुई कहानी को दूसरे से अन्त करने के लिए कहते, फिर प्रारम्भ करने वाले से पूछते कि व बताये कि वह इस कहानी का अन्त कैसे करना चाहता था ।

गुरुदेव मे हास्य का भी अश था । एक बार उन्होने हमे बताया कि हमे अपनी कही बा हर स्थिति मे पूरी करनी चाहिए । उन्होने एक घटना सुनाई कि एक व्यक्ति ने उनसे रुपये उधा लिए । रुपये देने पर वह बोला—"बाबू मोशाय, मै नही जानता कि आपको कैसे धन्यवाद दू भगवान आपको आशीर्वाद दे, मै इस जीवन मे कभी आपकी इस कृपा का प्रतिदान न कर सकूगा ।"

गुरुदेव कुछ क्षण रुके और कहने लगे—"तुमने जाना कि उसने कैसे अपनी बात रखी और कभ धन न लौटाया ।" छात्रो ने हसी का ठहाका लगाया और गुरुदेव की सुन्दर आखें मनोविनोद र चमक उठी ।

एक दिन गुरुदेव प्रार्थना के बाद एक युवा शिल्पकार नारायण काशीनाथ देवल की झोपडी ग गये । गुरुदेव ने सभ्यता पूर्वक द्वार खोला व झाका और तत्काल बाहर निकल आए । कमरा सिगरे के धुए से भरा हुआ था । गुरुदेव बोले—'वह यहा नही है । हम यहा एक साइनबोर्ड लगा चले 'शान्तिनिकोटिन ।'

वे मानवता के महान् प्रेमी थे और उनकी उपस्थिति प्रत्येक व्यक्ति मे उच्चता को जाग्र करती थी ।

ग्रा | मो | द्धा | र | क

पद्मसिह शर्मा कमलेश (डॉ०)

•

भारत के ग्रामो का पुर्ननिर्माण करने की गुरुदेव की उत्कट अभिलाषा थी। गाधी जी की तरह वे ग्रामो को स्वराज्य की आधारशिला मानते थे। उनका विचार था कि यदि ग्राम विकसित नही होते तो समस्त औद्योगीकरण व्यर्थ सिद्ध होगा और पुर्ननिर्माण का आयोजन ताश वे पत्तो के जादू सा क्षणिक प्रभावकारी होगा। परिणामस्वरूप उन्होने सन् १६०१ मे शान्तिनिकेतन के अन्तर्गत श्रीनिकेतन की स्थापना थी।

श्रीनिकेतन-आश्रम मे ग्रामोत्थान कार्य की विविध योजनाओ और रचनात्मक कार्य को गति देने का कार्य रखा गया था। कृषि, ग्राम्यस्वास्थ्य, ग्रामीण उद्योग-धधे, गाव के किसानो के लिए आवश्यक मूलधन की व्यवस्था आदि कार्य इसकी परिधि के अन्तर्गत आते थे। उनका स्वप्न था कि कृषि, शिल्प, स्वास्थ्य एव शिक्षा के द्वारा वे ग्रामो को आत्मनिर्भर बना सकेगे।

वे कहते है—"किसी समय बहुत दिनो तक बगाल के गावो से मेरा सम्बन्ध रहा है। गर्मियों के दिनो मे रोज यह कष्टप्रद दृश्य मे देखता था। नदी का पानी करीब करीब सूख गया था। ताल-तलैयो की तलहटी की गदी कीचड दिखाई देने लगी थी। चारो ओर तडकती हुई बालू धाय-धाय करती थी। स्त्रिया नगे पैर मीलो चलकर नदी का गदा पानी लाती थी। उस पानी को यदि हम अश्रुजल मिश्रित न कहे तो और क्या कहे?"

"एक अन्य दृश्य मे मेरे हृदय को और भी चोट लगी। शाम को सारे दिन खेत-खलिहान का काम करके किसान घर लौटते थे। एक ओर विस्तृत मैदान निस्तब्ध अधकार से छाया होता और दूसरी ओर बासो की झाडी मे एक एक गाव अधेरे टापू की तरह रात की बाढ के ठीक बीचो बीच पडा होता। उस तरफ से ढोलक बजने की आवाज सुनाई देती और बहुत से लोग एक स्वर मे भजन गाने लगते। सुनकर ऐसा लगता कि लोगो के दिल मे तालाबो का पानी भी तलहटी तक पहुच गया है। दिल की आग बढ गई है और उसे ठडा करने का साधन कितना थोडा है।"

रवि बाबू के ये विचार सैद्धातिक पक्ष तक ही सीमित नही थे, उन्होने हृदय की आखो से स्वय ग्रामो की जर्जरित मानव काया मे चिन्ता और अभाव का ताण्डव भी देखा था। जब उन्होने तीस वर्ष की अवस्था मे स्वेच्छा से जमीदारी का प्रबन्ध अपने हाथ मे लिया तब तो वे गरीबी और दुख दर्द के और भी सम्पर्क मे आए। वे देशवासियो की हीनावस्था से विचलित हुए बिना न रह सके।

अपनी इन अनुभूतियो को उन्होने व्यर्थ न जाने दिया और श्रीनिकेतन स्थापित हुआ श्रीनिकेतन के वार्षिकोत्सवो पर उन्होने जब जब भाषण दिए, ग्रामोत्थान के लिए अत्यन्त उपयोगी सुझा दिए और देश के लोगो मे आत्मविश्वास उत्पन्न करने की आवश्यकता पर बल दिया। उन्हा कार्यकर्ताओ को ठेठ ग्रामो मे पहुचने की सलाह दी। उन्होने कहा कि ग्रामीणो को अन्न, शिल्प औ शिक्षा प्रसार के निमित्त अपनी जीवनाहुति देनी होगी और स्वार्थ एव स्वच्छन्दता को भुला देना होगा

आज नाना प्रकार के विकास कार्य गावो मे हो रहे हे और पचायत राज की स्थापना हो रह है पर जिस दिशा की ओर ग्रामोत्थान के लिये जीवनाहुति देने की ओर रविबाबू ने सकेत किया था उस हम और भी पिछड गये हे। हम वहा गये है पर सेवक बनकर नही। यही कारण है कि हमार आत्मीयता ग्रामीणो से स्थापित नही हो पाई है।

रवि बाबू स्वय जमीदार थे पर उन्होने ग्रामोत्थान के लिये जमीदारो को भी अपना कर्तव्य पालन करने की प्रेरणा दी थी। उन्होने उनसे कहा था कि यदि किसान दुर्बल रहे तो जमीदारो क सबलता अधिक दिन न टिकेगी। केवल अपना स्वार्थ देखना उनकी दृष्टि मे डाइनामाइट को ऊपर जेब मे लिये फिरने के समान था। अत जमीदारो के प्रति उनकी दृष्टि एक सच्चे ग्राम हितैषी की थी

पवना प्रातीय सम्मेलन के सभापति पद मे उन्होने जो भाषण दिया था उसमे ग्राम विकास व रूपरेखा वही थी जो गाधीजी ने अपने भाषणो और 'हरिजन' के लेखो मे अनेक बार उद्घोषित की थी उन्होने जन-समूह को आह्वान करते हुए कहा था—

'तुममे से जो कर सके और जहा कही भी कर सके, एक एक गाव की जिम्मेदारी अपने ऊप लेकर वही जाकर रहो। गावो को व्यवस्थित करो, शिक्षा दो, कृषि शिल्प व गावो मे व्यवहार व जाने वाली सामग्री के सम्बन्ध मे नई रुचि पैदा करो। गाव वालो के रहने का स्थान साफ सुथर स्वास्थ्यप्रद व सुन्दर रहे, उनमे उसी उत्साह का सचार करो, और जिसमे इकटठा होकर गाव के सभ कार्यों को वे स्वय सम्पन्न कर सके उनमे उसी प्रकार की भावना पैदा करो। इस कार्य के बदले तुम कोई आशा न करो। यही नही, गाव वालो की ओर से कृतज्ञता के बदले तुम्हे बाधा औ अविश्वास भी स्वीकार करना होगा, इसमे कोई उत्तेजना नही है, कोई विरोध नही है, कोई घोषण नही है बल्कि धैर्य, प्रेम और एक निष्ठ तपस्या है। मन मे केवल एक यही ध्येय होना चाहिए कि देश मे जो सबसे अधिक दुखी है उनके दुख मे भाग लेकर उसे दूर करने मे हम अपना सारा जीव लगा दे।'

इस प्रकार ग्रामो के पुर्नर्निर्माण के लिये रवि बाबू ने जो पथ बताया वह राजपथ था और यदि ग्रामो को ऊपर उठना है तो उसका उपाय इसके अतिरिक्त और कुछ हो ही नही सकता। ●●



कला



मेरे चित्र

•

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जब पाच वर्ष की अवस्था मे मुझे अपनी पाठ्य पुस्तक के पाठो को रटने और दुहराने के लिए बाध्य किया गया तो मेरी यह धारणा थी कि साहित्य छपे हुए पृष्ठो पर रहस्यमय ढग से अभिव्यक्त है और वह किसी सर्वांगीण सम्पूर्णता के अमानवीय अत्याचार का प्रतीक है। लेकिन भय की यह निराशापूर्ण भावना तब लुप्त हो गई जब मैने अकस्मात् पाया कि मेरे जैसे बिना सीखे हुए मस्तिष्क और टेढी-मेढी लिखावट वाले व्यक्ति के लिये भी छद रचना असभव न थी। तब से निरतर अभिव्यक्ति का साधन मेरे लिए शब्द ही रहे है जिनमे १६ वर्ष की आयु मे सगीत ने सहयोग किया, और यह भी मेरे लिए एक आश्चर्यजनक घटना ही थी।

इस बीच मेरे भतीजे अवनी द्रनाथ ठाकुर ने पौर्वत्य परम्परा का अनुसरण करते हुए अर्वाचीन कला आन्दोलन का श्रीगणेश किया। उनके कार्यों की गतिविधि को मै कुछ उदासीनता और कुछ ईर्ष्या की दृष्टि से देखता रहा। मै समझता था कि शब्दो के क्षेत्र मे बाहर जाकर कलाभिव्यक्ति करने का पासपोर्ट मुझे न मिल सकेगा। लेकिन जो कलाओ मे समानरूप से समाविष्ट है, उसके प्रति मेरे स्वाभाविक झुकाव और उसके उपयोग सम्बन्धी मेरे आभास के कारण मुझे ज्ञान हुआ कि कला के क्षेत्र मे मात्र रेखाए और रग कोई सदेश नही देते, चित्रो मे ही उनका ध्वन्यात्मक अवतरण होता है। उनका अ तिम उद्देश्य किसी बाह्य तथ्य या आ तरिक कल्पना का चित्रण या प्रतिलेखन नही होता, वरन् उनका अभीष्ट एक ऐसी सानुपातिक समग्रता का विकास होता है जो हमारे दृष्टिपात द्वारा हमारी कल्पना का स्पर्श करती है। यह समग्रता न तो सार्थकता के लिये हमारे मन से जिज्ञासा करती है और न उस पर निरर्थकता का भार लादती है, क्योंकि वह सभी अर्थों से परे की चीज है।

असलग्न रेखाए हमारी कल्पना के स्वातत्र्य मे बाधक बनती है क्योकि उनकी निरर्थकता मे गतिहीनता होती है। उनके अस्तित्व का कोई औचित्य नही होता, अत वे अपने चतुर्दिक के वातावरण को अपने विरुद्ध उभाडती है। वे निरतर शाति को भग करती है। इसी कारण मेरी पाण्डुलिपियो मे किए गए सशोधनो और यत्र तत्र बिखरी लकीरो को देखकर मुझे झल्लाहट होती। वे मुझे एक चिरन्तन कुभाग्य के समान दीखती मानो वे किसी गलत जगह पर सिमटी, मूर्खता से मु ह बाए भीड के समान हो

जो निश्चय न कर सके कि उसे किधर और क्यो बढना है। लेकिन अगर उस भीड के हृदय मे नृत्य की भावना ऊर्जस्वित की जा सके ता वह असबद्ध जन समुदाय पूर्ण एकात्मीयता का पा लेगा और उसकी दुविधा का अन्त हो जायगा। मैं अपने सशोधना को इसी प्रकार नृत्य-निरत कर देता हू, उनको सानुपातिक सम्बन्ध-सूत्र मे ग्रथित कर देता हू और इस प्रकार रेखाओ के सचय मे सजावट भर देता हू।

चित्रकारी के क्षेत्र की मेरी यही अचेतन शिक्षा रही है। मुझे इस बात मे गहरी रुचि है कि रेखाए किस प्रकार प्राण और वैशिष्ट्य ग्रहण करती हे, कैस उनके परस्पर सम्बन्ध मे विभि न अर्थ परिलक्षित होते हैं, कैसे वे सकेतो की भाषा मे बोलने लगती है।

रचनाओ की पाण्डुलिपियो मे प्राय काट कूट और सशोधन की रेखाए रहा करती हे। मानो वे एकात असलग्नताए हो जो सौदर्य और सामजस्य के सिद्धातो के विरुद्ध मोर्चा ले रही हो, मानो वे कोई अमिट अभिशाप लेकर उठ खडी हुई हो। वे समस्याओ को जन्म देती है और इसीलिए महान् कलाकार विश्वकर्मा के रचना कौशल का विषय बन जाती ह क्योकि वे उन अभिशप्तो मे है जिनकी हठीली वैयक्तिकता को विश्वजनीन एकात्मीयता के एक नये रूप मे ढालना है।

मुझे तब यही अनुभव होता था जब अपनी पाण्डुलिपियो की भूलो के निष्कासन की सनक को मै सम्बन्ध सूत्र मे ग्रथित करके उस अभिनव रूप और वैशिष्ट्य देने का प्रयत्न करता था। ये प्रयत्न कभी तो किसी ऐसे पशु-विशेष का किचित अतिरजित रूप ग्रहण कर लेते थे जो अज्ञात कारणो से अब अपना अस्तित्व खो चुका था, कभी किसी ऐसे पक्षी के रूप मे बदल जाते थे जो केवल स्वप्न जगत ही मे उडान भर सकता था। कुछ रेखाए रोष की अभिव्यक्ति करती थी, कुछ शात करुणा की, कुछ रेखाओ मे ऐसा हास्य मुखरित हो जाता था जो किसी मुखाकृति की अपेक्षा न रखता था। यद्यपि मेरे पास यह जानने का कोई उपाय न था कि क्या ये वर्गीकरण-विहीन विकृतिया, जिनकी उत्पत्ति बिना पूर्व-निर्धारित उद्देश्य के हो गई थी, सौम्य-कला के अतर्गत परिगणित होगी या नही, लेकिन उनसे मुझे असीम सतोष प्राप्त होता था और उनके लिए मै प्राय आवश्यक कार्यो को भी छोड देता था। इ ही के सम्बन्ध मे मुझे सगीत की स्वच्छद प्रकृति की बात याद आई। इसमे कोई सदेह नही कि मूलत स्वरो के साथ शब्दो का गठबधन होता है और इस प्रकार उन शब्दो मे निहित भाव की अभिव्यक्ति होती है। पर मुक्त सगीत इस बात का स्वीकार नहो करता कि शब्दो द्वारा व्यक्त भावनाओ के लिए शब्द अनिवार्य ही हैं, स्वातन्त्र्य के इस अधिकार ने सगीत को उसकी अपनी महानता प्रदान की है और मेरा विश्वास है कि चित्र व मूर्तिकला का विकास इसी क्रम से होता है और उसका उद्देश्य होता है प्रकृत तथ्यो व घटनाओ पर पूर्णाश्रय से मुक्ति का प्रयास।

लेकिन मुझे कला के किसी सिद्धात की स्थापना नही करनी है। मुझे तो केवल यह कहकर सतोष कर लेना है कि जहा तक मेरा अपना सम्बन्ध है, मेरे चित्रो के मूल मे कोई सीखी हुई दक्षता नही है—वे किसी परम्परा या जान-बूझ कर किए गए प्रयत्नो के प्रतिफल नही है। उनका जन्म तो हुआ है अनुपात की सहजात प्रवृत्ति से—रेखाओ और रगो के सामजस्य पूर्ण सघात मे मेरी रुचि और प्रसन्नता के कारण।

●●●



[पक्षी युगल   चित्र रवीन्द्र]

चित्रकार रवीन्द्र

विनोद बिहारी

रवीन्द्रनाथ ने अपने दीर्घ जीवन मे शिल्प, साहित्य एव स गीत चर्चा की एक अविच्छिन्न व एकाग्र साधना हमारे सम्मुख प्रस्तुत की। साहित्य एव सगीत उनकी आजीवन साधना की वस्तु थे कि तु शिल्प उनके जीवन मे एक आकस्मिक अध्याय के रूप मे आया। यह अध्याय जैसा विचित्र था वैसा ही अद्भुत। लगभग पैसठ साल की आयु मे उ होने चित्र बनाना प्रारम्भ किया एव कई वर्ष तक त मय होकर अविराम रूप मे इसे जारी रखा। सात आठ वर्ष तक वे नशे की तरह उसमे लगे रहे। सख्या एव वैचित्र्य मे उ होने थोडे ही अवसर मे चित्र निर्माण के क्षेत्र मे एक विस्मयजनक सृष्टि की। उनके सम्पूर्ण चित्रो पर विभिन्न दृष्टिकोणो से विचार करने पर सभवत एक ही उत्तर प्राप्त होगा कि विचित्र और अद्भुत होने पर भी रवी द्र के चित्र उनके जीवन के ज्ञान मे पृथक नही है।

पर रवी द्रनाथ के चित्रो के साथ शिशु के चित्र का सादृश्य पाकर मन मे एक प्रश्न उठता है। वह प्रश्न एक दम असगत नही है। वस्तुत रवीन्द्र ने जिस आयु मे चित्र बनाना शुरू किया था—उसे शेक्सपीयर की भाषा मे द्वितीय शैशवकाल कहा जा सकता है। बीते हुए दीर्घ जीवन के अवलोकन के पश्चात् जो स्मृति स्वभावत उद्भूत होती है, वही शैशव है। वही स्मृति, वही आश्चर्य, अभिज्ञता और विस्मय उनकी शेष आयु मे, रवी द्र-काव्य मे एक नवीन धारा के रूप मे समाविष्ट हुए। आन द कुमार स्वामी ने उनके चित्रो के विषय मे कहा है कि—'*Not Childish but childlike*' शिशु के चित्र मे जो अपर्याप्त प्राचुर्य होता है, उनके चित्रा मे उसकी खोज पाना असभव नही है। जब जो मन मे आया उसी ज्ञान को चित्रित करने की उ होने चेष्टा की। प्रथमत उनके चित्रो मे रेखाकन का जो सहज व सरल प्रकाश मिलता है, उसकी भी शिशु के चित्र के साथ तुलना की जा सकती है। शिशु जैसे अपने प्राथमिक ज्ञान को चरम ज्ञान मानता है, वैसी ही अभिव्यक्ति उनके चित्रो मे हुई है। तीन पैरो से खडे पक्षी के चित्र मे, उनके शिल्प कर्म का एक अनवद्य प्रकाश और सच्चे शिल्प बोध का परिचय मिलता है। एक अन्य सदर्भ मे उनके चित्रो ने बहुत से चित्रकारो का ध्यान आकर्षित किया है। विशेषत पाश्चात्य कला-समालोचको ने उनके चित्रो के उज्ज्वल रग एव व्यवहार के सम्ब ध मे विस्मय प्रदर्शित किया है। प्राच्य चित्रकला मे साधारणत हल्के रग का प्रयोग ही चित्रो की सुषमा का मुख्य कारण होता है और इस विषय मे भारतवर्ष जापानी अथवा चीन देश की चित्रकला का सामाजस्य प्रस्तुत करता है। रवी द्रनाथ के चित्र इस विषय मे अपवाद रहे है।

उनके चित्रो पर विचार करते समय सुररियलिस्ट चित्रो का प्रसग आना भी असम्भव नही है। पूर्ण रूप से उनके चित्रो को देखने पर कही कही सुररियलिज्म मिलने पर भी मेरी दृष्टि मे यह नही मालूम पडता कि सुररियलिज्म के विशेष लक्षण उनके चित्रो से प्राप्त होते हे। योरुप मे अ तत जिस प्रकार इस चित्र-शिल्प का विशिष्ट परीक्षण एव निरीक्षण हुआ है, उसमे शिल्पी अपने मनस्तात्विक विश्लेषण की ओर सर्वप्रथम ध्यान देता है। द्वितीय, सचेतन मन की विभिन्न प्रक्रियाओ को एक विशेष दृष्टि मे रखकर परिचालित करता है। रवी द्रनाथ की चित्रकला मे इस प्रकार का कोई निर्दिष्ट रूप मुझे प्राप्त नही होता। फिर भी उनके चित्रो मे रियलिज्म के सुस्पष्ट चिन्ह मौजूद हे। उनके आगिक रूप की गठन ओर रीति मे जो अदल बदल मिलनी है, उसके अ तराल मे भी कोई विशेष उद्देश्य नही जान पडता। वे तो अपने मन और इच्छानुसार चले है। इस प्रसग मे दो बाते उल्लेखनीय हे। प्रथम यह कि उनके अ कित पोर्ट्रेटस के शरीरिक अ ग-प्रत्यगो मे चाहे जितनी विकृति (*distortion*) हो किन्तु उनके नेत्र पूर्णत स्वाभाविक हे। द्वितीय, *Figure Painting* मे कभी हाथ या अ गुलियो का *expression* देखने को नही मिलता। इन दोनो विषयो मे हम उन पर गर्व कर सकते हे। निश्चय ही उनके चित्रो मे नाटकीयता का अभाव नही है। आकस्मिकता उनके चित्रो का एक विशेष लक्षण है। अ ग्रेजी मे जिसे *sensation* कहते हे उसी तीव्र अनुभूति का स्पर्श प्राय उनके समस्त चित्रो मे प्राप्त होता है।

जो समस्त आकृतिया उन्होने अ कित की है, वे सभवत जीवन के प्रत्यक्ष ज्ञान से ग्रहण की गयी है। सुना गया है कि उन्होने फोटो से भी चित्र बनाये थे कि तु वहा भी तूलिका ने नवीन भावो का ही अरोपण किया है। प्रचलित अ कन रीति के अनुसरण की चेष्टा उ होने कभी नही की तो भी *Landscape* के अ कन के समय उनमे सहज चित्रकार के ही दर्शन होते हे। जो भी चित्र उन्होने बनाये हे, उनमे प्रकृति और मनुष्य के बीच उनके घनिष्ट प्रत्यय सामीप्य मे हमे कोई सशय नही रहता। हम यह समझ जाते है कि कवि रवीन्द्रनाथ और चित्रकार रवीन्द्रनाथ मे मूलत कोई अ तर नही है। आवश्यकतानुसार इस सम्ब ध मे उनका *observation* ओर *experience* प्रचुर हे।

रवीन्द्रनाथ ने अपने चित्रो के विषय मे कहा है—"*In the process of this salvage work, I come to discover one fact that in the universe of form there is a perpatual activity of natural sellection in line and only the fittest servi.es, whith has in itself the fitness of cadence*" कलाकार के जगत् का तात्पर्य है "*The world of gesture*" एव "*The universe has its own language of gesture I Clearly see that the world is a great procession of forms*"

अ त मे यह बात कही जा सकती है कि उनके चित्रो मे प्रारम्भ से अ त तक आश्चर्य व *freshness* देखी जाती है अर्थात् चित्रकला अ त तक उनके लिए एक आनन्दमय नशे की तरह थी। मन के निराकार से अचिन्तित, कल्पनातीत आकार कब कैसे जाग उठता है और किस प्रकार वही रेखा और रगो मे फूट उठता है, इस विस्मय से वे कभी मुक्त नही हो पाये। ●●●



[रवीन्द्र निर्मित चित्र एक चिडिया]

रवीन्द्र की सौन्दर्योपासना व चित्रकला

•

रामगोपाल विजयवर्गीय

अनुमानत सन् १९२८ की बात होगी, जब कि मैने भरतपुर के हि दी-साहित्य सम्मेलन मे श्री रवीन्द्रनाथ के दर्शन किये थे। वही चित्रकार के रूप मे मेरा उनसे परिचय श्री दुलारेलाल भार्गव ने कराया था। इसके बाद सन् १९३४ मे पहली बार मैंने कलकत्ते की यात्रा की। एक दिन रामानन्द चटर्जी (सम्पादक मार्डन रिव्यू) के छोटे पुत्र श्री अशोक चटर्जी, सजनीकातदास और एक अन्य प्रमुख बगला साहित्यकार विशाल-भारत बुक डिपो, हरिसन रोड पर पर बैठे कुछ साहित्यिक-चर्चा कर रहे थे, मै भी इस गोष्ठी मे सम्मिलित था।

बात चल पडी श्रीरवी द्रनाथ ठाकुर के काव्य और उनके चरित्र की। सजनीकातदास रवि बाबू के प्रशसक होने के साथ-साथ कटु आलोचक भी रहे है। उन दिनो वे 'शनिवारेर चीठी' मे प्राय रवि बाबू पर कुछ न कुछ कीचड उछालते रहते थे या उनकी किसी रचना पर टीका-टिप्पणी करते रहते थे। सजनी बाबू ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि रवि बाबू अत्य त शृ गारी वृत्ति के व्यक्ति है। वे इतने सौ दर्योपासक और रसलोभी है कि उनकी दृष्टि निर तर इस लालसा मे लगी रहती है कि कही कोई रूप-दर्शन का साधन मिले। इसी प्रसग मे श्री सजनी बाबू ने एक दृष्टा त उपस्थित किया।

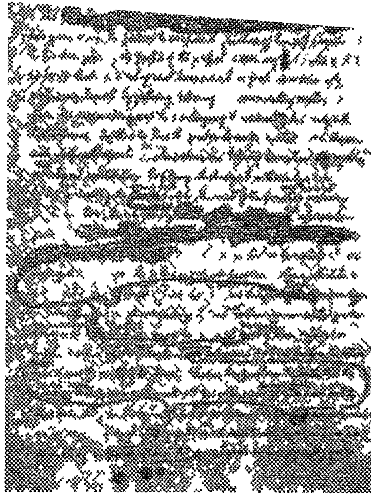
एक बार रवि बाबू अपने मकान की छत पर जो बासतल्ला स्ट्रीट मे स्थित है, खडे हुए थे। दूर एक मकान की छत पर एक युवती अपना केश विन्यास कर रही थी। उसने बाल सुखाकर जूडा बाधा। उस सद्यस्नाता के अ ग सौष्ठव को रवि बाबू ने कई मिनटो तक खडे रहकर देखा। वह युवती नित्यप्रति छत पर पर स्नानार्थ आती और रवि बाबू अपनी छत पर खडे रहकर उसका सौन्दर्य-पान करते। इस प्रकार पाच छ दिन व्यतीत हो गये। एक दिन युवती के पिता रविबाबू के पास आये और सादर श्रद्धाभाव से कहा 'आप नित्य ही मकान की छत पर जाने का कष्ट क्यो किया करते है ? क्या इसका कोई विशेष कारण है।' रवि बाबू ने कहा—'वह जो एक लडकी छत पर बाल सवारती है, उसे देखकर मुझे कविता लिखने की प्रेरणा मिलती है, तुम कौन हो ?' आग तुक ने विनय से कहा—वह मेरी पुत्री है, यदि उसे देखकर आप कविता लिखने की प्रेरणा लेते है तो मेरा सौभाग्य। मैं उस लडकी को आपके पास ही भेजे देता हू उसे सम्मुख बैठाकर कविता लिखिए। आप जैसे महान व्यक्ति इस साधारण सी बात के लिए छत पर चढने का कष्ट करते है यह मेरे लिए

लज्जा की बात है। रवि बाबू ने कहा—'महाशय आपकी उदारता का मे सम्मान करता हू किन्तु कविता इस प्रकार नही लिखी जाती। प्रेरणा तो दुस्साध्य, दुर्लभ और दूर की वस्तु से ही मिलती है। निकट आया हुआ अति-सुन्दर पदार्थ भी अपना आकर्षण खो बैठता है। यह कविता अब अधूरी ही रहेगी। मन के इस गोपनीय व्यवहार को हथेली पर नही रखा जा सकता।' इस प्रकार दृष्टान्त की समाप्ति करते हुए सजनी बाबू ने चाय का आखिरी सिप लिया और उपस्थित गोष्ठी मे अट्टहास की ध्वनि उठी किन्तु तीसरे साहित्यिक महोदय ने सबके मुंह पर तमाचा-सा लगाते हुए कहा कि इससे उनके चरित्र पर कोई आघात नही आता, यह तो कवि की सौन्दर्योपासना है। रवीन्द्र देश का अनुपम रत्न है, उनकी हर बात मे रहस्य और गम्भीर चिन्तन की छाप है। सजनी बाबू और कुछ कहने को आतुर थे किन्तु तभी अशोक चटर्जी ने गोष्ठी के विनोद प्रवाह को वही रोककर विदा ले ली।

मे रवि बाबू से दो बार मिलने गया। पर उनके अस्वस्थ होने के कारण भेट न हो सकी। उन्ही दिनो मुझे कलकत्ते के कुछ पत्रो तथा एक प्रदर्शिनी मे रविबाबू के चित्र देखने का अवसर मिला था, उस समय इन चित्रो की कटु आलोचना होती थी। उन दिनो मै स्वयं रविबाबू के चित्रो का कटु आलोचक रहा हू। मैने पुरानी परम्परा और यथार्थ चित्रण का आधार लेकर उनके चित्रो को उस समय दोषपूर्ण बताया था, किन्तु आज नये परिप्रेक्ष्य मे मेरी मान्यताये बदल गई है आज मै अनुभव करता हू कि रविबाबू के चित्रो ने आने वाले युग की कला का निर्देश समय के पूर्व ही कर दिया था। उनके चित्रो मे विषय की विविधता, सूक्ष्मदर्शन, व्यंजना की ओजस्विता और चित्रण की मौलिकता का महत्व निर्देशित है। अब तक जो कुछ होता रहा, वह रूढिवाद और परम्परा के साथ घिसटने का दृष्टिकोण था। रविबाबू के चित्रो ने हमारी विचारधारा को सहसा एक सीमित-बिन्दु से हटाकर खुले प्रकाश मे लाने का यत्न किया। आज तो उनके चित्र, चित्रकला के सिद्धान्तो की कसोटी पर सर्वोत्तम सिद्ध हो ही चुके है किन्तु उस समय भी अनेक देशो मे उनके चित्रो की प्रशंसा हुई थी।

उनके चित्र 'मशीनमैन' तथा 'कूदता हुआ हिरन', 'पानी वाली' और 'विचित्र जन्तु' मुझे अब तक याद है। वे चित्र कल्पना की उत्कृष्ट रचना तो नही है पर हमारे विचार-सागर मे उठने वाली अनन्त आनन्द तरंगमालाओ की एक ऐसी अनुभूति है, जो अछूते व्यक्तित्व प्रधान और अभिव्यक्ति की उर्वरता के प्रतीक है। प्रसिद्ध रूसी चित्रकार निकोलस रोरिक ने भी इसी प्रकार के प्रयोग अपने चित्रो के रंगविधान मे किए है। रवीन्द्र ने भारत मे, निकोलस रोरिक ने रूस मे चित्रकला के क्षेत्र मे एक क्रान्ति का सूत्रपात किया था। इन दोनो भविष्य द्रष्टाओ ने अपने व्यक्तित्व को रंगो द्वारा प्रकाशन मे लाने की एक ऐसी प्रणाली को जन्म दिया जो आज फल-फूलकर सम्पूर्ण विश्व मे मान्यता प्राप्त कर चुकी है। रविबाबू के चित्र अन्तर की एक आवाज है। ऐसी आवाज जो भाषा के माध्यम से नही कही जा सकती। सौन्दर्य की अनुभूति को इस प्रकार बन्धनो से मुक्त करने वाली कला परम्परा ने आज सारे विश्व के सम्मुख यह प्रमाणित कर दिया है कि कलात्मक अनुभूति को बिना किसी आधार एवं बिना साहित्य और साकार की सहायता के केवल रंगो और रेखाओ द्वारा व्यक्त किया जा सकता है।

●●●



[रवीन्द्र द्वारा संशोधित पाण्डुलिपि]

चित्रकार रवीन्द्र

एम० तुल्याएव

यद्यपि काफी आयु हो जाने पर उन्होने चित्राकन शुरू किया था, फिर भी रवीन्द्रनाथ टैगोर ने दो हजार से अधिक चित्र बनाये। और यह कार्य, उनके साहित्यिक, गीत लेखन, सगीत तथा चित्रकलात्मक कृतित्व एव गतिविधियो के अतिरिक्त था। उनकी अपरिमेय, अजेय सृजनात्मक-शक्ति सचमुच विलक्षण थी।

टैगोर बडे अनोखे चित्रकार थे, उनमे आधुनिक पश्चिमी रूप विधान और सच्ची भारतीय परम्पराओ का, गुण और लक्षणो का अद्भुत समावेश था।

ध्यान देने योग्य बात है कि टैगोर की चित्रकला, लेखक द्वारा अपनी पाण्डुलिपियो मे किये गए सशोधनो से विकसित हुई। इस प्रकार इसका उद्गम भी एक प्रकार से प्राच्य लघुचित्रो के ही समान है, जिनका उद्भव साहित्यिक पाण्डुलिपियो के लिए अकित अलकारो मे हुआ था।

टैगोर की कला रेखाओ और उनके लय माधुर्य द्वारा राष्ट्रीय परम्पराओ से सम्बद्ध है। प्राचीन भारतीय कला और शास्त्रो के सौदर्यबोध सबधी नियमो मे लय का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय लघुचित्रो मे भी और अजन्ता के भित्तिचित्रो मे, मूर्तियो की भगिमाओ, मुद्राओ तथा ओजस्वी शक्ति मे हमे भारतीय नृत्यो की लयतालमयी गति के साथ निकट सबध एव अनुरूपता दृष्टिगोचर होती है।

स्वय टैगोर ने कहा था—'मेरे चित्र रेखाओ मे मेरी काव्य रचना है।' और जब आप इस महान् कवि के चित्रो की आरभिक रेखाओ और तूलिका के अकन को गौर से देखते है तो आपको लगता है कि वे उनके सृजनात्मक स्वभाव के अग है।

एक और विशेष गुण जो उनकी चित्रकारी को भारतीय कला की समानधर्मी बनाता है, उनकी कृतियो की अत्यधिक भावप्रवणता और अभिव्यजनशीलता है। उनके द्वारा अकित पुरुषो और विशेषकर नारियो के प्रतिरूप एव प्रतिमाए विशुद्ध रूप से भावनाओ मे चुनी हुई, भाव-निर्मिति सी प्रतीत होती है। लगभग बिल्कुल ही शरीरविहीन नारी-आकृतियो मे वसत और प्रेम के प्रधान भाव विषय सहित भावनाओ का एक प्रचण्ड गहन जगत देखा जा सकता है। टैगोर की माधुर्यपूर्ण रूपरेखाए, ओजपूर्ण मुद्राए, भाव-भगिमाए, तीव्र अतर-प्रदर्शन, भावात्मक ध्वनि, और यहा तक कि उनकी अपार्थिव या विलक्षण प्रतिमाए भी असाधारण रूप से अभिव्यजनाशील है।

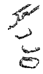
टैगोर के चित्र चित्राकन के परम्परागत भारतीय तरीको तथा परम्परागत नैतिक आदर्शो का और पश्चिम यूरोपीय रूपविधान-प्रधान (फोर्मलिस्टिक) कला की सामान्य अभिव्यक्ति का एक सम्मिश्रण थी। भारतीय लोक कला कभी भी पूरी तरह 'फोर्मलिज्म' (रूपविधानवाद) या 'ऐब्स्ट्रैक्शनिज्म' (अरूपवादिता) का शिकार नही हुई। वह सदा ही गहन रूप से अर्थपूर्ण रही है। लेकिन, रखाचित्रो और विशुद्धत रूपवादी नमूनो से होकर, विकृत और अ गहीन आकृतियो से होकर टैगार अपनी कला की अतिम मजिल मे एक अधिक विषयव्यजक कला पर पहुँचे। उन्होने कोशलपूर्वक प्रतिमाओ का सामान्यीकरण करते हुए अपने समसामयिको का चित्रित किया, उदाहरणस्वरूप भारतीय नारियो के उनके चित्रण को लिया जा सकता है। ये कोई रूपहीन आकार नही थे बल्कि जीवित प्रतिमाए थी—जीवत ऊष्मा और भावान्दोलित कर देने की शक्ति से ओतप्रोत। टैगोर का ऐसा ही एक सशक्त चित्र है, पात्र लिये हुए स्त्री का। स्वय स्त्री की आकृति का तो चित्रण कोमल, दबे हुए रगो मे बस दाई ओर की पृष्ठभूमि के रूप मे किया गया है,—किन्तु बाम भाग मे प्रखर नीलिमा—चित्र पर सगीन की नाई बरसती है और हर चीज को मुखरित गु जरित कर देती है, और इस प्रकार स्त्री की आकृति क महत्व को बढा देती है।

नारी की प्रतिमा के प्रति टैगोर का राष्ट्रवादी दृष्टिकोण उनके चित्रो मे स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। सहस्राब्दियो स हर प्रकार की भारतीय कला मे इस प्रतिभा का सम्मान, गरिमा और प्यार के साथ अकन किया गया है। नारी का उनका 'वह' शीर्षक चित्र, अथवा सरल भाव से निरूपित नारियो के चेहरे टैगोर के अपने समय की नारियो के चित्र है। वे कितने गौरवमण्डित, शालीन और जीवत हे। कितने प्रेम से टैगोर ने उन्हे अकित किया था। यही वह तत्व है जा नारी के उनके चित्रो को भारतीय कला की परम्पराओ से भाव-तत्व के रूप मे एक कडी जोडता है।

रवीन्द्र की चित्रकला का मुख्य और सामान्य गुण है उनका महान मानवनावाद, जो कि वास्तव मे समस्त भारतीय-कला का विशेष गुण है। टैगोर द्वारा अकित पुरुषो के चित्र विलक्षण, स्वाभाविक और अभिव्यजनापूर्ण ह। बहुधा वे आश्चर्यजनक मनोभावो के ओज से परिपूर्ण होते है। वे हमे मनुष्य के आन्तरिक जगत् मे ले जाते है, और उसके प्रति हममे प्यार जगाते है। इस प्रकार की नारी मूर्तियो अथवा मुखमण्डलो की प्रतिमाओ का एक पूरा क्रम है, जो इतनी मौन होते हुए भी इतनी मुखर हे।

टगोर ने स्थिर जीवन के कुछ सुन्दर चित्र के साथ ही एक बहुत ही दिलचस्प आत्म चित्र भी बनाया। प्राकृतिक-दृश्यो का उनका चित्रण अत्यन्त मौलिक है। इनमे मे एक, भूरे रगो मे अकित चित्र, कलाकार की मनोदृष्टि, उसकी अन्त चेतना को अभिव्यक्त करता है। यह एक ही साथ पार्थिव भी है और अपार्थिव भी। पानी और पेड अपने प्रकृत रगो मे नही चित्रित किये गए है, फिर भी यह चित्र एक शक्तिशाली और अद्भुत प्रभाव उत्पन्न करता है।

अपने चित्रो मे टैगोर ने कलाकार के रूप मे अपनी सृजनात्मक मेधा को पूर्ण रूप मे अभिव्यक्त किया। मानवप्रेम से ओतप्रोत और कवित्वमय उनकी कला सैद्धातिक एव सौन्दर्यबोध सबधी महत्व से भरी है, और भारतीय तथा विश्व चित्रकला भण्डार की एक महान् निधि है। ●●

भारतीय-संगीत और रवीन्द्रनाथ

सुनीति कुमार चाटुर्ज्या (डॉ०)

प्राचीन भारत के सगीत का कोई भी पुरातन नमूना अब सुरक्षित नही है। पर उदयगिरि, भरौत, साची, मथुरा और अमरावती के खुदे चित्रो से, अजन्ता बाघ गुफा मे खिची तस्वीरो से प्राचीन भारतीय नृत्य के सम्बन्ध मे एक धारणा बनाई जा सकती है। सामगान की जो धारा अभी भी चली आ रही है, उसमे एक विशिष्ट अतिशय धर्म सगीत का थोडा सा आभास मिल जाता है। सथाल, मुडा, टोडा आदि अनुन्नत जातियो के स्वकीय गानो के सुर से भारत के आदिम अधिवासियो के गानो की तर्ज का भी अनुमान लगाया जा सकता है। सगीत सबधी प्राचीनतम कोई भी सस्कृत पुस्तक सन् १००० ईस्वी से उधर की नही है। ईसा के जन्म की दो-तीन शताब्दियो क बीच शूद्रकराजा द्वारा रचित 'मृच्छकटिक' नाटक मे, नायक चारुदत्त रात को काफी देर तक गाना सुनने के बाद घर वापस आ रहे है—रास्ता चलते चलते साथी विदूषक मैत्रेय से वे उच्छ्वसित होकर गायक रेभिल की प्रशसा करते है—

रक्त च नाम मधुर च सम स्फुट च, भावान्वित च ललित च मनोहर च।
किंवा प्रशस्तवचनैर्बहुभिर्मदुक्तै रन्तर्हिता यदि भवेद्वनितेति मन्ये ॥

गाना इतना सुन्दर है कि यदि गायक आखो से ओझल हो जाय तो ऐसा लगता है मानो कोई नारी गा रही हो। इसमे गाने के पुरुषोचित गाम्भीर्य से स्त्रियोचित माधुर्य की प्रशसा ही देख रहा हू। यह बात मैत्रेय को अच्छी नही लगी, वे कहते है—

मणुस्सो वि काअलि गाअन्तो, सुक्खव सुमणो-दाम।
वेटठिदो-बुड्ढ-पुरोहिदो विअ मन्त जवन्तो, दिढ मे ण रोअदि ॥

'पुरुष यदि काकली गाय, तो वह सूखे फूलो की माला सर पर लपेटे बूढे पुरोहित के मन्त्र-जप करने क समान है, जो मुझे बिल्कुल नही भाता।'

वीणा बजाते हुए उज्जयिनी की विदग्धजन-सभा मे भाव-रेभिल ने जो गाना गाया था, उसके ठाठ व ढग क्या थे, उसको जानने का इतिहास उपलब्ध नही है। दुष्यन्त की अन्यतमा रानी हसपदिका वीणा बजाकर जो 'वर्णपरिचय' अथवा मूर्च्छना राजा को सुना रही थी, वह भी किस ढग का था कहा

नही जा सकता। महाकवि बाण भट्ट ने अरण्यस्थित शिव मंदिर के अलिंद मे तरुणी तापसी महाश्वेता के गान का वर्णन किया है। काश, इस तरह के गानो की सुर लय का पता चलता ' किंतु वह कण्ठस्वर, वह वीणाध्वनि चिरकाल क लिए स्तब्ध हो गई—उसकी क्षीण धारा शायद हमारे मध्य युग के सगीत मे थोडी बहुत झंकृत प्रवाहित हुई या रही हो।

उत्तर-भारत के राजपूती चित्रो से, पश्चिम बगाल की श्रेष्ठ पोथिया के पाठो स, जिस प्रकार बाघ अजन्ता के भित्ति चित्रो की धारणा, धारापुरी कैलाश महाबलिपुरम् बादामी की, मथुरा अमरावती और भरौन साची के खुदे चित्रो की धारणा सम्पूर्ण रूप से नही बनाई जा सकती, उसी प्रकार सगीत की स्थिति है। सगीत मे भी अकबर तानसेन के समय के सोलवी शताब्दी के हिन्दू-सगीत ध्रुपद से (जो ध्रुपद गुरुपरम्परा से अपने तीन-चार सौ वष से प्रचलित तर्ज को किसी मात्रा मे अब तक निभाये जा रहा है) ईस्वी सातवी या तीसरी अथवा ईसा से पूर्व दूसरो या तीसरी शताब्दी के प्राचीन भारतीय सगीत के सम्बन्ध मे पूरी जानकारी पाना असभव है। 'सगीत-दर्पण' आदि प्राचीन सगीत विषयक सस्कृत पुस्तको से, उत्तर भारत के ध्रुपद और दक्षिण भारत के 'पदम्' और 'कीर्तनम्' की तरह प्राचीन अथवा प्राचीन-पथी-गधी सगीत रीति से, उसका थोडा बहुत अनुमान मात्र किया जा सकता है, 'सगीत-दर्पण' आदि प्राचीन पुस्तके (हमारे बगाल की और नेपाल की बोद्ध-पोथियो मे अंकित चित्र जैसे अजन्ता का आभास सा देते है), बाणभट्ट कालिदास-शूद्रक के युग के सगीत का एक आभास शायद दे सकें, पर यह सम्पूर्ण पर्यवेक्षण सगीत के इतिहास तथा सगीत की गति के विषय मे गवेषणा के अंतर्गत आता है।

भारत मे आर्यभाषा के विकास की धारा निम्न प्रकार प्रवाहित हुई है—'सस्कृत' या आदि आर्य, 'प्राकृत' या मध्य-आर्य और 'भाषा' या नव्य आर्य। मध्य और नव्य-आर्य के सन्धिक्षण मे जो अपभ्रंश है, वह एक साथ प्राकृत का अंतिम रूप एव भाषा का आदिम रूप है। इस भाषा का इतिहास ईस्वी सन् १००० से प्रारम्भ हुआ है, अभी तक भाषा का यही युग अर्थात् नव्य आर्य युग ही चला आ रहा है। इस नव्य आर्य युग की भाषा मे फिर तीन स्तर माने जाते है—आद्य, मध्य, नव्य। भाषा के क्षेत्र मे आदि आर्य, मध्य आर्य, नव्य आर्य इन सब स्तरो का यथेष्ट उपादान उपलब्ध है, किंतु सगीत के क्षेत्र मे अनुरूप नव्य आर्य अथवा भाषा युग के मध्य स्तर क (अथवा आद्य स्तर क) पूर्व का उपादान अब हमारे लिए उपलब्ध नही है। अमीर खुसरो और गोपाल नायक—ये त्रयादश चतुर्दश शताब्दी के लोग है। इनके समय तक ध्रुपद खयाल क सुर-लय युक्त गान सुरक्षित रहे है। इससे पूर्व हमे जयदेव के गीतगोविन्द क पद मिलते है, गान का उल्लेख मिलता है, सुर ताल के नाम मिलते हे, किंतु सुर नही मिलता। कम से कम बगाल मे नही मिलता, सुना है महाराष्ट मे पुराना सुर सुरक्षित है। सुर-ताल के नाम से, गाने का ढग देखकर प्रतीत होता है, गीतगोविंद के वे सब गान ध्रुपद पर्याय के ही थे। इससे पूर्व ईस्वी बारहवी शताब्दी के प्रथमार्द्ध मे सकलित सस्कृत विश्वकोष 'मानसोल्लास' या 'अभिलषितार्थ चिंतामणि' मे भी गान का उल्लेख है, किंतु सुर-लय जानने का कोई

उपाय नही है। श्रद्धेय श्रीयुक्त अर्द्धेदुकुमार गगोपाध्याय महाशय ने राजपूती राग-रागिनियो के चित्रो के आलोचनामूलक अपने विराट सचित्र ग्र थ की भूमिका मे हमारे राग रागिनियो के इतिहास की आलोचना की है। हमारे सगीत मे विभिन्न राग रागिनिया की कल्पना कितनी पुरानी है, कहा नही जा सकता। पर नामो से अनुमान होता है कि कम स कम कुछ प्राचीन राग और रागिनी विभिन्न प्रदेशो मे प्रचलित या विभिन्न प्रदेशो मे उद्‌भूत जनप्रिय सुरो या गतो के आधार पर बने थे जैसे, गुर्जरी या गूजरी, मालवी, बगाली, गौड, मालव-कौशिक, बहरोडी, गधार झिझोटी, कनाडा। अर्थात् इससे यह प्रमाणित होता है कि हमारे मध्य युग मे, अर्थात् १२००–१६०० ईस्वी के बीच जो क्लासिकल या उच्चाग का सगीत बन गया था, मूलत उससे हजार वर्ष पूर्व बहुल परिमाण मे लोक-सगीत ही था। परिमार्जित रुचि के लोगो के हाथो, शिक्षित कलावन्तो के हाथो, लोक-सगीत या ग्राम–गीत उच्च अ ग के सगीत मे परिणत हो जाता है। सभी देशो मे ऐसा देखा जाता है। यहा भी यही प्रतीत होता है कि वही धारा परवर्ती युग मे भी चली आयी है। हमारा प्राचीन-सगीत कभी रूढ नही था, वह गतिशील अर्थात् प्राणवन्त था और इसीलिए यह चीज इतने युगो से जीती जागती चली आ रही है। आवश्यकतानुसार विदेशी बाते भी इसमे घुस गयी है, लोक-गीत या ग्राम गीत के सुरो का भी इस पर प्रभाव पडा है। शुद्ध और मिश्रित प्राचीन और नवीन, दोनो तरह मे स्थिर *Melody* अर्थात् राग का रिवाज शुरू से ही चल पडा हो। आज जो मिश्र राग है, क्लासिकल या प्राचीन होकर कल उसे ही शुद्ध राग का सम्मान मिलेगा। तानसेन की सृष्टि 'दरबारी कनाडा' या 'मिया की मल्हार' जैसे राग को अब कोई *non-classical* अथात् निकृष्ट, नही कहेगा।

ईसा की बारहवी तेरहवी शताब्दी के बाद तुर्को के आगमन विजय मे फारसी या मुसलमान ईरान की सस्कृति ने नये रूप से भारतवर्ष की हिन्दू-सस्कृति को प्रभावान्वित किया। प्रतीत होता है धर्म और आध्यात्मिक अनुभूति के क्षेत्र मे भारत के नव जागरित भक्तिवाद के ऊपर ईरान स आया एक प्रबल सूफी प्रभाव पडा था। सूफी अनुभूति और दर्शन मुख्यत शेमीय अरब इस्लाम के धर्म-भाव और अनुभूति के प्रति आर्य ईरान के मन की प्रतिक्रिया का परिणाम है—किन्तु इसके सगठन म भारत के वेदान्त का भी एक अच्छा योग रहा है, इस विषय मे कोई सन्देह नही। उत्तर भारत के वास्तु-शिल्प पर भी भारतीय और ईरानीय प्रभाव यथेष्ट परिमाण मे पडा है।

इन दोनो वास्तु-रीति के मिश्रण मे, मध्य-युग की उत्तर-भारतीय वास्तु रीति मे एक और नई 'भारतीय मुसलमान' धारा प्रवर्तित हुई। भाषा पर और साहित्य पर भी (विशेषत उत्तर-भारत मे जहा अत्यत प्रतापशाली मुसलमान राजशक्ति की प्रतिष्ठा हो चुकी थी) ईरानी प्रभाव पडता रहा—विभिन्न उत्तर-भारतीय नव्य-आर्य भाषाओ मे फारसी के शब्द घुलमिल जाते रहे—और सत्रहवी-अठारहवी शताब्दी मे दकनी अथात् दक्षिणा पथ मे उत्तर-भारत क मुसलमानो द्वारा लाई गई और प्रतिष्ठित हिन्दी व उर्दू ये दोनो भारतीय भाषाए मुसलमान ईरान की फारसी भाषा और साहित्य के आदर्श पर पनप उठी। उत्तर-भारत के सगीत पर भी उसी प्रकार मुसलमान (अर्थात् ईरानी)

प्रभाव कुछ कम नही पडा। किंतु इरान के गजल मसिया कव्वाली सुर आ जाने पर भी हमार भारतीय सगीत की विशिष्टता एकदम मारी नही गयी, हमार राग रागिनियो के ठाठ ठीक ही बने रह, बाहर मे जो कुछ आया था उसे बिलकुल हजम कर अपना लिया। अपनी पुरानी धारा को निभाते हुए भारतीय-सगीत विकसित हो गया। मुसलमान गायको तथा सगीत क मुसलमान पृष्ठपोपको ने प्राचीन युग से उपलब्ध राग रागिनी मूलक भारतीय-सगीत की रीति या पद्धति को अपना लिया। देश मे ध्रुपद था, अमीर खुसरो ने इसमे इरानी प्रभाव जोड दिया, उन्होने ओर उनके समकालीन सगीत रसिको ने नई चीज लाकर रख दी—'ख्याल' या खयाल। पजाब के प्रचलित लोक सगीत के आधार पर बना 'टप्पा' आया जिसे शोरी मिया के प्रभाव से उत्तर भारत के प्रोढ या शिक्षित सगीत की सभा मे मर्यादा का एक आसन मिला। उसी प्रकार बुन्देलखण्ड के लोक-सगीत से 'दादरा' आया।

मध्य-युग मे बगाल मे गोडीय वैष्णव सम्प्रदाय के द्वारा सोलहवी सत्रहवी शताब्दी मे 'कीर्तन' की सृष्टि हुई जिसके मूल मे प्राचीन राग और ताल थे। किन्तु बगाल के स्थानीय लोक सगीत के प्रभाव मे पडकर कीर्तन ने एक विशिष्ट रूप धारण कर लिया। प्राचीन भारी ओर विलम्बित चाल का कीर्तन कभी कभी ध्रुपद का ही स्मरण करा देता हे। पर हलकी चाल का कीर्तन भी आया। बगाल मे इधर वाले युग मे इसी चाल और चीज का प्रचलन अधिकतर हुआ। उत्तर भारत की राजधानी दिल्ली के तुर्की पठान और मुगल दरबार से बगाल दूर होने के कारण मध्य युग मे बगाल का लोक-सगीत उत्तर-भारत के उच्च कोटि के सगीत को वैसा कुछ नही दे सका। अपनी प्रकृति और रुचि के अनुयायी बगाल के लोग कीर्तन ओर बाउल, भाटियाल, रामप्रसादी आदि ढग के कुछ सुरो को लेकर खुश थे, ओर पश्चिम के साथ सम्पर्क रख सके थे। ऐसे शिक्षित सगीतज्ञो के बीच बगाल मे भी ध्रुपद खयाल को प्रतिष्ठा का एक आसन मिल गया। ईस्वी अठारहवी शताब्दी के प्रारम्भ से मल्ल-वंशीय राजाओ की अमलदारी मे पश्चिम-बगाल का विष्णुपुर नगर ध्रुपद-खयाल का एक केंद्र हो गया था। उसी तरह पूर्व बग का ढाका भी पश्चिम से आगत उस्तादी गाना का एक केंद्र बन गया। लखनऊ के शौकीन नवाबो के जमाने मे उत्तर भारत के सगीत की गति अव्याहत रही, गजल कव्वाली और टप्पा ठुमरी की बडी उन्नति हुई। ध्रुपद खयाल के साथ साथ बगाल मे भी टप्पा ठुमरी का प्रचलन हुआ। इस विषय मे रामनिधि गुप्त (निधु बाबू) के उन्नीसवी शताब्दी के मध्य भाग मे बगला-सगीत मे अपने गानो और सुर की सहायता से युगांतर ला उपस्थित किया।

दक्षिण-भारत की कर्नाटक पद्धति के सगीत का इतिहास हमे ठीक ज्ञात नही। पिछली शताब्दी के मध्यभाग मे तेलुगु भाषी कवि ओर सगीतकार श्री रामचन्द्र के परम भक्त त्यागराज ने दक्षिण के ध्रुपद 'कीतनम्' की रचना की। उत्तर भारत के तानसन की तरह ही दक्षिण-भारत के सगीत मे उनका गौरवमय स्थान है। त्यागराज के तेलुगु कीर्तनम् रामचन्द्र विषयक हे। उत्तर भारतीय या हिन्दुस्तानी सगीत के तानसेन के पदो की भाति कर्नाटकीय सगीत मे इनकी प्रसिद्धि है। तमिल कनाडी व मलयाली गायकगण भी ये तेलुगु कीर्तनम् गाया करते हे जिस प्रकार मराठी, पजाबी, काश्मीरी,

गुजराती, बगाली गायकगण तानसेन का ब्रजभाषा हिदी मे सीमित ध्रुपद गाया करते है। दक्षिण-भारत के सगीत मे शायद हमारे खयाल टप्पा ठुमरी की तरह प्राचीन के नवीनतर रूपभेद नही दिखाई दिये। मुसलमान पूर्व युग का, शुद्ध हिंदू-सगीत का रूप शायद दक्षिण भारत मे ही अधिकतर सरक्षित है।

आधुनिक काल मे भारतवर्ष के सगीत मे सुर-स्रष्टा अनेक हुए है। किन्तु आधुनिक भारतीय-सगीत मे रवीन्द्रनाथ का एक विशिष्ट स्थान है—शायद और किसी का उस प्रकार का स्थान नही है। बडे बडे गायको की बात नही कर रहा हू और न भातखण्डे जैसे प्राचीन सगीत के सशोधको या गवेषको तथा सस्कारक-सुधारको की ही बात कर रहा हू। आधुनिक बगला गान को अवलम्बन बनाकर रवीन्द्रनाथ ने भारतवर्ष के ही सगीत को पुष्ट कर उपस्थित किया है। आजकल, विशेष रूप से पिछले दस पन्द्रह वर्षो के भीतर, रेडियो और उससे भी अधिक सिनेमा की कृपा से, विभिन्न प्रदेशो मे अखिल भारतीय सगीत का साचा एक ही ढग का होता चला जा रहा है। एक ही हिदी का फिल्मी गाना बम्बई, पूना, बगलौर, मद्रास, हैदराबाद, मदुरा, नागपुर, कलकत्ता, ढाका, पटना, काशी, प्रयाग, लखनऊ, दिल्ली, लाहौर, कराची, अजमेर की सडको पर राहगीरो के मुह मे सुनने को मिलेगा—ये सब गाने सिनेमा का फल है। पारसी थियेटरो की वजह से बम्बई का चालू सुर (प्राचीन राग रागिनी या विलायती गाना तोड-फोड कर तैयार किया हुआ) बगाल मे आया था। इधर द्विजेन्द्रलाल राय और हाल मे गुरुसदय दत्त अग्रेजी सुर को भी बगाल व भारतवर्ष मे लाये। बगला गानो का सुर भारत के अन्यान्य स्थानो मे उतना आकर्षक नही माना जा रहा था, एक तो इन सब गानो की भाषा बगला थी। बगला गानो मे क्लासिकल या प्राचीन गानो की तुलना मे भाषा का स्थान बहुत ऊचा होता है, तिस पर इन सब गानो का सुर उत्तर-भारत मे मान्य राग-रागिनी का न होकर टूटी-फूटी राग रागिनी का होता था। इन्ही दो कारणो से प्रचलित बगला गानो का सुर उतना प्रचलित नही हो सका। कीर्तन, बाउल, भाटियाल की बात तो दूर रही, ये नितान्त बगाली लोक सगीत के पर्याय मे होने के कारण, एक सीमा तक बगाल के भीतर ही रहे। एक कीर्तन को देशबधुचित्तरजन, विपिनचन्द्र पाल, रसमय मित्र और श्रीयुक्त सुदरीमोहन दास महाशय के प्रयत्नो मे बगाल के शिक्षित समाज मे अपना एक स्थान बना लेने का अवसर मिला है, अन्यथा कीर्तन केवल वैष्णव-सम्प्रदाय मे ही निबद्ध था। बाउल, भाटियाल का जो प्रतिष्ठा मिली है, वह मुख्य रूप से रवीन्द्रनाथ के प्रसाद का ही फल है। बगाली उस्ताद या कलावन्तो के सामने इनकी प्रतिष्ठा नही थी, इसलिए बगाल से बाहर के उस्तादो और कलावन्तो की श्रद्धा इस सारे विशिष्ट बगला-सगीत को नही मिल सकी।

रवीन्द्रनाथ ध्रुपद-खयाल आदि भारतीय शिल्प के प्रशस्त राजमार्ग से परिचित थे, उन्होने इनकी उपेक्षा नही की। पहले पहल शुद्ध या प्राचीन राग रागिनी के सगीत के मोह मे वे भी फसे थे। उसका फल अच्छा ही निकला था। प्रारभिक जीवन मे रचे उनके बहुत से गानो के सुर मे हमे शुद्ध

प्राचीन सगीत का पूर्ण अनुकरण देखने को मिलता है। दृष्टान्त स्वरूप उनके सुपरिचित ब्रह्मसगीत का उल्लेख किया जा सकता है—

तोमारि मधुर रूपे भरेछे भुवन ।

यह झिझोटी (या झिझिट) राग मे एक प्रसिद्ध ध्रुपद चोताल मे ब्रजभाषा के गाने के सुर का पूरा अनुकरण है, रचना किसकी है ज्ञात नही, वह प्राचीन ब्रजभाषा या हिन्दी गाना यह है—

तेरौ री नयन बान, भो हे धनुक, चन्द्र बदन पर झलकल मोहत मन ।।
अरुन-बरन अधर, दन्त कुन्दन बहार देत, सोहे ऐसी बेनी सिर पर नाग कौ फन ।।
स्रवन कुडल, नाक बेसर, कठ माल, भुज मृनाल, कुच उतुग, नाभि भ्रमर, पहिरै नील सारी।
कटि किंकिनी, कदली खभ जाघ, चरन कनक नूपुर, चलत चाल गति मराल, जोबन भरी ।।

किन्तु सिर्फ ध्रुपद का मृदग-निर्घोष—कलावाती सगीत मे शुद्ध या उच्च स्थान रखने पर भी इस जमाने से हम जैसे लोगो के सामने कुछ कुछ खिचा-खिचा ऐ ठ स भरा गीत ही माना जाता है जो सबके लिए प्रीतिदायक नही होता। सगीत मे भी ऐसी सब बाते चाहिये जो उसके आस पास के जीवन के वातावरण से अलग या स्वतत्र न हो। इसीलिए, जिस प्रकार मध्य युग की हिन्दी व बगला-भाषा मे टूट फूटकर आधुनिक हिन्दी-बगला भाषा मे परिवर्तित हुई उसी प्रकार मध्य-युग के सगीत की धारा कलवाती-सगीत के विकास या विकार से उत्पन्न आधुनिक-सगीत ने सहज रूप से रवीन्द्रनाथ को आकृष्ट किया।

अपूर्व रसानुभूति के अधिकारी रवीन्द्रनाथ ने जब गान रचना और सुर देना प्रारभ किया तब उनके रचे बगला गानो का सुर एक स्वतत्र भिन्न वस्तु के रूप मे दिखाई देने लगा। उन्होने अपने गाना मे भाषा को यथोचित मूल्य दिया। गान की वाणी या भाषा और गान का सुर, ये दोनो यदि एक दूसर का हाथ पकडकर आगे न बढे व एक की ओर बिना ध्यान दिये केवल, दूसरे की ओर दृष्टि दे तो गान नही रहता, वह या तो सिर्फ कविता या केवल गत रह जाता है। वाक्य और अर्थ की तरह भाषा और सुर के हर-गोरी मिलन होने पर ही सचमुच का 'गान' बनता है। कवि स्वय इसलिए गा गये है—

प्रतिदिन तब गाथा गाबो आमि सुमधुर, तुमि मोरे दाओ कथा, तुमि मोरे दाओ सुर ।।

प्राचीन 'वागगेय-कवि' अर्थात् सगीत रचयितागण इस बात का समझते थे। इसीलिए जयदेव के पदो मे इतना यत्न साध्य लालित्य है, तानसेन जैसे ध्रुपद और अन्य सगीत-रचयितागण भी इस बात को समझते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि तानसेन केवल सगीतकार ही नही थे, वे उच्चकोटि के कवि भी थे, यह उनकी रचित वाणी या भाषा से प्रतिभासित होता है। तानसेन ने भी अपने गानो की भाषा या वाणी को यथोचित प्रतिष्ठा दी थी अपने रचे हुए एक गान के अन्त मे उन्होने कहा है—

तानसेन अन्तर बानी धुरुपद पुकार ।।

अर्थात् तानसेन के अन्तर की वाणी इस ध्रुपद गान मे ही उच्च-स्वर से घोषित हो रही है।

किन्तु बीच के युग के उस्ताद या कलावन्त अर्थात् व्यवसायी गायक, जिनके ऊपर समाज की ओर से अधिकतर सगीत शिक्षा का भार दिया जाता है, प्राय यह बात भूल से गये थे । वे सगीत के कोरे वैयाकरण बन गये थे, सगीत की भाषा का मूल्य उनके लिए प्राय न के बराबर था—यहा तक कि वे बेकार शब्द या ऊलजलूल अक्षर के प्रयोग से अपना काम चला लेते थे । इन दिनो बगाल के उस्तादो के पल्ले पडकर तानसेन की सुन्दर और परिमार्जित साहित्यिक ब्रजभाषा की भी कैसी छीछालेदर हुई । समझ मे न आने वाले हिन्दी शब्दो की बात छोड देने पर भी पछाही उच्चारण के शुद्ध सस्कृत शब्दो मे भी अजीब सी विकृति आ गई थी । 'सद्योजात' का 'साध्वे ओ जात' हो गया था । 'मोक्ष दायिनी' (उच्चारण मे मोकष-दायिनी या मोच्छ दायिनी) का हो गया था 'मुच्छे दायिनी', 'पक्षीगण' का (उच्चारण मे पक्षी गड या पच्छीगन) का 'पाचिगन', 'अध्ययन' का 'आधेयान', और 'बीच मे' हो गया था 'बिछुमे', 'उमड घुमड' हा गया था 'उमडे गुमडे' आदि आदि । रवीन्द्रनाथ ने सस्कृत गद्य काव्य 'कादम्बरी' का सौन्दर्य विश्लेषण कर बगला मे सुपरिचित निबन्ध लिखा था, उसमे इस सम्बन्ध मे उन्होने कहा है—गान की भाषा मे है 'चलत राजकुमारी', किन्तु उस्ताद गवैये सुर के मोह मे फस कर 'च ल त' शब्द को लेकर ही सुर की पेच कसने लग गये है—इधर राजकुमारी का चलना ठप्प, पर कलावत सगीत के कद्रदानो को उसमे आपत्ति नही । गाने मे भाषा के मूल्य के प्रति उन्होने फिर हमारी दृष्टि आकर्षित की । इस सबध मे यह बात भी मान लेनी पडेगी कि बगाल के कीर्तन मे सुर और बाजे का स्थान अधिक रहने पर भी, भाषा के ऊपर अधिक बल दिया जाता था—कीतन मे बीच-बीच मे आखर देने की रीति इसी का फल है, शायद इसीलिए उस्ताद मडली मे कीर्तन की जात घटिया ही रह गयी ।

रवीन्द्रनाथ के कृतित्व के सम्बन्ध मे भारतवर्ष मे सुपरिचित पुर्तगाली सगीतविद् तथा गवेषक श्रीयुक्त आर्नल्ड बाक (*A A Bake*) के कथन का यहा उल्लेख किया जा रहा है—

Knowing the old *ragas* perfectly well he too had the right to use and change them as his own inspiration told him to do Had not the old mystics created their own *rages* the *Bauls* their own times and had not *Kirtan* adopted the old forms to new needs ?

His perfect balance of words and melody and his simplicity and conciseness of construction are contributions to the whole of Indian music that cannot be underrated easily

It is characteristic of the genius of Rabindranath Tagore that he has as if by instinct found the *Dhrupad* the only form in ancient Indian music that could serve as a basis for his creations From long before the Muhammadan conquest even up to our present days, this form of Indian music regarded as most sacred, continued to exist,

in which the words had and have their importance Still the holy character implied the use of very difficult tune and very dignified *ragas* The poet has succeeded in keeping the essential features of construction but nevertheless has made the form supple and clear fit for the direct appeal even to the heart of the simple peasant

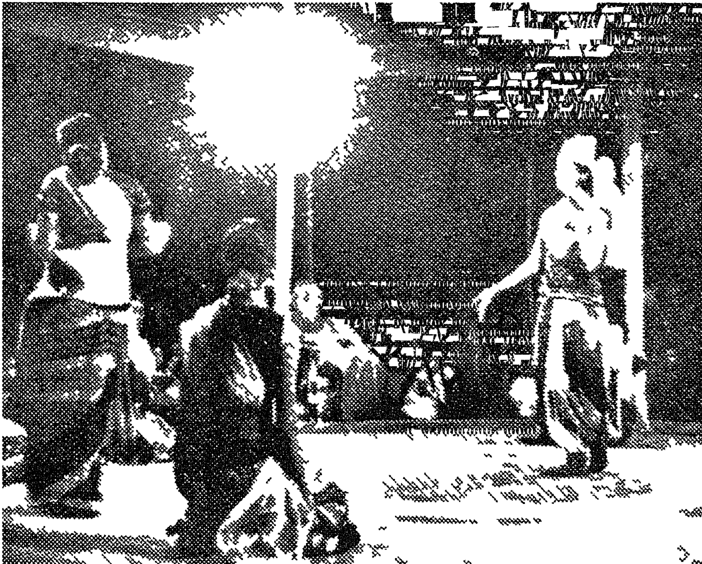
This happy combination of the *Dhrupad* and folk-music is the strongest feature of the musical *oeuvre* of Tagore (Rabindranath Tagore s Music, in the *Golden Book of Tagore*)

भाषा और सुर एक दूसरे से इतने अ गागी भाव मे जुडे रहने के कारण ही रवीन्द्रनाथ के गान इतने जनप्रिय हे। इसके अलावा, भाषा का अपना विशेष काव्य सौ दर्य और मर्यादा समझकर उन्होने उसे अपनी सगीत रचना मे यथोचित स्थान दिया है। बगाल के बाउल और भाटियाल लोकगीत व कीर्तन, ये अब केवल लोक सगीत के पर्याय मे नही पडे रहे। जो व्यक्ति अथवा पण्डित 'लोक यान' (*Folk-Lore*) (आधुनिक शिक्षा से दूर रहकर, प्राचीन मनोभाव लेकर ग्रामीण लोग प्राचीन सस्कृति के वातावरण मे पलकर चिरपरिचित रीति मे जीवन-यात्रा का निर्वाह करते ह, उनकी चर्चा अथात् आचार और विचार, सगीत भी इसके अ तर्गत हे।) का अध्ययन करते ह अथवा प्राचीन ग्रामीण पद्धति के जीवन के प्रति हमदर्दी दिखाते हे शायद वे क्वचित् ही इसकी चचा करेगे किन्तु शिक्षा और आधुनिकता के प्रसार के साथ साथ क्रम से 'पुराना ढर्रा' और 'ग्राम्य' स्वरूप लुप्त हो जायगा। रवीन्द्रनाथ के प्रसाद से वह इस प्रकार के लोक सगीत के भीतर अब निबद्ध नही रहा। वह बगाल के राष्ट्रीय सगीत के स्तर पर उन्नत हुआ। शिक्षित बगाली समाज एव रवीन्द्रनाथ के गानो मे स्थान पाकर, बगाल का यही सब लोक सगीत अब अखिल भारत मे प्रसारित हो रहा है। इसी के फल-स्वरूप हिन्दी और अन्य भाषाओ के चित्रपटो के गानो मे हमे बीच बीच मे कीर्तन, भाटियाल, बाउल की झकार सुनने को मिल रही है। इस सम्बन्ध मे श्रीयुक्त बाके ने रवीन्द्रनाथ के साथ वार्तालाप कर लिखा था—*It was the folk-music of Bengal that stirred the depth of his nature with such wonderful results* उन्होने और भी कहा है—*Only the fact that the educated classes of his country who live in towns have lost contact with the real folk life accounts for the discredit of his music in the appreciation of so many who love and admire his poems,*—यह पूर्ण रूप से ठीक न होने पर भी अ शत ठीक ही है। पूर्व-बग के बाउल और भाटियाल, और पश्चिम-बग के कीर्तन ने मिलकर रवीन्द्रनाथ को समूचे बगाल के लोक सगीत का सम्राट बनाकर ही छोडा।

रवीन्द्र सगीत मे एक और बहुत बडी चीज है, वह है उनके दिये सुर मे उनका अपना वैशिष्ट्य। हम 'हिन्दुस्तानी दर्द' की बात सुनते है, हिन्दी गानो मे कही-कही उसका अनुभव भी करते हे। एक आध ऐसी नोक झोक खीच तान, गले की कपकपी सुर मे इस तरह जुडी रहती है कि उसका साधारणत्व

ही रह पाता, वही चीज जैसे एकदम निम्नस्तरीय हो जाती है। यही रवी द्र का पुण्यस्पर्श है जिसे हम सभी समझते है। रवी द्र सगीत के अच्छे गवैये इतना-भर प्रकट कर पाते है, इसीलिए उनकी कदर है। 'आमारे करा तामार वीणा', 'आमि चिनि गो चिनि तोमारे, ओगो विदेशिनी', 'आजि दखिन दुयार खोला', 'अलि बार बार फिरे याय,' 'अलि बार बार फिरे आसे', 'एसो, एसो वसन्त धरातले', 'आमार निशीथरातेर बादल धारा', 'कार बाशी बाजिल', 'केन यामिनी ना येते जागाले ना', 'माटीर प्रदीपखानि आछे माटीर घरेर कोले'—आदि आदि कितने गान याद आ जाते हे, जिन्ह तरुण अवस्था से सुनता आ रहा हू। दरदी गायको के कण्ठो की ध्वनि जिन सब गानो के सुर मे निहित इस अवर्णनीय रवी द्र-श्री को तनिक खिला देती है, मन मे एक अव्यक्त आकुलता ला चुकी है, अब भी ला देती है। गुरुपरम्परा मे और रेकार्डो की सहायता से इस चीज की रक्षा हो सकती है। काल के प्रभाव से यह रवी द्रश्री विलुप्त हो सकती है पर इससे रवी द्र-सगीत का भी अधिकाश समाप्त हो जायगा। आशा है, आधुनिक भारतीय सगीत को रवीन्द्रनाथ का एक विशिष्ट दान मानकर, इसकी रक्षा के लिए सभी सजग होगे। यह एक विशेष ढग या भगिमा नही है, यह और भी सूक्ष्म है, तूलिका चलाने की लकीर की भाति, गले की विशेष कपन जैसी चीज एक गू ज सी है, अनभिज्ञ व्यक्ति के कानो को जिस तरह की चीज मालूम पडी, सिर्फ उसी का उल्लेख भर करने का यहा प्रयास किया गया है।

यही सब, और निश्चित ही अ या य बहुत-कुछ मिलकर एक ऐसी स्थिति बनी कि जिससे भारत के सगीत के इतिहास मे रवीन्द्र सगीत को अपना एक स्थान प्राप्त हो गया। अपने देश के बडे-बडे सगीतकारो के साथ तुलना करने की आवश्यकता नही, जिसका जो स्थान है वह महाकाल निधारित कर देगा, किन्तु भारतीय सस्कृति के अ ग के नाते भारत सगीत की आलोचना मे, आधुनिक युग के भारत सगीत विषयक प्रयत्नो के सम्बन्ध मे कुछ भी व्यक्त करते समय रवीन्द्रनाथ के नाम का उल्लेख बिना किये काम नही चलेगा। रवी द्रनाथ भारतीय सगीत मे यूरोपीय-सगीत की *Harmony* लाने क पक्ष मे भी थे किन्तु उस ओर सफल नही हो सके। सगीतज्ञ या सगीत सस्कारक-सुधारक न होते हुए भी वे सगीत मे एक प्रधान रसस्रष्टा तथा पथप्रदेष्टा हो गये हे। ●●



[रवीन्द्र ८० वी वर्ष गाठ पर नृत्य देखते हुए]

रवीन्द्र कठ के रिकार्ड

गान रचना और स्वर योजना ये दोनो ही गुण एक व्यक्ति मे एक साथ होना बहुत ही कम पाया जाता है। रवीन्द्रनाथ इन दोनो ही गुणो के प्रतिभावान अधिकारी थे। वाणी और स्वर को मिलाकर इस अर्द्धनारीश्वर की सृष्टि के प्रति उनको विशेष ममता थी। सृष्टि का परिचय सृष्टिकर्ता के द्वारा ही पाना निश्चय ही सर्वोत्कृष्ट चीज है। रवीन्द्रनाथ के निकट जिन्हे रवीन्द्र सगीत सीखने का सुयोग प्राप्त हुआ है, वे निश्चय ही सौभाग्यवान् हे। इस सुयोग के सम्बन्ध मे जिन्हे सदेह है, उनके स्पष्टीकरण के लिए रवीन्द्र कठ के रिकार्ड प्रमाणस्वरूप पर्याप्त होगे। सुना है कि *Disk-recording* प्रारम्भ होने से पूर्व कविकठ से अनेक गीतो के रवीन्द्र सगीत मे *Tube recording* हुआ था, किन्तु आज उन रिकार्डो का कोई पता नही लगता, फिर भी रवीन्द्र के कई गीत उनके स्वय के सगीत मे रिकार्ड-रूप मे सग्रहीत हे। इनकी तालिका निम्न प्रकार है —

हिजमास्टर्स वॉयस

१	गान—	आमि ससारे मन दिये छि नु आ धजने देहो आलो	[पी ८३६७]
२	गान—	शेष पारानिर कडी अमादेर के निवि भाई	[पी ११८५५]
३	आवृत्ति —	कर्ण-कुन्ती सवाद	[पी ११८५७, पी ११८५८]
४	आवृत्ति —	कृष्ण कलि भ्रष्ट लग्न	[पी ११८५९]
५	आवृत्ति —	आजि हते शतवर्ष परे आविर्भाव	[पी ८३६६]
६	आवृत्ति —	*Readings from Gitanjali, Readings from Crescent moon*	[पी ११८५६]

कोलम्बिया

७	आवृत्ति —	भारत तीर्थ, भगवान तुमि युगे युगे	[बी एच/ई/२५४५]
८	आवृत्ति —	आजि हते शत वर्ष परे, एई तीर्थदेवतार, हे मोर सन्ध्या	[बी एच/२५५९]

किसानो के गीत

एक बार मै अपने एक बगाली मित्र के साथ बगाल देखने निकल पडा। घूमते हुए जब हम एक जगल की ओर बढ रहे थे तो हमे कुछ किसानो के मीठे स्वर सुनायी पडे। उनके नजदीक जाते ही उन्हे मदमस्ती मे गाते पाया। जब उनसे पूछा गया कि तुम ये किसका गीत गा रहे हो तो कहने लगे क्या मालूम किसका है। यहा तो हम सभी इन गीतो को गाते रहते है। बाद मे मालूम हुआ कि यह गीत रवीन्द्रनाथ ठाकुर का ही था।

—मान्टेग

रवीन्द्रनाथ और फिल्म

देवकी बोस

फिल्म उद्योग वालो की दृष्टि सदैव व्यक्ति-सौन्दर्य की खाज मे रहती है तथा नाटकीय मूल्यो से सम्पन्न उनकी बुद्धि सामान्य जन से काफी प्रखर होती है। अत उनके लिए सुगठित तथा प्रभावशाली मुख-मुद्रा से मिलना अत्यन्त आनन्दप्रद होता है। अत जब पहली-पहली बार मेरी भेट गुरुदेव से हुई तो मै ठगा सा रह गया था।

हालाकि मेरा विश्वास है कि कवि रवीन्द्र को फिल्मो से घृणा नही थी लेकिन उनकी इसमे कोई खास दिलचस्पी नही थी क्योकि उन्ह इस बारे मे सोचने के लिए फुरसत ही नही थी। फिल्म-उद्योग एक ऐसा उद्याग था जो अपने वैज्ञानिक एव प्राविधिक स्वरूप के कारण रवीन्द्र-साहित्य से प्रभाव ग्रहण करने के लिए रुकने को तैयार नही था। उस समय बगाल तथा शेष भारत मे भी फिल्म कथाए काफी घिसी पिटी, सादा तथा अपरिपक्व होती थी। उस समय लोग दुखान्त तथा चमत्कारिक सवादो से सम्पन्न कथानको को ही पसद करते थे या यो कहिए कि पसद करने के लिए बाध्य थे। इसके अलावा कोई भी जोखिम लेने को तैयार नही था।

ऐसी स्थिति मे टैगोर के सयमित, विचार प्रेरक और प्रतीकात्मक नाटको, लघुकथाओ तथा उपन्यासो को फिल्माने के लिए उनमे समुचित सशोधन आवश्यक हो जाता था। जब मैंने गुरुदेव की एक कथा पर फिल्म बनाने की बात कही तो मेर एक मित्र ने तुरत उस फिल्मी सफलता के लिए समुचित सशाधन का सुझाव पेश किया। जब उक्त सशोधन मैंने गुरुदव की राय जानने के लिए रखा तो यह जानकर कतई आश्चय नही हुआ कि गुरुदेव ने पूर्ण सहमति स्वय दे दी। इसका मेरे ऊपर भारी प्रभाव पडा।

गुरुदेव का कहना था कि पढते समय तो पाठक को यह सुविधा रहती है कि वह आवश्यकता पडने पर पिछले पृष्ठ पलट कर पुन अपनी स्मृति ताजा कर सकता है, लेकिन चलचित्र मे यह सुविधा नही है। अत इस अभाव की पूर्ति के लिए कथा को फिल्माते समय कतिपय सशोधन जरूरी हो सकते है।

गुरुदेव की कहानियो और नाटको को फिल्मान की दिशा मे सजगता उत्पन्न होने मे पूरी दो दशाब्दिया लगी ह। फलत मुझे कई कई बार गुरुदेव क पास जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। सबसे अधिक मै इस बात मे प्रभावित हुआ कि राष्ट्रवासियो के प्रति गुरुदेव के मन मे काफी कामल भावनाए थी और नयी मानवीय विचारधारा या चेष्टाओ मे वह काफी रुचि रखत थे। मेने उन्ह निर्धनता अज्ञान तथा रुग्णता के बारे मे बोलत हुए सुना है जिन्ह वे एक दूसरे मे अभिन्नत सम्बधित मानते थे। अज्ञान के बारे मे रवीन्द्र का हृदय काफी पीडा महसूस करता था और उनको इस बात पर काफी लज्जा थी कि उनके करोडो देशवासी अज्ञान से ग्रस्त हे। टैगोर के अनुसार, हमारे राष्ट्रीय जीवन का उद्धार तभी

[शेष पृष्ठ ३०० पर]

अमरीका मे रवीन्द्र

हालाकि मुझे रवीन्द्रनाथ की कुछ कृतियो के मूल बगला प्रकाशन पढने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, पर किसी भी साहित्य वेत्ता को इस महान साहित्यकार की रचनाओ की गहराई, सम्पन्नता तथा जटिलता के अध्ययन मे सम्पूर्ण जीवन का एक बहुत बडा अ श लग सकता है । इसीलिए मे अल्प अध्ययन काल मे रवीद्र क कुल ८० वर्ष मे मे ६० वर्ष के सृजन का सक्षिप्त अ श मात्र ही पढ सका ।

रवीन्द्रनाथ ने दो बार अमरीका का पर्यटन किया । पहिली बार सन् १९१२ मे जबकि उनकी गीताजलि का प्रकाशन भी नही हुआ था और दूसरी बार सन् १९३० मे जबकि उनकी ख्याति और प्रतिष्ठा चरमबिन्दु पर थी । मुझे यह बतलाने मे गर्व की अनुभूति हो रही है कि गुरुदेव की छ कविताओ का अ ग्रेजी भाषा मे सर्व प्रथम प्रकाशन सन १९१२ मे शिकागो मे प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका 'पोइटी' मे ही हुआ था । ये ही छ रचनाए बाद मे उनकी 'गीताजलि' मे भी शामिल की गई । इस प्रथम प्रकाशन का श्रेय प्रख्यात आयर कवि डब्ल्यू० बी० यीटस और अमरीकी कवि इजरा पाउण्ड को है जो लन्दन मे ही गुरुदेव से हुई भेट मे उनकी क्षमता से परिचित हो चुके थे । वस्तुत पाउण्ड ने 'पोइट्री' के सम्पादक हैरिए मनरो से उक्त कविताओ के प्रकाशन की सिफारिश की थी । सन १९१२ मे 'गीताजलि' के प्रकाशन और नोबुलपुरस्कार प्राप्त होने के बाद से ही उनकी शाति भग हो गयी क्योकि इस समय उन्हे अचानक अ तराष्ट्रीय ख्याति मिल गयी थी । न्यूयार्क बोस्टन, शिकागो, सान्फ्रासिस्को आदि शहरो मे जहा भी वह गए उनका भव्य अभिनन्दन किया गया । रवीन्द्रनाथ के पुत्र रथीन्द्रनाथ ने भी सन १९०६ मे १९०८ मे इलिनायस विश्वविद्यालय मे अध्ययन किया । बाद मे सन १९१२ मे श्री रथीन्द्रनाथ पुन सपत्नीक इलिनायस लोट आए और उन्ही के साथ गुरुदेव ने सर्वप्रथम अमरीकी भूभाग पर पदार्पण किया ।

अमरीका मे रवीन्द्र शताब्दी समारोह आलोचना एव लोकप्रियता की दृष्टि से काफी सफल रहा । यूयार्क मे उनका एक नाटक 'अ धियारे कक्ष का राजा' (*King of the dark Chamber*) अभिनीत हुआ जिसकी आलोचको तथा दर्शको ने मुक्तकण्ठ से सराहना की । यूयार्क मे एशिया सोसाइटी द्वारा आयोजित रवीन्द्र समारोह से राबर्ट फ्रास्ट जैसे अनेक अमरीकी कवियो ने रवीन्द्र की कविताओ का पाठ किया । इस अवसर पर अनेक समारोह हुए जिनमे डा० अमिय चक्रवर्ती, डा० बुद्धदेव बास, डा० स्टैला क्रामरिश, डा० डब्लू० नामन ब्राउन, डा० स्टीफन हे आदि अनेक भारतीय तथा अमरीकी विद्वानो ने उनके बारे मे लेख पढे, रवीन्द्र-सगीत का पाठ किया गया तथा उनके नाटक पेश किए गए ।

अमरीका मे आजकल यह भावना प्रबल होती जा रही है कि पश्चिमी जगत पूर्व और मुख्यत भारत मे अभी काफी कुछ सीख सकता है । रवीन्द्रनाथ भारत की प्राचीन धार्मिक विचारधारा के प्रतीक बन गए है ।

• एडवर्ड सी० डिमोक (डा०)



[रवीन्द्रनाथ और प्रोफेसर पेत्रोव मास्को में (१९३०)]

रवीन्द्रनाथ सोवियत सघ मे

सोवियत सघ मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम बहुत अधिक विख्यात है और वह बडे प्रेम से लिया जाता है। उनकी कृतिया जो हमारे देश के लोगो की भाषाओ मे अनूदित है, हमारी मातृभूमि के कोटि कोटि सर्वसाधारण लोगो की पढने की मेज की किताबे बन गयी है। सोवियत सघ मे ठाकुर की इतनी लोकप्रियता का क्या कारण है ?

सोवियत लोगो को ठाकुर इसलिये प्यारे है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता मे उनकी वाणी सदा जाग्रत रही। उन्हे ठाकुर विशेषकर इसलिए भी प्यारे है कि वह प्रत्येक प्रकार के आक्रमण, युद्ध, अत्याचार और शोषण के कट्टर विरोधी थे।

सोवियत सघ मे ठाकुर की वह कविता बहुत लोकप्रिय है जिसमे उपनिवेशवादियो पर दोषारोपण किया गया है। कविता के अन्त मे कवि क्रोध मे कहते है—" सिर धुनोगे !"

ठाकुर सोवियत सघ भी गये थे। उनकी इस यात्रा का वास्तव मे बडा ऐतिहासिक महत्व है। अपनी पुस्तक 'रशियार चीठी' मे ठाकुर ने रूस के विषय मे बिना किसी पक्षपात के तथ्य वर्णन किया है।

रूस मे श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम महान् अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति से पूर्व ही विख्यात हो चुका था। रूसी भाषा मे उनकी कृतियो के पहले अनुवाद सन् १९१३ मे प्रकाशित हुए थे। सन् १९१४-१९१६ मे रूसी भाषा मे लेखक की चुनी हुई कृतियो के छ जिल्दो वाले छोटे दो सग्रह एक साथ निकले थे। त्बिलिसी नगर से जार्जियाई भाषा मे निकलने वाले एक समाचार पत्र के नवम्बर १९१३ मे 'भारत का वर्तमान कवि' शीर्षक से उत्साहप्रद लेख प्रकाशित किया था।

सन् १९१८ के शुरू मे 'साखाल्को गाजेती' समाचार पत्र मे 'गीताजलि' पुस्तक की कवि सा ग्रो शा शीश्र'श्वित्नी द्वारा जार्जियाई भाषा मे अनूदित ११ कविताए छपी थी। सन् १९१३ मे दूर ताशच द मे 'शोरा पत्रिका' मे ठाकुर के विषय मे एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमे भारत के इस महान लेखक क गद्य काव्य की बडी प्रशसा की गयी थी। अक्तूबर क्रान्ति के बाद सन १९२५-२७ के बीच एम० इ० तुन्यास्की क सम्पादकत्व मे रूसी भाषा मे ठाकुर की चुनी हुई कृतियो का अधिक बडा सग्रह प्रकाशित किया गया था। हमारे देश मे ठाकुर की रचनाओ का अनुवाद अ ग्रेजी भाषा के माध्यम से नही बल्कि सीधा बगला भाषा से सम्भव हो सका है। सन १९५७ मे रूसी भाषा मे ठाकुर की चुनी हुई रचनाओ का नया आठ जिल्द वाला सस्करण पूरा हो चुका था। हाल ही मे ठाकुर की चुनी हुई कृतियो की १२ जिल्दा वाला सस्करण प्रकाशित करने की योजना क्रियाचित की जा रही है।

सोवियत शासन के बरसो मे हमारे देश मे ठाकुर की रचनाए कुल मिलाकर ९१ वे बार प्रकाशित हुई हे जिनकी बिक्री सख्या सोवियत सघ के लोगो की १८ भाषाओ मे लगभग ३० लाख रही, जिनमे रूसी भाषा मे ६१ पुस्तके और बिक्री सख्या ७५ लाख थी। क्रान्ति से पहले हमारे यहा ठाकुर की केवल ३४ पुस्तक प्रकाशित हुई थी और उनकी बिक्री सख्या कवल ६० हजार थी। ठाकुर की कृतियो को प्रकाशित करने का कार्य अन्तिम पाच सालो मे बडे पैमाने पर हुआ है। इसी अवधि मे ठाकुर की कृतिया ४२ बार प्रकाशित हुई और उनकी बिक्री सख्या २२ लाख ६० हजार रही।

सोवियत विशेषज्ञ—साहित्य वेत्ता बडी दिलचस्पी से ठाकुर के कृतित्व का अनुसन्धान कर रहे ह। आ० प० ग्नात्युक दानिलचुक, व० आ० नोवीकोवा, क० ई० रग्ने, ल० आ० स्त्रीझेवस्काया, ए० क० ओसालीना इत्यादि ठाकुर की साहित्यिक विरासत, आ० द० लिमान, लेखक के दार्शनिक, सामाजिक ओर राजनीतिक विचारो, ए० म० [illegible] काना साहित्यिक बगला भाषा के विकास मे ठाकुर की भूमिका की समस्या, आ० क० पेत्राव ठाकुर क शैक्षणिक हष्टिकाण ओर आ० ई० चीचेरोव तथा ई० आ० तोवस्तिख ठाकुर की पत्रकारिता विषयक कृतिया का अध्ययन कर रहे हे।

ठाकुर पद्य कृतित्व ने म० म० ईप्पालितोव-इवानोव, ल० स्त्रेयखेर, स० वासीलेको, द० मेल्कीख इत्यादि सोवियत सगीतकारो को ठाकुर की कृतिया के आधार पर सगीत की रचनाए करने का प्रेरित किया। सोवियत थियेटरो मे बडी सफलता क साथ ठाकुर की कृतिया का अभिनय किया जा रहा है। उदाहरणार्थ, ताशक द नाटक थियेटर मे ठाकुर क विख्यात "नोका डूबी" उपन्यास के आधार पर निर्मित 'गगा की बटी' नामक नाटक कई सालो से खेला जा रहा है। ओर कुईबिशेव नगर के थियेटर मे ठाकुर की पोती श्रीमती कृपलानी क सहयाग तथा परामर्श से लेखक के 'चित्रा' नामक सगीत नाटक के आधार पर एक बैले का अभिनय किया गया है।

—ए० पी० चेलिशेव (डा०)

रवीन्द्र व आस्ट्रेलिया

आज जब समस्त विश्व मे रवीन्द्र जन्म-शताब्दि मनाई जा रही है तो भारत को छोडकर अन्य देशो मे स्वभाविक रूप से लोग अपने यहा के साहित्य पर रवीन्द्र के प्रभाव को ढूढने लगे है। यह स्वभाविक तो है परन्तु इतना उचित नही। रवीन्द्र एक महान् लेखक थे—अपनी बगला भाषा के ही नही बल्कि अग्रेजी के भी जिसका अभिप्राय यह हुआ कि उनके शब्दो ने भारत से कही दूर तक अल्पकाल मे ही तत्कालीन विचारधारा को समृद्ध किया था। फिर अभी रवीन्द्र का देहान्त हुए बीस वर्ष ही तो बीते है। यही नही रवीन्द्र एक महान लेखक स कही अधिक थे। उनका स्थान लियोनार्डो, गेटे और टाल्स्टाय जैसे विचारको की पक्ति मे था जिन्होने शाति की जीवित यादगारो मे प्रसूत विश्व की विषैली विभीषिकाओ को मानव की उच्चतम भावभूमि पर लाकर खडा किया है। ऐसी महान आत्माओ का महत्व उनके कार्य मे नही उनके व्यक्तित्व मे निहित रहता है।

इसका अभिप्राय यह नही है कि रवीन्द्र की कविता आस्ट्रेलिया वासियो के लिए 'नैतिक उत्थान' का एक अस्पष्ट और सुदूर स्रोत है। बात कुछ और ही है। आस्ट्रेलिया के कवि श्री हेराल्ड स्टेवर्ट ने जो भारत की धार्मिक और आधिभौतिक परम्पराओ को विशेषरूप मे समझते है, हाल ही मे मुझे लिखा था—"टगोर निस्सदेह भारत का वास्तव मे विश्व का अद्भुत प्रतिभाशाली गीतकार हुआ है। युरोप मे ६०० गीतो को सूबर्ट (*Schubert*) मे सगीत पर बाधा गया है, लेकिन रवीन्द्र ने लगभग दो हजार से तीन हजार गीतो मे शब्दो और सगीत को बाधा था।

इसके अतिरिक्त उन्होने अनेक नाटक लिखे—जिनमे से कुछ को सगीत पर बाधा गया और वे गीति नाट्य (ऑपराज) बन गये। मेरे पास उनके चित्रागदा नाटक का टेप रिकार्ड किया हुआ है जो लोकप्रिय सुगम सगीत की शैली मे पर्याप्त आकर्षण लिये हुए है। इसमे बगाली रागो का माधुर्य उनके स्वरारोहण और बार बार दोहराने का क्रम कुछ इस प्रकार बाधा गया है कि उसके सामने इटलीवासी भी फीके पड जाते है। रवीन्द्र की अग्रेजी भाषा की रचनाओ मे सब्से अधिक लोकप्रिय निस्सदेह 'गीताजलि' ही है जो आज पचास वर्ष बाद भी आस्ट्रेलिया मे धडल्ले से बिकती है।



[हिन्दी मे रवीन्द्र की नृत्य नाटिका 'श्यामा' का दृश्य]

यह सत्य है कि रवी द्रनाथ से यहा लोग परिचित हे। एक ग्रास्ट्रेलियाई यह जानता हे कि वह कलकत्ता के उस व्यक्ति की शताब्दि मना रहा है जिसने 'सुदूर' गम देश बगाल के गीत इतने सुदरता स गाये कि उत्तरी शीत प्रदेश के लोगो ने उसे नोबुलपुरस्कार प्रदान किया।

ग्रनेक ग्रास्ट्रेलिया वासी जो काव्य साहित्य के प्रेमी नही ह—ये मेलबार्न ग्रार्ट गैलरी मे ग्रवस्थित रवीन्द्र की इस कासे की भव्य प्रतिमा को देखकर ठिठक जाते ह ग्रौर उन्होने ग्रनुभव किया है कि यह एक शान्त किन्तु ग्रत्यन्त शक्तिशाली नर केसरी की प्रतिमा है–यह एक भारतवासी ह जो जीवन पर्यन्त विदेशी ग्राधिपत्य मे रहा फिर भी जिसने ऐसे विश्वास की सास ली है जिसके सामने विदेशी शासन स्पष्टत ही क्षणभगुर तथा उस विस्मय विदग्ध भारत की तुलना मे मूलत, ग्रसबद्ध सा प्रतीत हुग्रा है।

• जियोफ्रे फयरबेर्न

●●

ग्रजेन्टाइना ग्रौर रवीन्द्र

ग्रर्जेन्टाइना मे बहुत से लोग शायद स्पेन के ऐतिहासिक स्मारको ग्रौर रोम तथा एथेस के परम्परागत ग्रतीत मे परिचित न हो लेकिन ऐसे लोग कम ह जिन्होने गाधी, नेहरू ग्रौर टैगोर का नाम न सुना हो, क्याकि वे शाति के पुजारियो ग्रोर मानवता के उन्नायको के नाम है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जितना ग्रध्ययन ग्रर्जेन्टाइना वासियो ने किया हे उतना शायद ही किसी यूरोपीय या दक्षिणी ग्रमेरिकी देशो ने किया हो। ग्राज भी 'सैन इसीडो' क शान्त, सुन्दर ग्रौर नदी के कटावो से परिपूर्ण नगर के निवासी गुरुदेव का स्मरण करते हे क्योकि उन्होन ग्रपनी ग्रजन्टाइना यात्रा के समय वहा तीन महीने बिताए थे। यहा रवीन्द्र ने एक महान् ग्राधुनिक साहित्यिक प्रतिभासम्पन्न लेखिका विक्टोरिया ग्रो कैम्पा से ग्रात्मिक सम्बन्ध स्थापित किया ग्रौर उन्हे 'विद्यजा'–विधवा की पुत्री–के नाम स सम्मानित किया। रवी द्रनाथ ग्रौर इस महान लेखिका के विचारो मे बहुत समानता थी। दोनो ने एक दूसरे को प्रभावित किया ग्रौर ग्रक्तूबर १९४० तक उन मे पत्र व्यवहार चलता रहा, दोनो के पत्र शान्तिनिकेतन मे सुरक्षित है।

इसी की एक सडक का रवीन्द्रनाथ के नाम पर नामकरण किया गया है। यह सडक उस स्थान पर है जहा बैठकर कवि ने ग्रपनी 'विदेशी फल' शीर्षक कविता लिखी थी। ग्राज भी उनकी विशाल प्रतिमा का साक्षी वह पेड पाया जाता है जिसक नीचे बैठकर उन्होने रचना की।

रवी द्रनाथ ठाकुर की प्राय सभी कृतियो का ग्रनुवाद स्पैनिश भाषा मे हो चुका है। विश्वविद्यालयो मे निम्न कृतियो को सब से ग्रधिक पसन्द किया जाता है 'गीताजलि' 'चित्रा', 'डाकघर', 'दूज का चाद' 'ग्र धेरे कक्ष का राजा', 'माली', 'राजा रानी', 'मालिनी', 'शान्ति का प्रसाद' ग्रौर 'मानव-धर्म'।

• युवान डि सोलिस

●●●

रवीन्द्र और चैकोस्लोवाकिया

रवीन्द्रनाथ ठाकुर जिस समय १९२१ मे चैकोस्लोवाकिया पधारे, उस समय चैकोस्लोवाक जनता अनुवादो द्वारा उनकी कृतियो से परिचित हो चुकी थी। इस यात्रा के फलस्वरूप जनता को उनके कृतित्व का और गहरा परिचय प्राप्त हुआ।

रवीन्द्रनाथ की इस यात्रा मे न केवल दोनो मानवतावादियो और विद्वानो मे ही घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित नही हुए, बल्कि दो राष्ट्रो—भारत और चैकोस्लोवाकिया मे सम्बन्ध बढे। आगे चलकर प्रो० विन्तरनित्ज भारत आये, शान्तिनिकेतन मे गुरुदेव के अतिथि रहे और भारत के प्राचीन साहित्य पर व्याख्यान दिये।



[रवीन्द्र चैकोस्लोवाकिया के भारत शास्त्री प्रो० डा० विंसेस लेसनी के साथ]

तत्कालीन चैकोस्लोवाक लेखको और विद्वानो मे से अनेक को रवीन्द्रनाथ ने अपना मित्र बना लिया था। १९३७ मे क्रिसमस (बडे दिन) के पुनीत अवसर पर चैकोस्लोवाकिया के महान उपन्यासकार नाटककार और निबन्धकार कारेल चापेक (१८९०–१९३८) ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नाम रेडियो मे सन्देश प्रसारित किया था—"इस घडी जब हमारे आपके महाद्वीप यूरेशिया के सुदूर पश्चिमी और सुदूर पूर्वी सीमान्तो पर तोपे गरज रही है, तब वर्ष के अन्त मे पश्चिम से एक छोटा सा जनतन्त्र आपको पुकार रहा है। ससार चिरजीवी हो, यह ससार समान और स्वतन्त्र मनुष्यो का परिवार हो।" इस सन्देश के उत्तर मे रवीन्द्रनाथ ने निम्नलिखित तार भेजा था।

"प्रिय डा० चापेक और प्रोफेसर लेसनी, मानवता के शीश पर आज जो शत्रुता और हिंसा का तूफान मडरा रहा है, उसके बीच मे आपको मैत्री और सद्भावना का अभिवादन भेज रहा हूँ।

म्यूनिख के विश्वासघात पर रवीन्द्रनाथ मौन न रह सके। उन्होने तत्काल प्रोफेसर विन्सेस लेसनी को एक पत्र लिखा जिसमे उनका क्रोध और क्षोभ सशक्त शब्दो मे प्रगट हुआ। इतना ही नही। रवीन्द्रनाथ ने इस विषय पर एक कविता भी लिखी जिसका शीर्षक है 'आवाहन।' चैकोस्लोवाकिया मे यह कविता इस हार्दिकता से पढी गयी मानो वह वहा के नागरिको के लिए आवाहन हो।

• कारेल किमिल

रविठाकुर और जर्मनी

जर्मनी के प्रति ठाकुर परिवार की दिलचस्पी की नीव उस समय पडी जबकि १६वी सदी क म०त्र रविठाकुर के बाबा राजकुमार द्वारिकानाथ ने अपनी योरुप यात्रा मे जर्मनी के कई नगरो का भ्रमरण किया और बडे ही प्रभावित हुए। स्वय रविठाकुर ने भी अपनी किशोरावस्था मे ही जर्मन साहित्य मे दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी थी। उ होने जर्मन सीखकर गेटे के 'फाउस्ट' को मूल जर्मन म पढना चाहा ग। शा तिनिकेतन मे गेटे के 'फाउस्ट' का बगला टीका सहित एक सस्करण आज भी सुक्षिरत है जिस पर उनके द्वा ा बनाये गये पे सिल के निशान पडे हुए हे। गेटे मे रविठाकुर की दिलचस्पी कितनी गहरी थी इसका प्रमाण उनक. एक लेख है जा १८७६ मे 'भारती' नामक पत्रिका मे छपा था। जमनी मे रविठाकुर का दूसरा प्रिय कवि था हाइनरिख हाइने जिसकी कुछ कविताओ का उ होने मूल जर्मनी से बगला मे अनुवाद किया था। रविठाकुर का जर्मन सगीत के प्रति मोह तो सर्वविदित ही है लेकिन जर्मनी सस्कृति के इस प्रेम ने उ हे जगनी के प्रति कभी अ धा न बनाया। उ हाने नाजीवाद के उदय मे बहुत पहले ही उसकी नि दा की थी।

रविठाकुर मे काउ ट केजरलिग की भेट भी बहुत पहले (१६१३ मे) ही हो चुकी थी लेकिन जर्गन जनता की दिलचस्पी तभी बटी जब रविठाकुर का नोबुलपुरस्कार मिल गया। पर वह दिलचस्पी भी क्षणिक रही। प्रथम विश्व युद्ध ने दरवाजा ब द कर दिया। युद्ध मे जगनी की हार हुई। १६१८ की नवम्बर क्रा ति हुई और र ठाकुर क प्रति जर्गनवामिया की दिलचस्पी मे भी एक क्रा ति आयी। लोगा मे रविठाकुर के प्रति ऐसी भूख बढी जिसकी तुलना यारुप के किसी भी देश मे नही मिल सकती थी। रविठाकुर का नाम बौद्धिकता का पयाय हा गया। और जब वे १६२१ मे जगनी पधारे तो उस समय उनके दर्शन के लिए ऐसी भीड जमा हुई जिनमे वे वस्तुत कुचल गये। उनकी जर्मनी मे गीताजलि आदि पुस्तके निकली। ये किताबे लाखो की सख्या मे बिक गयी।

रविठाकुर बुद्धिजीविया के लिए फैशन बन गये और यह फैशन सन् ३३ तक कायम रहा। सन ३३ मे नाजोवाद सत्ता म आया और लाग रविठाकुर का उसी तजी म भूलने लगे जिस तेजी मे अब तक उनकी पूजा हा रही थी।

हिटलर क सत्तारूढ होने के बाद आइ स्ताइन, अलवर्त त्स्वाइत्स, कुर्त बोल्फ और काउन्ट केजरलिग जैसे थाडे से हो लोग बच रह थे जा रविठाकुर मे सम्पर्क बनाये रखने का साहस कायम रख सके, पर आज जर्मन जनवादी गणतत्र की जनता उस महान भारतीय कवि का यथार्थ चित्र प्रतिष्ठापित करने की काशिश कर रही है। जर्मन सस्कृति के प्रेम मे खिचकर रविठाकुर न तीन–तीन बार जमनी की यात्राए की और यहा की जनता ने उनका हार्दिक स्वागत किया। लेकिन जब हम यह देखते है कि उस महान कवि ने जर्गनी क प्रतिक्रियावादियो के आक्रमण क बावजूद किसी प्रकार की नर्मी न दिखायी और जब भी आवश्यक समझा, नाजीवाद की खुलकर भर्त्सना की ता हमारा दिल खुशी मे गद्गद् हा उठता है।

थामस जिलवेस्ताईन

चीन और रवीन्द्र

जब मै अतीत पर विचार करता हू तो कुछ चीज जिसे घटित हुए तीस से अधिक वर्ष बीत गए है, साफ साफ मेरे मन के सामने आ खडी होती है। २२ अप्रैल १९२४, वसन्त का एक सुन्दर दिन था जब कि उष्ण ब्यार बह रही थी और सूर्य चमक रहा था। मै उस समय केवल एक बालक ही था, त्सिनान हाई स्कूल मे प्रथम-वर्ष का विद्यार्थी। यह सुनकर कि भारतीय कवि टैगोर त्सिनान पधारे है, मै छुट्टी बिना लिए पाठशाला से निकल पडा और एक लम्बा रास्ता तय करने के बाद चन्द घटो के लिए भीड भडक्के मे पिसते हुए आदरणीय कवि का भाषण सुनता रहा।

मै उस आयु मे, कविता और कवियो के बारे मे कुछ भी तो नही जानता था। भारतीय कविता और भारतीय कवियो के सम्बन्ध मे तो मेरा ज्ञान और भी कम था। फिर भी मुझे अफसोस नही था क्योकि टैगोर के ढीले ढाले लबादे, लम्बी दाढी और शान्त कृपालु मुखड ने मुझ पर गहरा प्रभाव डाला। तदनन्तर, जब कभी टैगोर की रचना का चीनी अनुवाद प्रकाशित होता तो मै उसे खरीदता और पढता। मैने उनकी कविताओ के ये सग्रह पढे, दिग्भ्रान्त, विहग, मालिनी, दूज का चाद, फल चयन, भगोडा और गीताजलि इनके अतिरिक्त उनके नाटक और निबन्ध भी पढे।



[पीकिंग मे रवीन्द्र शताब्दी समारोह का चित्र]

इसी तरह बीस वर्ष तक चलता रहा, चीन लोक गणराज्य की स्थापना के बाद तीसरे वर्ष तक जबकि मै चीनी सास्कृतिक शिष्ट मडल के साथ भारत गया और नई दिल्ली मे आदरणीय कवि के सुपुत्र से मिला जो उस समय शान्तिनिकेतन के उप-कुलपति थे।

यहा मैने टैगोर के बारे मे और जाना और तब से, मैने अपने को टैगोर के और भी समीप अनुभव किया है और उनकी रचनाओ मे और ज्यादा दिलचस्पी ली है। इसके अलावा, यह दिलचस्पी चीन मे टैगोर का परिचय देने के काम मे नवीन प्रगति के समय बढी। पहले उनकी रचनाओ के सभी अनुवाद अग्रेजी पाठ से हुए थे और काफी सकुचित परिधि तक सीमित थे, परन्तु अब कई रचनाए

रविठाकुर और जर्मनी

जर्मनी के प्रति ठाकुर परिवार की दिलचस्पी की नींव उस समय पडी जबकि १९वीं सदी के मध्य रविठाकुर के बाबा राजकुमार द्वारिकानाथ ने अपनी योरुप यात्रा मे जर्मनी के कई नगरो का भ्रमण किया और बडे ही प्रभावित हुए। स्वय रविठाकुर ने भी अपनी किशोरावस्था मे ही जर्मन साहित्य मे दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी थी। उन्होने जर्मन सीखकर गेटे के 'फाउस्ट' को मूल जर्मन मे पढना चाहा था। शांतिनिकेतन मे गेटे के 'फाउस्ट' का बगला टीका सहित एक सस्करण आज भी सुरक्षित है जिस पर उनके द्वारा बनाये गये पेंसिल के निशान पडे हुए है। गेटे मे रविठाकुर की दिलचस्पी कितनी गहरी थी इसका प्रमाण उनका एक लेख है जो १८७६ मे 'भारती' नामक पत्रिका मे छपा था। जर्मनी मे रविठाकुर का दूसरा प्रिय कवि था हाइनरिख हाइने जिसकी कुछ कविताओ का उन्होने मूल जर्मनी से बगला मे अनुवाद किया था। रविठाकुर का जर्मन सगीत के प्रति मोह तो सर्वविदित ही है लेकिन जर्मनी सस्कृति के इस प्रेम ने उन्हे जर्मनी के प्रति कभी अन्धा न बनाया। उन्होने नाजीवाद के उदय से बहुत पहले ही उसकी निन्दा की थी।

रविठाकुर से काउन्ट केजरलिंग की भेंट भी बहुत पहले (१९१३ मे) ही हो चुकी थी लेकिन जर्मन जनता की दिलचस्पी तभी बढी जब रविठाकुर को नोबुल पुरस्कार मिल गया। पर वह दिलचस्पी भी क्षणिक रही। प्रथम विश्व युद्ध ने दरवाजा बन्द कर दिया। युद्ध मे जर्मनी की हार हुई। १९१८ की नवम्बर क्रान्ति हुई और रविठाकुर के प्रति जर्मनवासियो की दिलचस्पी मे भी एक क्रान्ति आयी। लोगो मे रविठाकुर के प्रति ऐसी भूख बढी जिसकी तुलना योरुप के किसी भी देश मे नही मिल सकती थी। रविठाकुर का नाम बौद्धिकता का पर्याय हो गया। और जब वे १९२१ मे जर्मनी पधारे तो उस समय उनके दर्शन के लिए ऐसी भीड जमा हुई जिनमे वे वस्तुत कुचल से गये। उनकी जर्मनी मे गीताजलि आदि पुस्तके निकली। ये किताबे लाखो की सख्या मे बिक गयी।

रविठाकुर बुद्धिजीवियो के लिए फैशन बन गये और यह फैशन सन् ३३ तक कायम रहा। सन ३३ मे नाजीवाद सत्ता मे आया और लोग रविठाकुर को उसी तेजी से भूलने लगे जिस तेजी से अब तक उनकी पूजा हो रही थी।

हिटलर के सत्तारूढ होने के बाद आइन्स्टाइन, अलवर्त स्वाइत्स, कुर्त वोल्फ और काउन्ट केजरलिंग जैसे थोडे से ही लोग बच रहे थे जो रविठाकुर से सम्पर्क बनाये रखने का साहस कायम रख सके, पर आज जर्मन जनवादी गणतन्त्र की जनता उस महान भारतीय कवि का यथार्थ चित्र प्रतिष्ठापित करने की कोशिश कर रही है। जर्मन सस्कृति के प्रेम मे खिचकर रविठाकुर ने तीन-तीन बार जर्मनी की यात्राए की और यहा की जनता ने उनका हार्दिक स्वागत किया। लेकिन जब हम यह देखते है कि उस महान कवि ने जर्मनी के प्रतिक्रियावादियो के आक्रमण के बावजूद किसी प्रकार की नर्मी न दिखायी और जब भी आवश्यक समझा, नाजीवाद की खुलकर भर्त्सना की तो हमारा दिल खुशी से गद्गद् हो उठता है।

थामस जिलवेस्ताईन

चीन और रवीन्द्र

जब मै अतीत पर विचार करता हू तो कुछ चीज जिमे घटित हुए तीस मे अधिक वर्ष बीत गए है, साफ साफ मेरे मन के सामने आ खडी होती है। २२ अप्रैल १९२४, वसन्त का एक सुन्दर दिन था जब कि उष्ण ब्यार बह रही थी और सूर्य चमक रहा था। मै उस समय केवल एक बालक ही था, त्सिनान हाई स्कूल मे प्रथम-वर्ष का विद्यार्थी। यह सुनकर कि भारतीय कवि टैगोर त्सिनान पधारे है, मै छुट्टी बिना लिए पाठशाला से निकल पडा और एक लम्बा रास्ता तय करने के बाद चन्द घटो के लिए भीड भडक्के मे पिसते हुए आदरणीय कवि का भाषण सुनता रहा।



[पीकिंग मे रवीन्द्र शताब्दी समारोह का चित्र]

मै उस आयु मे, कविता और कवियो के बारे मे कुछ भी ता नही जानता था। भारतीय कविता और भारतीय कवियो क सम्बन्ध मे ता मेरा ज्ञान और भी कम था। फिर भी मुझे अफसोस नही था, क्योकि टैगोर के ढीले ढाले लबादे, लम्बी दाढी और शान्त कृपालु मुखड ने मुझ पर गहरा प्रभाव डाला। तदनन्तर, जब कभी टैगोर की रचना का चीनी अनुवाद प्रकाशित होता तो मै उसे खरीदता और पढता। मैने उनकी कविताओ के ये सग्रह पढे, दिग्भ्रान्त, विहग, मालिनी, दूज का चाद, फल चयन, भगाडा और गीताजलि इनके अतिरिक्त उनके नाटक और निबन्ध भी पढे।

इसी तरह बीस वर्ष तक चलता रहा, चीन लोक गणराज्य की स्थापना के बाद तीसरे वर्ष तक, जबकि मै चीनी सास्कृतिक शिष्ट मडल के साथ भारत गया और नई दिल्ली मे आदरणीय कवि के सुपुत्र से मिला जो उस समय शान्तिनिकेतन के उप-कुलपति थे।

यहा मैने टैगोर के बारे मे और जाना और तब से, मैने अपने को टैगोर के और भी समीप अनुभव किया है और उनकी रचनाओ मे और ज्यादा दिलचस्पी ली है। इसके अलावा, यह दिलचस्पी चीन मे टैगोर का परिचय देने के काम मे नवीन प्रगति के समय बढी। पहले उनकी रचनाओ के सभी अनुवाद अग्रेजी पाठ से हुए थे और काफी सकुचित परिधि तक सीमित थे, परन्तु अब कई रचनाए

मूल बगाली मे अनूदित हुई तथा इनकी परिधि भी व्यापक हुई और टैगोर की उन रचनाओ का परिचय चीन को दिया गया जिनमे हम अभी तक अनभिज्ञ थे ।

जहा तक चीन क लिए उनकी मित्रता का प्रश्न है, मे बराबर इसके प्रति सचेत रहा हू। उ होन चीन और भारत के बीच पुन सम्पर्क स्थापना करने की अपनी उत्कट इच्छा पर बार बार जोर देत हुए चीनी जनता और चीनी क्राति की प्रशसा की थी । एक गूढ भाव मे उन्होने घोषणा की थी– 'नये युग का पदार्पण हो चुका है और वह हमारे दरवाजे पर खडा प्रतीक्षा कर रहा है, वह हमारे स्वागत अभिनन्दन की प्रतीक्षा मे है ' हम उसे और ज्यादा इ तजार मे नही रख सकते । हमे (चीन और भारत) एकता करनी चाहिए और महान युग के लिए स्वागत के आह्वान गान की गू ज चीन और भारत मे उठनी चाहिए । इन दोनो देशो को स्वागत-ज्योति जगाए आगे बढना चाहिए ।' हम टैगोर क ये मैत्रीपूर्ण शब्द कभी नही भूलेगे ।

• ची श्येन-लिन

हगरी का स्मृति-चिन्ह

विश्वकवि को हृदयरोग था । उन्होने अपनी किसी विदेशयात्रा मे यह सुना कि हगरी मे इस रोग की चिकित्सा का विशेष रूप से विशेष ढग से प्रबन्ध है। अत उन्होने स्वास्थ्य लाभ के लिए १९२६ मे हगरी के प्रसिद्ध हृदयरोग के अस्पताल मे अपनी चिकित्सा कराई ।

उन्होने यहा पर अपनी यात्रा की स्मृति मे ६ नवम्बर १९२६ ई को एक पौधा लगाया था जो अब वृक्ष के रूप मे लहलहा रहा है । इसकी छाया मे इसी स्थान पर विश्वकवि की एक मूर्ति लगा दी गई है जो आज भी उनकी स्मृति को ताजा करती है ।

जिस खम्भे पर टैगोर की मूर्ति लगाई गई है उसके बीच मे उनकी वह कविता भी हगेरियन और अग्रेजी भाषा मे एक पत्थर पर खोद कर लगा दी गई है जो उन्होने इस अवसर के बाद आठ नवम्बर को वहा बैठकर लिखी थी, कविता पूरी दी गई है । इसी के पास एक बोर्ड लगा दिया गया है जिसमे बताया गया है कि यह भारतीय महाकवि है । पौधा लगाने की तिथि, महाकवि का नाम आदि भी उस पर लिखा है । इस मूर्ति के ऊपर कवि द्वारा लगाये पोधे की डालिया लहलहाया करती है ।

• प्रेमनारायण अग्रवाल

(पृष्ठ २९१ का शेष)

सम्भव है जब अज्ञान की दीवारे जो राष्ट्रीय विचारधारा के प्रसार मे बाधक है—गिरा दी जाए ।

निस्सदेह, यदि टैगोर कुछ वर्ष और जीवित रहते तो उनकी प्रतिभा फिल्म उद्योग को भी छू लेती । वस्तुत उनका साहित्य फिल्म-उद्योग के लिए काफी उपयोगी है, बशर्ते कि फिल्म वाले चाहे ।

उ होने फिल्म-उद्योग के लिए विशेषरूप से तो कुछ नही लिखा, पर चोखेर बाली, गोरा, दृष्टिदान, नौका डूबी, चिर कुमार सभा, काबुलीवाला और क्षुधित पाषाण जैसे फिल्म उनके लेखन पर बने ।

रवीन्द्र बल्गेरिया में

प्रथम महायुद्ध के समाप्ति की समय की बात है—बल्गेरिया की राजधानी सोफिया के विश्वविद्यालय मे अ तर्राष्ट्रीय साहित्य का प्राध्यापक होने के कारण ही सभवत मुझे सोफिया स्टेशन पर रवी द्रनाथ टैगोर का स्वागत करने का दायित्व सौपा गया। उस समय तक रवी द्र की गार्डनर आदि कुछ पुस्तको का बल्गेरिया मे अनुवाद हो चुका था।

जब लम्बी व सफेद दाढी युक्त शक्ल रेल के डिब्बे मे सन्त की भाति हाथ ऊपर उठाये बाहर निकली तो स्टेशन पर घटो से प्रतीक्षारत उपस्थित जन समुदाय 'भारत जिदाबाद', टैगोर जिदाबाद' क नारो से समस्त आसमान गू ज उठा। बल्गेरिया के इतिहास की यह प्रथम व अभूतपूर्व घटना थी।

हमे पहली बार १६२६ मे रवी द्रनाथ टैगोर के जरिए भारत को जानने का अवसर मिला। टैगोर उस समय भारतीय वेशभूषा मे थे—जो हमे प्रथम बार देखने को मिली। इसकी बल्गेरिया वासिया पर गहरी छाप पडी। टैगोर क साथ आई हुई साडी पहन हुए, भारतीय महिलाओ को देखकर हम मुग्ध हो गये।

स्टेशन पर उतरते ही टैगोर उपस्थित जन समुदाय क बीच रास्ता निकाल कर चल पडे और उनके पीछे चल पडा प्रशसको व मित्रो का विशाल जुलूस। यह प्रेम प्रदर्शन का दिलचस्प व मार्मिक दृश्य था—जिसे मै कभी भूल नही सकता और न मैने आज तक ऐसा दृश्य देखा ही है।

• पेतको स्तेनोव

आर्मीनिया साहित्य में रवीन्द्र

रवीन्द्रनाथ टैगोर की कृतियो से आर्मीनियाई जनता का परिचित कराने का श्रेय आर्मीनिया के लेखको तथा कवियो को है जिनमे वी० पापाज्यान और वी० तर्यान के नाम विशेष उल्लेखनीय हे। वी० पापाज्यान द्वारा अनूदित टैगोर के 'माली' के कुछ अ श १६१७ मे एक साहित्यिक एव वैज्ञानिक पत्रिका गार्ज्जे मे प्रकाशित हुए थे।

अमलिक तुनान्यान रवी द्रनाथ टैगोर की रचनाओ के महान् प्रेमी और मर्मज्ञ है। १६१६ मे उन्होने रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा लिखित बच्चो की कहानियो के एक सग्रह का अनुवाद 'मौलिक' शीर्षक मे किया था। माली' का आर्मोनियाई भाषा मे दूसरा सस्करण १६२२ मे प्रकाशित हुआ।

१६५५ मे 'माली' का आर्मीनियाई भाषा मे पुन प्रकाशन हुआ।

रवी द्रनाथ टैगोर क लोकप्रिय उपन्यास 'घरे बाहिरे' (घर और ससार) का अनुवाद गेवार्ग्यान ने १६३१ मे किया। 'गीताजलि' शीर्षक मे उनके गीतो का एक सग्रह आर्मीनियाई भाषा मे नौरअजदरार (नव उद्घोषक) नामक पत्रिका मे प्रकाशित हुआ। १६५६ मे रवीन्द्रनाथ टैगोर के प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास 'गोरा' का आर्मीनिया मे प्रकाशन हुआ।

• एल० तेर मकर्त्यान



रवीन्द्रनाथ ठाकुर भारतीय संस्कृति के परम उपासक थे।

भारतीय संस्कृति के पोषक साहित्य को प्रोत्साहन देना उनके प्रति सर्वोत्तम श्रद्धांजलि अर्पित करना है।



इस दिशा में

सस्ता साहित्य मण्डल के प्रकाशन बड़ी ही स्वस्थ और विचार प्रेरक सामग्री प्रदान करते हैं।



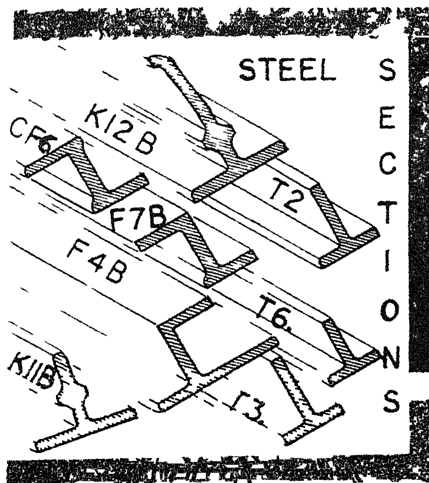
मण्डल के पूरे साहित्य को अपने यहां रखिए, उसका अध्ययन कीजिये और अपने कुटुम्बी जनों तथा मित्रों आदि को भी उसे पढ़वाइये।



एक कार्ड लिखकर 'मण्डल' का सूचीपत्र मंगवा लीजिये और पुस्तकों की मांग अपने यहां के पुस्तक विक्रेताओं से कीजिये। ●●●

सस्ता साहित्य मण्डल

कनाट सर्कस नई दिल्ली

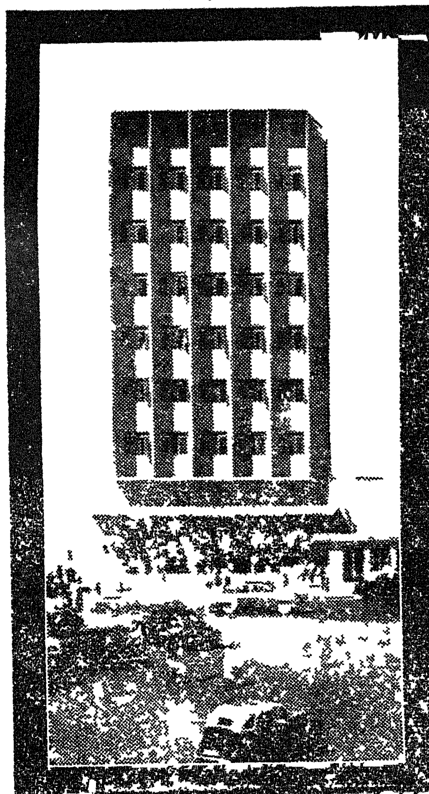


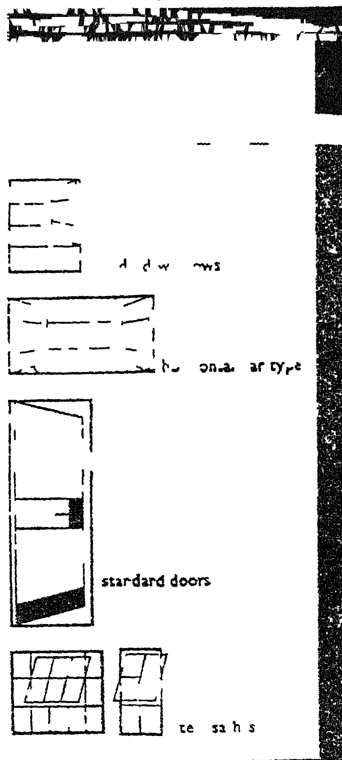
are manufactured to the highest standards of technical excellence they blend harmoniously with the most modern designs and are available in standard sizes comp ete with accessories or made to individual specifications

man industrial corporation ltd

bombay office ali chambers tamarind lane
bombay 1 phone 254058

MAN STEEL WINDOWS





h ochure

man industrial corporation ltd

jaipur (rajasth m)

GRAM 'PROGRE

PHONE

TREVEL HABITS

CLEANLINESS Cleanliness is next to Godliness Let us cultivate the habit of cleanliness We can help by not throwing scraps of food skins and peeles of Fruit and water on platforms or in compartments These should be thrown into the dustbins

SPITTING Spitting Indiscriminately on platform is unhygienic It is also bad manners Let us use spitoons

DRINKING WATER Let us not use cooled and filtered drinking water for other purposes

SITTING Let us avoid sitting with the feet on the seat This is annoying to others in the compartments and is not good manners either

HEAVY LUGGAGE Booking our heavy luggage in the brak evan will give our fellow passengers and ourselves more room in the compartments

SMOKING It is an offence to smoke in a railway train when requested by a fellow passenger not to Let us avoid smoking when requested or when the compartment is crowded or the doors and windows are shut

NATION'S PROPERTY Railways are the Nation's property We can help by catching persons who steal or damage railway property They should be pointed out or turned out to uniformed Railway staff on duty Wrong doers or mischief makers who pull the chain needlessly could be dealt with in the same way

WESTERN RAILWAY

निरठा रवीन्द्र/अ न]

A (Quarterly) Subs ... —Per copy Rs 2 00 An
(with one Special issue every year) Write to —Manager
Pr... mion ki Rasta, Post Box No 127, Jaipur

लोकी प्रसाद, व्यवस्थापक मदनलाल जैन, मुद्रक मोती प्रिन्टर्स, जयपुर
न व्यवस्था राजस्थान एडवर्टाइजिंग एण्ड सेल्स सर्विस जयपुर